

Raghunandan<sup>2</sup> says

day, bathing is efficacious in the Ganges only

(2) The *sayana* (sleep) of Sree Hari (श्रीहरिस्नयनम्) may be observed under certain circumstances in any of the five Tithis beginning with Sukla Ekadasi (एकादशी) in the month of Ashadha

(3) If the auspicious time for performing the पिपितकी द्वादशी व्रत occurs on two days, it should not be celebrated on the day in which एकादशी occurs

(4) Kalyuga began with the full moon (पूर्णिमा) in the month of Chandra magha (चान्द्र माघ)

(5) It is inauspicious to look at the moon on chaturthi (चतुर्थी)

in Saura Bhadra (सौरभाद्र) even if she rises in Tritya (तृतीया)

(6) Religious injunctions as well as prohibitions on account of सङ्क्रान्ति Sankranti should be strictly observed only during the auspicious moments due to the same

(7) Rambha Tritya (रम्भातृतीया) is the only one of the Tritya Bhatas which may be observed in the day conjoined with the Dwitya tithi, when the auspicious time for performing the same falls on two days

(8) Even if the Jayanta Joga\* (जयन्तीयोग) does not occur in the (जन्माष्टमी) Janmasthami night, the divine services in connection with the birth of Sree Krishna

Gobindananda says

bathing is efficacious in any stream whatever

(2) The *sayana* (sleep of Sree Hari) should not be observed in any other Tithi except Sukla Dwadas (द्वादशी) in the month of Ashadha

(3) In such a case the व्रत should be celebrated on the day in which (एकादशी) occurs

(4) Kalyuga began with the new moon (अमावस्या) of the same month

(5) It is inauspicious to look at the moon on Chaturthi (चतुर्थी) or Panchami (पञ्चमी) in Saura Bhadra (सौरभाद्र) only when she rises in Chaturthi चतुर्थी

(6) Religious injunctions should be observed during the auspicious moments only, but prohibitions apply to the whole of that day (अहोरात्र)

(7) Aukshaya Tritya (अक्षया तृतीया) is the only one of the Tritya Bhatas which can be so performed

(8) In such a case the divine services are to be performed in the Asthami tithi (अष्टमी तिथि) morning

\* When the asterism of Rohini is visible in the midnight of the (अष्टमी) of the dark fortnight of Sravana



command greater popularity either in his own time or after his death. The cause is not however very far to seek. Raghunandana established himself in Nadia which at that period was justly looked upon as the centre of light and learning, and he himself belonged to the most influential sections of Brahmmins in Bengal and as such had a much larger following than Govindananda could possibly have, who lived in an obscure village and belonged to a comparatively less influential section.

Govindananda has in nearly all places mentioned the sources from which he drew the texts bearing upon his subject, but in some instances, he does not refer to them by name, but is simply satisfied with such expressions as "some say", or "others say." Gobindananda himself was perhaps not sure of their authorship, but simply quoted them from memory, or perhaps they were too well known at the time. However, after careful study and much labour, I have succeeded in finding out the sources of some, and they are noticed below.

६५ पृष्ठा—१५। ग्रहणविचारे अन्येतित्यनेन भानूपाध्यायमतमुपन्यस्य दूषितं।

६६ पृष्ठा—६। ग्रहणविचारे अन्ये तु इत्यनेन कालकौमुदीमतं दूषितं।

१०५ पृष्ठा—१। ग्रहणप्रस्तावे केचिदित्यनेन कालकौमुदीसमयप्रकाशयोर्मतमुल्लिख्य दूषितं।

१०७ पृष्ठा—२। ग्रहणप्रकरणे केचिदिति—नारायणोपाध्यायमतमुपन्यस्य दूषितं।

३५१ पृष्ठा—१०। अश्वयुक्कृष्णपक्षप्रकरणे केषाञ्चिदित्यनेन कल्पतरुमतमुपन्यस्य दूषितं।

४४७ पृष्ठा—२२ पङ्क्त्यां दुर्गापूजाप्रकरणे अन्ये तु इत्यादिना दुर्गाभक्ति-तरङ्गिणीमतमुपन्यस्य दूषितं।

In editing this book I have not only used the three manuscripts mentioned above but have consulted authorities like Hemadri, Madhabacharya, Sulapani, Madanapala, Bachaspati Misra, Raghunandana, Rayamukuta, Kamalakara Bhattacha, and authoritative works like, Agastha Sanghita, Tantrasara, Saradatilaka, Kramadipika.

In the index, an alphabetical list of the Slokas relating to the general rules and laws have been added.

In conclusion, I must thank the Asiatic Society of Bengal for the kind permission accorded to me for editing this valuable work. I am specially grateful to Mahamahopadhyaya Haraprasad







# शुद्धि पत्रम् ।

| नं ।               | पङ्क्ति । | कथारम्भ ।   | शुद्धम् ।      |
|--------------------|-----------|-------------|----------------|
| ८                  | १६        | वसुसम्प्रयो | वसुसम्प्रयोः   |
| १०                 | २०        | विन्दकः     | विन्दुक        |
| १८                 | १५        | वीजाभावाद्य | बीजाभावाद्य    |
| १८                 | १६        | बीज         | बीज            |
| १५                 | ८         | वान्यात्    | वाल्यात्       |
| ५५                 | १०        | प्रायन्त    | प्रयन्त        |
| ५६                 | १०        | कामाध्याशा  | कामाध्याशा     |
| ५८                 | ८         | एकभक्तमये   | एकभक्तमये      |
| ६७                 | ९         | मेघुने      | मेघुने         |
| ८६                 | ८         | चन्द्रेण    | चन्द्रेण       |
| ८८                 | २१        | चिद्विज्ञा  | [ ] चिद्विज्ञा |
| १११                | ०         | सत्त्वादि   | सत्त्वादि      |
| ११८                | ११        | गौरवाद्य    | गौरवाद्य       |
| १२१                | १८        | उर्जादि     | उर्जादि        |
| १२२, २-३-४-१८      |           | बीज         | बीज            |
| १२३, १-११-१५-१६-१८ |           | बीज         | बीज            |
| १२४                | ०         | वर्जिते     | वर्जिते        |
| १२५                | ४         | वाप्याद्य   | वाप्याद्य      |
| १२६                | १०        | बीज         | बीज            |
| १२७                | ११        | बीज         | बीज            |
| १२८                | ८         | वर्जिते     | वर्जिते        |
| १२९                | ८         | वर्जिते     | वर्जिते        |

| श्र. । | पङ्क्ति । | अशुद्धम् ।       | शुद्धम् ।        |
|--------|-----------|------------------|------------------|
| १६४    | ११        | त्रयेन           | त्रयेण           |
| १७१    | २०        | नेत्राङ्गालकरः   | नेत्राङ्गादकरः   |
| १७४    | १४        | ऊर्द्ध           | ऊर्ध्व           |
| १७५    | ७         | तेजसा            | तेजसां           |
| १८२    | १८        | बन्धनै           | बन्धनैः          |
| १८३    | १५        | ० पूराद्रगण्डं   | ० पूराद्रगण्डम्  |
| २००    | १५        | -द्वं            | -द्वेवं          |
| २०२    | ७         | वाहौ             | वाहौ             |
| २०३    | १२        | ऊर्द्ध           | ऊर्ध्व           |
| २०४    | ४         | निर्यापकन्यासं   | त्रिर्यापकन्यासं |
| २०८    | १४        | अस्त्रेषाद्रा    | अस्त्रेषाद्रा    |
| २१६    | ११        | विन्मूत्र        | विण्मूत्र        |
| २१८    | ४         | खवत्तविलसत्      | खवत्तविलसत्      |
| २२०    | १४        | रोदित्यन्त्यन्त  | रोदित्यन्त्यन्त  |
| २२०    | १८        | ब्रुहि           | ब्रूहि           |
| २२४    | १६        | भोनेन            | भोगेन            |
| २२४    | ११        | विष्णुधर्मोत्तरे | विष्णुधर्मोत्तरे |
| २२८    | १५        | वैशाखाद्याः      | वैशाखाद्याः      |
| २४०    | १         | दुवसत्वाच्च      | दुर्वसत्वाच्च    |
| २५७    | १५        | माल्यदान         | माल्यदाम         |
| २६८    | ११        | बुद्धा           | बुद्धा           |
| २६८    | १६        | वनमास            | वनवासं           |
| २७८    | ७         | द्युमत्सेन       | द्युमत्सेन       |
| २८०    | १३        | जाह्नवी          | जाह्नवी          |
| २८१    | १३        | सपीथि            | सपीथि            |

| सं. | पङ्क्तिः | वचनम्        | शब्दम्       |
|-----|----------|--------------|--------------|
| ७८१ | १४       | × × ×        | पितृभ्यस्तु  |
| ७८२ | १४       | मयुग्माया    | मयुग्माया    |
| ७८३ | १६-१८    | आदाया        | आदाया        |
| ७८४ | ५        | आदा          | आदा          |
|     | १०       | आदास्तो      | आदास्तो      |
|     | १२       | आदादि        | आदादि        |
| ७८५ | १६       | कैवलाया      | कैवलाया      |
| ७८८ | ५        | गृहीयात्     | गृहीयात्     |
| ७८९ | २१       | मघ्नन्       | मघ्नन्       |
| ७९१ | १२       | भोक्ताया-    | भोक्ताया     |
| ७९१ | २०       | मृदि         | मृदि         |
| ७९२ | २        | मृगोरवान्    | मृगोरवान्    |
|     | १०       | चरन्         | चतुर्चर      |
|     | १२       | मृदि         | मृदि         |
| ७९३ | १२       | मृदि         | मृदि         |
| ७९४ | १२       | मृदि         | मृदि         |
| ७९५ | १२       | मृदि         | मृदि         |
| ७९६ | ७        | माद्यन्तानां | माद्यन्तानां |
| ७९७ | २१       | माद्यन्त     | माद्यन्त     |
| ७९८ | १५       | माद्यन्त     | माद्यन्त     |
| ७९९ | ५        | माद्यन्त     | माद्यन्त     |
| ८०० | १८       | मघ्नन्       | मघ्नन्       |
| ८०१ | ०        | मघ्नन्       | मघ्नन्       |



# वर्णानुक्रमणिका विषयसूची ।

अ ।

| विषय                           | पृष्ठा | पङ्क्ति । |
|--------------------------------|--------|-----------|
| अक्षयवृत्तीया ...              | २४६    | ६         |
| अक्षयतिथिनिर्णयम् ...          | ६      | १७        |
| अगस्त्यार्घ्यविधिः . .         | ३४०    | १         |
| अधोश्चतुर्दशी ...              | ३१५    | ५         |
| अङ्गारकचतुर्थीव्रतम् ...       | ३२     | ७         |
| अङ्गनप्रमाणम् .                | ३८७    | १५        |
| अनन्तव्रतकथा . .               | ३३१    | ८         |
| अनन्तव्रतम् ...                | ३२३    | १४        |
| अन्वष्टकाश्राद्धम् ...         | ४८८    | १०        |
| अमावस्याहृत्यम् ...            | ८१     | १०        |
| अम्बुवाची ...                  | २८३    | २०        |
| अरण्यवष्टौ ...                 | २७६    | ४         |
| अश्विनप्रथमद्वितीया ...        | २६४    | ८         |
| अशौचकालोपस्थितग्रहणोक्तव्यानि  | १०७    | ३         |
| अशौचपतितश्राद्धकालव्यवस्था ... | १५     | १३        |
| अश्वयुक्ताष्टमपक्ष ...         | ३४४    | ५         |
| अष्टकाश्राद्धम् ...            | ४८८    | ४         |
| अष्टमौहृत्यम् ' ...            | ३८     | २७        |

आ ।

पङ्क्तिः ।

| विषयः               | ... | ... | ... | ... | ... |
|---------------------|-----|-----|-----|-----|-----|
| आरोग्यसप्तमी        | ... | ... | ५०२ | ... | १   |
| आवाहनप्राणप्रतिष्ठे | ... | ... | ४१७ | ... | ४   |
| आश्विनकृत्यम्       | ... | ... | ३४३ | ... | १२  |
| आषाढकृत्यम्         | ... | ... | २८३ | ... | ... |

उ ।

१३

उल्कादानविधिः

कृ ।

१८

ऋतुनिरूपणम्

ए ।

एकादशीकृत्यम्

एकादशीनियमाः

एकादशीव्यवस्था

एकादशशुक्लप्राः

क ।

कार्तिककृत्यम्

कार्तिकी

कालिकापुराणोक्तदुर्गापूजा

कुक्कुटी मर्कटीव्रतम्

कोजागरः

ख ।

खल्लनदर्शनम्

## ग ।

| विषय.                      | पृष्ठा | पङ्क्तिः । |
|----------------------------|--------|------------|
| गङ्गापूजा ...              | २८१    | ७          |
| गङ्गामाहात्यम् ...         | ५३३    | २          |
| गन्धप्रमाणम् ...           | ३८५    | १४         |
| गोविन्ददादशी ...           | ५१४    | १६         |
| गोष्ठाष्टमी ...            | ४७८    | २०         |
| ग्रन्थद्वन्द्वनापरिचयौ ... | १      | २          |
| ग्रन्थास्तव्यवस्था ...     | १०५    | १६         |
| ग्रहणकर्तव्यकर्म्मणि ...   | १०८    | १५         |
| ग्रहणनिर्णयः ...           | ६०     | १५         |
| ग्रहणसमये निषिद्धानि ...   | ११४    | १६         |
| ग्रहणेऽशौचव्यवस्था ...     | ६६     | ३          |
| ग्रहणे भोजनकालनिर्णयः ...  | १०२    | ६          |

## घ ।

|             |     |   |
|-------------|-----|---|
| घटदानम् ... | २४३ | १ |
|-------------|-----|---|

## च ।

|                        |     |    |
|------------------------|-----|----|
| चतुर्थीछात्यम् ..      | ३०  | ७  |
| चतुर्दशीछात्यम् ...    | ७०  | १५ |
| चैत्रछात्यम् . ...     | ५१७ | १४ |
| चैत्रादिवाच्यता ...    | २२८ | ५  |
| चैत्रावली ...          | ५२६ | १६ |
| चातुर्मास्यव्रतानि ... | २८६ | १० |

## ज ।

|                 |     |    |
|-----------------|-----|----|
| जन्मदिनपूजा ... | ५५८ | १७ |
|-----------------|-----|----|



| विषयः                    | पृष्ठा     | पङ्क्तिः । |
|--------------------------|------------|------------|
| जन्माद्यमीप्रयोगः ... .. | ३०६ ... .. | १८         |
| ज्यैष्ठ्यकृत्यम् ... ..  | ३५६ ... .. | २०         |

## त ।

|                                 |            |    |
|---------------------------------|------------|----|
| तत्त्वन्यासोद्धारः ... ..       | १३२ ... .. | २१ |
| तालनवमी ... ..                  | ३२० ... .. | १  |
| तिथिनिषिद्धानि ... ..           | ८२ ... ..  | ५  |
| तिथिस्वरूपनिरूपणम् ... ..       | २ ... ..   | ४  |
| तुलसीचयनमन्त्राः ... ..         | ५४० ... .. | ३  |
| तुलसीमाहात्म्यम् ... ..         | ५३७ ... .. | २० |
| तृतीयाकृत्यम् ... ..            | २६ ... ..  | १२ |
| तैलशब्दस्य शक्तिनिरूपणम् ... .. | ८८ ... ..  | १६ |
| त्रयोदशीकृत्यम् ... ..          | ७० ... ..  | ११ |

## द ।

|  |            |    |
|--|------------|----|
| दधिसंक्रान्तिव्रतम् ... ..             | २१८ ... .. | ६  |
| दर्शनशब्दविचारः ... ..                 | ६४ ... ..  | २  |
| दशमीकृत्यम् ... ..                     | ७२ ... ..  | ३  |
| दशहरा ... ..                           | २७६ ... .. | १६ |
| दुर्गाध्यानम् ... ..                   | ४१३ ... .. | १६ |
| दीपप्रमाणम् ... ..                     | ३८६ ... .. | ११ |
| दूर्वाद्यमी ... ..                     | ३१६ ... .. | ६  |
| दीपान्वितामावस्यायां सङ्क्षीपूजा       | ४७२ ... .. | ३  |
| द्युतप्रतिपद् ... ..                   | ४७६ ... .. | १५ |
| द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवपूजाप्रयोगः | १८२ ... .. | १  |
| द्वादशीकृत्यम् ... ..                  | ६६ ... ..  | १५ |
| द्वितीयाकृत्यम् ... ..                 | २६ ... ..  | ८  |

## ध ।

| विषय               | पृष्ठा | पङ्क्ति । |
|--------------------|--------|-----------|
| धूपप्रमाणम् ... .. | ३८६    | १         |

## न ।

|                                 |     |    |
|---------------------------------|-----|----|
| नक्षत्रद्वये व्यवस्था ...       | ८   | ११ |
| नक्षत्रद्वये उपवास्तव्यवस्था .. | ८   | १३ |
| नवपत्रिकायूजा ... ..            | ४२५ | ६  |
| नवमीकृत्यम् ... ..              | ४०  | १६ |
| नवान्नश्राद्धम् ..              | ४८३ | १८ |
| नागपञ्चमी ... ..                | ३१८ | ११ |
| निषिद्धवस्त्रप्रमाणम् ... ..    | ३८५ | ७  |
| नैवेद्यप्रमाणम् ... ..          | ३८८ | ५  |

## प ।

|                         |     |    |
|-------------------------|-----|----|
| प्रक्षनिरूपणम् . ...    | २३६ | १३ |
| पञ्चमीकृत्यम् ..        | ३४  | १३ |
| पञ्चमीव्रतम् ... ..     | ४६६ | २  |
| पञ्चविधवर्षनिरूपणम् ... | ८०  | १  |
| पतिव्रताधर्मः ... ..    | ५३७ | ४  |
| पायाणचतुर्दशी ...       | ४८३ | १२ |
| पिपैतकौव्रतकथा .        | २५४ | २१ |
| पिपैतकौव्रतविधि- ...    | २५२ | १  |
| पुष्पप्रमाणम् ...       | ३८५ | १८ |
| पूजापात्रपरि- ...       | ३८५ | १  |
| पौर्यामासीकृत.. ...     | ७७  | ३  |
| पौषकृत्यम् ... ..       | ४८७ | १८ |

|                      |     |     |     | पङ्क्ति । |
|----------------------|-----|-----|-----|-----------|
| विषयः                |     |     |     | १         |
| प्रकीर्णकम्          | ... | ... | ५३३ | १५        |
| प्रकीर्णवचनानि       | ... | ... | ५६४ | १८        |
| प्रतिपत्तयम्         | ... | ... | २८  | ८         |
| प्रेतचतुर्दशीव्रतकथा | ... | ... | ४६१ | ...       |
| फ ।                  |     |     |     | ११        |
| फाल्गुनव्रतम्        | ... | ... | ५०६ | ...       |
| ब ।                  |     |     |     | १३        |
| बलिदानप्रमाणम्       | ... | ... | ३६४ | १६        |
| बलिदानप्रयोगः        | ... | ... | ४३७ | ६         |
| ब्रह्मपुत्रस्नानम्   | ... | ... | ५२२ | ...       |
| भ ।                  |     |     |     | १         |
| भाद्रपदव्रतम्        | ... | ... | २६८ | १         |
| भीष्माष्टमी          | ... | ... | ५०३ | ६         |
| भैमीएकादशी           | ... | ... | ५०४ | १२        |
| आषाढद्वितीया         | ... | ... | ४७७ | ...       |
| म ।                  |     |     |     | ...       |
| मघात्रयोदशी          | ... | ... | ३५५ | ...       |
| मङ्गलचण्डिकापूजा     | ... | ... | ५५२ | ...       |
| मनसापूजा             | ... | ... | २६६ | ...       |
| मनोरथद्वितीया        | ... | ... | १४  | ...       |
| मङ्गमासः             | ... | ... | २३६ | ...       |
| महाकार्तिकी          | ... | ... | ६२  | ...       |
| महा महावारुणी        | ... | ... | ५६६ | ...       |
| महावारुणी            | ... | ... | ५१६ | ...       |

| विषय                            | पृष्ठा | पङ्क्ति । |
|---------------------------------|--------|-----------|
| महाजया ... ..                   | ३५     | ११        |
| महान्यैष्ठौ ... ..              | ७८     | १४        |
| महाष्टमीपूजा ... ..             | ४२८    | ७         |
| माघद्वत्यम् ... ..              | ४६०    | ६         |
| माघसप्तमी ... ..                | ४६६    | ८         |
| माघस्नाननियमा ... ..            | ४६०    | १२        |
| मार्गशीर्षद्वत्यम् ... ..       | ४८२    | १         |
| मित्रसप्तमी ... ..              | ४८३    | ४         |
| मासनिर्ूपणम् . ... ..           | २२२    | ११        |
| मृताह्वाज्ञाने आद्रथ्यवस्था . . | १५     | १६        |

## य ।

|                 |     |    |
|-----------------|-----|----|
| यवआद्रम् ... .. | २४३ | १८ |
| युगाद्या ... .. | २४६ | १८ |

## र ।

|                                    |     |    |
|------------------------------------|-----|----|
| रटन्तीचतुर्दशी ... ..              | ४६७ | १  |
| रात्रिप्रते विशेषव्यवस्था ... ..   | १२  | ७  |
| रात्रौदादशसक्रान्तिषु व्यवस्था ... | २०८ | १६ |
| रोहिण्यष्टमी ... ..                | २६८ | १० |

## ल ।

|                 |     |   |
|-----------------|-----|---|
| ... पूजा ... .. | ४३७ | ५ |
|-----------------|-----|---|

## व ।

|                 |     |   |
|-----------------|-----|---|
| ... कम् ... ..  | ४७६ | ८ |
| ... र्थी ... .. | ४६८ | ७ |

| विषय                       | पृष्ठा | पङ्क्ति । |
|----------------------------|--------|-----------|
| वामनपूजाविधिः ... ..       | ३२१    | ६         |
| वारव्रतम् ... ..           | ५४१    | १०        |
| वासणी ... ..               | ५१८    | १०        |
| विजयासप्तमी ... ..         | ३६     | ६         |
| विधवाधर्मः ... ..          | ५७६    | १         |
| विनायकचतुर्थीव्रतम् ... .. | ३१     | १५        |
| वैदिकपूजाप्रमाणम् ... ..   | ११७    | १६        |
| वैदिकपूजाप्रयोगः ... ..    | २०१    | १५        |
| वैशाखकृत्यम् ... ..        | २४०    | ३         |
| व्यतीपातयोगः ... ..        | २४२    | १२        |

## श ।

|                                  |     |    |
|----------------------------------|-----|----|
| शालग्राममाहात्म्यम् ... ..       | ५४० | ६  |
| शिवचतुर्दशीव्यवस्था ... ..       | ७२  | २१ |
| शिवरात्रिव्रतम् ... ..           | ५०६ | १८ |
| शिवरात्रिव्रतकथा ... ..          | ५१२ | ११ |
| शूद्रधर्मः ... ..                | ५६८ | ५  |
| श्रवणदादशी ... ..                | ३२० | ८  |
| श्रवणदादशीप्रयोगः ... ..         | ३२१ | ६  |
| श्राद्धकालव्यवस्थानिर्णयः ... .. | १७  | ३  |
| श्रावणकृत्यम् ... ..             | २६२ | १८ |
| श्रीपञ्चमी ... ..                | ४८८ | ७  |
| श्रीरामनवमी ... ..               | ५२३ | १५ |
| श्रीरामनवमीपूजाप्रयोगः ... ..    | ५२६ | १६ |
| श्रीहरेस्त्यानम् ... ..          | ४७६ | १६ |

## ष ।

| विषय                   | पृष्ठा | पङ्क्ति । |
|------------------------|--------|-----------|
| षष्ठीकृत्यम् ...       | ३५     | १         |
| षोडशगयापिण्डमन्त्रा .. | ३६३    | १४        |

## स ।

|                              |     |    |
|------------------------------|-----|----|
| संक्रान्तिकृत्यम् ...        | २१२ | १७ |
| संक्रान्तिनिरूपणम् ...       | २०४ | १३ |
| सप्तमीकृत्यम् ...            | ३५  | ५  |
| सप्तमीपूजा ...               | ४०० | ११ |
| साधारणदुर्गोत्सवप्रमाणम् ... | ३६५ | ६  |
| सावित्रीचतुर्दशी ...         | २६० | १६ |
| सावित्रीव्रतविधिः ...        | २६२ | २० |
| सावित्र्यपाख्यानम् ...       | २६४ | १२ |
| सुखरात्रि ...                | ४६७ | १६ |
| सूतिकाषष्ठीपूजा ..           | ५४४ | १  |
| सौभाग्यद्वितीया ..           | ५२० | २१ |
| स्तन्दषष्ठी ...              | ५२१ | १० |

## ह ।

|               |     |    |
|---------------|-----|----|
| हरिताजिका ... | ३१६ | १७ |
| हरिशयनम् ...  | २८६ | २  |

## ऋषिनामानि ।



अङ्गिराः ८५, २० । ५७३, ८ ।

अत्रिः ११५, १४ ।

आपस्तम्बः २३, १४ । २८, ३ । ५६६, १ ।

उशनाः २१, २१ ।

कात्यायनः २३७, १ । ४८८, ६ ।

कार्ष्णिजिनिः ३४५, ३ ।

गार्ग्यः ८२, १४ । ८८, ११ ।

गोतमः २०, १६ । १२०, ४ । ५६६, ११ । ५७१, ६ ।

गोमिलः ११०, १२ ।

छागलः ६८, ५ ।

जातूकर्णः ३४५, १६ ।

जावालः २८, ११ । ८२, १६ । ६५, ४ । २०७, ७ । २५६, १२ । ३४५,  
१३ । ५६५, १ ।

जावालिः ५, १२ ।

दक्षः १०७, १२ । ५६५, ६ ।

देवलः १५, १ । ६२, १५ । ६५, २ । ६७, १२ । ६८, १० । ८६, ५ ।

६३, १७ । १०२, १४ । १०४, १० । ११८, ६ । ५७०, २० ।

५७२, १७ ।

नारदः २६१, ११ । ५७४, १६ ।

पराशरः १३, १ । ६३, २० । २६२, १ ।

पैठौनसिः २३, १६ । ८६, ११ ।

प्रचेता १३, ६ । ५३, ६ । १०६, ६ । ५७२, १५ ।

वृहद्वशिष्ठः २४, ५ ।

वृहस्पति ५६६, ५ । ५७०, १० ।

वौधायन १२, ७ । १७, ८ । ८४, १ । ८६, ८ । ४५३, ४ ।

मनु ८६, १ । ६४, १२ । १६५, ११ । १७६, १० । २२६, ७ । २३६, १८ ।

३५२, १५ । ३५५, ११ । ३५६, ११ । ३५६, ११ । ५६४, २१ ।

५६६, २ । ५६८, ६ । ५७०, ४ । ५७२, २-८ । ५७३, ११ । ५७४,

६ । ५७६, २० । ५७७, ५ । ५७८, २ ।

मरीचि ३१६, १ ।

यम ७१, २ । ६३, ६ । १०८, २० । २५१, ४ । २५६, ५ । ४८१, १८ ।

४६६, १-१८ । ४६७, १ ।

याज्ञवल्क्य ३५८, १ । ५६५, ११ । ५६६, २० । ५६८, ८ । ५७४, १-१८ ।

५७८, २२ ।

योगियाज्ञवल्क्यः ५०३, १३ ।

वश्लिः ८३, १४ ।

विष्णुः ६६, ६ । ६७, ४ । ६३, १२ । १६६, १० । १८०, १ । २१२, २१ ।

२४६, १६ । २८३, ५ । २६२, १३ । ३५५, १५ । ४८८, १५ ।

४८८, २१ । ४६०, १६ । ४६५, १८ । ४६७, ६ ।

व्याघ्र ७६, १ ।

व्यास ८२, ११ । ८३, १ । ६२, ११ । १११, ५ । ११३, ३ । ५७३, १६ ।

वृद्धगोतम १०६, १७ ।

शङ्ख ६७, ६ । १६६, ७ । १७२, १७ । ३५६, ४ ।

श्रातातपः २०, १६ । ६६, १५ । ६७, १७ । ८४, १५ । ६१, १६ । ६३, ४ ।

१०१, १४ । २०७, ४ । २६२, १६ ।

सगत्कुमारः ६०, २ ।

द्वारीत १६, १४ । २१, ६ । ८६, १४ । १६६, ३ । २२२, १७ । २२६, १ ।

५७१, ११ ।



## पुराण ग्रन्थनामानि ।



अग्निपुराणम् ८, १६ । ५१, ५ । १६६, ११ । २०४, १५ । २४७, १७ ।  
३२०, ८ ।

आग्नेयः ३२३, १५ ।

आदिपुराणम् ६, ११ । ३५, ६ ।

आदित्यपुराणम् ५७५, ६ ।

आदिब्राह्म ८१, ४ । ५१७, ७ ।

उद्योगपर्व ६८, १४ ।

कालिकापुराणम् ११६, १२ । १२०, ७ । १३८, १६ । १४१. १४ । १४३,  
३ । १४७, १७ । १५४, १६ । १५६, ५ । १५७, ४ । १५८, १६ ।  
१६१, ४ । १६२, ३-१७ । १७१, ४-१०-१८ । १७३, २१ । १७७,  
८ । १७६, ११ । ३६५, ६ । ३६७, ६ । ३७१, १६ । ३७५, १५ ।  
३७७, १४ । ३७८, १० । ३७९, ६ । ३८३, ६-१६ । ३८५, ७-१८ ।  
३८७, १४ । ३८२, २ । ३८३, १ । ३८४, १४ । ३८७, ३ । ४४१,  
३ । ४४२, २१ । ४४४, १-१७ । ४४५, ५ । ४४८, १८ । ५०२,  
१५ । ५२३, ६ । ५५२, ५-१७ । ५७०, १७ ।

काशीखण्डम् २८०, २० । ५७६, २ । ५७७, १५ ।

कूर्मपुराणम् ४६, ७ । ५५, ७ । ६३, १६ । १६८, १७ । ५१४, १७ ।

गरुडपुराणम् ४२, १६ । ५८, १४ । ६२, १८ । ६८, २० । १७५, १२ ।  
३६३, ७ । ५०४, ७ । ५०८, २ । ५१२, ११ ।

गण्डः २६, २ । ६६, १२ । ६२, १७ । २६५, १७ । ३१३, १ । ३१५, १ ।

३१६, १२ । ३२१, ४ । ३२२, ४ । ४५६, २१ । ४६३, ६ । ४६४, २० ।

दानधर्मः ५३३, ८ । ५३४, १३ ।

देवीपुराणम् ६, ७ । ३०, २१ । ५७, १५ । ६१, १० । ६६, ११ । १००,  
 ४ । २०७, १६ । २०८, २० । २०९, १५ । २१०, १६ । २१५, ३ ।  
 २१७, १८ । २४५, १० । २५०, १ । ३६७, ६ । ३६६, १७ । ३७७,  
 १-६ । ५२३, ११ । ५३२, १४ ।

नन्दिकेश्वरपुराणम् ३६७, १२, । ३७५, २ ।

नन्दिपुराणम् ४५८, १ ।

नरसिंहपुराणम् १६६, ४ । २५१, ७ । ५०१, १३ । ५४२, १६ ।

नारदीय ४८, २० । ४९, १० । २५१, १५ । २८६, ११ । ४५५, २ ।

४५८, ७-१३ । ४६२, १६ ।

नारदीयपुराणम् १०४, १ । १६५, ८ ।

नारसिंहः १७१, ७ । ४६६, ७ ।

नृसिंहपुराणम् १६८, १ । १७४, ३ । १७८, १ । २००, ६ ।

पद्मपुराणम् २७, १६ । ५४, ८ । ६६, १६ । ३८१, ५ । ४६१, ३ । ४६२,  
 १ । ५४०, १० ।

पाद्मम् ४६३, ६ । ४६४, १० । ५३४, १६ ।

बृहन्नारदीयपुराणम् २०६, ६ । ५६७, १६ ।

ब्रह्मपुराणम् १८, ५ । २१, २ । ४६, ४ । ५६, ११ । ६१, १६ । १०२,

६ । ११२, ६ । २३०, १७ । २३६, २१ । २४६, ५ । २५१, ११ ।

२५४, २२ । २५८, १४ । २७६, १-१२ । २८०, १६ । २८६, ७ ।

३०८, १३ । ३१६, २१ । ३४४, ६ । ३५४, १८ । ३५६, ७ । ३५८, ३ ।

४५२, ११ । ४६८, १२ । ४७६, ६ । ४८१, ५ । ४८७, १६ । ४९८,

११ । ५०६, १-१४ । ५१४, १३ । ५२१, ४ । ५४४, २ । ५६०, ३ ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणम् २५, ११ । २६, ६-२१ । २७, १० । २८, ६ । ४८, १७ ।

७३, २ । ७४, ११ । १०६, १४ । ३०४, ८ ।

ब्रह्माण्डपुराणम् ६६, ३ । २६८, ११ । ३०५, ६ । ४५६, ६ । ५१५, २० ।

५१६, ७ । ५३३, ११-२१ । ५३४, २१ । ५३५, १६ । ५३७, ५ ।

ब्राह्मम् १६५, १ । २४८, ६ । २८२, १७ ।

भविष्यपुराणम् ६, १० । ६, १६ । १०, ८-१७ । ११, १३ । १२, १६ ।  
 २८, १६ । २६, ६-१३ । ३०, ८ । ३१, १५ । ३२, ४ । ३४, १४ ।  
 ३५, २-११ । ३७, १५ । ३८, १६ । ४०, १७ । ४१, ८ । ४२,  
 ४-८ । ४४, १ । ४५, २० । ४६, १३ । ४७, ८ । ४८, १० । ५०, ७ ।  
 ५१, १६ । ६६, ७-१६ । ६६, १६ । ७०, १२-१६ । ७१, ५-१४ ।  
 ७४, १४ । ७६, ५ । ७७, ७ । ८०, ७-१६ । ८१, १४ । ८४, ७ । ८५,  
 ११ । ८७, ७ । १०६, ११ । १६४, १२ । १६५, ४ । १६६, १७ ।  
 १६८, ११-२० । १६९, ५ । २१४, १२ । २१५, ११ । २१६, १७ ।  
 २४०, ४ । २४१, १५ । २४३, १ । २५०, १३ । २६०, ११ । २६१,  
 २ । २६४, १२ । २७६, १६ । २८०, ६ । २८१, ७ । २८२, ११ ।  
 २८३, २ । २८५, ५-६ । २८२, ७-१५ । २८४, ८ । २८५, १ ।  
 २८६, १४ । ३०१, ३ । ३०२, १ । ३०४, १६ । ३०५, १ । ३०८,  
 १६ । ३१५, ४ । ३१६, १४-१७ । ३१६, १-६ । ३२२, १६ । ३३६,  
 १८ । ३४३, १६ । ३६७, १ । ३७२, ६ । ३७६, ११ । ३७८,  
 १३-१६ । ३७६, २० । ३८६, ४ । ३८१, १ । ३८६, २० । ४५५,  
 १५ । ४५७, ७ । ४५६, १२ । ४६०, ४ । ४६६, १६-२० । ४७६,  
 १६ । ४७७, १७ । ४७६, २१ । ४८२, ६-१६ । ४८०, १२-२१ ।  
 ४८६, ४ । ४८७, १८ । ४८६, ६ । ५०१, १६ । ५०२, ३ । ५०४,  
 १ । ५१५, २ । ५१६, १८ । ५१६, ११ । ५२०, १८ । ५२६, २० ।  
 ५३४, २-१० । ५३५, ७ । ५३६, ४ । ५४१, १८ । ५४२, ३-१६ ।  
 ५४३, ६-१२ । ५६६, १३ ।

भविष्योत्तरपुराणम् ४४, ११ । २६२, ८ । २६०, ७ । २६६, ४ । ३००,  
 ६ । ३०७, १० । ३१८, १० । ३२४, ४ । ४८६, ८ । ५०३, २ ।

भागवतम् ११७, १६ । १२७, १७ । १५३, १ । १५६, २१ । १७७, १ ।  
 १८०, ६ । १८१, ५ ।

भारतम् ३६, १३ । २४१, २१ । २६४, ४ । ३८७, ११ ।

मत्स्यपुराणम् २६, ४ । ३२, ७ । ३४, १७ । ४१, १५ । ५६, ५ । ६८-२ ।

१०८, ३ । ११०, १७ । २१३, २१ । २४१, १० । ३४०, १६ । ४८१,

२० । ५१७, २२ । ५४३, १ ।

महाभारतम् ७८, ७ ।

महाभारतम् ६१, ५ । ६६, २ । १७२, २० । २४४, ८ । २५८, ६ । २६०,

५ । ३५७, २० । ४८६, १४ ।

मातृयम् २६, १६ । ३०, ३ । ३७, ७-११ । ३८, १८ । ५०, २० । ६६,

६ । ८१, २० । ११४, १-६ । १७६, १६ । २८६, १६ । २६१, २० ।

२६४, १४ । ३४२, ११ । ४६२, २२ । ४६४, ३ । ४६५, २ । ४६६,

१० । ५१६, १६ ।

मार्कण्डेयपुराणम् १७, २० । ४६, १४ । ५४४, १६ ।

लिङ्गपुराणम् ७५, ५-८ । ६६, १४ । १०७, ७ । १०८, ६ । १४६, १३ ।

२६१, १६ । ३६८, १ । ४५३, १२ । ५०७, ७ । ५२२, ३ । ५४१, ६ ।

लैङ्गम् ४५४, ८ । ४५६, ३-२१ । ४६०, १८ ।

वनपर्व ५३५, ४ ।

वराहपुराणम् ४३, १८ । ४६, १६ । ५२, १४ । ५५, १५ । ५८, ८ । ६०,

२१ । २१४, ६ । २८८, ७-१४ ।

वामनपुराणम् ८७, २० । १६६, १३ । १७३, ६ । १७७, १६ । २६०, १ ।

२८६, १८ । २६८, २ । ५१७, १८ ।

वायुपुराणम् १४, ७ । १६, ६ । ४६, १० । ५५, १८ । ५७, २१ । ७४, ८ ।

८१, १७ । २३६, १५ । २४८, ३ । ४८८, १८ ।

वाराह ४१, १ । ४२, ११ । ५७, १० । २८२, ५ । २८६, ७ । ४८०, २ ।

४८१, २ । ५१५, १३ । ५३५, १ ।

विष्णुपुराणम् ८१, ११ । ८५, ३ । २१६, ७ । २३७, ४ । २३८, १० । २४२,

३ । २४६, १८ । २६६, ११ । ५१४, ७ । ५५१, ६ । ५६८, १६ ।

विष्णुरहस्यम् ४८, ५ । ५२, ६ । ५४, १६ । ६१, १८ । ६३, २० । ७३,  
३ । ३०४, ११ ।

शङ्करगीता ४, २० । २४, १६ । ७७, १० ।

शिवपुराणम् १६६, २ ।

शिवरहस्यम् ५, १६ । २५, ८ । ६२, ८ । ७३, १४ । ३८१, ८ ।

स्कान्दपुराणम् २३, ७ । २५, २१ । ३६, ८ । ५५, ६ । ७५, १३ । ७६,  
१६ । २४१, ३ । २६१, १६ । ३०३, ३ । ३४३, १६ । ५१७, १६ ।  
५१८, १० । ५७६, १ ।

स्कान्दम् २६, १२ । २७, २ । २८३, ७ । २८५, १ । २६८, ६ । ३८१, ११ ।  
३८२, १० । ४५७, ४-१८ । ४६०, ६ । ४६३, १४ । ५२२, १ ।  
५४३, १६ । ५३६, १६ । ५३७, १ । ५४३, १६ ।

हरिवंशम् ६०-१६ ।

## संग्रहकारनामानि ।

---

गङ्गावाक्यावलीकारः ६७, २० । १०७, १६ ।

पाणिनिः २३०, १२ ।

ब्रह्मगुप्तः २२८, १३ । २३२, १८ ।

भट्टपादः ८६, ४ ।

भवदेवमट्टः १०६, ६ ।

मोजराजः २१८, १ ।

गोदत्तः ३४७, १६ ।

श्रीधरस्वामी ५६, १० ।

वैयसिद्धान्तः २, ४ । ११, ४ । २२५, ६ । २३७, १६ । २४५, १७ ।

३५०, १ ।

---

## सङ्ग्रहग्रन्थनामानि ।



अमरकोषः २३७, ७ ।

कल्पतरुः ५०, ४ । ५१, १० । १०७, ६ ।

कामधेनुः १०४, ४ । ४५२, १८ ।

कालविवेकः ५१, १६ । ६०, १२ । ७६, ११ । १०८, ६ ।

छात्रमहार्णवः ५१, १६ ।

क्रमदीपिका १२१, १० । १२६, ११ । १३५, ७ । १३६, ६ । १४०, ८ ।

१४३, ११ । १४४, १५ । १४५, १ । १४६, ५ ।

पारिजातः ६६, ३ ।

पुरस्चरणचन्द्रिका ११८, २१ । १५२, १६ । १५८, ७ । १७६, ५ । १७६, ५ ।

प्रपञ्चसारः १२४, १ । १२६, १४ । १५६, १० ।

ब्रह्मसिद्धान्तः २२३, १६ ।

विश्वरूपनिबन्धः ३७८, ५ । ३८०, ५ ।

मदनपारिजातः २६, ११ । ६१, २१ । ७३, ६-२० ।

महार्णवः ३०७, ६ । ३१७, १२ । ४६३, १ ।

विष्णुधर्मः ८, १५ । २६, १५ । १७८, ६ । २४१, १७ । २५०, ६ । २५६,

१५-२१ । ३०२, ४ । ३४७, ३ । ३५१, १ । ३६४, १० । ४८२, ४ ।

४८८, ४ । ५०५, १७ । ५१५, ६ । ५४४, ५ ।

विष्णुधर्मोत्तरः १४, १२ । १६, १२ । ४८, १ । ५४, ५ । ५६, १८ । ६१,

७ । १०३, १० । २२४, ११ । २४८, ८ । २८६, ३ । ३०२, १५ ।

३४४, १८ । ४५१, १२ ।

इलमाला २२५, १ । २३८, ५ ।

राजमार्तण्डः २४, १४ । ३६, १६ । ७८, १४ । ७६, १६ । ८२, ६ । ८३,  
 १६ । ११६, १-६ । २१२, ७ । २१४, ५-१८ । २२४, १८ । २६",  
 १७ । २७६, ४ । २८३, २० । २८५, १६ । ३१८, १ । ३२०, ११ ।  
 ३२३, ११ । ३४१, १ । ४६०, ७ । ४८२, ११ । ४८६, ४ । ४६५,  
 १५ । ५२०, १३ । ५३०, १० ।

शारदातिलकम् ११८, ५ । ११६, २१ । १२०, १२ । १२२, २-१६ ।  
 १२६, ४ । १२७, ६ । १२८, ४ । १३४, ६ । १३६, ११ । १३६, ५ ।  
 १४५, १० । १४६, ४ । १५०, २१ । १५२, १ । १५३, ५ । १५७,  
 १३ । १५६, १४-१८ । १६२, ८-२० । १७०, २१ । १७१, १३ ।  
 १७३, ५-१२ । १७४, ६ । १७६, १५ । १८०, ६ । ३८४, १० ।  
 ३८५, १६ । ३८१, ७-११ । ५६५, १६ ।

आङ्गकौमुदी ३५२, २ । ४८७, १४ ।

आङ्गघिन्तामणिः ३४८, २० । ४८५, १४ । ४८७, २ ।

आङ्गविवेकः २३६, ६ । ४८६, १ ।

मुद्रिकौमुदी ३५६, १० ।

मुद्रिकौमुदी ४८६, १७ ।

मट्त्रिंशन्मतम् ८४, ४ । ८७, ४ । ६०, १० । १००, १६ ।

समयप्रकाशः १०७, ६ । २१०, ३ ।

संवत्सरप्रदीपः ५०, ११ । ५४, १ । ६४, ४ । १०५, १८ । १८१, १ । २१३,  
 १४ । ३१५, ६ । ३१७, ६ । ३६३, १ । ४६१, ६ । ४८६, ६ ।  
 ५३६, १८ ।

स्मृतिसमुच्चयः ३७, १८ । ६१, २१ । ७२, ८ । ८५, १४ । ८६, २० ।  
 ६०, ५ । ४६७, १२ ।



## अन्यान्यग्रन्थनामानुक्रमणिका ।



अगस्त्यसंहिता १२२, १४ । १२३, ५-१७ । १२५, १ । १२७, ३ । १२८,  
१ । १३०, १६ । १३२, १८ । १३५, १४ । १३७, १४ । १३८, ४ ।  
१४१, १८ । १४४, १ । १४७, ४ । १५०, ८ । १६०, २० । १७४,  
१६ । १८१, १० । ५३७, २१ ।

आगमः १०६, १४ ।

आगस्त्यम् ६३, १० । ११८, १८ । १४१, २१ । १४७, ११ । १५१, १८ ।  
१५४, १ । १६१, २२ । १६२, १० । १६३, ८ । १६५, १३ । १६७,  
१ । १७३, १५ । १७८, १३ । ३८५, ४ ।

इतिहाससमुच्चयः ४६१, ६ ।

गारुडतन्त्रम् २८३, १३ ।

गौतमीतन्त्रम् १४६, ८ ।

गृह्यपरिशिष्टम् ३, १५ । १४, २१ । ३८१, १८ । ५५६, १६ ।

कुन्दोगपरिशिष्टम् २२, ६ । ६५, ८ । ६२, १४ । १०६, ५ । ११०, ७ ।  
१११, १ । २६३, १ ।

ज्ञावमाला १६३, ५ । १६४, ४ ।

ज्ञानार्णवः १४८, ४ ।

ज्योतिषम् ३२, १ । ७८, १ । ७९, ६ । ८८, ८ । ९०, १७ । ९४, ६ ।  
११४, १६ । ११५, ३-१७ । २०८, ८ । २१२, १ । २३०, ६ । २३१,  
२० । २३२, ४ । २३४, ११ । २४२, १२ । २४४, ४-११ । ३०७,  
६ । ४५०, ८ । ४६६, १० । ४७०, ११ । ४७७, १३ । ४८४, १३ ।  
४८६, ६ । ५१६, २१ । ५१८, १ । ५५८, १८ । ५६१, ३ ।

ज्योतिःशास्त्रम् ६२, ६ । ४६६, ४ ।

तन्त्रान्तरम् १२६, ८ ।

नारदतन्त्रम् १४८, १२ । १५५, १ । १७६, १ ।

नारदपञ्चरात्रम् १५०, ६ ।

निगमः ८३, ६ । २६३, १५ ।

निगमपरिशिष्टम् १७, ३ ।

परिशिष्टम् २६३, ८ । २६४, १ । ४५३, ७ ।

मुवनेश्वरीतन्त्रम् १६०, १४ ।

योगिनीतन्त्रम् १२०, १६ । १३२, २१ । १४६, ६ । १५७, २० । १७५, ६ ।

३७२, १८ । ४४०, १६ । ४४१, १० । ४४२, ३ ।

सत्रयामलम् १५७, १६ । २८४, ११ ।

वराहसंहिता ६७, ८ । २२४, १ । ४८३, २० । ४८५, ४ ।

शिवागमः ७६, १ ।

शिष्टम् ३१७, १८ ।

शैवागमः ७६, १४ । ५०६, २० । ५०७, १६ । ५३१, १३ ।

श्रुतिः १२३, ३ । २२८, १६ । २३८, १५ । ४५२, ४ ।

हयग्रीवपञ्चरात्रम् १३४, ५ ।

हरिवंशम् ६०, २० ।

# वर्षक्रियाकौमुद्या व्यवस्थापकवचनानां वर्णानुक्रमेण सूचीपत्रं ।



अ ।

|                          |           |                          |           |
|--------------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| अकृताप्रचण्डैव           | ४८५, १५ । | अदत्तानामुपादानं         | १८०, ११ । |
| अकृता रामनवमी            | ५१४, १० । | अदिते कश्यपाज्जने        | ४८२, ४ ।  |
| अकृतास्तु यवाः प्रोक्ताः | १४८, १० । | अदेवचरित पुष्य           | १६५, १८ । |
| अगतेऽपि रवौ कन्या        | ६४५, १४ । | अधर्माद्याधिशोकादि       | ११५, ६ ।  |
| अगुवं धूपमावेद्य         | १८६, ५ ।  | अधोमुखीकृता चैव          | १५२, १०   |
| अगुरुशीरगुगुलु-          | १००, ११ । | अध्येतव्यं न चान्येन     | ५६८, १०   |
| अग्निर्मूर्धादिवोमन्त्र  | २१, १० ।  | अनग्निभक्तमन्त्राति      | २०, ४ ।   |
| अग्नादिलोकपाञ्चान        | १८१, ८ ।  | अनन्तप्रतमस्त्यन्यत्     | २१४, ५ ।  |
| अहुत्सवाच पुष्य          | २२, १ ।   | अनन्तर दैशिकेन्द्र-      | ११०, ११ । |
| अहुत्सादिष्वहुत्सीषु     | १२६, ११ । | अनन्त हृदये पद्म         | १६२, ८ ।  |
| अहुत्साद्यहुत्सीनाद्य    | १२८, ५ ।  | अनन्यार्पितप्रतानि       | ४८०, ६ ।  |
| अतीतानागवे पुष्ये        | १०४, ११ । | अनर्काभ्युदिते काले      | २०६, ११ । |
| अत्र क्षाला तु गङ्गायां  | ५१४, १८ । | अनेन विधिना देवीं        | २४२, ११ । |
| अवोपवास क्षाला तु        | ५०४, ११ । | अनेन विधिना यस्तु        | १८१, ४ ।  |
| अथवान्यप्रकारेण          | १०८, १५ । | अमिवेद्य हरेभुञ्जन्      | ११४, १० । |
| अथ वै शीघ्रदहन-          | ११४, १ ।  | अभिष्टे निविधोत्पाते     | १८६, ११ । |
| अथापर महाराज             | ५०१, ४ ।  | अनुज्ञां प्राक्षणेभ्यश्च | २००, १५ । |
| अथापाठे दशम्यान्तु       | ६१, ११ ।  | अन्तपादे दिवाभागे        | २००, ११ । |
| अथास्मिन्त आदित्ये       | १८८, ४ ।  | अन्तपादो निशाभागे        | ४८५, १२ । |
| अथोपचारान् कुर्वीत       | २१, ११ ।  | अनादिदेवता दृष्ट्वा      | ४८५, २ ।  |
|                          | १५८, १८ । | अनादिसुतशरीर             |           |

|                         |           |                             |           |
|-------------------------|-----------|-----------------------------|-----------|
| अन्ते यज्ञेऽहोऽकपालान्  | १०४, ११ । | अवन्तीकरणं कुर्यात्         | १५२, १८ । |
| अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ  | २२०, ० ।  | अयनद्वितये आद्य             | २१२, ६ ।  |
| अन्यानिवेदित तोय        | २८५, ५ ।  | अयनादौ सदा देय              | २८२, २० । |
| अन्योन्याभिमुखान्छिष्ट- | १५२, १० । | अयने कोटिगुणित              | २१४, १८ । |
| अन्योन्याभिमुखं लघ्ने   | १५५, २ ।  | अयने द्वे विषुवे द्वे       | २०४, १६ । |
| अन्वष्टका पितृणान्      | ४८८, १८ । | अयने विषुवे चैव             | ८१, १० ।  |
| अपराद्धे तथा वैशा       | २११, १ ।  | अयोगे ज्ञेयचरण              | ६०, १८ ।  |
| अपामार्गे तु कृत्वा तु  | २१८, ८ ।  | अय प्राणमनु- प्रोक्त        | १५२, ८ ।  |
| अप्राप्ते भास्करे कन्या | २४०, ६ ।  | अरुणोदयवेलाया               | ४८, १५ ।  |
| अप्राप्ते तु रवौ कन्या  | २४०, ४ ।  |                             | ४८८, १२ । |
| अप्यकार्यशतं कृत्वा     | ५२५, ५ ।  | अवेक्षणं प्रोक्षणञ्च        | १२५, १५ । |
| अशु नारायण देव          | ५२५, १३ । | अर्काय शुचि गोनय            | २०, १८ ।  |
| अश्वग्री सुदये सूर्य्य  | १४०, १४ । | अर्कादिनि द्युत प्राचीं     | २, ५ ।    |
| अज्ञातु गोपु गजवाजि-    | ४५०, ११ । | अर्घ्यपाद्याचमन-            | १५६, १५ । |
| अब्दद्वयमस्तवपै         | ४८८, ५ ।  | अर्घ्यस्योत्तरत कार्य्यं    | ४१५, १३ । |
| अभक्त्यापि मन्त्रापापौ  | ५२४, २२ । | अर्घ्यं दिशेत्ततो मूर्द्धि  | २८४, १४ । |
| अभुक्ता प्रातराहार      | ६५, २ ।   | अर्घ्यं स्वाहेति शिरसि      | १५०, २१ । |
| अभावस्यासतिश्रम्य       | २२२, १२ । | अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय      | २४१, १० । |
| अभावस्या तुलादित्ये     | ४६८, १० । | अर्घ्वेन सप्रवक्ष्यामि      | २००, १० । |
| अभावस्या यदा वार-       | ८, १८ ।   | अर्द्धरात्रादधश्चेत् स्यात् | २१८, २ ।  |
| अभावस्या नवम्याश्च      | ८४, २ ।   | अर्द्धरात्रात् परे किञ्चित् | ०४, १५ ।  |
| अभावस्या न गच्छेत्      | ८०, ६ ।   | अर्द्धरात्रे अतीते तु       | २११, ३ ।  |
| अभावस्या शतगुण          | ५२६, ५ ।  | अर्द्धरात्रे तु योगोऽय      | ३०१, ० ।  |
| अभावस्या प्रयत्नेन      | ८१, १८ ।  | अर्द्धरात्रेऽवसपूर्णे       | २०८, २१ । |
| अभावस्या यदा रात्रौ     | ४६८, ५ ।  | अर्वाक् पौर्णमासं विज्ञेया  | २००, ५ ।  |
| अमा वै सोमवारेण         | ८, १० ।   | अशक्तुवश्च शुश्रूषा         | ५००, ५ ।  |
| अमुना मनुना दद्यात्     | १६०, १८ । | अशुचिर्वा मन्त्रमाया-       | १४०, २० । |
| अमुमेव रमापुर सर        | १२८, २० । | अशुभ खञ्जन दद्या            | ४५०, १५ । |

|                              |                 |                       |           |
|------------------------------|-----------------|-----------------------|-----------|
| प्रशोककलिकासाद्यौ            | ५११, १८ ।       | अचोरावोपित चानं       | १०१, १८ । |
| अस्त्रेवार्द्रा तथा व्योम्हा | १४४, १४ ।       | अचोरावश्च नाश्रीयान्  | १०१, १० । |
| अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु        | २११, १२ ।       | आ ।                   |           |
|                              | २४४, ७ ।        |                       |           |
| अश्विन्यादि तु जैत्रेषु      | १८४, ११ ।       | आकारश्च तयोश्चार्थं   | ११८, १० । |
| अष्टकास्तु च कर्त्तव्यं      | ४८५, ८ ।        | आकाशाद्वायुः          | १११, ४ ।  |
| अष्टमी छयापक्षस्य            | १८८, १५ ।       | आग्नेयन्तु यदा ऋत्वं  | ७८, ८ ।   |
| अष्टमी नवमीविद्धा            | १७, ५ । १८, १ । |                       | ११०, १८ । |
| अष्टमी शिवरात्रिश्च          | ७१, ४ ।         | आग्नेयादिषु कोपेषु    | १४८, ११ । |
| अष्टमीमथ कौन्तेय             | १८, १४ ।        | आप्रहायण्यामतीतार्था  | ४८८, ५ ।  |
| अष्टमी ससुप्तोऽथैव           | १७८, १ ।        | आत्माद्दिगुणकायायां   | १७, ११ ।  |
| अष्टम्या नवमी मित्रा         | १७, ७ ।         | आत्मादिचयमादि-        | १४०, ११ । |
| अष्टम्या पूजितो देव          | १८, १७ ।        | आत्मानमनन्तरात्मानं   | ११८, ११ । |
| अष्टम्याश्च नवम्याश्च        | १७४, ११ ।       |                       | १४८, १७ । |
| अष्टम्यां बलिदानेन           | १७१, १० ।       | आत्मान यागवस्तूनि     | १४१, १५ । |
| अष्टम्यां सतत देवी-          | १७४, ५ ।        | आत्मान हृदयाभोज       | १११, ८ ।  |
| अष्टम्यां बधिरैर्मौसै-       | १७१, १७ ।       | आत्माभेदेन विधिवत्    | १४१, ७ ।  |
| अष्टम्यां पञ्चयोऽन्ते        | १११, १७ ।       | आदित्यराशिभोगेन       | ११४, ११ । |
| अष्टम्येकादशी वस्ती          | ४, १० ।         | आदित्यादिषु वारेषु    | ८०, ११ ।  |
| अष्टौ तान्यव्रतप्लानि        | १८, १५ ।        | आदिपादो निशाभागे      | १७०, ८ ।  |
| असकृन्नोयपानेन               | १७, १ ।         | आदौ कर्कटके देवौ      | १८१, १८ । |
| असामर्थ्ये शरीरस्य           | ५८, ८ ।         | आदौ पुण्यं विजानीयात् | १०८, ११ । |
| असंक्रान्तमासोऽभिमास         | १११, ११ ।       | आद्ययावाद्येदेव       | १००, १५ । |
| अस्त्रमन्त्रेण सरस्व         | १४१, १० ।       | आद्यास्तु पञ्चविंश    | ११५, ११ । |
| अस्त्रेण पात्र सशोध्य        | १४८, १५ ।       | आधारशक्तिकूर्मार्था   | १५०, ८ ।  |
| अस्त्रिस्तु गोधूमि-          | १४१, १७ ।       | आधारशक्तिमात्रस्य     | १४८, ५ ।  |
| अहमयान्त्रिने पक्षां         | १८८, ११ ।       | आधारशक्तिं मध्येऽथ    | १४८, ७ ।  |
| अहस्तु तिथय पुण्या           | ५, ११ ।         | आनुष्टुभस्य सूक्तस्य  | १८८, ५ ।  |
|                              |                 | आपद्यनम्रो तीर्थे च   | १०८, ७ ।  |

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| आभोति सतत प्रीति         | २८५, १० । |
| आज्ञाव्यावाचयेद्देहं     | १९९, ६ ।  |
| आग्नीहिपाकाद्यवपाक       | ४५४, ५ ।  |
| आमश्राद्ध द्विजैः कार्यं | ५०९, १४ । |
| आम शूद्रस्य पक्वान्न     | ५०९, १६ । |
| आमिष मैथुनञ्चैव          | ४५५, १६ । |
| आमिष रक्तशाकश्च          | ५४३, ७ ।  |
| आरभ्य कुतपे श्राद्ध      | ९०, १० ।  |
| आराधिते मन्त्रे च        | २९२, १६ । |
| आराध्याधारशक्ति          | १४८, १८ । |
| आरोग्यकामैर्वालानां      | ५९१, १० । |
| आर्द्राया प्रथमे पादे    | ९८२, १६ । |
| आर्द्राया त्रीधयेद्देवीं | २०५, २ ।  |
| आर्षक्रमेण सर्वे तु      | ५०५, २० । |
| आवाहनादिका सुद्रा        | १५२, ६ ।  |
| आचयुव्याश्च क्षण्यायां   | ९२८, ७ ।  |
| आचयुव्यामनावस्थां        | २६२, ९ ।  |
| आश्विनस्य तु या शुक्ला   | २६५, १९ । |
| आश्विने क्षण्यपचस्य      | २४४, १ ।  |
| आश्विने घृतदानेन         | २४२, १५ । |
| आश्विने पौर्णमास्यानु    | ४५२, १२ । |
| आश्विने शुक्लाय च तु     | २६६, ७ ।  |
| आषाढश्चापि यो मास        | ९८५, ९ ।  |
| आषाढपौर्णमास्या य        | २८९, १६ । |
| आषाढी कार्तिकी माघी      | ७७, १४ ।  |
| आषाढे मासि भूताहे        | ९८५, ६ ।  |
| आषाढादिचतुर्मास          | ४८९, ९९ । |
| आषाढादिघ्नत यस्तु        | ९८९, १ ।  |

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| आषाढाषाढयुक्ता चेत्       | ९८९, १४ । |
| आसनश्चाध्यापचश्च          | ११८, १२ । |
| आसन पादमर्घ्यश्च          | ४९०, १ ।  |
| आसन पीठमन्त्रेण           | १६१, ९ ।  |
| आसन प्रथम दद्यात्         | १६१, ५ ।  |
| आसन खागत चार्घ्यं         | १५६, २१ । |
| आसप्तमात् कुलान्तस्य      | २१८, १५ । |
| आसप्तमात्तदुदयेऽर्घ्यमस्य | २४०, २० । |
| आसीतामरणात् चान्ता        | ५०७, १ ।  |
| आस्तीर्णशयन दत्ता         | ९८८, ४ ।  |

## इ ।

|                        |           |
|------------------------|-----------|
| इति मन्त्रेण तन्मध्ये  | १६०, २१ । |
| इन्दुचयेऽर्कसमान्या    | ४६, ५ ।   |
| इन्दोर्लक्षगुण प्रोक्त | ११२, ४ ।  |
| इन्द्रमग्नि यम रच      | १०४, १२ । |
| इन्द्राग्नी यव ऋयेते   | ९२८, ९ ।  |
| इमे मास्यधिते पचे      | २००, १ ।  |
| इष्टे श्वर चतुर्दश्यां | ७०, १० ।  |

## ई ।

|                    |           |
|--------------------|-----------|
| ईदृथा कर्षयेद्वायु | १८२, १४ । |
|--------------------|-----------|

## उ ।

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| उक्ता प्रत्युत्तर दद्यात् | ५०८, १४ । |
| उग्रगन्वीन्यगन्वीनि       | १६६, ८ ।  |
| उच्चैः प्रदीपमाकाशे       | ४५७, ८ ।  |
| उच्छिष्टमग्न दातव्य       | ५०१, १८ । |
| उत्तमाङ्गे हृदाकारे       | १४५, १५ । |

|                          |            |                          |              |
|--------------------------|------------|--------------------------|--------------|
| અત્તરાચરોદિષાઃ           | ૧૦૮, ૯ ।   | જતે તુ સૌચિતં શીર્ષં     | ૬૮૬, ૧       |
| અત્તરાદયનાચ્છાદે         | ૧૬૧, ૭ ।   | જપિચ્છન્દો દેવતાનિ       | ૧૨૪, ૧૦ ।    |
| અત્તરાદયનાચ્છાદ          | ૧૪૪, ૧૯ ।  |                          |              |
| અદકુભશ્ચ ધેનુશ્ચ         | ૧૬૦, ૧ ।   |                          |              |
| અદયાદુદયં યાવત્          | ૧૧, ૫ ।    | અકત. પ્રથિવીદાનં         | ૫૦૪, ૧૦ ।    |
| અદયેતૂપવાસશ્ચ            | ૧૧, ૮ ।    | અકવ પ્રોવ્રતાઃ છાત્વા    | ૧૫૫, ૪ ।     |
| અદ્યુતેષુ ચ તોયેષુ       | ૧૮૨, ૧૨ ।  | અકથાપિ છત્ર કર્મા        | ૧૧૫, ૪ ।     |
| અદ્વાસાવાદને ન સ્ત       | ૧૫૨, ૧ ।   | અકમક્તઃશનાગ્નિત્ય        | ૧૮૧, ૧૧ ।    |
| અદ્વાસ્ય દેવં સ્વધાન્વિત | ૧૮૧, ૬ ।   | અકમક્તેન મક્તેન          | ૫૫, ૧૯ ।     |
| અપધારૈઃ સમમ્યર્ચ         | ૧૦૨, ૧૨ ।  | અકમેવ હિ પ્રદશ્ય         | ૫૬૮, ૭ ।     |
| અપવાસનિષેધે તુ           | ૫૫, ૧૬ ।   | અકસજ્ઞો યદા માસી         | ૧૨૨, ૧૧ ।    |
| અપવાસ દ્વિજઃ છાત્વા      | ૬૭, ૧૮ ।   | અકાદશીકલાયાન્તુ          | ૫૧, ૧૦ ।     |
| અપવાસં મહાદ્યમ્          | ૧૦૯, ૧૦ ।  | અકાદશીકલાયુક્તાં         | ૫૧, ૧૭ ।     |
| અપવાસશ્ચ કુર્ચ્વન્તિ     | ૫૪૧, ૧૧ ।  | અકાદશી ચ નવમી            | ૧૮૧, ૬       |
| અપવાસે તથા જાહે          | ૬૬, ૧૦ ।   | અકાદશીદશાયુક્તા          | ૪૮, ૧૧       |
| અપવાસેષ્વશક્તાર્તા       | ૬૯, ૭-૧૦ । | અકાદશી દ્વાદશી ચ         | ૫૧, ૧૧-૧૫    |
| અપાકર્મણિ સીત્યર્મે      | ૫૫૯, ૧૭ ।  | અકાદશીસુપોષ્યેવ          | ૧૧૦, ૧૯      |
| અપોધર્મં ચતુર્દશા        | ૭૦, ૯ ।    | અકાદશી વિહૃદા ચેત્       | ૫૨, ૯ ।      |
| અપોધર્મ જાગરર્મ          | ૫૧૬, ૪ ।   | અકાદશી વિહૃદા ચેત્       | ૫૦, ૧૧ ।     |
| અપોપિતર્મં મચર્મ         | ૮, ૧૨ ।    | અકાદશીવ્રત દેવ           | ૪૪, ૧૧ ।     |
| અપોષ્ટ્રાકાદશીષ્વેક      | ૬૨, ૧૧ ।   | અકાદશીશતાદ્રાજન્         | ૧૦૮, ૧૧ ।    |
| અપોષ્યેવ ચ સંજ્ઞાન્યાં   | ૧૧૫, ૧૧ ।  | અકાદશી દશાયુક્તાં        | ૫૧, ૧૮ ।     |
| અપ્રકેશમધૌતશ્ચ           | ૧૮૫, ૧૦ ।  | અકાદશ્યાદિષુ તથા         | ૪૭૯, ૧૦ ।    |
| અરસા શિરસા યથા           | ૧૭૮, ૪ ।   | અકાદશ્યા દ્વાદશ્યાં વા   | ૬૯, ૧૦ ।     |
| અપસ્યુપચિ ચક્ષ્માનં      | ૪૯૦, ૧૭ ।  | અકાદશ્યાન્તુ યજ્ઞીયાત્   | ૧૮૯, ૧૧ ।    |
|                          |            | અકાદશ્યાં નિરાધાર-       | ૬૦, ૧૧ ।     |
|                          |            | અકાદશ્યાં પ્રકુર્ચ્વન્તિ | ૭૦, ૭ ।      |
|                          |            | અકાદશ્યાં સિતે પત્તે     | ૫૧૫, ૧૦-૧૪ । |
| જતુકાલોદ્ભવૈ- પુષ્યે.    | ૧૦૦, ૫ ।   |                          |              |

જટ ।

|                              |           |
|------------------------------|-----------|
| एकादश्या जगत्सामी            | १८६, १८ । |
| एकादश्या न भोक्तव्यं         | ४५, ११ ।  |
| एकादश्या प्रथमेन             | ४२, ८ ।   |
| एकादशष्टमी पथी               | ४, ११ ।   |
| एकादश्या यदा राम             | ५८, १८ ।  |
| एकादश्या यदा ब्रह्मन्        | ५०, ४ ।   |
| एकादशमपि यो भक्त्या          | १४१, ६ ।  |
| एकादश्वरः सदा कार्य्य        | ५७६, ५ ।  |
| एकादशेन तु षण्मासा           | ११६, ११ । |
| एकैक केशवाद्यन्तु            | ११५, १८ । |
| एतन्नुत्तमा व्रत क्षन्ति     | ४१, १८ ।  |
| एतद्दीर व्रत नाम             | ४१, १० ।  |
| एतानेव हि द्विसन्ति          | १४५, ८ ।  |
| एता युगाद्याः कथिता          | १४०, १ ।  |
| एतांस्तु आढ्यालान् वै        | १११, १ ।  |
| एतांस्त्वभ्युदितान् विद्यान् | ४१६, १ ।  |
| एवमेतद्ब्रत पुण्य            | ५०८, १ ।  |
| एव गते निशीथे तु             | ४६८, १० । |
| एव देहभये पीठे               | ११८, १४ । |
| एव न्यासविधि लक्षा           | १८८, ११ । |
| एव कर्माणि कुर्वन्ति         | १८६, १४ । |
| एव लक्षा विधानेन             | १८२, १ ।  |
| एषा पर्युष्णिताभङ्गा         | १६४, १८ । |

ए ।

|                          |             |
|--------------------------|-------------|
| एन्ने ऋक्षेऽथवा मैवे     | ७८, १ ।     |
| एन्ने चन्द्रसुराचार्य्यौ | ७८, ११-१७ । |
| एन्ने मैवे यदा जीव       | ७८, ७ ।     |

|                         |           |
|-------------------------|-----------|
| एन्दवस्त्रिभिस्तद्वत्   | ११५, ८ ।  |
| ऐशान्यां सखल कुर्व्यात् | १०८, ११ । |

क ।

|                            |           |
|----------------------------|-----------|
| कदम्बानि पटोच्छानि         | ४५८, १८ । |
| कदम्बै केतकैः पुष्पै       | १६१, १६ । |
| कनकानि कदम्बानि            | १६८, १ ।  |
| कन्यायामगते स्त्र्य्यै     | १४०, ८ ।  |
| कन्याया छण्णपत्ते तु       | १४६, १५ । |
| कन्या गते सवितरि           | १४६, ४ ।  |
| कन्यास्ये च रवाविषे        | १५८, १० । |
| कन्यास्ये रवौ वत्स         | १६५, १४ । |
| करचिचानि कर्चेपु           | ११८, ४ ।  |
| करवीराकर्णपुष्पैश्च        | १००, ७ ।  |
| करवीरो वकसैव               | १६८, ११ । |
| करशब्दि समासाद्य           | १११, १० । |
| कर्तव्या पञ्चमीशुक्ता      | १६, १ ।   |
|                            | ४८८, १० । |
| कर्पूरशकलान्मिश्र          | १०१, १६ । |
| कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणि-  | १११, ८ ।  |
| कला काष्ठा शुक्लैर्वा      | ५१, १० ।  |
| कलार्द्धा द्वादशी दृष्ट्वा | ५६, ११ ।  |
| कलार्द्धेनापि या विद्या    | ४८, १० ।  |
| कलिकाभिक्षयाऽन्याथ         | १६४, ५ ।  |
| कामदेव चयोदश्या            | ७०, ११ ।  |
| कामदेव वसन्तश्च            | ५१०, ५ ।  |
| कामासक्तोऽपि वै नित्य      | ५४१, १० । |
| कामान्तु सपयदेह            | ५७६, ११ । |



|                             |                   |                              |               |
|-----------------------------|-------------------|------------------------------|---------------|
| कामं भर्तृरनुजया            | ६०, १० ।          | छत्तिकाप्रथमे भागे           | १४९, ४ ।      |
| कांश्यं मायं सुरां चौर्ध्रं | ६२, ११ ।          | छत्ता दर्भमय देव             | २९२, १८ ।     |
| कांश्यं मायं मखूरश्च        | ६०, १८ ६२, ९ ।    | छत्ता वै मम कर्माणि          | १८६, ८ ।      |
| कांश्यं मायं चुर चौर्ध्रं   | ६२, १० ।          | कृत्स्नैव परमात्मापु.        | २०५, १६ ।     |
| कार्तिकामलपत्रस्य           | ४०८, ५ ।          | कृत्त्वोपवासं विधिवत्        | ११५, १६ ।     |
| कार्तिके छण्यपत्रे तु       | ४५८, ४ ।          | छण्यपत्रस्य सप्तम्यां        | २९, १० ।      |
| कार्तिके तु द्वितीयायां     | ४००, १४ ।         | छण्यपत्रे द्वितीयायां        | १८४, १९ ।     |
| कार्तिके तु विशेषेण         | ४५८, १६ ।         | छण्यपत्रे भृगुदिने           | ४८६, १० ।     |
| कार्तिके नार्धितो येस्तु    | ४५५, ११ ।         | छण्यपत्रेऽष्टमी चैव          | १०, १५ ।      |
| कार्तिके यौगंमास्यान्तु     | ४८१, ६ ।          | छण्यष्टोत्तमनिलक             | १००, १ ।      |
| कार्तिके भौमवारे तु         | ४६०, ५ ।          | छण्य दृष्टा मन्वाज्यैर्ह्यां | ८१, ५ ।       |
| कार्तिके शुक्लपत्रस्य       | ४००, १८ ।         | छण्यायां फाल्गुने सप्तमि     | ५०६, १५ ।     |
| कार्तिक्यां पुष्करे ज्ञातः  | ४८१, १८ ।         | छण्याष्टमी स्कन्दवष्टी       | १६, १९ ।      |
| कार्तिक्या यो ह्योत्तमं     | ४८१, ११ ।         | छण्याष्टमी तु नक्षत्रेण      | २८, १ ।       |
| कार्यां विद्यापि सप्तम्या   | १०, ८ ।           | छण्याष्टम्यान्तु रोहिण्यां   | २०१, १२ ।     |
| कालेन यावता स्त्रीयाः       | १९६, १५ ।         | केतकी चातिमुक्तश्च           | १६८, ११ ।     |
| काष्ठदानात् भौमदिने         | ५४२, १५ ।         | केतकीपत्रपुण्यश्च            | १६८, १४ ।     |
| कुजचिन्मता भूता             | ४६०, १६ ।         | केशरेषु च पूर्व्यादि         | १४८, १८ ।     |
| कुजार्कशनिवारेषु            | १११, १४ ।         | केशवादिषुगपट्कनूर्तिभि       | १२५, ८ ।      |
| कुमुदानां पङ्कजानां         | २८८, ९ ।          | कोटिजन्मघ्नत पाप             | ११४, ० ।      |
| कुम्भस्थां पूजयेत्तान्तु    | २४१, ६ ।          | कोटिलिङ्गसचखैस्तु            | १४६, १६, १० । |
| कुम्भसंख्ये सप्तर्षांशौ     | ०६, १ । ५००, १० । | कौमुदस्य तु मासस्य           | ४८०, २ ।      |
| कुम्भे सरले सजले            | २९१, ० ।          | कौमुद्यां पूजयेत्तर्क्षीं    | ४५२, १५ ।     |
| कुम्भपुण्यं चम्पकश्च        | १६६, १० ।         | कौशेय पुष्टिद प्रोक्त        | ११८, २ ।      |
| कुम्भमाचतसिद्धार्थान्       | ११०, १८ ।         | क्रतुभिस्तानि तुल्यानि       | २५०, ० ।      |
| क्षताञ्जलिपुटो भूत्वा       | १११, ५ ।          | क्षमा सत्य दया दान           | ६६, ८ ।       |
| क्षतान्कुजयोर्वारि          | ५५८, १ ।          | क्षयरोगाभिचाराद्या           | १२५, १९ ।     |
| छत्तिका च विशाखा च          | १०८, १५ ।         | क्षुरक्षुरप्रभक्षैश्च        | २८८, १८ ।     |

## ख ।

|                            |           |
|----------------------------|-----------|
| स्रज्जस्र छणसारश्च         | ३८४, १० । |
| खड्गेन द्विन्वि द्विन्वीति | ४४४, ८ ।  |
| खण्डन नखकेशाना             | ५६१, १ ।  |
| खर्वो दर्पस्तथा द्विसा     | १९, १ ।   |
| खेटक पूर्णचापश्च           | ३८३, १३ ॥ |

## ग ।

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| गङ्गाकनखले पुण्ये        | ११४, ९ ।  |
| गङ्गाया वैशवावगाहन्ति    | ४८३, १८ । |
| गङ्गायां ज्ञानतो मृत्वा  | ५३०, ६ ।  |
| गङ्गायां सरणान्मुक्तिः   | ५३७, १ ।  |
| गङ्गायाः प्रतिभा भक्त्या | ९८१, १६ । |
| गङ्गाज्ञान करोमीति       | ४३६, १० । |
| गणपत्यादयः सर्वे         | १०४, १० । |
| गणेश विघ्ननाशाय          | १४८, ८ ।  |
| गणेशः पूजितं कुर्यात्    | ३०, ८ ।   |
| गन्धपुष्पाक्षतयव-        | १४९, ११ । |
| गन्धपुष्पादिदानम्        | १४३, १० । |
| गन्धस्रन्दनकर्पूर-       | १६९, ८ ।  |
| गन्धचीनमपि प्राञ्च       | १६४, १० । |
| गन्ध पुष्पश्च धूपश्च     | १५७, ७ ।  |
| गन्ध पुष्प तथा धूप       | १५८, १० । |
| गन्धादथो निवेद्यान्ता    | १५६, १६ । |
| गन्धपथो गुडपूप           | ११६, ७ ।  |
| गन्धसर्पि पथोयुक्ता      | ४२२, १३ । |
| गवां कोटिप्रदानेन        | ४५५, १२ । |
| गवां कोटिसहस्रस्य        | ११९, ७ ।  |

|                          |             |
|--------------------------|-------------|
| गवामर्द्धप्रस्तानां      | - १४०, १६ । |
| गान्धर्वेण विवाहेन       | ५०५, ११ ।   |
| गीतव दिचनिर्घोष          | १०४, १० ।   |
| गुडपूपास्तु दातव्याः     | ३१६, १५ ।   |
| गृहमेघी ग्रीहियवाभ्यां   | ४५२, ५ ।    |
| गृहीलौडुम्बर पात्र       | ६१, ६ ।     |
| गोगोभिकाना रधिरै         | ३८५, १५ ।   |
| गोधूममापमधु              | ३८, ११ ।    |
| गोमूत्रसर्पयै ज्ञानं     | ११९, ४ ।    |
| गौरक्षकान् वाणिजिकान्    | ५६७, १४ ।   |
| गोलाष्टम्यां गवा पूर्णा  | ४७८, १९ ।   |
| गौरसर्पपक्षकेन           | ४८८, १० ।   |
| पक्षे चाक्षरवे लिन्दौ    | १०५, १८ ।   |
| पक्षे सूर्ये तथा चन्द्रे | ८९, १९ ।    |
| पक्ष्य रविचन्द्रमघो      | ११५, १८ ।   |
| पक्ष्यपक्षपरिपीडित-      | ११६, ९ ।    |
| पक्ष्ये श्रावमाशौच       | ८८, ४ ।     |
| पक्षीदयप्राणहता          | १२५, १४ ।   |
| प्राक्षाणामथ मत्स्यानां  | ३८८, ७ ।    |

## घ ।

|                        |           |
|------------------------|-----------|
| घटिकाईं विभाग वा       | १९, १८ ।  |
| घृतकुम्भोपरि निहितम्   | ११६, ११ । |
| घृततैलादियोगेन         | ३८७, १९ । |
| घृतत्यागात् सुलावण्यम् | १८०, १५ । |
| घृतप्रदीप प्रथम        | १०१, १८ । |
| घृताभिषेक य कुर्यात्   | ३४३, ११ । |
| घृतेन सार्वभौम स्यात्  | ४४१, १३ । |
| घृष्टा निपात्य चैतानि  | ३८७, १७ । |

## च ।

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| चक्राकृतास्तु पापाणां    | ५४०, ११ । |
| चतुर्थी गणनायस्य         | ९५, १० ।  |
| चतुर्थीभिरपीयोगे         | १०, ११ ।  |
| चतुर्थी भीमवारेण         | ११, १ ।   |
| चतुर्थीवरदा श्रुक्ता     | ४८८, ११ । |
| चतुर्थीसयुता कार्या      | १५, १५ ।  |
| चतुर्थीहारकदिन           | ११, ८ ।   |
| चतुर्थ्यान् नरो राजन्    | ११, ११ ।  |
| चतुर्थ्यामुदित चन्द्रं   | ११०, १ ।  |
| चतुर्थ्यां प्रदानय       | १००, १० । |
| चतुर्दशस्तराणां          | ११०, १५ । |
| चतुर्दशमि चैव            | ८५, ४ ।   |
| चतुर्दशमि पथे            | ५६५, ११ । |
| चतुर्दशा तथाष्ट्यां      | १८, ४ ।   |
| चतुर्दशान् नक्ताशी       | ७०, १० ।  |
| चतुरो वार्षिकान् मासान्  | १८०, ८ ।  |
| चत्वारः करकाः कार्याः    | ११, १६ ।  |
| चत्वारिंशतिमासिक         | १८१, ११ । |
| चन्द्रं सप्तयोत्पन्न     | १६१, ११ । |
| चन्द्रमा मासश्चक्षुः     | ७८, ५ ।   |
| चन्द्रमाः क्षणपक्षानो    | ११४, ११ । |
| चन्द्रसूर्यग्रहे चैव     | १११, १ ।  |
| चन्द्रसूर्यग्रहे चायात्  | १०८, ७ ।  |
| चन्द्रहासेन कर्था वा     | १८८, १५ । |
| चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये | १११, १६ । |
| चम्पकी धानकस्यार्क       | १६८, १० । |

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| चरे महीदरी ज्ञेया         | १००, ११ । |
| चातुर्मास्यसमाप्तौ या     | ४८१, १४ । |
| चान्द्र श्रुक्तादिदर्शनाः | १११, १० । |
| चिचानुराधारवत्यः          | १०८, ११ । |
| चिवास्तु ज्ञेये श्रवणे च  | ८०, ११ ।  |
| चैवश्रुक्तावम्यान्तु      | ५१४, १८ । |
| चैवादिचतुरो मासान्        | ५१८, ५ ।  |
| चैवायस्यां तदा देव        | ५११, १० । |
| चैवाप्तये वाणश्चक्षुक्ता  | ५१८, १ ।  |
| चैवे कृष्णचतुर्दशा        | ५१०, १८ । |
| चैवे मासि नवम्यान्तु      | ५११, १० । |
| चैवे मासि सिताष्ट्या      | ५११, ७ ।  |
| चैवे विचित्रवस्त्राणि     | ५१०, १० । |
| चैवे श्रुक्तावयोदयां      | ५१८, ११ । |
| चैवे सितचतुर्दशा          | ५११, ११ । |

## छ ।

|                     |           |
|---------------------|-----------|
| छत्रोपानहौ दत्ता    | १६०, ८ ।  |
| छेदयेद्गुमिसंस्थानु | ४४०, १० । |

## ज ।

|                                |           |
|--------------------------------|-----------|
| जटाजूटसमायुक्तां               | ४११, १६ । |
| जठरानवयोर्न्यसेत्              | १८४, १ ।  |
| जगन्नातु सङ्ख्येण              | ११४, ११ । |
| जगत्प्रवृत्ति यत् पुण्य        | ४५५, ८ ।  |
| जगत्समाष्टिरिष्याह-            | ८७, ८ ।   |
| जगत्समाष्टिरिष्ये              | ८७, १८ ।  |
| जगत्स्य कर्म ततोऽपि            | ११५, ८ ।  |
| जगत्स्य जायान्त्यस्यधर्मसंख्ये | ११७, १ ।  |

|                            |                   |                           |           |
|----------------------------|-------------------|---------------------------|-----------|
| जन्मर्चयुक्ता यदि          | ५४८, १८ ।         | तत' प्रेतचतुर्दश्या       | ४६१, ४ ।  |
| जन्मर्चं च कृतं ज्ञान      | ५६६, ८ ।          | तत प्रभृति सक्रान्ती      | ११६, १७ । |
| जप समारभेत् पश्चात्        | ४४४, १८ ।         | तत प्रभृति पितर           | ११६, १९ । |
| जप्तेन सप्तमीयुक्ता        | ६८९, १७ ।         | ततोऽस्त्रमन्त्रेण विशीध्य | १११, ११ । |
| जयन्तीं मङ्गला काली        | ६८६, ८ ।          | ततो दक्षिणभायाते          | ६४६, ६ ।  |
| जयाख्या विजया पश्चात्      | १४१, ९ ।          | ततो देव्या सन्निधाने      | ६८६, ९ ।  |
| जागरणं स्वयं कुर्यात्      | ६६५, १० ।         | ततो देवीं समुद्दिश्य      | ४६८, ५ ।  |
| जातमात्रं शिशुस्तावत्      | ५६७, ८ ।          | ततो नारायणं शक्र          | ४८८, १८ । |
| जातो च तुलसी विष्णो        | १६६, १९ ।         | ततो रात्र्या व्यतीताया    | १८७, ८ ।  |
| जातीप्रपञ्चश्चक्षेण        | १६८, ९ ।          | तदधोऽङ्गुष्ठयुगल          | १५५, ६ ।  |
| जानुभ्याश्चैव पाणिभ्यां    | १७८, ७ ।          | ततो बलीनां वधिर           | ४४१, ४ ।  |
| जान्मव पिण्डचर्कुर         | ६८८, १० ।         | तत्पराशक्तशो भाग          | १०५, १० । |
| ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां   | ६६७, १० ।         | तत्र गन्धसुमनोऽक्षतानयो   | १६६, १९ । |
| ज्येष्ठायाम् समभ्यर्च्य    | ६७४, १६ ।         | तत्र दुर्गा च समूच्या     | ६४४, ६ ।  |
| ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्या     | १६१, २ ।          | तत्र तत्र जल दद्यात्      | १५८, १७ । |
| ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी       | १७८, १६ ।         | तत्र तीर्थमनुनाभिवाहयेत्  | १४६, १४ । |
| ज्येष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां  | १६०, १० ।         | तत्र रत्नमय द्वीप         | १४८, ८ ।  |
| ज्येष्ठे शुक्लचतुर्थ्यान्, | १७८, १ ।          | तत्र वरमये पात्रे         | १६९, १६ । |
| ज्येष्ठे शुक्लदशम्यान्,    | १८०, १७ ।         | तत्र च कर्कटे ज्ञेय       | १०६, १० । |
| ज्येष्ठेऽसितचतुर्दश्या     | १६०, १८ ।         | तत्रान्यदुदक दद्यात्      | १५८, ५ ।  |
| ज्येष्ठे मासि दशम्यान्,    | १८०, १०, ।        |                           | ६८०, ८ ।  |
| ज्येष्ठे मासि द्विज्येष्ठ  | १६०, १६ ।         | तत्रापि मङ्गली पूजा       | ६६०, ९ ।  |
| ज्येष्ठे मासि सिते पत्रे   | १७८, ५ ।          | तत्राष्टमी शुद्धार्ते च   | ११, ६ ।   |
|                            | १८०, ५ । १८१, ८ । | तथाक्षयवतीयाया            | १५१, ८ ।  |
| त ।                        |                   | तथा काशस्य पुण्याणि       | १६८, १४ । |
| तगरसरोरुहपत्रै             | ११९, १४ ।         | तथा निर्माल्यसङ्घट्ट      | ४१०, १४ । |
| तत्तदङ्गगतो न्यास          | १६८, ११ ।         | तथा चैव फडित्येव          | १६८, ८ ।  |
|                            |                   | तथा भाद्रपदे कृष्णे       | १४७, १३ । |

|                            |           |                           |           |
|----------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| तदन्ते मन्त्रिणां पुजां    | ११०, १ ।  | तारेण हृदयं प्रोक्तं      | १८०, ७ ।  |
| तदा तत्प्रतिमा कार्या      | १८०, ५ ।  | तारो दुर्गे द्वयं रक्षाः  | १८०, १८ । |
| तदैव विषुवाष्टोऽथं         | १४१, ६ ।  | तिथिनैकेन दिवसः           | ३४०, ४ ।  |
| तन्नेन चारिणा स्नान        | ४८३, ७ ।  | तिथीनां प्रवरा यस्मात्    | १८, १० ।  |
| तमतिक्रम्य तु रविः         | १११, १ ।  | तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्वः | १३५, १६ । |
| तमालपत्र धात्याश्च         | १६६ ११ ।  | तिथ्यष्टमोर्यदा हृदः      | ३०६, ५ ।  |
| तर्जनीमध्यमानामा           | १५४, १० । | तिलतण्डुलनीर्क्षे         | ५०८, ११ । |
| तदोपयुक्तस्यम्ब            | १८०, ७ ।  | तिलनैलेन देयाश्च          | १५८, १६ । |
| तस्मात् कृतोपवासेन         | ६८, ३ ।   | तिलै स्नान मन्त्रापुर्यं  | ८४, ८ ।   |
| तस्माच्च खादिर पत्रं       | १६८, ८ ।  | तिलोद्गतीं तिलसायी        | ५६०, १३ । |
| तस्मात् प्रसादे दुःखे वा   | ५६, १ ।   | तिषक्षिषो द्वयोः          | १४४, १६ । |
| तस्माच्छूद्रैर्विना विप्र  | ५०३, ६ ।  | तीराङ्गयूतिमाचलु          | ५३३, १० । |
| तस्मात् सर्वप्रयत्नेन      | ५४३, ६ ।  | तीर्थस्नानार्थिनी नारी    | ५०८, ८ ।  |
| तस्मादनादिमध्यान्त         | १८८, १८ । | तुलसीदलगा ज्ञाया          | ५३६, १६ । |
| तस्माद्युतं प्रकर्तव्यं    | ४०६, ११ । | तुलसीसन्निधौ प्राणान्     | ५३६, १४ । |
| तस्मिन् दिने मन्त्रापुर्यं | ५१६, १४ । | तुलसीविपिनस्यापि          | ४३६, ५ ।  |
| तस्यां कार्या यवैर्होमः    | १४६, ६ ।  | तुलसीपत्रमावेष्ट          | १६०, १६ । |
| तस्यां निजगृहे पार्थ       | ४००, ११ । | तुलस्यारोपिता सिक्ता      | ४३६, ७ ।  |
| तस्यामाराध्य गोविन्द       | ५१५, ५ ।  | तुलादिपङ्कशोत्थका         | ३५०, १ ।  |
| तस्यां सम्पूज्य देवेशं     | ३५, १८ ।  | तुलामकरमेष्टु             | १४०, ४ ।  |
| तस्यां स्नान जपो होमः      | ४८६, ११ । | तुलामेष्टप्रवेशे तु       | ११५, ८ ।  |
| तस्यां स्कन्दस्य कर्तव्या  | १०६, ६ ।  | तुलाया चैव मेष्टे च       | १०६, ११ । |
| ताम्रपात्र तिलैः पूर्यं    | ११६, १६ । | तुलाया तिलनैलेन           | ४५६, ७ ।  |
| ताम्रस्य पत्रस्युक्त       | ३८६, ११ । | तुलाराशिगते स्त्र्यै      | ४६०, ११ । |
| ताम्रस्य रघुनाथस्य         | १०३, १८ । | तुलासक्रमणे राज्ञौ        | १११, १६ । |
| ताम्रस्यवर्जनाङ्गोमी       | १८०, १४ । | तुलासंक्षेपे सद्यो        | ४००, १६ । |
| ता विन्ध्यवासिनीं          | १०६, ७ ।  | तुल्यतामलकैर्विष्णु       | ८४, १० ।  |
| तारादिदुर्गे हृदय          | १६१, ११ । | तृषैः कुसुमसेध            | १६५, ११ । |



|                            |           |                            |           |
|----------------------------|-----------|----------------------------|-----------|
| दशम्यां धर्मराजस्तु        | ४९, ५ ।   | दुर्गानन्त्रेण मन्त्रेण    | १६५, १० । |
| दशम्येकादशी विद्या         | १९०, ८ ।  | दुर्गां सपूष्य दुर्गाणि    | ४१, १२ ।  |
| दशम्येकादशी शुक्ता         | ४८, १८ ।  | दुर्गारा वैष्णवी माया      | ४८४, ११ । |
| दशम्येकादशी यव             | ८, १ ।    | दुर्मिच रोगसम्पत्तिः       | १११, १० । |
| दशम्येकादशी मित्रा         | ४९, ९ ।   | दूर्वाक्षतसमाशुक्तं        | ४९१, ८ ।  |
| दशां विवर्जयेत् प्राज्ञः   | १८०, ५ ।  | दूर्वाष्टमीघ्न पुष्पं      | ११८, १८ । |
| दर्शनात् स्पर्शनाक्षापात्  | ५९४, ६ ।  | देये पिष्टृणां आजे तु      | १५, १९ ।  |
| दर्शान्न गयाश्राद्धं       | ५६४, १६ । | देवताज्ञे पठद्धाना         | १५२, १४ । |
| दर्शादर्शयान्द्रः          | १९४, १ ।  | देवतासङ्मुखं प्राची        | १०६, ९ ।  |
| दर्शाधि चान्द्रमुगन्ति मास | १९५, १ ।  | देवमभ्यर्च्य पुष्पैश्च     | १४, १२ ।  |
| दर्शे तु माघमासस्य         | १४८, ४ ।  | देवस्य मलक कुर्यात्        | १५८, १५ । |
| दर्शे नवम्या सप्तम्यां     | ८४, ५ ।   | देवाश्च पितरश्चैव          | ५४४, ९ ।  |
| दर्शे चानं न कुर्वीत       | ८२, १० ।  | देवीमभ्यर्च्य यः कुर्यात्  | १०८, १० । |
| दर्शे स्नान पिष्टम्यस्तु   | ८१, १५ ।  | देव्यास्तु करगृह्णाणि      | २८२, ११ । |
| दान यद्दीयते किञ्चित्      | ५१५, ० ।  | द्वादश द्वादशीर्यस्तु      | ७०, ९ ।   |
| दिग्भागेषु हि कौमारी       | १८२, १० । | द्वादशशिला यो वै           | १४६, १८ । |
| दिग्मी चन्द्रे समायुक्ते   | ४८, ९ ।   | द्वादश्या कृष्णपक्षे तु    | ८९, १० ।  |
| दिनचयाधिके विशेषे          | ४८४, १४ । | द्वादश्या तुलसी यस्मात्    | ६४, १० ।  |
| दिने दिने सद्यन्तु         | ४८२, ११ । | द्वादश्या न च कुर्वीत      | ५४०, १ ।  |
| दिवसस्याष्टमे भागे         | १०, १४ ।  | द्वादश्यान्तु सिते पक्षे   | १९९, १० । |
| दिवाकरकरे पूत              | ८९, ११ ।  |                            | ५१५, ३ ।  |
| दिवानिद्रा पराव्रज         | ६९, ८ ।   | द्वादश्यां विष्णुमिद्रा च  | ६८, १० ।  |
| दिवाभागे चयोद्दशां         | १६१, १९ । | द्वादश्यां शुकलपक्षस्य     | १८९, १८ । |
| दिवा रात्रौ व्रत यच्च      | १४, ८ ।   | द्वादश्यां यद्वृत्तिक्षारं | ५०५, १० । |
| दिवा खपिति नो विष्णुः      | १८५, १० । | द्वावेव वर्जयेन्नित्यं     | १८४, १० । |
| दिशमौमान्तरौचाणि           | १४८, १९ । | दिजसैवैव श्रद्धस्य         | ५६८, ८ ।  |
| दीयते चेष्टदेवेभ्य         | १८०, ५ ।  | द्वितीयादिकयुग्मानां       | १०, ४ ।   |
| दुग्ध सशर्करश्चैव          | ५०८, ५ ।  | द्वितीया पञ्चमी वेधात्     | १४, ९ ।   |

|                             |           |
|-----------------------------|-----------|
| द्विराश्रिमाना ऋतवः         | १६७, ११ । |
| द्विशरीरे चरे चापि          | १७७, ७ ।  |
| द्वे शृङ्गे द्वे तथा कृष्णे | १४८, ८ ।  |
| द्वौ द्वौ भाषादिभाषौ स्यात् | ११८, ११ । |
| द्रोणश्च खादिर वेणु         | १६६, १८ । |

## ध ।

|                        |           |
|------------------------|-----------|
| धन धान्य चरे लग्ने     | १७७, १० । |
| धनुःसहस्राण्यष्टौ च    | १८२, ८ ।  |
| धरण्या दुःखसम्भूति     | ११८, ५ ।  |
| धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्य | १२८, ८ ।  |
| धारणाम्रखलोनाञ्च       | १८१, ४ ।  |
| धन्या सा जननी लोके     | ५७८, १७ । |
| धान्यमन्न तथा शाक      | १५८, १८ । |
| धान्यानां कुसुमैर्देवी | १७०, १२ । |

## न ।

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| न कदाचिन्महादेयै          | १८७, ११ । |
| न कृष्णचार वितरेत्        | १८७, १८ । |
| नक्तं प्रेतचतुर्दश्या     | ४५८, ११ । |
| नक्तं भुञ्जीत च नरः       | १४, १५ ।  |
| नक्तं हविष्यान्नमनोदन     | ५७, ११ ।  |
| नक्तादिप्रतयोगे तु        | १०४, ७ ।  |
| नक्ताशी अष्टमीं यः स्यात् | १८, १८ ।  |
| नक्षत्र देवदेवश           | १६, २ ।   |
| नक्षत्रदर्शनाग्रक्त       | १७, १६ ।  |
| नक्षत्राणि तथैवाच         | १४४, ११ । |
| न गृहे कार्तिक कुर्यात्   | ४८१, २ ।  |
| न च वैसासिकान् न्यून      | १८५, १ ।  |

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| न चान्यानि सुगन्धीनि     | १६१, ११ । |
| न तथा तुष्यति शिवा       | ४४७, १८ । |
| न तस्य नरकक्षेत्र        | १६७, १५ । |
| न ददाति गया गत्वा        | ५२८, ११ । |
| न दद्यात् भास्करायार्थं  | १६१, १८ । |
| न दानं न तपो होम         | ५०४, १८ । |
| न दूर्व्यार्थयेद्देवीं   | १७०, १६ । |
| नद्या समुद्रगामिन्या     | १०८, १७ । |
| नन्दाया वत्सरेऽतीते      | ८२, १ ।   |
| नन्दाया भार्गवदिने       | ४८६, १४ । |
| न निर्वपति यः श्राद्ध    | ८१, ११ ।  |
| न प्रौष्ठपदयो कार्यं     | १४४, ८ ।  |
| न भूमौ वितरेद्रूप        | १७१, ११ । |
| नमस्कारेण चेकेन          | १०१, १० । |
| नमः स्थाने खडां ब्रूयात् | १५८, ८ ।  |
| न मिश्रीकृत्य दद्यात्    | १७१, २ ।  |
| नमो भगवते ब्रूयात्       | १२५, १५ । |
| न यक्षरूपं कुवापि        | १७१, ५ ।  |
| नयनानयनार्थं हि          | १११, १५ । |
| न लौहे वास्त्वले नापि    | १८७, ६ ।  |
| नवदुर्गास्तथा पूज्या     | १८१, ५ ।  |
| नवमे दिवसे दृष्ट         | ११२, ११ । |
| नमेषु श्रद्धासदृष्ट      | ५६७, ११ । |
| नरो दोलागत दृष्टा        | ५१७, ८ ।  |
| नवमी चाष्टमीविदा         | ५१५, १७ । |
| नवमी पुत्रनाशाय          | ८१, १५ ।  |
| नवम्या नववर्षाणि         | ४०, १८ ।  |
| नवम्या तु सदा पूज्या     | ४१, १ ।   |



|                              |           |                            |           |
|------------------------------|-----------|----------------------------|-----------|
| नवम्यां यस्तु पिटाशी         | ४१, ४ ।   | नास्ति लीणा प्रथम्यत्र.    | ५०९, ११ । |
| नवम्यां बलिदानघ्न            | ४०४, १९ । | नित्यं द्वयोरयनयोः         | ९१, २० ।  |
| नवम्यामेकभक्तघ्न             | ४१, १६ ।  | नित्यं नैमित्तिकं काम्यं   | ४९५, ९ ।  |
| नवम्यां पूजयेद्यस्तु         | ४०८, १६ । | नित्यस्य कर्मणो हानिः      | १००, ४ ।  |
| नवाग्रं नैव नन्दायां         | ४५२, १३ । | निदाघकाले पानीय            | २६०, ६ ।  |
|                              | ४८६, ० ।  | निमित्तं कालमाश्रित्य      | १४, १९ ।  |
| नवोदके नवाग्रे च             | ९८४, ० ।  | निम्बस्य भक्षणं तैल        | ८०, ८ ।   |
|                              | ४८०, ० ।  | निरग्रं दिवसं विष्टि       | २१०, ५ ।  |
| नवाग्रालभने देवी             | ४८०, १२ । | निर्गन्धं मलिनं            | १६४, १५ । |
| न शूद्राय मर्तिं दद्यात्     | ५०१, ९ ।  | निर्दशं मलिनं जीर्णं       | १६२, ४ ।  |
| न स्नाध्याय वषट्कार          | ९८४, ३ ।  | निर्मान्यतुलसीमालां        | १८१, ११ । |
| नागविद्या च या षष्ठी         | ५१, ६ ।   | निर्मान्यधारिणी विष्णोस्तु | १०९, १४ । |
| नागविद्या न कर्तव्या         | १६, १३ ।  | निर्मान्यधारिणी चास्या     | ५५३, १२ । |
| नागानिष्टाय पद्म्यां         | ४४, १५ ।  | निर्मान्य नोपयोक्तव्य      | १८१, १९ । |
| नाडीमन्त्रदिवसे              | ११२, ९ ।  | निवेदेयेत् पुरोभागे        | १९६, ६ ।  |
| नाडीषष्ठ्या तु नाक्षत्रं     | १२५, ० ।  | निवेदेयेन्महादेवे          | ४८८, १० । |
| नास्ति देवी बलि तन्तु        | ०९८, १० । | निशि स्नापो दिवोत्थानं     | ४०९, २२ । |
| नादत्ते विधिवत् किञ्चित्     | ४८८, ८ ।  | निशीथे वरदा लक्ष्मीः       | ४५४, ९ ।  |
| नादीक्षितो विशेषात्          | ११९, ० ।  | नियेकादि श्रमशान्तः        | ५०४, ० ।  |
| नाद्यात् स्वर्यपदात् पूर्वं  | १०४, ५ ।  | निष्ठैविवे तथाभ्यङ्गे      | ११८, १२ । |
| नाधीयित नरो नित्य            | ५६५, २ ।  | निष्पावान् राजमायांश्च     | ४५८, १४ । |
| नानाविधोपकरणै                | ९८०, ० ।  | नीचैरासनमासाद्य            | १२०, १० । |
| नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे | ८८, ४ ।   | नीराजन दशम्यान्तु          | ४०८, ११ । |
| नार मध्ये शिरोरक्त           | ४९८, १ ।  | नीलपीवी रक्तशिराः          | ४९६, १८ । |
| नारिकेल कपित्थश्च            | ४८८, १६ । | नीलोत्पलैर्मल्लिकैश्च      | १६२, १४ । |
| नारिकेलजल कांक्षे            | ४९०, १० । | नेत्रे तोयन्तमादित्य       | ९४, १० ।  |
| नारिकेलैश्चिपिटकै            | ४५४, १६ । | नेत्रबीजस्य मध्यन्तु       | ४४४, ९ ।  |
| नाश्रीयादथ तत्काले           | १०२, ० ।  | नेत्रमये दिशास्त्रं        | १०४, ९ ।  |

|                         |           |                              |           |
|-------------------------|-----------|------------------------------|-----------|
| नैमित्तिकानि काम्यानि   | १०७, ११ । | पत्र पुष्प दलस्रैव           | १६७, ८ ।  |
| नैरन्तर्येण यो मास      | ४६६, १० । | पत्र पुष्प फल त्रय           | १८१, १ ।  |
| नैव निर्वापयेद्दीप      | ६८७, ११ । | पत्राण्यपि च पुष्पानि        | १६८, ६ ।  |
| नैवेद्य दक्षिणे वामे    | ६६८, ६ ।  | पत्रौविसर्ज्जन रात्रौ        | ६७७, १ ।  |
| न्यस्तव्या प्रणवादिका   | ११६, ६ ।  | परमाणूनि यावन्ति             | १७८, ६ ।  |
| न्यासक्रमेण देहे स्वे   | १४५, ११ । | परमात्र पिष्टकश्च            | ६८८, १४ । |
|                         |           | परारोपितदृष्टेभ्य            | १६५, १४ । |
|                         |           | परिवारगणास्तत्र              | १५६, ७ ।  |
|                         |           | पर्वकाले च सप्तमे            | ६१, ८ ।   |
|                         |           | पर्वसु न तैस्तु              | ८६, ११ ।  |
|                         |           | पर्वसु माघीयित               | ८६, ६ ।   |
|                         |           | पक्षवैद्यैव पक्षेद्य         | १६२, १८ । |
|                         |           | पशूना पक्षिणा वापि           | ६६४, ११ । |
|                         |           | पशानु पारण कुर्यात्          | ५०५, १२ । |
|                         |           | पाद्य पादाम्बुनि दद्यात्     | १५७, १७ । |
|                         |           | पाद्यादिभिश्च नैवेद्यै       | ४२५, ६ ।  |
|                         |           | पाद्यार्थाचमनीयाद्यै         | १५६, ११ । |
|                         |           | पायसापूपमिष्टान्न-           | १७२, १ ।  |
|                         |           | पारक्ष्यारामजातैस्तु         | १६५, ६ ।  |
|                         |           | पारणाद्यै न स्म्येत          | ४८, ६ ।   |
|                         |           | पार्श्वयोः दृष्टतो नाभौ      | ११८, ७ ।  |
|                         |           | पाशाद्व्यचराद्यन्ते          | १५१, १ ।  |
|                         |           | पिण्डान् दद्यादिजैर्मन्त्रैः | ६६३, ८ ।  |
|                         |           | पिष्टभिर्धातुभिश्चैता        | ५७७, ११ । |
|                         |           | पिष्टमाष्टपतिधातु-           | ५८, ११ ।  |
|                         |           | पुत्रजन्तुनि सक्रान्त्या     | ८२, १५ ।  |
|                         |           | पुत्रनाशो यशो मृत्युः        | ८८, ६ ।   |
|                         |           | पुष्वस्तुषुषोपेता            | ५११, ४ ।  |
| पक्ष्यान् विधायाथ       | ६६६, ५ ।  |                              |           |
| पक्षादौ च रवौ पक्षा     | ८५, १५ ।  |                              |           |
| पक्षिणः कक्षपा ग्राह्या | ६६४, १५ । |                              |           |
| पक्षिण वामतो दद्यात्    | ६६८, १ ।  |                              |           |
| पक्षदद्या चतुर्दश्या    | ८६, ६ ।   |                              |           |
| पक्षदद्या तथा ज्येष्ठे  | १६१, ६ ।  |                              |           |
| पक्षमी च प्रकर्तव्या    | १६५, ११ । |                              |           |
| पक्षमीप्रभृतिर्वा       | २५०, १६ । |                              |           |
| पक्षमी सप्तमी चैव       | ११, १७ ।  |                              |           |
| पक्षमे च तथा भागे       | १६, ११ ।  |                              |           |
| पक्षमूर्द्धञ्च तत्रापि  | २५१, १५ । |                              |           |
| पक्षाङ्गानि मनोर्यस्त   | १२६, १० । |                              |           |
| पक्षाननगते भानौ         | २१७, १० । |                              |           |
| पक्षाननस्थौ             | १४१, १२ । |                              |           |
| पक्षाम्बुतेन च स्नान    | १८१, १८ । |                              |           |
| पक्षाशदचरन्यास          | ११६, १ ।  |                              |           |
| पठेयु प्रतिभाया वा      | ५५२, १७ । |                              |           |
| पतङ्गे मकरे याते        | २६, ११ ।  |                              |           |
| पति या नाभिचरति         | ५७६, ७ ।  |                              |           |
| पत्यौ जीवति या नारी     | ६७, ५ ।   |                              |           |

|                            |           |                              |           |
|----------------------------|-----------|------------------------------|-----------|
| पुनर्वसौ देवगुरौ           | ५१५, २१ । | पौषादिषु च मासेषु            | ४८६, ५ ।  |
| पुनर्वसृच्चसयोग            | ५२४, २१ । | पौषी चेत् पुष्यायुक्ता       | ४८६, २१ । |
| पुष्यनैवैद्यगन्वादि        | ४१०, १० । | पौषे कनकदानेन                | ४८८, १ ।  |
| पुष्यं वा यदि वा पर्व      | १६३, ६ ।  | पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे       | ४८७, ३ ।  |
| पुष्याणि व्रज्यहस्य        | १६८, १६ । | पौषे तु पुष्यानक्षत्रे       | ४८६, १४ । |
| पुष्यान्तरैरन्तरित         | १६७, ४ ।  | पौषे मासि यदा देवि           | ४८६, ६ ।  |
| पुष्याण्येवान्न शस्यन्ते   | १६३, ११ । | पौषे मासि तु यो दद्यात्      | ४८७, २० । |
| पुष्यालङ्कारवस्त्राणि      | ६६, १६ ।  | पौष्या पुष्यर्चयुक्ताया      | ४६० ७ ।   |
| पुष्यैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः | १८१, १० । | प्रकुर्यात् प्रोन्नता चर्वाः | १५५, ८ ।  |
| पुष्यैररण्यसमूहैः          | १६५, ५ ।  | प्रणमेत् प्रातरुत्थाय        | ५२४, १६ । |
| पूजयेद्गन्धैश्चैव-         | १४४, ४ ।  | प्रतिपदायमावस्या             | ३, १८ ।   |
| पूजा जपार्चना चोमा-        | १६६, २ ।  | प्रतिपक्ष द्वितीया च         | ८३, १० ।  |
| पूजायोग्यैर्दत्तैः पवि-    | १६७, ११ । | प्रतिपक्षनपत्यः स्यात्       | ५२०, १४ । |
| पूजासु नाममासानि           | २८८, १२ । | प्रतिपत्सु नवम्याश्च         | ८५, १२ ।  |
| पूर्णाप्येकादशी त्याज्या   | ५३, ७ ।   | प्रतिपक्षेकभक्ताशी           | १६, ५ ।   |
| पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा      | १४३, ४ ।  | प्रतिपक्षनपत्यः स्यात्       | ८१, ७ ।   |
| पूर्वं व्रत गृहीत्वा य-    | ६८, ६ ।   | प्रतिपत्सङ्गुली याच्चा       | १२, ८ ।   |
| पूर्वाह्णे मातृक त्राद     | १८, ६ ।   | प्रतिमास सलक्ष्मीक           | २१६, ११ । |
| पूर्वाह्णेन विधानेन        | ६९, ४ ।   | प्रतिमा प्राक्षणे दत्त्वा    | २६२, १७ । |
| पौराणिकैर्वैदिकैर्वा       | १७७, ११ । | प्रत्यचीकृत्य हृदये          | १४१, १५ । |
| पौर्णमासी तथा माघी         | ४५१, १५ । | प्रथम प्राङ्मुखः स्थित्वा    | ११८, १० । |
| पौर्णमासीषु चैतासु         | १८२, ८ ।  | प्रदीपमालां यः कुर्यात्      | ४५७, १६ । |
| पौर्णमास्यां नभस्यस्य      | २३६, १६ । | प्रदीपव्यापिनी याच्चा        | ४५४, १ ।  |
| पौर्णमास्यान्तु य सोम      | ७७, ८ ।   | प्रपा कार्याः प्रयत्नेन      | २४१, १ ।  |
| पौर्णमास्यान्तु समूह्य     | ४८१, ८ ।  | प्रभाते ता समादाय            | २४१, ८ ।  |
| पौर्णमास्यान्तथा कार्या    | ५२९-१५ ।  | प्रवासे पथि वा मार्गे        | १४७, १८ । |
| पौर्णमास्याममावस्या        | ४६३, १ ।  | प्रवाहमवधि कृत्वा            | ५२३ ५ ।   |
| पौर्णमास्यामापादस्य        | १६९, ८ ।  | प्रसारिते मध्यमे द्वे        | १५५, १६ । |

|                                    |                   |
|------------------------------------|-------------------|
| प्रहर तिष्ठते जातीय                | १६४, २१ ।         |
| प्राजापत्य यदा ऋच                  | ७८, १२ ।          |
| प्राणस्य शोधयेन्मार्गं             | १२०, १८ ।         |
| प्राणायामत्रय कृत्वा               | १०६, ६ ।          |
| प्राणायामैर्विना यद्वत्            | १२६, २ ।          |
| प्रातः कालो मूर्च्छार्त्तास्त्रीन् | १८ २१ ।           |
| प्रातः सकल्पयेद्विद्वान्           | ६१, १५ ।          |
| प्रातः स्नायी च सतत                | ४८६, २ ।          |
| प्रातः स्नाय्यदणकिरण-              | ४८०, २० ।         |
| प्रादुष्कृतेष्वग्निपु तु           | ५६६, ५ ।          |
| प्राप्ते भाद्रपदे मासि             | १२०, ५ ।          |
| प्रारब्धतपसा स्त्रीणा              | ६८, २१ ।          |
| प्राष्टकाली च नभसि                 | २८८, १२ ।         |
| प्राष्टकालोऽसिते पक्षे             | १५४, ५ ।          |
| प्राम्नीयादधिसयुक्तं               | ४८०, १० ।         |
| प्रियङ्गुं फाल्गुने दत्त्वा        | ५०६, १२ ।         |
| प्रौष्ठपद्यामतीत्या                | १५६, ५ ।          |
| प्रौष्ठपद्या पर पक्ष               | १४४, २१ ।         |
|                                    | १५१, २ । १६१, ८ । |

## फ ।

|                        |              |
|------------------------|--------------|
| फलप्रीक्षादिभिः सर्वैः | ११८, १४ ।    |
| फाल्गुनस्य चतुर्दश्या  | ५०६, २१ ।    |
| फाल्गुनामलपक्षस्य      | ५१४, १४-१० । |
| फाल्गुणी फल्गुनीयुक्ता | ५१६, १८ ।    |
| फाल्गुन्या फल्गुनीष्वे | ५१०, १२ ।    |
| फैकारिणीपद             | ४४४, ६ ।     |

## ब ।

|                         |           |
|-------------------------|-----------|
| बकुलस्य मधुकस्य         | १८८, १८ । |
| बकुलैरतिमुक्तैश्च       | १००, ८ ।  |
| बकुलैश्चैव मन्दारै-     | १८४, १८ । |
| बक्रिं छन्दपुरन्दरौ     | १८६, १ ।  |
| बर्द्धमानेन्दुपक्षस्य   | १०, ८ ।   |
| बर्द्धमानाममावस्या      | २२, ८ ।   |
| बलिभिर्गन्धपुष्पाद्यै-  | ४४०, ६ ।  |
| बलिहीने तु दुर्मिच्छं   | १८६, १८ । |
| बलिभिः साध्यते मुक्ति   | १८५, ८ ।  |
| बक्रिबीजेन तेनैव        | १२२, ४ ।  |
| बडवाक्षविरोधेन          | ४६, ६ ।   |
| बारणेन समायुक्ता        | ५१८, ११ । |
| बीजभावेन स्त्रीनामि     | १२२, २ ।  |
| बीजाद्यमासन दत्त्वा     | १६०, १५ । |
| ब्रह्मस्य सुरापस्य      | ४५, ११ ।  |
| ब्रह्माणी कदलीकाण्डे    | १८१, २ ।  |
| ब्रह्माणीं प्रथमश्चैव   | १८२, ४ ।  |
| ब्रह्मा तु सर्वलोकानां  | १०५, ११ । |
| ब्रह्मदा गुह्यदा गोप    | ५३५, २ ।  |
| ब्राह्मणस्तु द्वितीयाया | २८, १० ।  |
| ब्रीहिरिपाके च कर्तव्य  | ४५१, १३ । |

## भ ।

|                       |           |
|-----------------------|-----------|
| भक्त्या गङ्गावगाहस्य  | ५३५, ८ ।  |
| भक्ष्यभोज्यैर्वैजविधे | ५२६, १० । |
| भगलिङ्गमिधानैश्च      | १००, २१ । |
| भवेद्यत्र त्रयोदश्या  | ०२, २२ ।  |

|                               |           |                          |            |
|-------------------------------|-----------|--------------------------|------------|
| भक्त्या यस्तु पुमान् कुर्यात् | २२, १० ।  | मधुमासे हृषे चैव         | ६०, ६-१० । |
| भगौरथश्च नृपतिं               | ९८१, १० । | मधुमासे तु सप्राप्ते     | ५२१, १४ ।  |
| भवार्थी जीवितार्थी च          | १६४, २ ।  | मधुमासेश्च शकैश्च        | २५६, ५१ ।  |
| भाद्रे मासि समारम्भे          | २१६, १० । | मघौ मासि सिते पक्षे      | ५२०, १२ ।  |
| भाद्रे मासि सिते पक्षे        | २१८, १ ।  | मथ्यमानामिके द्वे द्वे   | १५५, १० ।  |
|                               | २१९, १ ।  | मथ्याऋषापिनौ याश्चा      | २१, ७ ।    |
| भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां         | ५३२, ८ ।  | मनसा संस्मरेद्यस्तु      | ५२२, ५१ ।  |
| भानुवारेण संयुक्ता            | ६०, २ ।   | मनिबन्धादाकरभं           | १५४, १० ।  |
| भानोर्मकरसंज्ञान्तेः          | २३७, १० । | मनीवाक्कायजनित           | १८८, १ ।   |
| भुक्ताग्रं श्रीफलं नाद्यात्   | ५६४, १८ । | मन्त्र जपेष्ट पौराण      | २५८, ११ ।  |
| भूतविद्याप्यमावस्या           | १६१, १० । | मन्त्रेषोक्ताः पूज्येण   | २८४, ११ ।  |
| भूतानि नाम श्रुतिवौ           | १२२, ६ ।  | मन्दा भुवेषु विज्ञेया    | १०७, १८ ।  |
| भेषूद्याद्विशिवान्येषु        | ४८६, १८ । | मन्दा विप्रजने श्रुता    | ११०, १७ ।  |
| भोगार्थं क्रियते यत्तु        | ८२, ८ ।   | मन्दा मन्दाकिनौ ध्वाङ्गौ | १०७, १७ ।  |
| भोजनं पद्मपत्रेषु             | ४५८, १० । | मन्दे वार्कौ गुरौ वापि   | ५३९, १७ ।  |
| भौमवारे वर्षमेकं              | ५४२, १० । | मम प्रवर्तते पूजा        | २८२, १८ ।  |

## म ।

|                         |           |                              |           |
|-------------------------|-----------|------------------------------|-----------|
| मकरस्थे रवौ माघे        | ४८१, ४ ।  | महाज्यैष्ठ्या नरो दृष्ट्वा   | ८१, १ ।   |
| मकरावस्थिते भानौ        | ४८७, १२ । | महाज्यैष्ठ्यान्तु सदृश       | ८०, ११ ।  |
| मघायुक्ता च तत्रापि     | २६१, ११ । | महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत् | ८०, १७ ।  |
| मङ्गले खज्जनं दृष्ट्वा  | ४५०, ८ ।  | महानवम्या प्रथम              | ४१, ६ ।   |
| मण्डले प्रतिमायां वा    | १०२, ४ ।  | महामाघी प्रयागे तु           | ८०, ८ ।   |
| मत्स्यानां कच्छपानाञ्च  | २८५, ११ । | महासुद्रेयमुदिता             | १५३, १० । |
| मताभ्यां सर्वदेहे च     | १२२, २ ।  | महिषाच्च गुगुलुच             | १०१, ८ ।  |
| मदिषां शृङ्गो दद्यात्   | २८८, १२ । | महिषाच्च छताक्तश्च           | २८६, ७ ।  |
| मय दत्त्वा ब्राह्मणस्तु | २८७, १५ । | महिषाणाञ्च खज्जाना           | २८५, १८ । |

|                          |                    |                            |           |
|--------------------------|--------------------|----------------------------|-----------|
| महिषासुरयुद्धेपु         | ४२५, १६ ।          | मार्गशीर्षन्तु यो मार्ग    | ४८९, १ ।  |
| महीदरी तु चौराणा         | ११०, १८ ।          | मार्गशीर्षे चिते पचे       | ४८९, ८ ।  |
| माघप्रासृगुनयोर्मध्ये    | ०६, १, २० ।        | मासती मक्षिका दूर्घ्या     | १६८, ६ ।  |
|                          | १००, ८ । ४११, १८ । | मासपक्षतिथीमाघ             | ११५, ११ । |
| माघमासे तु सप्तम्यां     | ५०१, १० ।          | मासपक्षे यदा ऋते           | ००, १५ ।  |
| माघमासे शुक्लपक्षे       | ५०४, ८ ।           | मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां     | ११८, ० ।  |
| माघादिवट्कमासेषु         | ११८, ११ ।          | मासि भाद्रपदे शुक्ला       | १११, ५ ।  |
| माघान्तकारद्वादश्या      | ४८६, १८ ।          | मासे नभस्यमावस्या          | ११६, १ ।  |
| माघासिते भूतदिन          | ०५, १४ ।           | मासो रवेः स्थान्           | ११४, १८ । |
| माघे मासि तथा शुक्ला     | ४८८, १ ।           | मियुनेऽष्टादशे भागे        | १४०, ४ ।  |
| माघे मासि तिष्ठान् यस्तु | ४८६, १५ ।          | मौनकर्कटयोर्मध्ये          | १४१, ११ । |
| माघे मासि तु या शुक्ला   | ५०४, १ ।           | शुक्ले शनिनि शुक्लीन       | १०४, ० ।  |
| माघे मासि हत्तीयायां     | ४८०, १८ ।          | शुक्लैर्नाभं वेदान्        | १६८, ११ । |
| माघे मासि रटन्त्याप      | ४८०, ११ ।          | शुक्लैः पतिनैश्चैव         | १६१, ११ । |
| माघे मासि चिताष्टम्या    | ५०१, ५ ।           | शुक्लं त्रास मासि मासि     | ११६, १४ । |
| माघे मासि चिते पचे       | ४८८, १४ ।          | मञ्जरीभिः कुमामाघ          | १००, ११ । |
| माघे मास्यचिते पचे       | ४८०, १० ।          | मुद्रां विना तु यक्षाद्य   | १४६, ६ ।  |
| माघे मास्यपक्षि खान      | ४८६, ११ ।          | मुनिभिर्द्विरमनमुक्त       | १०४, १२ । |
| माघे शुक्लचतुर्थ्यान्तु  | ४८८, ० ।           | मुरा मांघी वचा कुष्ठ       | ४०५, १० । |
| माघे शुक्लहत्तीयाया      | ४८०, ११ ।          | मुष्टिवाञ्छनिनिक्षिप्त     | १५४, ६ ।  |
| माघ्या कुला तिष्ठैः खान  | ५०६, १ ।           | मुक्ताभिः द्वादशी न स्थान् | ५५, ८ ।   |
| मातर पितरश्चापि          | ४८४, ११ ।          | मुद्गिं भाले हरोरास्ये     | १८०, ११ । |
| मातुलद्वयं लज्जुष        | १८८, ११ ।          | मूलमन्त्र समुच्चार्य       | १५१, १ ।  |
| मातृकान्यासयोगश्च        | ११५, ४ ।           | मूलाभावेऽपि सप्तम्या       | १६०, १५ । |
| मानार्धं भास्करे पुण्ड्र | १०८, १ ।           |                            | १६८, १ ।  |
| मान्वाता चक्रवर्त्तासीन् | ४१, १० ।           | मूलेन मूर्ध्नि सकल्प्य     | १४८, ११ । |
| मायासूक्ष्मीपदाद्येन     | १८६, ११ ।          | मृगकर्कटसत्राण्यौ          | १०४, १८ । |
| मायासूक्ष्मीकामबीज-      | ११८, ४ ।           | मृगादिराशिद्वयभानुभोगान्   | ११८, ६ ।  |

|                            |           |                           |           |
|----------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| वृगवृक्षे शशधरे            | ५०५, १८ । | यथाशक्ति च संजय           | १०६, १९ । |
| वृगानां शोषितैर्देवी       | ६६५, १६ । | यदा याम्यन्तु भवति        | ९६०, ९० । |
| वृत्ते जन्मनि संक्रान्त्या | ९१४, १० । | यदा याम्यं हि भवति        | ७८, १० ।  |
| मेघमालादिदोषेण             | १००, १५ । |                           | ४८१, १९ । |
| मेघं पूषणि संप्राप्ते      | ५९५, १० । | यदा सतुर्दशीयाम्          | ९९, ७ ।   |
| मेघभानौ च गङ्गायां         | ९४०, १६ । | यदा भवेदतीवाल्पा          | ५५, ४ ।   |
| मेघगरविसंक्रान्तिः         | ९९८, १४ । | यदा शुकलचतुर्थ्यान्तु     | ८, ८ ।    |
| मेषादौ शक्तवो देया         | ९४४, १७ । | यदैवास्तन्नतश्चन्द्र      | १००, ७ ।  |
| मैत्राक्षपादे खपितौ च      | ९८५, १० । | यदोभयत्रापि दिने          | ७९, ८ ।   |
| मोदकानुदक्कुम्भांश्च       | ९५६, १९ । | यद्ददाति गयाख्यश्च        | ६५८, १ ।  |
| मोदकं स्नादुसंयुक्त        | ४९४, ५ ।  | यद्यत् करोति तत्तत्त्वं   | १६७, १७ । |
| मोहादज्ञानतः स्त्रीति      | १७७, १६ । | यद्यदिष्टतमं स्त्रीके     | ५०६, १६ । |
| मासाशने पौर्णमासी          | ८६, ९ ।   | यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं | ९६९, ५ ।  |
| मासैरपि तथा प्रीतिं        | ६६६, १ ।  | यस्मान्मन्वरादौ तु        | ५००, ४ ।  |
| य ।                        |           | यन्त मन्त्रमयं प्राङ्     | १४७, ५ ।  |
|                            |           | यथास्त सविता याति         | १६, १६ ।  |
| य इच्छेद्विपुलान् भोगान्   | ४६५, १६ । | यद्यद्वय आवणादि           | १०६, ९ ।  |
| यज्ञोपवीतमष्टम्या          | ९००, १६ । | यस्मिन्नाचसुपीथैव         | ६९, ७ ।   |
| यथाहारः स्थितः             | ९४०, ११ । | यस्मिन्त्येकपादेन         | ९८९, ६ ।  |
| यतिश्च विधवा चैव           | ४५५, ७ ।  | यत्तु मानुषवाक्येन        | १७७, १६ । |
| यत्किञ्चित्सिद्धसम्पन्न    | ५६४, ९९ । | यस्तु भाद्रपदे मासि       | ९६८, ७ ।  |
| यत्कृतं धनुषि शार्द        | ४८४, ९ ।  | यस्य जन्मर्चमासाद्य       | ९१९, १९ । |
| यत्किञ्चित् मधुना मित्र    | ६५६, १९ । | यस्त्वादित्यदिने भक्त्या  | ५४१, १६ । |
| यत्किञ्चिदीयवे दान         | ९५०, १८ । | यस्मै दद्यात् पिता वैनं   | ५७६, ६ ।  |
| यच्चैव भानु स नियत्युदेति  | १७५, १८ । | या काचित् प्रतिपद्दिवा    | ४८९, १९ । |
| यथा चैवापरः पक्षः          | ९६६, १६ । | यादि समाप्तिसहितः         | ५५६, ९९ । |
| यथा देवे तथा देहे          | १६६, ९० । | यावच्च कन्यातुल्यो        | ६४४, ११ । |
| यथावत् पौर्णमास्यान्तु     | ७७, ११ ।  | यावच्छक्य नियम्यास्तु     | १९७, ४ ।  |

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| यावतीभिस्तु मावाभिः       | १२०, ६ ।  |
| यावन्तयो स्य देवी         | ६०४, १० । |
| यावद्विशकला मुक्ता        | ९०५, ९० । |
| युगपदुपजातानि             | ५०४, १५ । |
| युगाद्या वर्षष्टद्वय      | ९४८, ९ ।  |
| युगाद्येषु युगान्तेषु     | ९४६, १० । |
| युग्माग्रिकृतभूतानि       | ९, १६ ।   |
| ये कारयन्ति कुर्वन्ति     | ५०, १९ ।  |
| ये त्वादित्यदिने प्राप्ते | ५४९, ९० । |
| ये पिवन्ति नरा नित्य      | ५४१, ० ।  |
| ये पिवन्ति पुनस्तेषां     | १६०, ९१ । |
| येय मार्गेशिरे मासि       | ४८९, ९० । |
| येय दीपान्विता राजन्      | ६५४, १६ । |
| येय भाद्रपदे शुक्ला       | ६१८, १८ । |
| ये कर्मभिः सचरितै         | ५००, ० ।  |
| ये कृता दशमीविदा          | ४८, ९९ ।  |
| योगाभ्यासो भवेद्यस्तु     | ९८०, १६ । |
| योगो मघानयोदश             | ६५८, ४ ।  |
| यो नर कार्तिके मासि       | ४५८, ९ ।  |
| यो माघमास्युपचि           | ४८१, १० । |
| योऽपि चाश्वयुज मास        | ६४९, १० । |
| योऽब्देमेक प्रकुर्वीत     | ५४९, ४ ।  |
| योऽब्देमेक न भुञ्जीत      | ४१, ८ ।   |
| यो मोहादथवालस्यात्        | ४०, ९ ।   |
| योऽर्चयेद्विधिवदुर्गा     | १०८, १९ । |
| यो वा सम्बर्द्धयेदेह      | ६५८, १५ । |
| योपिद्वि पूजित लिङ्ग      | ५६८, १ ।  |
| यः करोति नरो नित्य        | ४५८, ८ ।  |

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| य कुर्यात् कार्तिके मासि | ४४०, १० । |
| य चिपेदेकभक्तेन          | ५१०, १० । |
| य शुद्धेण समाहृतः        | ५६०, १० । |
| य शुद्धेणार्चित लिङ्ग    | ५६०, १८ । |
| य स्य गद्यपद्याभ्यां     | १००, ८ ।  |
| वा काश्चिन् सरित प्राप्य | ४४८, १६ । |

## २।

|                         |           |
|-------------------------|-----------|
| रत्नोद्द पुराणानि       | ४५, ५ ।   |
| रविचक्रार्द्धमावा च     | ४८, ११ ।  |
| रविषा लङ्घितो मासः      | ९९४, ५ ।  |
| रविसप्तमणे पुण्ये       | ९१४, ९ ।  |
| रवौ मकरराशिस्थे         | ५०९, १६ । |
| रवौ रौद्राशपादस्थे      | ९८४, १ ।  |
| रग्ना कशौ चङ्गिदा च     | ६०९, ० ।  |
| रग्नायां वर्ज्ययिता तु  | ९५, ४ ।   |
| रक्षकृतपापानि           | ५९४, १९ । |
| राजसूयाशमेधाभ्यां       | ६४८, १६ । |
| रावागुदद्मुखाः कुर्यात् | १९०, ५ ।  |
| रावावेव महादेवी         | ६६०, ० ।  |
| रावौ च जागरस्तव         | ६०१, १० । |
| रावौ चयोदर्शे प्राप्य   | ४९०, ११ । |
| रावौ दिवा च सन्ध्यायां  | ५१८, ८ ।  |
| रावौ सूर्यप्रद          | ८४, ० ।   |
| राममावाह्य सख्याय       | १५१, १८ । |
| राशदर्शनसम्मानि-        | ८६, १८ ।  |
|                         | ९१०, ८ ।  |
| राशदर्शनदत्त हि         | ८६, १५ ।  |



|                                  |                                   |           |
|----------------------------------|-----------------------------------|-----------|
| रोगाद्यागमवितनाशकलक्षाः ११५, ४ । | वसन्तारम्भमासाद्य-                | ५९०, ११ । |
| रोहिणी प्रतिपद्युक्ता ४८१, ७ ।   | वाञ्छद्भिः सर्वदा सङ्गिः ४५, ७ ।  |           |
| रोहिणीसहिता छण्या १९८, ११ ।      | वामतस्तु तथा धूप १९८, ११ ।        |           |
| रोहिणीसहिता चैत्रे १०७, १ ।      | वाममुष्टिधृताङ्गठा १५४, ४ ।       |           |
| रोहिण्यामर्द्धरात्रे च १०१, ४ ।  | वामा ज्येष्ठा ततो रौद्री १४१, १ । |           |

## ल ।

|                                     |                                    |  |
|-------------------------------------|------------------------------------|--|
| लक्ष्मीमध्यार्धं पञ्चम्यां १४, १८ । | वायुसुतायेत्यपि च ११८, ११ ।        |  |
| लम्बाद्रिका सती वृद्धिः ८९, ५ ।     | वारिषा तुष्यते देवी १५०, ११ ।      |  |
| लभ्यते यस्य तापस्तु १०१, १ ।        | वारिदानं प्रशस्तं स्नात् १५०, १४ । |  |
| लवणाव्यगुह्योपेत ५४१, ११ ।          | वायुणेन समायुक्ता १११, १० ।        |  |
| लवण मार्गशीर्षे तु ४८१, ५ ।         | ५१८, ११ ।                          |  |
| ललाटमुखदन्तादि- १८४, १ ।            | वास्तुप्रियैश्च निवेद्ये १८९, ५ ।  |  |
| लालामङ्गिष्ठमांसानि ५००, ११ ।       | वासवाजैकपादार्धे ५१४, ८ ।          |  |
| लिङ्गस्या पूजयेद्देवीं १०१, १ ।     | वास्तुदेवोऽभिप्रास्तु १११, ११ ।    |  |
| लिङ्गेषु च समक्षेषु ५००, ११ ।       | विदारोपापराक्षसो ४४१, ४ ।          |  |
| लोचिनाङ्गस्य दिवस ५५१, ८ ।          | विधवाकनरीबन्ध- ५०१, १ ।            |  |

## व ।

|                                      |  |  |
|--------------------------------------|--|--|
| वत्सरात्मगतं पाप- १११, ८ ।           | विधवा नाञ्जनं कुर्यात् १८८, १ ।        |  |
| वक्षस्य तु बीजेन १५८, ११ ।           | विधाय मूलमन्त्रेण ११४, ११ ।            |  |
| वर्णनयस्य शुश्रूषा ५१८, १४ ।         | विधिदत्तेन चाप्नोति १९१, ७ ।           |  |
| वर्णान् सविन्दूनुक्तादौ १११, १ ।     | विना निवेशं गन्धार्थ- १४५, ११ ।        |  |
| वर्णानुक्ता सार्धचन्द्रान् ११९, ११ । | विनैव शङ्खपूजा या १४१, १ ।             |  |
| वर्तमानमतीतस्य ५४४, ११ ।             | विपर्यस्तौ तल्लो हत्वा १५४, ८ ।        |  |
| वर्तमाने तुलामेधे १०५, १ ।           | विप्राणा वेदाविदुषा ५१८, १९ ।          |  |
| वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या १०१, १४ ।    | विप्रो यथास्त्राभमुपाकृतार्ध- १४१, ७ । |  |
| वर्षद्वये समाप्तिर्दि ११, १८ ।       | विमलौत्कर्षिणी ज्ञाना १४०, १० ।        |  |
| वसहृलविहीनन् १११, १५ ।               | वित्त्वपन्नादपि षडैः ११८, १० ।         |  |
|                                      | विश्वेन्द्रासने मन्त्री ११९, ११ ।      |  |

|                          |           |
|--------------------------|-----------|
| विषयापदशस्त्राणि         | १४८, १९ । |
| विषयेषु च यज्जगत्        | १४५, १९ । |
| विष्टि त्यक्ता च यज्जगत् | १८०, ६ ।  |
| विष्णोर्निवेदिताग्नेन    | १८०, १४ । |
| विष्णो गिरसि विन्यस्त    | १६०, ९ ।  |
| विषर्ज्ज्म दशम्यान्तु    | १६६, ९ ।  |
| विषर्ज्ज्मयति मानुषे     | १५८, ८ ।  |
| विषर्ज्ज्मेन परेद्युय    | ५०८, ९० । |
| बुधवारिण सयुक्ता         | १९०, १४ । |
| एतेषु दीपौ दातव्य-       | १०९, १ ।  |
| हते तुपारसमये            | ४११, ९९ । |
| एधिकस्ते सद्यसागौ        | ४८९, १६ । |
| एधिके श्रृङ्गापक्षस्य    | ४८२, १९ । |
| एधिके श्रृङ्गापक्षे तु   | ४८९, १९ । |
| एषएधिककुम्भेषु           | ९०४, १० । |
| एषसंक्रमणे दान           | ९५८, ९९ । |
| वेषुसुद्वेयसुदिता        | १५६, १ ।  |
| वेदीहीने विनाश स्यान्    | १८०, १ ।  |
| वैदिकस्तान्तिकी मित्र    | ११०, १० । |
| वैनाशिके ऋचो हृष्ट       | ८०, १९ ।  |
| वैशाखमासस्य तु या        | ९४६, १८ । |
| वैशाखे कार्तिके मासे     | ५०६, १८ । |
| वैशाखे पुष्यपक्षे        | ९४१, ११ । |
| वैशाखे मासि राजेन्द्र    | ९५१, ९ ।  |
| वैशाखे श्रृङ्गापक्षे     | ९५१, १९ । |
| वैशाखे श्रृङ्गापक्षे तु  | ९४६, ६ ।  |
|                          | ९५१, ५ ।  |
| वैशाख य. चिपिन्नास       | ९४१, ४ ।  |

|                         |              |
|-------------------------|--------------|
| वैशाखस्य दत्तीयायां     | ९१९, ८ ।     |
| वैशाखं यो षष्ठ पूर्ण    | ९४९, ९ ।     |
| वैशाखा पौर्णमास्यान्तु  | १५८, १०-१५ । |
| वैशाखशुद्धावधि प्राप्नो | ४०९, ८ ।     |
| वैश्वानर. प्रतिपदि      | ९८, ९ ।      |
| वत निशासुखे प्राप्ता    | ६६, ४ ।      |
| व्रतानि कार्तिके मध्ये  | ४५६, १९ ।    |
| व्रती प्रयोजयेदेवौ      | ९०८, ११ ।    |
| व्रतेन न चिपिन्नास      | ४५५, ५ ।     |
| व्रतोपवासनियमान्        | ५०८, १० ।    |
| व्रतोपवासनियमैः         | ४५६, १६ ।    |

## श ।

|                          |              |
|--------------------------|--------------|
| शक्तुपिण्डान् प्रदद्यात् | ९८९, १४ ।    |
| शक्तून् शर्करया मियान्   | ९४४, १८ ।    |
| शक्तेनापि हि श्रृङ्गेण   | ५०१, ९ ।     |
| शक्तध्वजनिपाताक          | ९४५, ४ ।     |
| शक्त चक्र-गदापद्म-       | १४१, १८ ।    |
| शक्त सूर्यनिनादिस्य      | ९००, १८ ।    |
| शक्त-मस्त्रेण सशोध्य     | १४४, ९ ।     |
| शक्तमस्त्राश्रुना, शक्ति | १६०, १० ।    |
| शतपत्राणि चान्           | ९५, ९ ।      |
| शतमिन्दुचये दान          | ९१०, ११ ।    |
|                          | १,१०१५४, ९ । |
| शमैश्वरदिने दत्त्वा      | ९९, ११ ।     |
| शब्दस्पर्शरूपरस          | १६५, ९ ।     |
| शमीपत्र हस्त्याय         | १८, ११ ।     |
| शयनीबोधनीमध्ये           | ४१, ६ ।      |

|                            |           |                              |           |
|----------------------------|-----------|------------------------------|-----------|
| शरद्वसन्तयोः केचित्        | ४५६, ८ ।  | शुक्लपत्रे चतुर्थ्यानु       | २१६, १८ । |
| शरीर शोधयेदादौ             | १९५, ९ ।  | शुक्लपत्रे चतुर्दश्या        | २२४, ७ ।  |
| शशिपुत्रसमायुक्ता          | ६८, १० ।  | शुक्लपत्रे तिथिर्षाष्ठा      | १६, १० ।  |
| शक्ताशक्तक्षतानाश्च        | ४०१, १६ । | शुक्लपत्रे तु सप्तम्या       | २५, १६ ।  |
| शाण वादरजं बालं            | १०९, १२ । | शुक्लपत्रे नवं धान्य         | ४५९, १० । |
|                            | २८७, ९ ।  | शुक्ता गृहस्थैः कर्तव्या     | ४७, ८ ।   |
| शालग्रामशिलानोर्यं         | ५२८, २ ।  | शुक्ताकारकस्युक्ता           | २९, ५ ।   |
| शालग्रामशिला यत्र          | ५४०, १० । | शुक्तायां माघमासस्य          | ५०९, ६ ।  |
| शालग्रामशिलायाश्च          | ५२७, ७ ।  | शुक्ताष्टम्यां पुनर्देवी     | ५०९ १८ ।  |
| शालग्रामशिलायानु           | ५४०, ११ । | शुक्ताष्टम्यानु माघस्य       | ५०९, २ ।  |
|                            | ५४१, ५ ।  | शुचिः सम्भृतसम्भारः          | ११८, ९ ।  |
| शालग्रामशिलायाश्च          | ५२८, १६ । | शुचिः सम्भुज आसीन            | ११८, १० । |
| शालग्रामसमीपे तु           | ५४१, १५ । | शुचिस्तृप्त्युत्पु           | ५६८, २१ । |
| शालग्रामे मणौ यन्त्रे      | १४६, ८ ।  | शुद्धः शुद्धैश्च द्रव्यैस्तु | १२५, ६ ।  |
| शालग्रामे स्थावरे च        | १५२, १० । | शुक्लेन दद्यात् कन्या        | ५०५, १२ । |
| शिवीबाली कुड्मार्पि        | १०, १ ।   | शुक्लेन ये प्रयच्छन्ति       | ५०४, २१ । |
| शिरौषसम्भव ब्रह्मं         | २८२, १४ । | शुद्धस्य द्विजशुभ्रा         | ५००, ११ । |
| शिवरात्रिमत वक्ष्ये        | ५१९, १९ । | शुद्धाणां मासिकं कार्यं      | ५०२, १९ । |
| शिवो घोरा तथा प्रेता       | ७५, ८ ।   | शुद्धांशं शुद्धसम्पर्कं      | ५६७, १९ । |
|                            | २६१, १० । | शुद्धे चैव भवेत्तु           | ५०२, १८ । |
| वर्षनयस्य शुभ्रुषा         | २०, १४ ।  | शुद्धो वानुपनीतो वा          | ५६८, २ ।  |
| वर्षान् सविन्दुनुक्तादौ    | १९९, १९ । | शेष यथा तत्र स्वर्य-         | १४८, १५ । |
| वर्षानुक्ता सार्धचन्द्रान् | ६४, १ ।   | शौचासमनदीमस्य                | १२५, ८ ।  |
| वर्षमानमतीतस्य             | ४८६, ५ ।  | शौच ब्राह्मणशुभ्रुषा         | ५६८, ६ ।  |
| वर्षमाने तुलानेपे क        | ४८६, ८ ।  | श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने     | १५, १६ ।  |
| वर्षा कर्पूरगर्भिणि        | ४४१, ११ । | श्राद्ध तेनापि कर्तव्य       | २५६, ८ ।  |
| वर्षद्वये समार्षिण्ये      | २२६, १६ । | श्रवणादित्रयं स्नाती         | १०८, ११ । |
| वस्त्रद्रव्यसमस्या         | २५, १२ ।  | श्रवणेन समायुक्ता            | २१०, १२ । |

|                      |           |                          |           |
|----------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| यवणी दौर्गन्धमी      | १८१, १५ । | सन्ध्याकाले यदा राज      | १०९, १९ । |
| वीगुण्य सदेशानि      | १४८, ४ ।  | सन्ध्यागर्जितनिर्घात     | ५१९, ११ । |
| वीरामतोपणी प्रीक्षा  | ५९५, ० ।  | सन्ध्यारात्रौर्ध्व कर्णय | ८०, १९ ।  |
| योच लघुपुत्री जिह्वा | १९९, ० ।  | सविष्ठीकरणे चैव          | ९९४, ९ ।  |

### प ।

|                             |           |                           |           |
|-----------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| पद्मैतिमुत्प्रेतौवे         | १०९, १५ । | सप्तधावर्तन कुन्दा        | ५४८, ० ।  |
| पद्मिस्तौर्ध्वसद्वर्णि      | ४८४, ४ ।  | सप्तपदान् सप्तपदान्       | ५२४, १४ । |
| पट्काष्ठके वाप्यय सप्तमे वा | ८०, १८ ।  | सप्तमी नाष्टमीगुणा        | ९०, ११ ।  |
| पष्मासात् सिद्धिमाप्नोति    | १०९, ९ ।  | सप्तम्या तेन सा म्याता    | ४८९, ९ ।  |
| पद्मीमुपीय य सम्यक्         | २९, ११ ।  | सप्तम्या नक्तमुक् दद्यात् | ९०, ८ ।   |
| पद्मोसनेता कर्णया           | ९, ११ ।   | सप्तम्या पनिकापूजा        | ९९८, १४ । |
| पट्टाष्टम्यमावस्या          | ४, १९ ।   | सप्तम्या विष्णुशाखानां    | ९९५, १८ । |
| पट्टाष्टमी पञ्चदशी          | ८४, १९ ।  | सप्तम्या मृगमन्त्रिण      | ८०, १० ।  |
| पट्टा तु दिवसैर्मास         | १९०, १८ । | सप्तम्याप्युत सम्यक्      | ९८९, १४ । |
| पट्टा तेनमनायुषं            | ८४, १८ ।  | सप्तमेन भवेदक्ष           | १८०, ८ ।  |
| पट्टा यो नियतो भूत्वा       | ९०, ९ ।   | सम्यक् संपूजित पुत्री     | १५९, ८ ।  |
| पट्टा विष्वक्पटौ बोध        | ९९०, ९ ।  | सम्यक् सम्यादिता पूजा     | १५०, ५ ।  |
| पट्टां साय प्रकुर्वीत       | ९०१, ९ ।  |                           | ९८४, ९ ।  |
| पट्टेकादशमावास्या           | ९०, ९ ।   | समा यावद्भवेद्यद्वा       | ८९, १९ ।  |
| पौड्म्योद्वासन कुर्यात्     | ९०१, १ ।  | समुद्रे विमवत्पात्रे      | ५१८, १९ । |

### स ।

|                            |           |                       |           |
|----------------------------|-----------|-----------------------|-----------|
| सकलीकरणं पद्यात्           | १५१, ९ ।  | सम्यक् संपूजित पुत्री | १५९, ८ ।  |
| सकलीकृत्य तत्प्राणान्      | १५१, ११ । | सम्यक् सम्यादिता पूजा | १५०, ५ ।  |
| सखे स्वातोऽसि तस्यां त्व   | ९४०, ११ । |                       | ९८४, ९ ।  |
| सह्यापूर्त्तौ पुन कुर्यात् | १०९, ८ ।  | समा यावद्भवेद्यद्वा   | ८९, १९ ।  |
| सत्य दमस्तथा दान           | ५०९, १० । | समुद्रे विमवत्पात्रे  | ५१८, १९ । |
| सद्यो दशविधे पापे          | ९८९, ९ ।  | सम्यक् संपूजित पुत्री | १५९, ८ ।  |

|                           |           |  |           |
|---------------------------|-----------|--|-----------|
| सर्वपिण्डौ श्याम्रचर्म    | ११८, १ ।  | सुवर्णशृङ्गी कपिला                     | ११, १८ ।  |
| सर्वस्नेनापि कर्मण्य      | ८१, ५ ।   | सुरभीणि तथान्यानि                      | १६६, १४ । |
| सर्वात्मसयोगपथात्         | १४०, ११ । | सुवर्णतिलशुक्लैश्च                     | १५८, ११ । |
| सर्वाणि परकीयाणि          | ११८, १५ । | सुशिक्ष. शब्दरहित.                     | १०१, ११ । |
| सर्वाश्रमाणा सामान्य      | ४५, १ ।   | सुपुत्रावर्तनायानं                     | १११, ११ । |
| सर्वेषामेव वर्णाणां       | १००, १० । | सुपुत्राभ्यग सम्यक्                    | १८१, १६ । |
| सर्वेषामेव मन्त्राणां     | १४०, ० ।  | सूतके सूतके चैव                        | ८८, ११ ।  |
| सर्वेषु गन्धजातेषु        | १६१, १८ । | सूतकेऽपि नर सत्त्वा                    | ५८, १८ ।  |
| सर्वेषां कारकाणां         | ११०, ११ । | सूतिकावासनिलया                         | ५४४, ६ ।  |
| सर्वैस्तु जन्मदिवसे       | ५६०, ४ ।  | सूर्यपद. सूर्यवारे                     | १११, १५ । |
| सर्वर्णभ्यो जलं दैवं      | ५०१, ११ । | सूर्यपदश्चतुष्टा चि १०, १८ । ४८८, १० । |           |
| सद्य सद्यश्च              | ११८, १८ । | सूर्यपदे तु मास्त्रीयात्               | १०६, १८ । |
| सद्यस्योजनस्योऽपि         | ५१४, ८ ।  | सूर्येन्दुवक्त्रिण                     | १४०, ८ ।  |
| सहितौ यव दृश्येते         | ७८, १ ।   | सूर्योस्ते नवनाडीषु                    | ७४, ११ ।  |
| सा तिथिस्तद्वहोरात्रं     | १६, ६-८ । | सूर्योदये विपुवत                       | १११, १८ । |
| सामसुरज्ञाय जितेन्द्रियाय | ११, ५ ।   | सेवेत भर्षुषष्टि                       | ५००, ११ । |
| सामान्येनार्धपात्रेण      | १४८, ११ । | सोपवासो निगार्धे तु                    | १०८, ११ । |
| सावित्रीमर्षयित्वा तु     | १६१, १ ।  | सौवर्णं राजत ताव                       | १८०, ४ ।  |
| सा वैशाखस्यामावस्या       | ११८, १० । | सौवीर माघन तथ                          | १८०, १५ । |
| सायमाश्वनयोरङ्गौ          | ६५, ११ ।  | सौरसंवत्सरस्यान्ते ११०, ११ । १४०, ० ।  |           |
| सायाऋतिसुहर्षतः स्यात्    | १८, १ ।   | सौरस्याब्दस्तु मानेन                   | ११०, ११ । |
| सायप्रातर्मनुष्याणां      | ६५, ८ ।   | संकटे विषसे प्राप्ते                   | ६१, ११ ।  |
| सायंसन्ध्या पराश्रम       | ८०, १ ।   | सक्रान्ते पूर्वकास्तु                  | १००, ८ ।  |
| सार्धैश्चक्षुशं यावत्     | ५११, ११ । | सक्रान्तौ रविवारे च ५८, ६, १०१, १ ।    |           |
| सिद्ध्याग्रनरान् दत्त्वा  | १६६, ११ । | सक्रान्त्या कृष्णपक्षे च               | ४६, ८ ।   |
| सिद्धस्य सरभस्याय         | १८५, ११ । | सक्रान्त्या पञ्चयोरन्ते                | ११४ ११ ।  |
| सुगन्धसुसनीधूप-           | १५६, ११ । | सक्रान्त्या यानि दत्तानि               | १११, १८ । |
| सुप्त. सक्रमवे भानुः      | १११, ८ ।  |  | १४५, ११ । |

|                              |                    |                             |           |
|------------------------------|--------------------|-----------------------------|-----------|
| सक्रान्त्यामुपवासश्च         | ४६, १४ ।           | स्वधापदेन दद्याच्च          | ४८४, १८ । |
| सक्रान्त्यामुपवासेन          | ४६, ११ ।           | स्वधेत्याचमनीयन्तु          | १५८, १ ।  |
| सक्रान्त्या पञ्चदश्याश्च     | ८०, ५ ।            | स्वर्गभारसङ्घर्षेण          | ४८४, १० । |
| सक्रान्ते पुण्यकालेषु        | ८५, १ ।            | स्वधामन्त्रेण यदने          | ४८४, १० । |
| सक्रान्तिषु च सध्यांसु       | ५३६, १५ ।          | स्वर्धुन्यग्म समानि स्यु    | ८९, १५ ।  |
| सद्युष्य तुलसीकाष्ठं         | १६९, १५ ।          | स्वर्भानुना चोपगृष्टे       | ११०, ८ ।  |
| सप्रेषण दशम्यान्तु           | ४६८, १६ ।          | स्वय वा धात्युपैष्यां       | ४०९, १८ । |
| सथोश्च ब्रह्मरन्ध्रे         | १५१, ४ ।           | स्वय विगीर्यांकुसुम         | १६४, १२ । |
| सवत्सरफल प्रोक्त             | ५३६, १० ।          | स्वस्तिकादिक्मेष्टेव        | ११८, १० । |
| सवत्सरे यदा वर्षे            | ७८, १० ।           | स्वस्ते नरे सुयामिने        | १०५, ८ ।  |
| सवत्सरश्च प्रथम              | ८०, ४ ।            | स्वादूपदश विमल              | १००, १ ।  |
| स्त्रीतैलमाससभोगो            | ११६, १० ।          | ह ।                         |           |
| स्नात्वा जन्मदिने            | ५६१, ४ ।           | हयमेधयते दद्यात्            | १८०, ८ ।  |
| स्नात्वा भुक्त्वा य उच्छिष्ट | ५०१, १२ ।          | हरिषा दीयते तास्त्री        | ४१०, १८ । |
| स्नानीय वसन पुण्य            | १५८, १ ।           | हरिषा सक्तता ये तु          | १०४, १० । |
| स्नाने जपे तथा दाने          | १०८, १० ।          | हविष्यभोजन यान              | ५०, १६ ।  |
| स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये    | १०४, ४ ।           | हस्तगतैरभ्युज्ज्व्यो        | ४५०, ४ ।  |
| स्नानीपवासनियमे              | १९, १० ।           | हस्तर्चे श्रद्धाप्रमया      | ४६, ५ ।   |
| स्नान कुर्ष्वन्ति या नार्यं  | ५१०, ४ ।           | हस्तायुक्ते सौरदिने         | ५४९, १० । |
| स्नान कृत्वा तु ये केचित्    | १६६, ४ ।           | शान्तादि-नक्षत्रीयेन        | ४४४, ४ ।  |
| स्नान दान जपो होमः           | ८, १४ । २५, ८ ।    | हृदये नतिः शिरसि            | १९८, ९ ।  |
| स्नान दान जप श्राद्ध         | ८१, १० । १०८, ११ । | हृदयाय नम पूष्यं            | १२६, २६ । |
| स्नान दान तपो जप             | ५२२, ४ ।           | हृदि सृङ्गि शिखायाश्च       | १०८, ७ ।  |
| सुष्टा स्वर्गमवाप्नोति       | ५२५, १० ।          | होमश्च सतिलैराश्वे          | ४४४, ११ । |
| सवत्यनोद्धृत पूष्यं          | १०६, ११ ।          | हर्षे सर्पांसु कन्यास्ते    | २४६, ८ ।  |
| स्मर्यते श्रद्धाभागे तु      | ११८, १८ ।          | श्रामित्युक्ता ततो श्नीन्तु | ५४९, १४ । |



# वर्षक्रियाकौमुदी ।



ः ॥

श्रीश्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

१.] त्रयोदश्या  
युग्मताभिधा-

चिन्ताश्रीयति धातरि व्रजवधूचित्तेषु पाश्रीयति । १[द्वतीया-]  
श्रीराजि स्तुवति प्रसादविहितश्यामाखुजनीयति शेषः, उपोष्या  
यन्नेचाञ्चलजातरौ जलधिजावक्त्राखुजेऽलौयति धिक्कृत्याभिधा-  
चौणीभारहराय यादवकुलोत्तमाय तस्मै नमः ॥ ११र्थमेव “उत्त-  
धुनोतु ध्वान्तमस्माकमन्तस्विन्ताभिसम्भृतम् । श्यादयः ।

गोविन्दवदनोदञ्चत्पाञ्चजन्यजयध्वनिः ॥ २ ॥

येन ज्योतिषपङ्कजेषु नितरां मार्त्तण्डविम्बायितं ॥

श्रीगोविन्दपदारविन्दयुगले लीलामरालायितम् ॥

वेदान्तसूतिसंतिचिपयगोन्मेषे हिमाद्रौयितं सयोगान्तिथयः  
केषा नो परिशालितो गणपतिर्भट्टः सतां दृग्विधिविधानमनर्थकं  
तत्तनुजन्मा विदुषामसुरागमधूलिकाभिरासिक्तः । व्रते तु रात्रौ  
मधुरिपुपदारविन्दश्रद्धामृतमाधुरौरसाभिज्ञ ॥ ४ ॥

श्रालोच्याखिलसद्यहानविकलं दृष्ट्वा पुराणान्यपि

प्रोक्ताः सम्यगथो विविच्य मुनिभिर्मन्वादिभिः सं ।

श्रीमत्तातपदारविन्दविलसद्भूलिभरोद्देशतः

श्रीगोविन्दकविः करोति ललितां वर्षक्रियाकौमुदीम्



वर्षाक्षयाकौमुदी ।

वत्सरकृत्ये निरूपणीये प्रायशः कर्माधिकरणतया  
तिथीनां प्राधान्यात् प्रथमं तावन्तिथिस्वरूपनिरूपण-  
युक्तभागा निरूप्यन्ते ।

ह्यसुक्तं सूर्यसिद्धान्ते,—

।दिनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी ।

।गैर्द्वादशभिस्तत्स्थान्तिथिश्चान्द्रमसं दिनम् ॥

द्रयानमशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ।

न्तचणे सूर्याचन्द्रमसोः सहावस्थाननियमः, प्रतिपदा-  
नेर्गतः सन् शशी प्रत्यहमर्कात् प्राचीं दिशं प्रयाति  
स्य प्रयाणं द्वादशभिरंशैः परिमितं तिथिरेका ज्ञेया ।  
तेनार्कमवधिं कृत्वा द्वादशांशपर्यन्तं चन्द्रस्य प्रयाणं  
: तिथिः स्यादित्यर्थः ।

द्वादशांशप्रयाणं कदाचित् समगत्या षष्टिभिर्दण्डैः

।। किञ्चिदधिकैः कदाचित् शीघ्रगत्या किञ्चि-  
एवं त्रिंशद्वादशांशप्रयाणे त्रिंशन्तिथयः स्युः पुनरपि  
स्थानमिति । तासाञ्च त्रिंशन्तिथीनां यथाक्रमं प्रति-  
: ।

शद्वादशांशैः सूर्याचन्द्रमसोः षड्भाष्यन्तरं भवति,  
दिपौर्णमास्यन्तः शुक्लः पक्षः, शेषैस्तु प्रतिपदादि-  
पक्षः । शुक्लपक्षे प्रत्यहं चन्द्रस्य कलावृद्धिः कृष्णे  
।चक्षयेन चान्यो मासो मुख्यो ज्ञातव्यः ।

१, - [ ] - चिह्नितपादद्वयं नास्ति ।

-यावत्कालेन ।

तेनार्कान् खनिर्गमकालमारभ्य चन्द्रस्य प्रतिदार ।

कालस्तिथिरिति लक्षणं सम्बन्धम् ॥ १

अन्ये तु चन्द्रस्य प्रत्येककालानां वृद्धिचयकार  
वदन्ति । तन्मन्दं, चयवृद्धोर्दयोरननुगमकत्वे<sup>१</sup> नः ॥

अवेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्ट इति, त्रयोदश्या  
परिशिष्टवचने तिथिद्वये एककलाचयप्रतिपादनाच्च । युग्मताभिधा-

तत्र यस्या तिथौ यत्कर्म विहितं सा तिथिर्यस्मि<sup>२</sup> [द्वितीया-]

“पूर्वाह्णे वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणामपराह्णेऽपः, उपोष्याः  
मित्यादिश्रुतिभिः, तथा पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवताधिकृत्याभिधा-  
मित्यादिस्रुतिभिश्च” यथायथं विहितेषु दिवा<sup>३</sup> [पृथक्मेव “उत्त-  
पराह्णरात्रिकालेषु लभ्यते, तत्र काले तस्मिन् दिव्यादयः ।

कर्मानुष्ठानमशक्यमेव ।

यदा त्वेका तिथिर्दिनद्वये कर्मयोग्या विहितत्वा ।

लभ्यते वा तदा कदा कर्मानुष्ठानमिति शक्ये ॥

व्यवस्थामाह गृह्यपरिशिष्टम्,—

धिसयोगान्तिथयः

युग्माश्रितभृतानि षण्मुन्योर्वसुरग्रयोः । षड्विधानमनर्थक  
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या पूर्णि, रात्रिर्वते तु रात्रौ  
प्रतिपदाप्यभावस्या तिथ्योर्युग्मं महा-

एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुनः

युग्माग्नीति द्वितीयाद्वितीये कृतभृतानि चतुर्दशी ।

१ “ख” अनुगमकत्वे ।

स्त ।

२ “ग” पुस्तके [ ] चिह्नितसन्दर्भो नास्ति ।



नागविद्धा च या षष्ठी सप्तम्या च तथाष्टमी ।

दशम्यैकादशी विद्धा १[त्रयोदशा चतुर्दशी ।

भूतविद्धाप्यमावस्या न याच्या मुनिपुङ्गवैः ।

उत्तरोत्तरविद्धास्ताः कर्त्तव्याः काठकी श्रुतिः ॥

चतुर्दश्यत्र शुक्ला पूर्ववचनात्, नागतिथिः पञ्चमी,] त्रयोदशा चतुर्दशीति शुक्लपक्षविषय कृष्णपक्षे तयोः पूर्ववचने युग्मताभिधानात् । भूततिथिश्चतुर्दशी । तत्र प्रतिपद्विद्धा द्वितीया १[द्वितीया-] विद्धा चतुर्थ्यपि बोद्धव्या । न याच्येति दैवकर्मणीति शेषः, उपोष्याः स्युरित्यभिधानात् पूर्वोक्तवचनानामपि दैवकृत्यमधिकृत्याभिधानाच्च । अतएव नोपवासमात्रविषयमिदं वचनं, एतदर्थमेव “उत्तरोत्तरविद्धास्ताः कर्त्तव्याः” इति पुनरुक्तम् । ताः षष्ठ्यादयः ।

तथा व्यक्तमाह जावास्त्रिः,—

अहःसु तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा ।

नक्तादित्रययोगे तु रात्रियोगो विग्नियते ॥

दिवा दैवकर्मानुष्ठानेऽहःसु मध्ये युग्मतिथिसयोगान्तिथयः पुण्याः प्रशस्ताः स्युः, अन्यथाहर्विहिते कर्माण्यहर्विधानमनर्थक स्यात् । नक्तादिः प्रदोषः निशाभात्रोपलक्षणं रात्रित्रये तु रात्रौ युग्मतिथिसयोगो विग्नियत इत्यर्थः ।

शिवरहस्ये,—

अष्टम्यैकादशी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी ।

१ “ख” पुस्तके [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

२ [ ] चिह्निताशो “ग” पुस्तके नास्ति ।

कर्त्तव्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्व्वेण मिश्रिताः ॥

एतानि तु वचनानि व्रतादावुभयदिने विहितकाललाभे संशय एव । असंशये तु यद्दिने विहितकाले तिथिलाभस्तस्मिन्नेवेति प्रागुक्तं । यत्र तु षट्पञ्चमीव्रतादौ लक्ष्म्यादिपूजन प्रधानं तदङ्गत्वेनोपवास-विधिस्तत्र यस्मिन् दिने पूजनं तत्रैवोपवासो निर्विवाद एव ।

यत्र तु रामनवम्यादावुपवासो देवपूजनञ्च प्राधान्येन द्वयं विहितं तत्रोपवासस्याहोरात्रसाध्यत्वात् <sup>१</sup>[यद्दिने रात्रावपि युग्म-तिथियोगस्तत्रैवोपवासस्तत्तिथिविहितं पूजादिकन्तु व्यस्ततिथावपि तत्परदिने पूर्वाह्णे एव संशयाभावेन युग्मवचनस्याविषयत्वा]दिति व्यक्तमुक्तम् भविष्ये,—

षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता ।

यतः सोपासनायेह षष्ठ्यामाहुस्त्वपोषणम् ॥

एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः ।

उपासनाय द्वादश्यां विष्णोर्यददियं तथा ॥

सप्तम्यामुपवासः सूर्य्यपूजनञ्च विहितं तत्र पूर्व्वदिने युग्मतालु-रोधात् रात्रिमात्रयोगेऽपि षष्ठीयुक्तैव सप्तम्युपोष्या न तु परदिने सकलदिनव्यापिन्यष्टमीयुक्ता सप्तमी, यतः साष्टमीयुक्ता सप्तमी सूर्य्यस्योपासनाथार्चनाय भवति तत्रैव पूर्वाह्णे सप्तमीलाभात्,<sup>१</sup> पूर्वाह्णे एव दैवकृत्यविधानात् संशयाभावात्, संशये हि युग्म-

१ क., ख., चिह्नितपुस्तकद्वये [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

२ ग., पुस्तके । सप्तमीलाभादिति पाठो नास्ति ।

वचनप्रवृत्तिः । उपवासन्त्वहोरात्रमाध्यत्वादुभयदिनमगच्छे पष्ठ्यां पष्ठी-  
युक्तायां सप्तम्यां पूर्वदिनेषु युग्मादरान्मुनय आहुः ।

अत्र यद्यपि सप्तम्यामुपवासः श्रूयते तथापि सप्तमीपदस्य  
स्वसम्बन्धहोरात्रोपलक्षकता वचनात्, अन्यथा, अहोरात्राभोजन  
एवोपवासपदस्य शक्तत्वाद्दार्पिकसप्तम्यादिप्रतन्नोपापत्तिः, न खलु  
विच्छेदेन द्वादशसप्तमीमहोरात्रव्यापिता सम्भवति ।

एकादश्यामिति यथा द्वादशीप्रते द्वादश्यामुपवासो विष्णुपूजा  
च विहिता तत्रैकादशीयुक्ताया द्वादश्या युग्मादरात्<sup>१</sup> पूर्वदिने  
उपवासं कुर्वन्ति, परदिनन्तु द्वादश्यां विष्णुपूजनाय तत्रैव  
पूर्वाह्णलाभात्, तथेयमपि सप्तमीत्यर्थः ।

यदोभयदिने पूर्वाह्णलाभस्तदा पूजापि तत्रैव युग्मादरेणैवेति  
ध्येयम् ॥

एवञ्च यत्रैकस्मिन् दिने विहितकाले तिथिः साङ्गकर्मांश्च  
अन्यदिने विहितकाले किञ्चिदवस्थानात् साङ्गकर्मान्दर्शं, तत्र  
साङ्गकर्मांश्चैवस्ततिथेरपि ग्रहणं सगत्याभावेन युग्मवचनाविषयत्वात् ।  
विधिना तु साङ्गप्रधानकर्मगोचरतयैव तिथिर्विधीयते तदन्दर्श-  
यास्तु विधेरेवाप्रवृत्तिः कुत सशयः ।

न चानेनैव युग्मवचनेनान्यतिथिसहायभावेन विहिततिथौ  
कर्मं विधीयते, अतएव काले खलु समारम्भकालेऽपि समापये-  
दिति वचनमिति वाच्यं । विहिततिथौ साङ्गकर्माणि कृते कर्मा-  
वेगुण्यप्रसङ्गात् अन्यतिथिसहायभावेनैव विधानात् ।

१ “ख” चिह्नितपुस्तके युग्मतादरात् ।

अन्ये तु, द्वयमेव विधीयते एकोऽन्यतिथिनिरपेक्षतया द्विखण्डतानिमित्तेन विहिततिथेर्नियमेन विधिः अन्यस्तु तिथ्यन्तरसम्बलिततया विहिततिथिरिति वदन्ति । तदयुक्तं, 'प्रमाणाभावात् विधिद्वयगौरवाच्च, एकस्मिन् वाक्ये विधिनियमयोरश्रद्धेयत्वाच्च ॥

वस्तुतस्तु नेदं विधायकं युग्मवचनं किन्तु विधिप्राप्तायास्तिथेर्द्विखण्डतानिमित्तेन नियमविधायकं विधिसु साङ्गप्रधानकर्मा-र्हायामेवेति ।

काले खल्वितिवचनस्य अयमर्थः विहिततिथौ कर्मानुष्ठाने पूर्वार्द्धादिप्रश्नस्तकाले कर्मारभ्य तद्वहिरप्रश्नस्तकालेऽपि कर्म समापयेत् न त्वन्यतिथेः कर्माण्यन्यतिथौ<sup>१</sup> तद्विधिविरोधादिति ।

एवं नक्षत्रस्याप्येकदिनसम्बन्धे तद्दिन एव दिनद्वयसम्बन्धे तु सन्देहे स्नानादौ युग्मविधिः । उपवासे तु,—

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।

तत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह ॥

इति 'विष्णुधर्मवचनात्, रात्रिसम्बन्धेन व्यवस्था रात्रौ नक्षत्रस्य वीर्यवत्त्वात् ।

यत्र तु विशेषोऽस्ति तत्र व्यस्तापि तिथिर्ग्राह्या विशेषानुरोधादेव संशयाभावात् ।

अग्निपुराणे,—

नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी ।

दशम्यैकादशी विद्धा कुर्वन् जह्यात् पुराफलम् ॥

दशम्यैकादशी यत्र नोपोऽया सा भवेत्तिथिः ।

श्रवणेन तु संयुक्ता सा शुभा सर्वकामदा ॥

शिवतिथिरष्टमी । अत्र <sup>१</sup>श्रवणयोगो विगेषः तदनुरोधाश्रित-  
तिथेरपि ग्रहणम् । यदा त्वभयदिने श्रवणयोगस्तदा पुष्पा-  
दरेणैव व्यवस्था ।

तथा वारयुक्तितथौ संग्रहाभावात् व्यस्तेऽपि कर्मांतुष्ठानम् ।

यथा देवीपुराणे,—

यदा शुक्लचतुर्थ्यान्तु वारो भौमस्य वै भवेत् ।

तदा सा सुखदा ज्ञेया सुखा नामेति कीर्तिता ॥

ज्ञानदानादिक कर्मा सर्वमचयमुच्यते ।

आदिपुराणे,—

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदाद्वित्यदिन भवेत् ।

सप्तमी विजया नाम तत्र दानं महाफलम् ॥

ज्ञानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च ।

सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥

भविष्ये,—

अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी ।

चतुर्थी भौमवारेण अक्षयादपि चाक्षया ॥

अमावस्यां यदा वारो भवेद्भूमिसुतस्य च ।

गोसहस्रफलं दद्यात् ज्ञानमात्रेण जाह्नवी ॥

१ ग,, पुस्तके, श्रवणयोगविशेषः ।

२ “ख ग” पुस्तकद्वये, दत्तं ।



शिनीवाली कुह्वापि यदि सोमदिने भवेत् ।

गोसहस्रफलं दद्यात् स्नानं यन्मौनिना कृतम् ॥

शिनीवाली चतुर्दशीयुक्ता अमावस्या व्यस्तापि प्रशस्ता इत्यर्थः ।

प्रश्यात उत्थानमारभ्य मौनिना सतेत्यर्थः । अन्यथा वैयर्थ्यात् सर्वदैव स्नाने मौनविधानादिति ।

एवं बुधाष्टमीव्रताद्यपि ज्ञेयम् ।

वचनात्तु कचिद्व्यस्ततिथेरपि ग्रहणम् ॥

यथा भविष्ये,—

कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी ।

तथा, अलाभे रोहिणीभस्य कार्याष्टम्यस्तगामिनीत्यादि विशेषो वक्ष्यते ।

देवीपुराणे,—

युगाद्या वर्षद्विष्व सप्तमी पार्व्वतीप्रिया ।

रवेरुदयमीचन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥

एवं माघसप्तमीविहितं स्नानपूजादिकं यस्मिन् दिने अरुणोदयवेक्षायां सप्तमी तत्रैव कार्यं नात्र युग्मवचनावकाशः ।

यथा भविष्ये,—

सूर्य्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी ।

अरुणोदयवेक्षायां तस्यां स्नान महाफलम् ॥

अत्र यदा एकस्मिन् दिने रात्रिशेषे सप्तमी तत्रैव परदिन-मभिव्याप्य तत्परदिनेऽपि किञ्चिद्दृढते, तदा अरुणोदयवेक्षायां

दिनद्वये प्राप्तौ युग्मादरेण व्यवस्येति केचित् । तत्र, तिथिद्वयस्यैक-  
दिनसम्बन्धेनैव अयुगमत्वं व्यस्तत्वं चावश्यं वाच्यं अन्यथा त्रिययुग्मा-  
व्यवस्था च भवति । दिनव्यवहारस्तु सूर्यादयात् परएव । तदुक्तं  
सूर्यसिद्धान्ते ।

उदयादुदयं यावत् सावनाष्टः प्रकीर्त्तितमिति ।

ततश्चारुणोदयवेला पूर्वदिनस्यैव तत्र च वर्त्तमाना सप्तमी सम्पूर्णा  
परदिने किञ्चिदिनिर्गताया एव सप्तम्या व्यस्तत्वं । एवञ्च सप्तपूर्णायां  
तिथौ निःसंगयानुष्ठानात् युग्मवचनाप्रवृत्तेः परदिनारुणोदयवेला-  
यामपि छानादिकं स्यात् ।

न च पूर्णतिथेरपि युग्म प्रगप्त त्रियोर्युग्म सहाफलमिति  
वचनादिति वाच्य, व्यस्ततिथ्यपेक्षयैव युग्मतिथेः प्रागस्त्यकथनात्  
तदेकवाक्यत्वात्, व्यस्ततिथिनिन्दा हि युग्मतिथिप्रगमायां ।

अतएव भविष्ये,—

षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमीत्युक्ता, 'नाष्टमीयुतेत्युक्तं । न चात्र  
व्यस्ततिथिनिषेधो विधीयते व्यस्ततिथेः शास्त्रतोऽप्राप्ते वाक्यभेदा-  
पत्तेर<sup>१</sup> नापि पर्युदासः युग्मतिथेर्विगोचरेण पर्युदासामभावात् ।

सामान्यप्राप्तौ हि पर्युदासः, तस्मात् युग्मतिथिविधेरर्थप्राप्तं  
निषेधमनूद्य व्यस्ततिथिनिन्दा तदपेक्षया युग्मतिथिप्रगमायां,  
अन्यथा षष्टिदण्डात्मिकां पूर्णां तिथिं विहाय परदिने किञ्चि-  
न्निर्गताया युग्मवचनात् व्रतादिकं प्रसज्येत ।

१ क., पुस्तके, नाष्टमीयुक्त ।

२ ग., पुस्तके • मेदापतिथि ।

वस्तुतस्तु एवमुभयदिने विशेषाभावादरुणोदयवेलायां यद्यपि  
स्नानदानादिकमायाति तथापि कपालाधिकरणन्यायेन प्रथमोप-  
स्थितस्यैव ग्रहणात् परदिनारुणोदयवेलायां स्नानादिकमशास्त्रीयं  
किन्तु पूर्वदिन एव प्रतीमः ।

एवमपराहविहितव्रतेऽपि दिनद्वयापराह्णे तिथिप्राप्तौ युग्म-  
वचनाद्भवत्या ।

रात्रिब्रतेतत्सम्बन्धात् विशेषमाह बोधायनः ।

उदयेतृपवासस्य नक्षत्रास्तमये तिथिः ।

मध्याह्नव्यापिनी शास्त्रा एकभक्तव्रते तिथिः ॥

दिनद्वयेतत्सम्बन्धे युग्मादरेण व्यवस्था ।

एकभक्तव्रते मध्याह्नविहितैकभक्तनियम इत्यर्थः । उदये  
तृपवासस्येति पूर्वदिने किञ्चिन्मात्रव्यस्ततिथियोगः ततः पूर्ण-  
तिथिलाभः परदिने तु किञ्चिन्मात्रतिथिलाभस्तथापि पर-  
दिन एवोदयगामिन्यामुपवासो युग्मादरान्नतु व्यस्ततिथियुक्तायां  
पूर्णायां ।

तथा भविष्ये,—

स्नानोपवासनियमे घटिकैकापि चेद्भवेत् ।

सा तिथिः सफला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी ॥

घटिकाद्वै चिभागं वा शल्यो दूषयते तिथिं ।

पञ्चगव्यघटं पूर्णं सुराया विन्दुको यथा ॥

यत्र तु षष्टिदण्डात्मिका पूर्णा तिथिः परदिने च किञ्चि-  
न्निर्गता न तत्र युग्मादरः किन्तु पूर्णायामेवोपवासः ।

यथाह परागरः ।

त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु सैव पूज्या सदा तिथिः ।

न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवासरात् ॥

दिवारात्र्योः सन्धिः सन्ध्या, तासु तिसृषु सन्ध्यासु उदये  
ऽस्तकाले परदिनोदयकाले च वर्त्तमाना षष्टिदण्डात्मिका या  
तिथिः सैवोपोध्या, न तत्र परदिनविर्गमे युग्मादरः कार्यः,  
व्यस्ततिथ्यपेक्षयैव युग्मतिथेः प्रागस्त्यात् । हरिवामरे एकादश्यान्तु  
न पूर्णग्रहणं किन्तु तत्र वर्द्धितायामेव उपवासः परदिने वचनात्.  
तथा प्रचेताः,—

पूर्णग्रहेकादशौ त्याज्या दितय<sup>१</sup> वर्द्धते यदि ।

द्वादश्यां पारणालाभे पूर्णैव परिगृह्यते ॥

दितयमिति द्वादश्यां पारणालाभे पारणयोग्यद्वादश्यान्ताभ इत्यर्थः ॥  
त्याज्येति वचनात् पात्रणालाभे पारणयोग्यद्वादश्यान्ताभ इत्यर्थः ॥

आधुनिकास्तु युग्मपरतिथिषु सप्तम्यादिषु व्यस्ततिथियोगेऽपि  
यद्युदयास्तव्याप्तिस्तदा तत्रैवोपवासः त्रिसन्ध्यव्यापिनीतिवचनादि-  
त्याहुः, तन्मन्द, त्रिसन्ध्यपदानन्वयात् ।

न च मध्याह्नकालोऽपि सन्ध्या अगव्धार्यत्वात्, त्रिसन्ध्यं यः  
पठेन्नित्यमित्यत्र तु नित्यपदात् सन्ध्योपासनकास्तत्रयलक्षणा, नचात्र  
तथा प्रमाणाभावात् किञ्च अन्यत्र हरिवासरादिति प्रतिप्रसवो  
न सङ्गच्छते ।

१ क चिद्विहितपुस्तके यथाह पारस्कारः ।

२ ख,, ग,, पुस्तकद्वये द्वितीयं ।

यच्च हरिवासरो द्वादशीतिव्याख्यातं तदप्यशुद्धं । अन्नमाश्रित्य  
तिष्ठन्ति सर्वे पापा हरेर्दिने इत्यादिष्वनेकमुनिवचनेष्वेकादशी-  
परतयोक्तेः ।

यद्ब्रतं दिवा कियद्रात्रौ कियत् क्रियते तद्ब्रतं दिवारात्रि-  
योगिन्यामेव तिथौ कार्यं नत्वेकयोगिन्यां विहितकालाज्ञाभात्  
अतएव न तत्र युग्मादरः संशयाभावात् ।

यथा वायुपुराणे,—

दिवारात्रौ ब्रतं यच्च एकत्रैव तिथौ स्मृतम्<sup>१</sup> ।

तस्यामुभययोगिन्यामाचरेत्तद्ब्रतं ब्रती ॥

यथा मनोरथद्वितीयायां दिवा वासुदेवार्चनं सन्ध्यायां चन्द्रो-  
दयेऽर्घ्यदानं नक्तं भोजनञ्च ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

देवमभ्यर्च्य पुष्पैश्च धूपदीपानुलेपनैः ।

उद्यतस्य च बालेन्द्रोर्दद्यादर्थं समाहितः ॥

नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।

अस्तंगते न भुञ्जीत ब्रतभङ्गभयान्नरः ॥

अस्तङ्गते चन्द्रे, अयञ्च युग्मादरो विधावेव न तु तिथिस्वरूप-  
मात्रोद्देशविहिततैलमांसादिनिषेधेऽपि

निमित्तं कालमाश्रित्य वृत्तिर्विधिनिषेधयोः ।

तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिर्निषेधः कालमात्रके ॥

इति गृह्यपरिशिष्टवचनात् ।

ननु यद्येव सशये युग्मवचनादेव व्यवस्था तदा देवलवचन-  
विरोधः कथं विहरणीयः,

यथा,—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानप्रतादिषु ॥

या तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति च भास्करः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानप्रतादिषु ॥

सकला सम्पूर्णा यथा निःसशयं पाद्या तथेयमकलापि सकला  
ज्ञेयेत्यर्थः । एताभ्यां देवलवचनाभ्यां स्नानदानप्रतादिषु उदयान्त-  
सम्बन्धेन तिथिविधीयते ॥

सत्य सामान्यविशेषन्यायाद्देवलवचनस्य युग्मवचनविषयेतरपरत्वं ।

यथा,—

देये पितॄणां आहुते तु अग्नौ च जायते यदि ।

तदग्नौ च यतीते तु तेषां आहुते विधीयते ॥

इति विशेषवचनदर्शनात् ।

आहुते विघ्ने समुत्पन्ने मृताद्देऽविदिते तथा ।

एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः ॥

इति सामान्यवचनस्याग्नौ चेतरेषु विघ्नविषयत्वमिति ।

ततश्चोभयपक्षदशमीशुक्लत्रयोदशीकृष्णप्रतिपत्स्वल्पप्रतिथिषु  
देवकृत्यसंग्रहे मन्वांस्त्रेव तिथिषु सकलपितृकृत्यसंग्रहे च देवल-  
वचनाभ्यामेवोदयास्तसम्बन्धेन व्यवस्था अत्रापिपदेन वैदिककर्मा-

मात्रग्रहणात् पितृकृत्यस्यापि ग्रहणं प्रकरणाद्यभावेन सङ्कोचे  
प्रमाणाभावात् । न च तथाप्यनिर्णय इति वाच्यम् ।

नक्षत्रं देवदेवेश तिथिश्चाद्धविनिर्गताम् ।

दृष्टोपवासः कर्त्तव्यः कथं शङ्कर जानता ॥

शङ्कर उवाच ।

सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामभ्युदितो रविः ।

तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धौ न कारणम् ॥

सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामस्तमितो रविः ।

तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धौ न कारणम् ॥

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः ।

कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे सत्ययुपवासप्रश्ने तथा कर्माणीत्युप-  
संहारे ब्रह्मवचनात् सकलदेवकृत्ये शुक्लकृष्णपक्षभेदेन व्यवस्थादर्श-  
नात् । तत्तुल्यत्वेन देवलवचनद्वयेऽपि संशये शुक्लकृष्णपक्षभेदा-  
दुदयास्तसम्बन्धेन व्यवस्थानियमात् ।

न च विष्णुधर्मोत्तरवचनैकवाक्यतया देवलवचनस्यापि दैव-  
कृत्यपरत्वमस्त्विति वाच्यं, विष्णुधर्मवचनस्य दैवकृत्यमादायैकदेश-  
कीर्त्तनपरत्वेनोपपत्तौ देवलवचने आदिपदसङ्कोचे प्रमाणाभावात् ।

यथास्तं सविता याति पितरस्तामुपासते ।

तिथिन्तेभ्योऽपराहो हि स्वयं दत्तः स्वयम्भुवा ॥

इति गृह्यपरिशिष्टेनाप्येकदेशकीर्त्तनपरतया देवलवचनस्य  
कृष्णपक्षीयपितृकृत्ये स्वहस्तितत्वाच्च कृष्णपक्ष एवापराहो पितृकृत्य-

विधानात्, तिथिदैधे पितृकृत्यमग्नये विगेषाश्रवणात्<sup>१</sup> देवकृत्यवत्  
व्यवस्थाया न्याय्यत्वाच्च एकत्र दृष्टव्यायात् ।

तथाच निगमपरिशिष्टम् ।

द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यता नियमाद्विपु ।

एकोद्विष्टाद्विष्टादौ वृद्धिहानेन चोदना ॥

चन्द्रस्य वृद्धिहानेन गुरुपञ्चक्षणपक्षभेदेन चोदनाविधि-  
रित्यर्थः ।

तथा कालविवेके पितृकृत्यं प्रकृत्य बौधायनः ।

वर्द्धमानेन्दुपक्षस्य उदयात् पूज्यते तिथिः ।

यदा चन्द्रः चयं याति तदा स्यादसृकालिकी ॥

एतेन पितृकृत्यमग्नये कपालाधिकरणन्यायेन प्रथमोपन्यत-  
तिथेर्यज्ञणात् गुरुपक्षेऽपि पूर्वदिन एव आहुतिमिति मैथिलोक्तं  
निरस्तम् ।

एव दैवे कर्मण्युदयगामिनी पौत्रे कर्मण्यस्तागामिनो तिथि-  
रिति संवत्सरप्रदोषव्यवस्थापि निरस्ता । पूर्वोक्तानेकसुनिवचन-  
विरोधात् ।

यत्तु,—

दैवे<sup>१</sup> कर्मणि सग्राप्ते यस्यामभ्युदितो रविः ।

सा तिथिः सफला ज्ञेया पित्रर्थे चापराङ्मिकी ॥

इति मार्कण्डेयपुराणम् ।



तस्यायमर्थः,—

अभ्युदितो रविरित्यनेन पूर्वाह्णो लक्ष्यते रव्युदयस्य पूर्वाह्णेना-  
विनाभावात् । यस्यां तिथौ पूर्वाह्णलाभः सेत्यर्थः । लक्षणावीजश्च  
पूर्वोक्तानेकमुनिवचनविरोध एव । अतएव पित्रर्थे चापराह्णिकीत्य-  
पराह्णमात्रमुक्तं ब्रह्मपुराणे ।

पूर्वाह्णे मातृकं आह्नमपराह्णे तु पैतृकम् ।

एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने प्रातर्द्विनिमित्तकम् ॥

यद्यपि मातृप्रधानं आह्नं मातृकमिति कुत्पत्त्याऽन्वष्टकाआह्नं  
द्विष्टआह्नञ्चोच्यते, तथापि प्रातर्द्विनिमित्तकमिति पृथक्वचनात्  
मातृकमन्वष्टकाआह्नम् ।

पूर्वाह्णे, श्रुत्युक्ते दिनस्य तृतीयभागे ।

यथा पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणामपराह्णः  
पितृणामिति ।

न च सङ्गवपरतया पूर्वाह्णपदव्याख्यानं केषाञ्चिदुक्तं<sup>१</sup> तत्र  
शक्यभावात् लक्षणावीजाभावाच्च ।

न च प्रातःपदस्य पृथगुपादानमेव लक्षणावीजमिति वाच्यं  
प्रातःपूर्वाह्णपदयोर्व्यापकभावेनार्थभेदादिषयभेदाच्च विरोधाभावात् ।

अपराह्णे च पैतृकमिति अत्रापराह्णपदद्वयं ब्रह्मपुराणोक्तपञ्चधा-  
विभक्तपारिभाषिकापराह्णमध्याह्णविषयं प्रातःपदसमभिव्याहारात्  
परिभाषावलाच्च ।

यथा प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन् सङ्गवसावदेव तु ।

मध्याह्नस्विमुहूर्तः स्यादपराह्णकालः परम् ॥

सायाह्नस्विमुहूर्तः स्यात्तत्र आह्नं न कारयेत् ।

राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥

सर्वकर्मसु घानदानादिष्वपीत्यर्थः । पैदकं कृष्णपक्षपार्षण-  
आह्नम् ।

यथा वायुपुराणे,—

शुक्लपक्षस्य पूर्वार्धे आह्नं कुर्यादिवचनम् ।

कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणन्तु<sup>१</sup> न सङ्गयेत् ॥

यत्र युगाष्टकादौ विगिन्य प्रशस्तकालो नोक्तः तद्विषयमिदं  
[वचन]<sup>२</sup> एकोद्दिष्टद्वयष्टकासु तु पूर्वार्धे एव विगेषः ।

तथा नित्यआह्ने ।

पञ्चमे च ततो भागे सविभागो यथार्हतः ।

इति दक्षेण दिवापञ्चभागो विगिन्योक्तः ।

हारौतेनापि तीर्थे द्रव्योत्पत्तौ च सत्यं आह्नं विधीयत इति  
तीर्थप्राप्त्यादिआह्नेषु प्राप्यनन्तरकाल एवोक्तः । सक्रान्तौ च  
पुण्यकाल एव विगेषः । एवञ्च शुक्लपक्षे क्रियमाण पार्षणआह्नं  
पूर्वार्धे श्रुत्युक्तद्वितीयभागे कृष्णपक्षे च ।

अपराह्णे तु पैदकमिति पूर्वार्धवचनैकवाक्यतया ब्रह्मपुराणो-  
क्तपञ्चधाविभक्तेऽपराह्णकाले कर्त्तव्यम् ।

यत्तु शुक्लकृष्णपक्षपुरस्कारेण विहितं आह्नमिति कैश्चिदुक्तं,

१ ख, ग, पुस्तकद्वये रौहिणन्तु ।

२ ग,, पुस्तके [ ] चिह्नितपदं नास्ति ।

तन्मन्दं, साग्निकर्तव्यपार्वणविधिकसांवत्सरिकश्राद्धे पार्वणपौर्ण-  
मास्यादौ<sup>१</sup> च शुक्लकृष्णपक्षपुरस्कारेण विधानाभावात् काल-  
व्यवस्था न<sup>२</sup> स्यात् ।

अस्मन्मते तु पक्षभेदादस्ति पूर्वापराह्वयव्यवस्थितिः । अशक्तौ  
तु पूर्वाह्नस्योत्तरावधिमपराह्नस्य पूर्वावधिश्चाह रौहिणमिति  
रौहिणीनक्षत्रसम्बन्धिनं नवममुहूर्त्तं ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धं पूर्वाह्न-  
श्राद्धकर्त्ता न लङ्घयेत् तत्परतो न कुर्यादप्रशस्तत्वात् । एवमप-  
राह्नश्राद्धकर्त्ता रौहिणं न लङ्घयेत् रौहिणात् प्रभृत्येव कुर्यात्  
अपूर्वकालस्याप्रशस्तत्वात्, तेन शुक्लपक्षे प्रथममुहूर्त्तादूर्ध्वं नवममुहूर्त्तं  
यावत् प्रशस्तः कालः तन्मध्ये पञ्चममुहूर्त्तं यावदतिप्रशस्तः कृष्ण-  
पक्षेऽष्टममुहूर्त्तादूर्ध्वं मुहूर्त्तचतुष्टयं प्रशस्तं नवममुहूर्त्तादूर्ध्वं "मुहूर्त्त-  
त्रयमतिप्रशस्तमिति । विस्तारस्तु श्राद्धकौमुद्यां द्रष्टव्यः ।

मध्याह्नपिढकृत्ये त्वयं विशेषः ।

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करः ।

स कालः कुतपो ज्ञेयः पिढणां दत्तमचयम् ।

इति शातातपवचनात् ।

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः ।

विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणन्तु न लङ्घयेत् ॥

इति गोतमवचनाच्च ।

१ ख., ग., पुस्तकद्वये पौर्णमासस्यादौ ।

२ ख., पुस्तके नस्यादित्यत्र नकारो नास्ति ।

३ ग., पुस्तके रौहिणमिति । ४ ग., "मुहूर्त्तात्परं ।

यच्च दिने क्षुतपरौहिणयोर्विशेषतो नाभस्ताद्दिने एकोद्दिष्टम् ।

१ तथा ब्रह्मपुराणे,—

तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः क्षुतपः स्मृतः ।

मध्याह्ने सर्वदा यन्मानान्दोभवति भास्करः ॥

तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते ।

अतएव हारीतः,—

मध्याह्न्यापिनी या तु पूर्वा वा यदि वा परा ।

तस्यां कर्मा प्रकुर्वीत ह्यमष्टौ न कारणम् ॥

नचैतद्वचनं देवकृत्यविषयमिति वाच्यं ।

त्रिसुहृत्तां च कर्त्तव्या पूर्वादर्गा च वक्तृचैरित्यनेन पिष्टकृत्य-  
मुपक्रम्य हारीतेनोक्तत्वात्, मगधे युग्मवचनेन शुक्रपक्षे तिथिर्गाह्या  
इत्यादिना च देवकृत्यस्य यथायथं व्यवस्थापितत्वाच्च ।

अन्ये तु पूर्वार्द्धमध्याह्नानुष्ठेयदेवकृत्यपिष्टकृत्यमाधारणं नचन-  
मिदं अयुग्मदेवकृत्ये<sup>१</sup> पिष्टकृत्ये त्रिकोद्दिष्टे शुक्रपक्षपार्वणे सोभय-  
दिने पूर्वार्द्धादित्तामे मध्याह्नयोगिन्यामेव तिथौ कार्ये उभय-  
दिने तु मध्याह्नयोगितिथित्तामे शुक्रकृष्णपक्षभेदादुदयास्तममन्वयेन  
व्यवस्थेत्याहुः ।

उभयदिने तु क्षुतपरौहिणयोर्लाभेऽलाभे वा शुक्रकृष्णपक्षभेदा-  
दुदयास्तममन्वयेनैकोद्दिष्टमित्युक्तमेवेति ।

कालविवेकस्तु एकोद्दिष्टे पूर्वार्द्धविहितश्राद्धे च उग्रनोवचना-  
द्व्यवस्थामाह । यथोगनाः ।

खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।

खर्वदर्पो परौ कार्या हिंसा स्यात् पूर्वकालिकी ॥

खर्वः समता दर्पो वृद्धिः हिंसा त्रुटिः । तदप्यशुद्धं पूर्वोक्तदेव-  
स्त्राद्यनेकमुनिवचनविरोधाच्छन्दोगपरिशिष्टवचनैकवाक्यतया दर्श-  
श्राद्धविषयमुग्रनोवचनमिदम् ।

यथा छन्दोगपरिशिष्टम् ।

यदा चतुर्दशीयामन्तुरीयमनुपूरयेत् ।

अमावस्या चौयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥

वर्द्धमानाममावस्यां लङ्घयेदपरेऽहनि ।

यामां स्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥

सन्निश्चा या चतुर्दश्याममावस्या भवेत् क्वचित् ।

खर्व्वितां तां विदुः केचिदुपेध्वमिति चापरे ॥

सन्निश्चितेतिवचनं स्तम्भिताविषयं उभयदिने तुल्यपरिमाणा  
स्तम्भिता चतुर्दशौमिश्रा पूर्णा पूर्वदिनमम्बन्विनी या अमावस्या तां  
खर्व्वितां निन्दितां किन्तु परमेव प्रशस्तां केचिदाहुः ।

अन्ये तु उपेध्वं पूर्वमेव भजध्वमिति मन्यन्ते इत्यर्थः ।

दर्शश्राद्धव्यवस्थाविशेषस्तु श्राद्धकौमुद्यां द्रष्टव्यो विस्तरभयाद-  
चोपेक्षितः ।

तदर्थं वाक्यार्थः ।

युग्मवचनाविषये दैवज्ञात्ये पितृकृत्ये च शुक्ररूपणपक्षभेदाद्भवस्या ।

तथापि यत्र विशेषोऽस्ति न तत्र पक्षभेदविधायकवचनावकाशः  
संशय एव वचनप्रवृत्तेः । तेन दशहरादशम्यादौ यदा हस्ताभौम-

यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी ।

चतुर्दशी उपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथौ ॥

उपवासे सप्तमी तु वेधाद्धन्युत्तरां तिथिम् ।

इति वृहद्विशिष्टनामकं वचनम् ।

तस्यायमर्थः,—

द्वितीयादयस्तिथयः स्ववेधात् स्वसंयोगात् पूर्वोत्तरे तिथौ  
यथायथ हन्युः यथा द्वितीया स्ववेधात् पूर्वां प्रतिपदं कचिदुत्तरां  
रक्षाद्वतीयां युगाद्याद्वतीयाच्च वक्ष्यमाणविशेषवचनात्तथा पञ्चमी  
उत्तरां षष्ठीं कचित् पूर्वां चतुर्थीं विनायकव्रतविषयां वक्ष्यमाण-  
वचनात्, दशमी पूर्वोत्तरे नवम्येकादश्यौ त्रयोदशी शुक्ला पूर्वोत्तरे  
द्वादशीचतुर्दश्यौ यथा चतुर्दशी कृष्णा उत्तराममावस्यां कचित्तु  
पूर्वां त्रयोदशीं ।

यथा राजमार्त्तण्डे,—

त्रयोदश्यां नवम्यां यो देवानिष्टान् प्रपूजयेत् ।

नियतात्माप्युपवसेत् स लभेदीप्सितं फलम् ॥

एतद्विषयैव चतुर्दशीवेधनिन्दा, उपवासेहन्युरित्यभिधानात्  
तथा सप्तमीत्तरामष्टमीमेवेत्यर्थः ।

अतएव शङ्करगौतायाम्,—

नागविद्धा च या षष्ठी सप्तम्या च तथाष्टमी ।

दशम्येकादशी विद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी ॥

भूतविद्धाप्यमावास्या न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः ।

कर्त्तव्या पञ्चमीयुक्ता चतुर्थी कामदायिनी ।  
पञ्चमी च तथा कार्या चतुर्थीसहिता विभो ॥

यत्तु,—

पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद ।  
न हि षष्ठी नागविद्धा कर्त्तव्या तु कदाचन ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्तवचनम् ।

तत् भिन्नश्रुतिकल्पनाभयात् युग्मवचनविरोधाच्च तदेकवाक्यतया  
अयुक्तेत्यकारप्रक्षेपेण व्याख्येयम् । अतएवोत्तराङ्गं सङ्गच्छते, अन्यथा  
द्वयोर्द्वयोः परस्परसम्बन्धता स्यात्, महार्णवे तु षष्ठ्ययुक्तेति स्पष्टमेव  
लिखितं व्याख्यातञ्चेति ।

मदनपारिजाते नागपञ्चमीविषयतया व्याख्यातं श्रवणात् ।  
स्कान्दे,—

नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन ।  
सप्तमीसंयुता सा तु कार्या धर्मार्थदायिनी ॥

विष्णुधर्म,—

एकादशष्टमी षष्ठी पौर्णमासीचतुर्दशी ।

अमावस्या द्वितीया च उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥

पौर्णमास्याः पूर्वचतुर्दशी पौर्णमासीचतुर्दशीति समस्तं पदं  
शुक्लैत्यर्थं इति व्याख्यातं कालविवेके । क्वचिच्चतुर्थीचतुर्दशीति  
पाठः । स्कन्दषष्ठी तु पञ्चमीयुतैव कार्या ।

ब्रह्मवैवर्त्ते,—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी ।

अष्टमी नवमीविद्धा कर्त्तव्या फलकाङ्क्षिभिः ।

दशमी च प्रकर्त्तव्या सदैर्गीं चैव सर्वदा ॥

इत्यापस्तम्बवचनं तत्क्षणदशमीविषयं क्षणपचे तिथिर्याहोति  
वचनात् ।

दुर्गातिथिर्नवमी । एकादशीव्यवस्था तु वक्ष्यते ।

ब्रह्मवैवर्त्त,—

त्रयोदशी प्रकर्त्तव्या द्वादशीसहिता मुने ।

भूतविद्धा प्रकर्त्तव्या दर्शपूर्वा सदाशुभा ॥

क्षणपचे त्रयोदशीति प्रागुक्तपरिशिष्टवचनञ्च । शुक्लचतुर्दशी  
अमावस्या च पर्युतैव ग्राह्या युग्मवचनात् ।

जावाहः,—

नागविद्धा च या षष्ठी भानुविद्धो महेश्वरः ।

चतुर्दशी कामविद्धाभिग्रस्ता मलिनाः स्मृताः ॥

नागः पञ्चमी, भानुः सप्तमी, महेश्वरोऽष्टमी, कामस्तथोदशी-  
त्यर्थः । चतुर्दशी अत्र शुक्ला ।

अथ सामान्यतिथिमाचोद्देशविहितानि कर्माण्युच्यन्ते । वैशा-  
खादिमासविशेषाङ्कितानि तु पञ्चादभिधास्यन्ते ।

अथ प्रतिपत्कृत्यम् ।

भविष्ये,—

तिथीनां प्रवरा यस्माद् ब्रह्मणा लोककर्त्तृणा ।

प्रतिपादिता पदे पूर्वे प्रतिपत्तेन शोच्यते ॥

अग्निमिद्धा च ऊला च प्रतिपद्यमितं धृतम् ।



शुक्लतृतीयायां व्रतमिदं फाल्गुने आरभ्य प्रतिमासं वत्सर  
पर्यन्तं कार्यं गौरी चात्र देवता पूज्या शयनं शय्या ।

मास्ये,—

अनग्निसक्तमश्नाति तृतीयायान्तु यः समाम् ।

गां दत्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

समां वर्षं यावत् ।

अथ चतुर्थीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

गणेशः पूजितः कुर्याच्चतुर्थ्यां सर्वकर्मसु ।

अविघ्नं विद्दिषो विघ्नो भवेत् कार्यं न कर्हिचित् ॥

देवीपुराणे,—

चतुर्थीभरणीयोगे शनैश्चरदिनं भवेत् ।

तस्यां पूज्य समं देवं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

शिवा शान्ता सुखा राजन् चतुर्थीं त्रिविधा स्मृता ।

मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवा लोकेषु विश्रुता ॥

तस्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा ।

भवेत् सहस्रगुणितं प्रसादाद्वन्तिनो नृप ॥

यास्त्वस्यां कुरुशार्दूल पूजयन्ति सदा स्त्रियः ।

गुडान्नलवणापूपैः श्वश्रुं श्वशुरमेव च ॥

ताः सर्वाः सुभगाः स्युर्वै विघ्नेशस्यानुमोदनात् ।

ज्योतिषे,—

चतुर्थी भौमवारेण रविवारेण सप्तमी ।

अमा वै सोमवारेण विषुवत्सदृशं फलम् ॥

भविष्ये,—

शुक्लाङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थी जायते यदा ।

अद्वया आद्वयदिप्रो न स प्रेतोऽभिजायते ॥

अङ्गारकचतुर्थीत्रयमाह मत्स्यपुराणे ।

चतुर्थ्याङ्गारकदिनं यदा भवति मानव ॥

मृदा स्नानं तदा कुर्यात् पद्मरागविभूषितः ।

अग्निर्मूर्ध्ना दिवो मन्त्रं जपन्नास्ते षडङ्मुखः ॥

शुद्धसुष्णीं स्तुवन् भौममास्ते भोगविवर्जितः ।

अथास्तमित आदित्ये गोमयेनोपलेपयेत् ॥

प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरञ्जताङ्गिः समन्ततः ।

अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम् ॥

कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते ॥

चत्वारः करकाः कार्य्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः ।

तण्डुलै रक्तशालेयैः पद्मरागैश्च संयुताः ॥

गन्धमाल्यादिकं सर्व्वं मङ्गलाय निवेदयेत् ।

सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथार्घ्यं

रौप्यैः खरैः कांस्यदुहां सवस्त्राम् ।

धुरन्धरं रक्तमतीवसौम्यं

धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥

क्षिताष्टदलपद्ममध्ये वक्ष्यमाणसुवर्णप्रतिमां हेमपात्रे ताम्रपात्रे वा संस्थाप्य गुडोपरि सूर्यस्तद्वत्ते रक्तशालितण्डुलनानाविधमक्ष्यभोज्यसमन्विताभिश्चतसृभिः करण्डिकाभिः रक्तगन्धमाल्यादिभिश्च मङ्गलं पूजयेत् । ततः कपिलां रक्तवर्णं धुरन्धरं वृषञ्च सप्तधान्यानि च वस्त्रसंयुतानि मङ्गलप्रौतये पूर्वमन्त्रमग्निर्मूर्ध्नीति मन्त्रमुदीर्य सामगन्नाह्वाणाय दत्त्वा रक्तचन्दनमिश्रजलेन भूमिपुत्रेत्यादिमन्त्रेण मङ्गलार्घ्यं दत्त्वा मङ्गलं विसृज्य काञ्चनप्रतिमादिकं शय्याञ्च सामगन्नाह्वाणाय तेनैवाग्निर्मूर्ध्नीति मन्त्रेण दत्त्वा गन्नाह्वाणं विसृज्य रात्रौ हविष्याह्नं शुञ्जीत एवं वाराष्टकं वारचतुष्टयं वा व्रतं कुर्वीत ।

वारचतुष्टये सप्तद्वीपाधिपो भवेदित्यन्तं फलं, वाराष्टके तु सर्वमेवोक्तं फलमिति ॥

अथ पञ्चमीदृत्यम् ।

भविष्ये,—

नागानिष्टाय पञ्चम्यां न विषैरभिभूयते ।

स्त्रियञ्च लभते पुत्रं श्रियञ्च परमां लभेत् ॥

भक्त्यपुराणे,—

लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः ।

समान्ते हेमकलस दद्याद्धेनुसमन्वितम् ॥

स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीर्जनानि जनानि ।

एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥

समान्ते । वत्सरान्ते ।

यस्योपवासं कुरुते तस्यां नियतमानसः ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ॥  
 करो हस्ता चित्रभानुनामानं दिवाकरमित्यर्थः ।

तथा,—

हस्तर्चं शुक्लसप्तम्यां संक्रमः स्याद्यदा रवेः ।  
 महामहेति सा प्रोक्ता विजया नाम सप्तमी ॥  
 महापातककोटिघ्नी सूर्यग्रहशतैः समा ।  
 स्नानं दानं जपः आर्द्रं देवताविप्रपूजनम् ॥  
 भवेदनन्तगुणितं तत्सर्वं नात्र संशयः ।  
 अस्यामभ्यर्च्य देवेशमादित्यं जगतां पतिम् ॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति सूर्यसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 तत्रोपवासं कृत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 अर्घ्यं दत्वा यथावच्च सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

तथा,—

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।  
 सर्वशुक्लोपचारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥  
 कृष्णपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।  
 सर्वरक्तोपचारेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।

तथा,—

'षष्ठीमुपोद्य यः सम्यक् सप्तम्यामर्चयेद्रविम् ।

चीरं वाव्यशनं छताशनमिति प्रोक्तान्यमूनि क्रमात्  
कृत्वा वत्सरसप्तमीरभिमतं वारे रवेराप्नुयात् ॥

छताशनमपि कर्त्तव्यमिति शेषः ।

एतच्च माघसप्तम्यामारभ्य शुक्लसप्तम्यां सूर्यमभ्यर्च्य क्रमादर्का-  
दिकं भुक्त्वा वत्सरपर्यन्तं कार्यम् । रविव्रते तु माघप्रथममारभ्य  
प्रतिरविवारमर्कमभ्यर्च्य क्रमादुक्तद्रव्याणि भुक्त्वा वर्षपर्यन्तं कार्यम् ।  
तत्रापि सुहृत्तानदिनं नक्तं एकभक्तन्तु मध्याह्ने कार्यमिति प्राशक्त  
मेव । अयमेव पाठः स्मृतिसमुच्चयकालविवेकादिषु लिखितः ।  
अन्ये तु पाठान्तरं पठन्ति तदप्रमाणम् ।

तथा,—

गोधूममाषमधुमैयुनमद्यमांस  
पाषाणपात्रयवयष्टिक<sup>१</sup>कांस्यपात्रम् ।  
अभ्यञ्जन -- तिलांश्च विवर्जयेद्यः  
सोऽभौक्षितं लभति सप्तसु सप्तमीषु ॥

एतदपि माघसप्तम्यामारभ्य सप्तसु<sup>२</sup> शुक्लसप्तमीषु सूर्यमभ्यर्च्य  
नियताहारो गोधूमादीनि सर्वाणि विवर्जयेत् ॥

अथाष्टमीकृत्यम् ।

मात्स्ये,—

नक्ताशी अष्टमीं यः स्यात् वत्सरान्ते च धेनुदः ।  
पौरन्दरं यदं याति सुगतिव्रतमुच्यते ॥

- १ ख, ग, पुस्तकद्वये यवयष्टिक० ।

२ ग, चिह्नितपुस्तके सप्तशुक्लसप्तमीषु ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

बुधाष्टमीं प्रकुर्वीत वर्जयित्वा तु चैत्रकम् ॥

प्रसृप्ते तु जगन्नाथे सन्ध्याकाले मधौ तथा ।

बुधाष्टमीं न कुर्वीत कृतं हन्ति पुरातनम् ॥

अग्निपुत्रो बुधः । शुक्लपक्षेऽतिप्राशस्त्यपरम् अष्टमीं बुधवारेण  
पचयोरुभयोर्यदेति गरुडपुराणवचनात् ।

पतङ्गे सूर्ये मकरे याते उत्तरायणस्थे माधवे जाग्रतीति आ-  
षाढेऽपि हरिशयनसम्भवादपुनरुक्तं सन्ध्याकाल इति निषिद्धसाया-  
न्नाद्युपलक्षणम् ।

यत्तु महादेव उवाच,—

पौषे मासि यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् ।

तदा सा तु महापुण्या महाभद्रेति कौर्त्तिता ॥

तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् ।

मग्नौतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत् ॥

इति भविष्यपुराणवचनं तन्न व्रतविषयम् किन्तु स्नानदानादि-  
विषयं 'व्रतस्योत्तरायणविधानात् ॥

अथ नवमीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

नवम्यां नववर्षाणि राजन् पिष्टाग्रनो भवेत् ।

तस्य तुष्टा भवेद्देवी सर्वकामप्रदा शुभा ॥

व्रतमिदं पचद्वये कार्यं विशेषानभिधानात् पिष्टकञ्च नैवेद्यं  
देयं स्वयञ्च पिष्टकं भोज्यं व्रतारम्भश्च महानवम्याम् ॥

समां वर्षं तदन्ते हेमकक्षुकां वासस्य कन्याभ्यो देयं हेमसिंह-  
मात्रं विप्राय ।

अथ दशमीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

दशम्यां धर्मराजस्तु सर्व्वस्याधिहरोऽर्चितः ।

नरकादुपगृह्यैव<sup>१</sup> समुद्धरति मानवम् ॥

अथैकादशीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

एकादश्यां प्रयत्नेन विश्वेदेवाः<sup>२</sup> प्रपूजिताः ।

प्रजाः पशून् धनं धान्यं प्रयच्छन्ति मतिन्तथा ॥

वाराहे,—

मार्गशीर्षे शुक्लपक्षादारभ्याब्दं विचक्षणः ।

एकादश्यान्तु नक्तेन नरः कुर्याद्यथाविधि ॥

तस्यामनग्निपक्वाशी घो भवेन्नियतः शुचिः ।

तस्यासौ धनदो देवस्तुष्टो वित्तं प्रयच्छति ॥

नक्तमनग्निपक्वाशनं वर्षं यावत् कार्य्यं धनदस्य पूज्यः ।

श्रीगोविन्दनखेन्दुप्रभाभिरन्तर्निराकृतध्वान्ताः ।

एकादशीव्यवस्थां विदुषां तोषाय सन्तनुमः ॥

गरुडपुराणे पितामह उवाच,—

मान्वाता चक्रवर्त्यासीदुपोऽथैकादशीं नृपः ।

भविष्ये,—

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सर्वे पापा<sup>१</sup> हरेर्दिने ।

स केवलमघं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते हरिवासरे ॥

एकादशां न भुञ्जीतेति नायं रागप्राप्तभोजनमात्रनिषेधविधिः  
अपरश्च व्रतविधिः काम्यः किन्तु उपवासरूपव्रतं कुर्यादिति नित्य-  
व्रतविधिरेक एव विधिद्वयकल्पनागौरवात् फलन्तु आनुषङ्गिकम् ।  
वक्ष्यति च । एकादशीमुपवसेदित्यादि उपवासपदन्तु अहोरात्रा-  
भक्षणे शक्तं अन्यथा निषेधः कालमात्रक इति वचनादेकादशी-  
क्षणमतिक्रम्य भोजनं प्रसज्येत पर्वसु मांसादिनिषेधवत् । अतएव  
एतत् कृत्वा व्रतं हन्तीति प्रागुक्तम् ।

तथा च भविष्योत्तरे ।

युधिष्ठिर उवाच,—

एकादशीव्रतं देव नित्यं वा काम्यमेव वा ।

कथं वा क्रियते तत्तु नियमो वात्र कीदृशः ॥

कृत्वा वा किं फलं जन्तुः प्राप्नोति पुरुषोत्तम ।

अकृत्वापि किमाप्नोति पापं वा<sup>२</sup> मधुसूदन ॥

एतत्सर्वं समासेन वक्तुमर्हसि मे विभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच,—

अहन्ते कथयिष्यामि शृणु पार्थ कुलोदह ।

नित्यमेतद्व्रतं नाम<sup>३</sup> कर्त्तव्यं सार्ववर्णिकम् ॥

१ ग पुस्तके सर्वपापाः ।

२ क., पापं वै ।

३ ग पुस्तके “नाम,” इति पदं नास्ति ।



वनस्थयतिधर्मोऽयं शुक्तामेव सदा गृही ॥

वनस्थयतीत्युपलक्षणं ब्रह्मचारिणोऽप्ययं धर्मः गृहिमात्रस्य विशेष-  
विधानात् । शुक्तामेवेति न कृष्णामित्यर्थः सदेति नित्यार्थम् ।

ब्रह्मपुराणे,—

इन्दुचयेऽर्कसंक्रान्त्यां एकादशां क्षिते तरे ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रधनान्वितः ॥

कूर्मपुराणे,—

१[संक्रान्त्यां कृष्णपक्षे च एकादशां गृहे तथा ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रधनक्षयात् ॥

वायुपुराणे,—

संक्रान्त्यामुपवासेन पारणेन युधिष्ठिर ।

एकादशान्तु कृष्णायां ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ॥

भविष्ये,—

संक्रान्त्यामुपवासञ्च कृष्णैकादशिवासरे ।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥

२यानि च उभयपक्षविधायकानि वचनानि श्रूयन्ते ।

सपुत्रश्च सभार्यश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतः ।

एकादशीमुपवसेत् पक्षयोस्तभयोरपि ॥

नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्भक्तिपरायणैः ।

१ ग,, पुस्तके 'संक्रान्त्या इत्यारभ्य भविष्ये इत्यन्त' [ ] चिह्निताशो  
नास्ति ।

२ ग,, पुस्तके यदि च ।

यथा विष्णुधर्मोत्तरे,—

दिग्भी रुद्रे समायुक्ते ज्येष्ठहनि तथापरे ।

उपवासस्तु पूर्व्यद्युर्नोपवासः परेष्ठहनि ॥

परेष्ठहनि द्वादश्यां एकादश्याः ज्ये निःसरणे इत्यर्थः ।

विष्णुरहस्ये,—

पारणाहे न क्षभेत द्वादशी कलयापि च ।

तदानीं दशमीविद्धापुष्यैकादशी तिथिः ॥

पारणाहे द्वादशीदिने यदि द्वादशी एकादशीकलयापि युक्ता न क्षभेत तदा दशमीविद्धैवोष्ये इत्यर्थः ।

भविष्ये,—

एकादशी दशायुक्ता परतोऽपि न वर्द्धते<sup>१</sup> ।

गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोष्ये सदा तिथिः ॥

इत्याकाङ्क्षायामाह दशम्यैकादशी यजेति हरिसन्निधानात् विद्धायाः कर्त्तव्यत्वमसुरसन्निधानाच्च कर्त्तव्यतानिषेध इति, बज्र-मुनीनां वाक्यविरोधेन सन्देहो यदा स्यात्तदा शङ्कैव द्वादशी उपोष्या न तु विद्धेत्यर्थः ।

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते व्यासः ।

दशम्यैकादशी युक्ता यत्र शास्त्रे प्रतिष्ठिता ।

न तच्छास्त्रमहं मन्ये यदि ब्रह्मा स्त्रयं वदेत् ॥

नारदीये,—

यैः कृता दशमीविद्धा जङ्गवाक्याश्च मानवैः ।

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ॥  
द्वादश्यामुपवासन्तु ये वै कुर्वन्ति मानवाः ।  
वत्स मामेव पश्यन्ति मम व्रतपरायणाः ॥

कल्पतरौ च,—  
एकादश्यां यदा ब्रह्मन् दिनचयतिथिर्भवेत् ।

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ॥

तथा भविष्ये वैश्वभिचुसंवादे,—  
दशमीमिश्रिता वैश्व या स्यादेकादशी तिथिः ।

आसुरी तु भवेदेषा धनपुत्रविनाशिनौ ॥  
शुद्धैव द्वादशी याह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।

तथा संवत्सरप्रदीपे,—

ये कारयन्ति कुर्वन्ति दशम्यैकादशीं युताम् ।  
विलोक्य तन्मुखं ब्रह्मन् सूर्यदर्शनमाचरेत् ॥

त्रिस्त्रिंश दशमीयुक्ता कार्या नैकादशी बुधैः ।  
हन्ति पुत्रांश्च पौत्रांश्च पुण्यं जन्मगतोद्भवम् ॥

दशमीशेषसंयुक्तं यः करोति हरेर्दिनम् ।  
एकादशीफलं तस्य नश्येत् द्वादशवार्षिकम् ॥

दशम्यैकादशी विद्धा शुद्धा च द्वादशी परा ।  
द्वादशैव तदोपोष्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् ॥

मात्स्ये,—

एकादशी विलुप्ता चेद् द्वादशी तु परेऽहनि ।

१ ग पुस्तके, द्वादशी च ।

लङ्घयेदुपवसेदित्यर्थः । यद्येतदचनं साकरं स्यात् तथापि गृहस्थस्य दशमीविद्धावर्जनं सर्वदैवायातं गृहस्थस्य कृष्णानिषेधात् ।

यदा कृष्णपक्षेऽपि दशमीयुतां लङ्घयेत् त्यजेदिति कालविवेक-  
वचनार्थः सर्वदैव विद्धां परिहरेदिति तात्पर्यम् ।

यदा तु किञ्चिदेकादशी ततश्च द्वादशीचयः तत्परदिने द्वा-  
दश्यालम्भेऽपि दशमीविद्धां विहाय कलामात्रैवोपोष्येत्याह एका  
दशौकलापि स्यादिति । एतदेव विवृणोति एकादशी द्वादशं  
चेति, त्रिमिश्रा त्रिमिश्रसङ्गिकेत्यर्थः ।

तथा विष्णुरहस्ये,—

एकादशीकलायान्तु द्वादशां समुपोषितः ।

अत्र क्रतुशत पुण्यं त्रयोदश्यान्तु पारणे ॥

एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी ।

अहःसृक् तदहोरात्रमुपोष्या सा सदा तिथिः ॥

वराहपुराणे,—

एकादशी द्वादशी च परतो द्वादशी न चेत् ।

तत्र क्रतुशत पुण्यं त्रयोदश्यान्तु [पारणे ॥

एकादशीकलायुक्तामुपोष्य द्वादशीं नरः ।

त्रयोदश्यान्तु यो भुङ्क्ते विष्णुसायुज्यमृच्छति ॥

यत्तु,—

कला काष्ठा मुहूर्तौ वा यदि स्यादपरेऽहनि ।

द्वादशद्वादशीं हन्ति त्रयोदश्यान्तु पारणम् ॥

१ ग पुस्तके, [ ] चिह्नितार्थो नास्ति ।

तथा संवत्सरप्रदीपे,—

सम्पूर्णैकादशी यत्र परतोऽपि विवर्द्धते ।

तत्रोत्तरां यतिः कुर्यात् पूर्वामुपवसेत् गृही ॥

अत्र यतिपदं गृहीतरपरम् ।

अस्मिन्नेव विषये विष्णुधर्मोन्तरे,—

एकादशी द्वादशी च रात्रिगेषे त्रयोदशी ।

त्रिःसृष्टा सा तिथिः प्रोक्ता यतीनामुत्तमा तिथिः ॥

तथा चात्रैव गृहस्थविषये पद्मपुराणम्,—

एकादशी द्वादशी च रात्रिगेषे त्रयोदशी ।

अहःस्यग्रमहोरात्रं नोपोष्यं तत्सुतार्थिभिः ॥ इति ।

त्रिमिश्रां वायुं कुर्वीतेत्यादिवचनन्तु पूर्वदिने दशमीवेधे  
सतीति बोद्धव्यं न दशम्या युतां कचिदित्युपसंहारात् ।

यदि चैकस्मिन् दिने दशमीविद्धा परदिने किञ्चिदेकादशी  
पारणादिने पारणायोग्यद्वादशी न लभ्यते किञ्चिन्मात्रमस्ति तदा  
द्वादशीलङ्घनस्यात्यन्तगर्हितत्वाद्दशमीविद्धापि कार्या ।

यथा विष्णुरहस्ये,—

त्रयोदश्यां यदा न स्याद् द्वादशी घटिकाद्वयम् ।

दशम्येकादशी विद्धा सैवोपोष्या सदा तिथिः ॥

घटी दण्डः घटीषष्ठ्या दिवानिशमिति ब्रह्मविद्भान्तवचनात् ।  
घटिकाद्वयमिति पारणायोग्यकालोपलक्षणम् । घटिकाद्वयादूना  
यदि स्यादित्यर्थः । एतेन दण्डद्वयं पारणायोग्यकाल इत्याद्यातम् ।  
एवकारो दशमीविद्धा कथं कर्त्तव्येति वितर्कव्यवच्छेदार्थः एवञ्च

वस्तुतस्तु रागप्राप्त एव निषेधविधिः शास्त्रप्राप्ते त्वर्थे पर्युदास  
एवेति सिद्धान्तः । ततश्च दशमीविद्धेतरां कृष्णपक्षाविषयां एका-  
दशीं गृह्य उपवसेदिति विधिः सम्पन्नः, तदा च कृष्णपक्षादेर्वि-  
ध्यगोचरतया कथं तत्र किञ्चिद्गच्छादिकल्पनं उपवासनिषेधे निति  
वचनन्तु द्वादशीलङ्घनमिथा विष्णुरहस्यवचनेन यत्र विद्वायां प्रति-  
प्रसूयते तद्विषयमेव । अतो द्वयोर्वचनयोरेकवाक्यतया जलादि-  
मात्रकिञ्चिद्गच्छणरूप एवोपवासः प्रतिप्रसवार्थः । एकभक्तेनेत्यादि-  
वचनन्तु असामर्थ्यरोगादिना ज्ञेयं अत्यन्तासामर्थ्यं तु पत्न्यादिद्वारा  
कारयेदिति वक्ष्यते ।

यत्तु श्रीभागवतटीकाकृता श्रीधरस्वामिना ।

कलार्द्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्ध्वमेव हि ।

आमाध्याह्नाः<sup>१</sup>क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात् ॥

इति नामशून्यं वचनं लिखितम् । तत् त्रयोदशां यदा न  
स्यादित्यादि साकरविष्णुरहस्यादिवचनदर्शनात् पूर्णाधिकेकादशी  
त्याज्येति प्रचेतोवचनदर्शनाच्चामूलमिति प्रतिभाति । एकादशुप-  
वासफलमाह रात्रौ जागरणं कुर्वन्निति ।

एतेन जागरणगदाधरपूजादिकं वक्ष्यमाणद्वादशीपारणनियम-  
मैथुनमसूरादिवर्जनपूर्वोत्तरदिनभोजनद्वयनिवृत्त्यादिकं उपवास-  
व्रतस्याङ्गमित्युक्तं, तदा च नित्यस्यास्य व्रतस्य कदाचित् किञ्चि-  
दङ्गहान्यापि कर्त्तव्या नित्ये किञ्चिदङ्गहानिः शक्या न तु काम्ये  
इति दर्शितत्वात् । अथवा मोक्षफलकथनाज्जागरणपुराणश्रवणयो-

१ ख,, ग,, पुस्तकद्वये, आमध्याह्नात् ।

गुणफलविधित्वं किन्तु द्वादश्यां विष्णुपूजापारणयोरङ्गान्तरापेक्षया प्राधान्यात् तत्र प्रयत्नो विधेयः ।

अतएव नैवाद्वादशिको भवेदिति वराहपुराणं । यथा सूतकै उपवासं पारणाञ्च कृत्वा सूतकान्तेऽपि विष्णुपूजा कार्य्येति गरुड-पुराणवचने वक्ष्यते । दैवात् कदाचित्तत्रापि अशक्तौ उपवासव्रत-मवश्यमेव प्राधान्यादिति ।

अत्र च गृहस्थस्य रुक्माङ्गदभूपतेरेकादशीद्वयकरणेन मोक्ष-अवणात् कृष्णैकादश्युपवासो मुमुक्षुपर एवेत्युक्तम् । एकादशीकृतः एकादशीकारिण इत्यर्थः ।

अशक्तावानुकल्पिकमाह वाराहे,—

नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिष्ठाः क्षीरमथाम्बु चान्ज्यम् ।

यत् पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च ॥

नक्तं हविष्यान्नमित्येकं न तु पृथक् पृथक्ते हि लघुभोजनेनो-त्तरोत्तरप्राशस्त्यकथनं नोपपद्येत ।

देवौपुराणे,—

हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।

अग्निकार्य्यमधःशय्यां नक्तभोजी षड्वाचरेत् ॥

इति नक्त भोजने लघुहविष्यान्नभोजनस्य परिभाषितत्वात् ।

अतो न नक्त भोजनविधिः किन्तु रात्रावेव हविष्यभोजनविधिः ।

नक्तं भोजनादिकमप्यपरमानुकल्पिकमाह ।

वायुपुराणे,—

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।

पयसा वापि भैक्षेण नैवाद्वादशिको भवेत् ॥

एकभक्तञ्च मध्याह्ने कार्यम् । मध्याह्नव्यापिनौ ग्राह्या एक-  
भक्तमथ तिथिरिति देवलेन संशये मध्याह्नव्यापितिथेर्विधानात् ।

मत्तं भोजनविधिस्तु भविष्यपुराणोक्त एव । नैवाद्वादशिको  
भवेदिति सर्वानुकल्पिके द्वादश्यां विष्णुपूजापारणादिनियमविरहे-  
णाद्वादशिकः कदापि न स्यादित्यर्थः । अत्यन्ताग्रक्तौ पुत्रादिना  
कारयितव्यं ।

वराहपुराणे,—

असामर्थ्यं शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।

कारयेद्ब्रह्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥

भगिनीं भ्रातरं शिष्यं ब्राह्मणं दक्षिणादिभिः ।

पितृमातृपतिभ्रातृस्वसृगुर्वादिभ्यस्तुजाम् ।

अदृष्टार्थमुपोष्यापि स्वयञ्च फलभाग्नवेत् ॥

गण्डपुराणे,—

भर्तुर्भार्या व्रतं कुर्यात् भार्यायाश्च पतिस्तथा ।

असामर्थ्यं तयोस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥

तथा,—

सूतकेऽपि नरः स्नात्वा प्रणम्य मनसा हरिम् ।

एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमस्य न लुप्यते ॥

द्वादश्यान्तु ततो भुक्त्वा सूतकान्ते जनाईनम् ।

पूजयित्वा विधानेन भोजयेत द्विजोत्तमम् ॥

व्रतभङ्गान्मृच्छद् दुःखं प्राप्नोति नरकं तथा ।



तस्मात् प्रमादे दुःखे वा सूतके मृतकेऽपि वा ॥

स्नात्वा कायित्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् । इति ।

वस्तुतस्तु एतानि वचनानि गृहीतव्रतपराख्येव प्रतीमः । रवि-  
चारादौ केचिन्निषेधं वदन्ति ।

मत्स्यपुराणे,—

संक्रान्तौ रविवारे च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रधनान्वितः ॥

तथा,—

रविशुक्लदिने चैव संक्रान्त्याश्च दिनचये ।

पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥

ब्रह्मपुराणे,—

इन्दुचयेऽर्कसंक्रान्त्यामेकादश्यां सितेतरौ ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रधनान्वितः ॥

इति तत्र एतेषां वचनानां काम्योपवासनिषेधकतयैवोपपत्तौ  
नित्यस्यैकादशुपवासव्रतस्य अकरणकृतप्रत्यवायानामनुत्पत्तिबोधना-  
चमत्वात् । किञ्चित्तानि सामान्योपवासनिषेधकवचनानि विशेषवचन-  
दर्शनादेकादशीव्यतिरिक्तविषयाणि यथा ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

एकादश्यां यदा राम<sup>१</sup> आदित्यस्य दिनं भवेत् ।

उपोष्या सा महापुण्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनी<sup>२</sup> ॥

भृगुभानुदिनोपेता तथा सक्रान्तिसंयुता ।

एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनी ॥

सनत्कुमारः,—

भानुवारेण संयुक्ता तथा संक्रान्तिसंयुता ।

एकादशी सदोपोष्या सर्वसम्पत्करौ तिथिः ॥

यत्तु,—

मधुमासे वृषे चैव कन्यायां पार्वतीमहे ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रधनान्वितः ॥

इति पठन्ति ।

यच्च,—

मधुमासे वृषे चैव कन्यायां राजसूतके ।

उपवासं न कुर्वीत यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ॥

इति नामशून्यं वचनं कालविवेके लिखितं तदप्यमूलमेव समूलत्वाभिमाने तु वचनद्वयं क्रोधादिभिरिच्छोपवासविषयम् काम्योपवासविषयं वा न नित्योपवासविषयं अकरणे प्रत्यवायात् वचनस्थान्यथोपपत्तौ तद्वत्तात् प्रत्यवायाभावकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । एवञ्च गृहीतव्रतस्याङ्गभूतोपवासोऽपि कर्त्तव्य एवेति ।

अथैकादशीनियमः ।

अयोगे क्लेशहरणमसङ्कल्पे व्रतक्रिया ।

अन्नह्यर्च्यं चर्या च चयं स्यात् कुम्भसञ्चितम् ॥

इति हरिवंशवचनात् केषाञ्चित् सङ्कल्पमन्त्रलोपवासकरणमस्तमात्रमेवेति । अतएव सङ्कल्पवाक्यमुक्तं वराहपुराणे,—

एकादश्यां निराहारो भूत्वा चैवापरेऽहनि ।

भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

इत्युच्चार्य्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमुपचिपेत् ।

अतएव वचनान्नित्येऽप्यस्मिन् व्रते सङ्कल्पविधिः । सङ्कल्पवाक्य-  
मपौदमेव सुनिभिर्विशिष्यैतादृशवाक्यवचनाभिधानात् ।

तत्परिपाटीमाह महाभारते,—

गृहीत्वौडुम्बरं पाचं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।

उपवासन्तु गृहीत्याद्यदा सङ्कल्पयेद् व्रतम् ॥

यदा अन्यव्रत सङ्कल्पयेत् मनसा नियमयेत् तदप्येवंविधिना  
गृहीत्यादित्यर्थः ।

तच्च दशम्यां सायंसमये कार्य्यं देवीपुराणे,—

अथाषाढे दशम्यान्तु शुक्लायां क्षुभुद्भरः ।

कृत्वा सायन्तर्नीं सन्ध्यां गृहीत्यान्नियमं पुनः ॥

इति शयनैकादश्यां दर्शनादन्यत्रापि तथैव न्याय्यत्वात् ।

यन्तु,—

प्रातः सङ्कल्पयेद्विद्वानुपवासव्रतादिकम् ।

इति वचनं, तदष्टम्याद्युपवासविषयं नैकादश्याुपवासविषयं विशेष-  
दर्शनात् ।

विष्णुरहस्ये,—

सायमाद्यन्तयोरङ्गोः सायं प्रातश्च मध्यमे ।

धर्मापवासे कुर्वीत न भोजनचतुष्टयम् ॥

नचास्य सन्दिग्धमूलत्वाशङ्का मदनपारिजातकालविवेकस्यति-  
समुच्चयादिभिर्लिखितत्वात् । एतेन यन्मैथिल्याः,—

तौरपारौ समाप्तौ, व्रतं पारयति समापयतीति पारणा अतएव  
पारणान्तं व्रतमिति प्रसिद्धिरिति पुनर्भोजनमविरुद्धं ।  
तथा वचनम् ।

पूर्वाक्तेन विधानेन पारणं पृषदाज्यकम् ।  
यथेष्टञ्च तथा रात्रौ पुनश्चैव च सर्वदा ॥  
इति वदन्ति तन्निरसं कर्मसमाप्तावपि आह्नादिने ब्रह्मचर्यव-  
दुत्तराङ्गस्यावशानुष्ठीयमानत्वात् । पुनरभोजनस्योत्तराङ्गतामाह  
शिवरहस्ये,—

दिवानिद्रां परानञ्च पुनर्भोजनमैथुनम् ।  
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादशां वर्जयेद्बुधः ॥  
इति पूर्वाक्तेन विधानेनेति वचनममूलमेव ।

यत्तु,—  
सङ्कटे विषमे प्राप्ते पारणन्तु कथं भवेत् ।  
अङ्गिस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्नक्तं न दोषकृत् ॥  
इति देवलनाम्ना वचनं तद्यदि समूलं स्यात् तदा सङ्कटे  
द्वादशां पारणाशक्तौ अङ्गिः पारणां कृत्वाऽधामर्थ्यं पुनर्भोजनं  
कुर्यादिति व्याख्येयम् ।

उपवासमात्रे वर्ज्यानाह गरुडपुराणे,—  
कांशं माषं मसूरञ्च चणकं कोरदूषकम् ।  
शाकं मधु परानञ्च वर्ज्यदुपवसन् स्त्रियम् ॥  
उपवसन्नित्यनेन संयमपारणादिनयोर्वर्जयेदित्यर्थः ।

विष्णुधर्म,—

कांखं माषं मसूरञ्च पुनर्भोजनमैथुनम् ।

द्यूतमद्याम्बुपानञ्च दशम्यां वर्जयेद्बुधः ॥

असत्यभाषणं द्यूतं दिवास्वप्नञ्च मैथुनम् ।

एकादश्यां न कुर्वीत उपवासपरो नरः ॥

असकृत्तोयपानेन ताम्बूलभक्षणेन च ।

उपवासो विनश्येत् दिवास्वप्नाचमैथुनैः ॥

असकृदिति सकृत्तोयपाने दोषाभावः । तथा च अवभक्षण-

मभक्षणेति ।

आगस्त्ये,—

उपोष्यैकादशीष्वेकं द्विजं यो भोजयेद्विजः ।

गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या विष्णुमाराध्य भक्तितः ॥

कामानिष्टानवाप्यान्ते विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।

नैव तत्कुलजातानां दुःखं दारिद्र्यमेव च ॥

उपोष्यैकादशीमिति शेषः ।

कूर्मपुराणे,—

कांखं माषं चुरं चौद्रं हिंसां तैलमसत्यताम् ।

द्यूतक्रीडां दिवानिद्रां व्यायामं क्रोधमैथुनम् ॥

द्वादश्यां द्वादशैतानि वैष्णवः परिवर्जयेत् ।

विष्णुरहस्ये,—

कांखं माषं सुरां चौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।

व्यायामञ्च व्यायञ्च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥

शिलापिष्टं मसूरञ्च द्वादशैतानि वैष्णवः ।

द्वादश्यां वर्ज्यन्तेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

निषिद्धात्तरणजन्यपापैरित्यर्थः ।

संवत्सरप्रदीपे,—

अभ्यङ्गञ्च परान्नञ्च तुलसीचयनं तथा ।

वस्त्रपौडां तथा चौरं द्वादश्यां वर्ज्येद् बुधः ॥

अत्र तुलसीचयनादिनिषेधस्तिथिमात्रविषयः । अतस्तयोदशी-  
पारणे कर्तव्यमेव ।

यथा तत्रैव,—

द्वादश्यां तुलसी यस्माद्विष्णुना याति सङ्गतिम् ।

तस्मात्तां न विचिन्वीत तुलसीं द्वादशीदिने ॥

संक्रान्त्यां पञ्चदश्याञ्च द्वादश्यां आहूवासरे ।

वस्त्रं न पीडयेत् स्नानं नापि चारेण योजयेत् ॥

स्नायते घेन तत् स्नानं वस्त्रं एकोद्दिष्टआहूवासर इति प्राञ्चः ।

अत्र सर्वत्र द्वादश्यां विष्णुपूजोक्ता तत्र भूतशुद्धिप्राणायाम  
कृष्यादिन्यासमात्रकान्यासकेशवादिन्यासमूर्त्तिपञ्चकन्यासमन्त्रादिन्या-  
सपौठन्यासान् कृत्वा विष्णुं ध्यात्वा अर्घ्यपाद्याचमनपात्राणि संस्थाप्य  
शालग्रामयन्त्रे मण्डले वा पौठपूजां विधाय तत्र विष्णुमावाह्य  
षोडशोपचारैः संपूज्य आवरणदेवताञ्च सम्पूज्य विष्णुमन्त्रं यथाशक्ति  
जपित्वा स्तुत्वा प्रणमेदिति विधिः । एतत् सर्वं पञ्चादिवेचयिष्यते ।

इत्येकादशीव्यवस्था ॥

इदानीं प्रसङ्गात् सर्व्वव्रतसाधारणी परिभाषोच्यते ।

तत्र 'देवल',—

अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः ।

सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥

प्रातराहारमहर्भोजनमित्यर्थः ।

मुनिभिर्द्विरग्रहणं प्रोक्तं<sup>१</sup> विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यं ।

अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धं प्रहरयामान्तः ॥

इत्यनेन छन्दोगपरिशिष्टकृता,—

सायं प्रातर्मनुष्याणामग्रहणं देवनिर्मितम् ।

नान्तरा भोजनं कार्य्यमग्निहोत्रसमो विधिः ॥

इति वृहन्मनुवचने सायंप्रातःपदयोः रात्रिदिवापरतया विवृ-  
तत्वात् । अतएव,—

सायमाद्यन्तयोरङ्गोः सायं प्रातश्च मध्यमे ।

धर्मोपवासे कुर्व्वीत न भोजनचतुष्टयम् ॥

इत्यपि सङ्गच्छते । ततश्च अभुक्त्वा प्रातराहारमिति<sup>२</sup> अपराह्ण-  
रात्रिव्रतविषयं दिवाव्रतस्य पूर्वाह्णविधानात् । अहर्भोजनस्य दक्षोक्त  
दिवापञ्चमभागे विधानादिति । सूर्याय देवताभ्य इति सूर्य्यः  
सोमो यमः काल इत्यनेन सूर्यादिदेवताभ्यो निवेद्य विज्ञाप्य व्रत-  
माचरेत् सङ्कल्पयेदित्यर्थः । सङ्कल्पस्तु उदङ्मुखेनैव कार्य्यः ।

१ क ख पुस्तकद्वये द्विरग्रहणमुक्तम् ।

२ ख, अपराह्णरात्रिव्रतस्य पूर्वाह्णविधानात् ।

गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।  
 इति पूर्वोक्तमहाभारतवचनात् । औदुम्बरं ताम्रमयमभावेत्ये-  
 नापि पारिजातः ।  
 राचित्रतन्तु निशामुखे सङ्कल्पयेत् ।  
 व्रतं निशामुखे ग्राह्यं वहिस्तारकदर्शनात् ।  
 इति विष्णुवचनात् ।

भविष्ये,—

चमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।  
 देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥  
 भर्तृव्रतेष्वयं धर्माः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥  
 नक्तं भोजनव्रते विशेषमाह, देवीपुराणे,—  
 हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।  
 अग्निकाय्यमधःशय्यां नक्तभोजी षडाचरेत् ॥  
 सौरनक्तव्रते तु मुहूर्त्तोर्नदिने भोजनमन्यत्र निश्चयेति प्रागुक्तम् ।

ग्रातातपः,—

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् ।  
 उपवासे प्रदूष्येत दन्तधावनमञ्जनम् ॥  
 वस्त्रालङ्कारादीनां विलासानुधारणे एव दोषः ।

भविष्ये,—

उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् ।  
 अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखश्चुद्धिर्विधीयते ॥  
 दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ।



विष्णुधर्मः,—

असक्तोत्तोयपानेन ताम्बूलभक्षणेन च ।

उपवासः प्रणश्येत दिवास्वप्नाद्यमैधूनैः ॥

स्त्रीणान्तु सभर्तृकाणामुपवासनिषेधमाह विष्णुः,—

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।

आयुः सह्ररते पत्युः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

भर्तृसाहित्ये तु न दोषः । भर्तुः समानचारित्व<sup>१</sup> स्त्रीधर्मं  
इत्यापस्तम्बवचनात् । तदनुमत्या तु पृथगपि न दोषः ।

यथा शङ्खः,—

कामं भर्तुरनुज्ञया व्रतोपवासनियमेज्यादीनां अभ्यासः स्त्रीधर्मं  
इति ।

वैश्वशूद्रयोस्तु त्रिरात्रपञ्चरात्राद्युपवासनिषेधमाह देवलः,—

वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते ।

त्रिरात्र पञ्चरात्र वा तयोः पुष्टिर्न विद्यते ॥

पुष्टिः फलम् । एतेन काम्यस्यैव निषेधः । प्रायश्चित्तन्तु  
कर्त्तव्यमेव ।

शातातपः,—

उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् ।

कारयेत् सगुणस्तेन उपवासोऽभिजायते ॥

द्विज इति उपवासकर्त्तृमात्रोपलक्षणं अपवर्गोऽभिरूपभोजन-

मिति विष्णुना सामान्यतोऽभिधानात् । क्रियासमाप्तिरपवर्गः अभि-  
रूपो ब्राह्मणः । अभ्यङ्गनिषेधमाह मत्स्यपुराणे,—

तस्मात् कृतोपवासेन स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।

वर्जनौद्यं प्रयत्नेन रूपन्न हि परं नृप ॥

सङ्कल्पितव्रतमवश्यं कर्त्तव्यमित्याह कागलः,—

पूर्वं व्रत गृहीत्वा यो नाचरेत् काममोहितः ।

जीवन् भवति चाण्डालो मृतः श्वा चैव जायते ॥

अत्र काममोहित इत्यभिधानादिच्छात्याग एव दोषो न ।  
प्रमादादिनापि ।

तथा च देवलः,—

सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् ।

न व्रतघ्नानि कथ्यन्ते सद्यदेतानि शास्त्रतः ॥

सर्वभूतभयं राजव्याघ्रादिभयं प्रमादो विस्मरणम् ।

उद्योगपर्वणि,—

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।

हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥

अग्नौ च तु गृहीतव्रत न त्याज्यं 'न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे'  
इति विष्णुना तत्राग्नौ च पर्युदासात् । तत्राप्यन्यद्वारा पूजादिकं  
कारयितव्यं स्वयन्तु कायव्रतमुपवासादिकं कार्यम् ।

गरुडपुराणे,—

प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद्व्रतं न हि ।

अन्यैः पूजादिकं कुर्यात् कायिकं स्वयमेव हि ॥

क्रोधात् प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।

दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत् ॥

तस्मात् प्रमादे दुःखे वा सूतके मृतकेऽपि वा ।

ज्ञात्वा कायव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥

कायव्रतन्तु स्त्रीपुंससाधारणं स्वयमनुष्ठेय दानार्चनन्तु स्वयं  
विवर्जयेदित्यर्थः । तत्र मात्स्ये नारद उवाच,—

उपवासेष्वशक्तानां तदैव फलमिच्छताम् ।

अनभ्यासेन रोगादा किमिष्टं व्रतमुच्यताम् ॥

ईश्वर उवाच,—

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।

असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादीन् कारयेद्ब्रतम् ॥

गारुडे,—

भर्तुर्भार्या व्रतं कुर्यात् भार्यायाश्च पतिस्तथा ।

असामर्थ्ये तयोस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥

अथ द्वादशीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

द्वादशां विष्णुमिष्टा च सर्वदा विजयी भवेत् ।

पूज्यश्च सर्वलोकानां यथा गोपतिगो हरः ॥

पद्मपुराणे,—

एकादशां द्वादशां वा प्रतिपद्यन्तु यो नरः ।

दीपं ददाति दृष्ट्वाय शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥

सुवर्णमणिमुक्ताब्ज मनोज्ञमतिशोभनम् ।

वषक्रियाकौमुदी ।

रत्नमालादलं रम्य विमानमधिरोहति ॥

मात्स्ये,—

१[द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेः पुनः ।

गोवस्तकाञ्चनैर्विग्रान् पूजयेद्भक्तितो नरः ॥

परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम् ।

द्वादशीः शक्ताः, एकादशीचुक्तैव द्वादशुपोष्या युग्मवचनात् ।

एकादशां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनौषिणः ।

उपासनाय द्वादशां विष्णोर्यद्वदितं तथा ॥

इति प्रागुक्तभविष्यपुराणवचनाच्च । प्रागेव वचनमिदं व्याख्या-

तम् ॥

अथ त्रयोदशीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

कामदेवं त्रयोदशां स्वरूपो जायतेऽर्चयन् ।

दृष्टां रूपवतीं भार्यां लभेत् कामांश्च पुष्कलान् ॥

अथ चतुर्दशीकृत्यम् ।

भविष्ये,—

द्वेन्द्वरं चतुर्दशां सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।

वज्रपुत्रो वज्रधनस्तथा स्थान्नात्र सशयः ॥

मात्स्ये,—

चतुर्दशान्तु नक्ताशी समान्ते गोयुगप्रदः ।

शैव पद्मवाप्नोति एतत् त्रैयम्बकं व्रतम् ॥

यमः,—

अनर्काभ्युदिते काले कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।

स्नातः सन्तर्प्य तु यमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

यमाश्चतुर्दश । भविष्ये,—

थां काञ्चित्सरितं प्राप्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।

यमुनायां विशेषेण वियतस्तरपयद्यमान् ॥

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।

वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥

श्रौडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।

वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥

एकैकस्य तिलैर्मिश्रान् दद्यात् चीरैस्त्रीन् जलाञ्जलीन् ।

संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

भविष्ये,—

चतुर्दशामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ।

योऽब्दमेकं न भुञ्जीत शिवार्चनरतः सदा ॥

यत्पुण्यमक्षयं प्रोक्तं सततं तत्र याजिनाम् ।

तत्पुण्यं सकलं<sup>१</sup> तस्य शिवलोकञ्च गच्छति ॥

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वनखेन्दुचालितान्तरा ।

मयेदानीं चतुर्दशा व्यवस्थेयं निरूप्यते ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

तत्र चतुर्दशाय पूर्णिमेति युग्मवचनात् शुक्ला चतुर्दशी पर-  
युतैव ग्राह्या कृष्णा तु त्रयोदशीयुक्तैव ।  
षष्ठ्यष्टम्यथमावस्था कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।

एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्व्वेण संयुताः ॥  
इति पूर्व्वोक्तयुग्मवचनात् ।

अत्र रात्रियुग्मापि ग्राह्या उपवासस्याहोरात्रसाध्यत्वात् रात्रौ  
शिवार्चनविधानाच्च ।

अतएव सृष्टिसमुच्चये शिवपुराणे,—  
उपोषणं - - - - चतुर्दशां च पारणम् ।  
कृतेः सुकृतलक्ष्ये प्राप्यते वा न वाऽथवा ।  
ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै ॥  
पूजितानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ।  
चतुर्दशीदिने रात्रौ कुह्ययोगो भवेद्यदि ।  
तत्र जागरणं नृणां ब्रह्महत्याघाताधिकम् ॥  
धनुःकर्कटपञ्चास्यकुम्भमीनवृषालिषु ।

कामविद्धो हरः पूज्यः सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥  
पञ्चास्यः सिंहः अलिर्दृष्टिकः कामस्तयोदशी । एतेन चतुर्दशां  
पारणस्य प्राशस्त्यं दर्शितम् । न तु अमावस्यायां पारणं निषिध्यते  
इदमपि तिथिदैवे एव, पूर्णतिथौ तु निःसंशयममावस्यायां  
पारणमिति ।

शिवरात्रिप्रेते तु चतुर्दशीमुत्तार्यैव पारणं कार्यम् ।  
जन्माष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी ।

एताः परश्रुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् ।

तथा विष्णुरहस्ये,—

अष्टमी शिवरात्रिश्च कार्यं भद्रजयाम्बिते ।

कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्याच्च पारणम् ॥

मदनपारिजातोऽप्येवम् ।

अथ,—

यदोभयत्रापि दिने अस्तकाले चतुर्दशी ।

तत्रोपवासः कर्त्तव्यः परेऽहनि विधानतः ॥

इति पठन्ति तदमूलमेव सर्वप्रामाणिकसंग्रहेऽदृष्टत्वात्, सम-  
न्ताभिमाने तु श्रुतपक्षविषयम् ।

इयञ्च युग्मादरेण व्यवस्था रात्रेः सार्द्धप्रहरद्वयाभ्यन्तरे यदि  
चतुर्दशी लभ्यते तदैव तत्परतश्चतुर्दशीलाभे परदिन एव ।

यथा शिवरहस्ये,—

प्रदोषे वार्द्धरात्रे वा त्रियामार्द्धे वरानने ।

त्रयोदशी यदा तत्र उपवासं समाचरेत् ॥

तृतीययामस्यार्द्धाभ्यन्तरे त्रयोदशी ततः प्रभृति चतुर्दशीत्यर्थः ।

अत्र विशेषविधानात् रात्रेस्तृतीयप्रहरार्द्धात् परं चतुर्दशीयोगे उप-  
वासो व्युदस्यते ।

अतएव मदनपारिजाते शिवरात्रिचतुर्दशां शिवपुराणवचनं  
लिखितम् ।

भवेद्यत्र त्रयोदशां भूतविद्धा महानिश ।

शिवरात्रिप्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा ॥  
महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ।

यत्तु,—

प्रदोषव्यापिनी शस्ता शिवरात्रिचतुर्दशी ।  
रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥  
इति हेमाद्रिलिखितं वचनं तत् प्रदोषावधि चतुर्दशीयोगे-  
ऽतिप्राशस्त्यार्थं रात्रौ जागरणमिति हेतुमन्निगदात् ।

तथा वायुपुराणे,—

त्रयोदशस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु ।  
भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिप्रतं चरेत् ॥

तथा ब्रह्मवैवर्ते,—

सूर्येऽस्ते नवनाड्यो भूतयुक्ता त्रयोदशी ।  
शिवरात्रिप्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा ॥

भविष्ये,—

अर्द्धरात्रात् परे किञ्चिज्जयायोगो भवेद्यदि ।  
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिः शिवव्रतैः ॥  
जया त्रयोदशी । अत्र किञ्चिदित्यनेन तृतीयप्रहराद्धाभ्यन्तरे  
चतुर्दशीयोग एव उपवासो नान्यथेति । एषु वचनेषु पूर्वं पूर्वं  
प्रशस्तम् ।

यत्तु,—

पूर्णं त्रयोदशी रात्रौ याममेकं चतुर्दशी ।  
उपोष्या सा महापुण्या शम्भुर्वचनमब्रवीत् ॥



इति नामशून्यं वचनं तदमूलं समूलत्वेऽपि किञ्चिदधिकं धाम-  
भेकं चतुर्दशीति तस्यार्थः यथा तृतीयप्रहरार्द्धं चतुर्दशीयोगः  
स्यादिति । अतएव वक्ष्यमाणवचनानीमानि रात्रेः तृतीयप्रहरा-  
र्द्धार्द्धं चतुर्दशीयोगविषयाणि ।

यथा लिङ्गपुराणे,—

शिवरात्रिर्नते भूतां कामविद्धां विवर्जयेत् ।

एकेनैवोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

तथा,—

शिवा घोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी ।

कुह्ययुक्तैव<sup>१</sup> कर्त्तव्या कुक्कामपि च पारणम् ॥

शिवरात्रिः फाल्गुने, अघोरचतुर्दशी भाद्रे, प्रेतचतुर्दशी  
कार्तिके, सावित्री ज्येष्ठे, एतत्सर्वं प्राधान्यतो निदर्शनमात्रम् ।

स्कन्दपुराणे,—

माघासिते भूतदिनं हि राज-

क्षुपेति योगं यदि पञ्चदशा ।

जयाप्रयुक्तां न तु तत्र कुर्व्या

च्छिवस्य रात्रिं प्रियवृच्छिवस्य ॥

जयया प्रकर्षेण युक्तां प्रकर्षस्तु तृतीयप्रहरार्द्धाधिकयोगः ।

माघासित इति मुख्यचान्द्राभिप्रायेण गौणचान्द्रे तु सा  
फाल्गुनस्येति ।

तथा शिवागमे ।

कुम्भसंख्ये सहस्रांशौ या तु कृष्णा चतुर्दशी ।  
तत्रोपवासः कर्त्तव्यो भाघे वापि तिथिक्रमात् ॥  
भाघे सौर इत्यर्थः ।

भविष्ये,—

भाघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।  
शिवरात्रिस्तु सा ख्याता सर्वकामफलप्रदा ॥

तथा,—

फाल्गुनस्य च कृष्णायां चतुर्दशीं सुरेश्वरि ।  
अहं यास्यामि भृष्टे रात्रौ मातङ्गगामिनि ॥  
लिङ्गेषु च समस्तेषु स्थावरेषु चरेषु च ।  
संक्रमिथ्याम्यसंदिग्धं सर्वपापविशुद्धये ॥

अत्र रात्रावित्यनेन रात्रिव्रतमित्युक्तम् ।

तथा शैवागमे,—

कुम्भसंख्ये सहस्रांशौ कृष्णा शिवचतुर्दशी ।  
रात्रियोगे तु कर्त्तव्या जागरादिसमन्विता ॥  
प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजाञ्चैव विशेषतः ।  
शिवलिङ्गस्य कुर्वीत अर्घ्यदानञ्च भक्तिः ॥

यस्तु स्कन्दपुराणवचनम्,—

भाघफाल्गुनयोर्मध्ये या स्यात् शिवचतुर्दशी ।  
अनङ्गेन समायुक्ता कर्त्तव्या सा सदा तिथिः ॥  
जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च ।

पूर्वविद्वैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥ इति ।

तत् रात्रिप्रहरत्रयाभ्यन्तरे चतुर्दशीयोगे मन्तव्यं एवमन्यान्यपि  
वचनानि ज्ञेयानि । अनङ्गस्तिथिस्तयोदशी तिथिभान्ते पारण  
मिति रोहिण्यष्टमीविषयं नचर्त्तस्त्रेखेन तत्रोपवासविधानात् ।

इति चतुर्दशीव्यवस्था ॥

अथ पौर्णमासीकृत्यम् ।

भवित्ये,—

पौर्णमास्यान्तु यः सोमं पूजयेद्भक्तिमान्नरः ।

प्रजावृद्धिं धनं धान्यं कामानिष्टान् लभेत सः ॥

शङ्करगीतायाम्,—

यथावत् पौर्णमास्यान्तु स्रोतस्त्रेवोत्तरामुखे ।

स्नात्वा प्रेतपुरीं हित्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥

आषाढीकार्तिकीमाघीवैशाखीषु कृतन्तु यत् ।

तदनन्तफलं प्रोक्तं स्नानदानजपादिकम् ॥

माससंज्ञे यदा ऋते चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ।

गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्यता ॥

मासस्य संज्ञा यस्मात् तन्माससंज्ञं । कार्तिके वृत्तिका, मार्ग-  
शीर्षे मृगशिरा, पौषे पुष्या, माघे मघेत्यादयः । तस्मिन्नचत्रे सम्पूर्ण-  
मण्डलः पौर्णमासीगतश्चन्द्रो यदा गुरुणा संयोगं याति गुरुरपि  
तस्मिन्नचत्रे तिष्ठतीत्यर्थः तदा सा तिथिः पौर्णमासी महती स्यता  
महाकार्तिकी महामार्गशीर्षी महापौषीत्यादयः स्तुः ।

तथा ज्योतिषे,—  
सहितौ यत्र दृश्येते दिवि चन्द्रदृश्यते ।  
पौर्णमासी तु महती सर्वपापहरा तिथिः ॥

तथा,—  
चन्द्रमा मासश्चक्षु देवाचार्यस्तथैव च ।  
मिलन्ति द्वादशाब्दान्ते तन्महत्वं तिथेः स्मृतम् ॥  
रोहिणीनक्षत्रयोगेऽपि महाकार्तिकी महाब्रह्मपुराणे,—  
अग्नेयन्तु यदा ऋचं कार्तिक्यां भवति क्वचित् ।  
महती सा तिथिः प्रोक्ता स्नानदानेषु चोत्तमा ॥  
यदा याम्यं हि भवति ऋचं तस्यां तिथौ क्वचित् ।  
तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥  
प्राजापत्यं यदा ऋचं तिथौ तस्यां नराधिप ।  
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥  
प्राजापत्यं रोहिणी । महाज्यैष्ठ्यविशेषमाह राजमार्तण्डे,—  
ऐन्द्रे शशी गुरुश्चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।  
पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठ्ये प्रकीर्तिता ॥  
ऐन्द्रं ज्येष्ठा, प्राजापत्यं रोहिणी, गुरुवारे रोहिणीस्वरवौ  
चेति महाज्यैष्ठ्यफलभूयस्त्वप्रदर्शनपरं महत्तन्तु सकलमाससाधारण-  
लक्षणादेवेति ।  
अतएव नानासु निवचनेषु गुरुवाराद्यतिरेकेणापि योग उक्तः ।

यथा व्याघ्रः,—

ऐन्द्र<sup>१</sup> च्छेऽथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदा स्थितौ ।

पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठौ प्रकीर्तिता ॥

ऐन्द्रं ज्येष्ठा मैत्रमनुराधा, अत्र गुरुवारादियोगो नोक्तः । अनु-  
राधास्थितयोरपि गुरुचन्द्रयोर्महाज्यैष्ठौति योगान्तरमप्युक्तम् ।

तथा ज्योतिषे,—

ऐन्द्रे मैत्रे यदा जीवस्तत्पञ्चदशके रविः ।

पूर्णिमा शक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठौ प्रकीर्तिता ॥

ऐन्द्रस्य पञ्चदशच्छत्रं मृगशिरा, मैत्रस्य पञ्चदशं रोहिणी ।

अतः सौराषाढेऽपि कदाचित् स्यात् ।

अतएव कालविवेके,—

<sup>१</sup>ऐन्द्रे चन्द्रसुराचार्यौ वृषे युग्मेऽथवा रवौ ।

पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठौ प्रकीर्तिता ॥

युग्मे मिथुने इत्यर्थः । राशिद्वयेऽपि रोहिणीमृगशिरसोर-  
न्यतमस्ये रवावेव पूर्ववचनात् ।

तथा],—

ऐन्द्रे चन्द्रसुराचार्यौ सौम्ये धातरि वा रविः ।

पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठौ प्रकीर्तिता ॥

योगान्तरमाह राजमार्तण्डे,—

सवत्सरे यदा वर्षे ज्यैष्ठमासस्य पूर्णिमा ।

ज्येष्ठाभेन समायुक्ता महाज्यैष्ठौ भवेत्तदा ॥

संवत्सरसंज्ञके वर्षे स च बार्हस्पत्यव्यवस्थया वत्सरपञ्चकस्य  
प्रथमवर्षे ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ।

तथा विष्णुधर्म,—

संवत्सरस्य प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।

इदाख्यस्य तृतीयोऽत्र चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥

उत्पत्सरस्य कथितस्तथा चैवात्र पञ्चमः ।

तीर्थविशेषेषु महामाघ्यादीनां फलमाह भविष्ये,—

महामाघी प्रयागे तु नैमिषे फाल्गुनी तथा ।

शालग्रामे महाचैत्री कृताः स्युः सुमहाफलाः ॥

गङ्गास्नाने तु वैशाखी ज्यैष्ठी तु पुरुषोत्तमे ।

आषाढी वै कनखले केदारे श्रावणी तथा ॥

महाभाद्री वदर्प्याञ्च कुजाम्ने च महाश्विनी ।

पुष्करे कार्तिकी कान्यकुब्जे मार्गश्रिरौ तथा ॥

अयोध्यायां महापौषी कृताः स्युः सुमहाफलाः ।

शालग्रामतीर्थे गण्डक्यां फाल्गुनादिष्वपि महच्छब्दोऽनुषज्यते ।

भविष्ये,—

महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत् पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।

विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमञ्जनात् ॥

महाज्यैष्ठी सुरश्रेष्ठ कृतानन्तफलप्रदा ।

तस्यान्तु जाङ्गवीस्नानं सूर्य्यगहशताधिकम् ॥

तथा,—

महाज्यैष्ठ्यान्तु संदृश्य पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।

परावरान् समुद्धृत्य न भूयः पुरुषो भवेत् ॥  
महाज्यैष्ठ्यां नरो दृष्ट्वा प्रयतः पुरुषोत्तमम् ।  
ऊर्ध्वध्वजांशुकं सर्वान् पितृस्तारयतेऽचिरात् ॥

आदिब्राह्मे,—

कृष्ण दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां रामं भद्रां च भो द्विजाः ।  
नरो द्वादश्यात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥  
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु सर्वेध्यायतनेषु च ।  
यत् फलं स्नानदानेन राज्ञ्यस्ते निशाकरे ॥  
तत् फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां क्षमेन्नरः ।  
अथामावस्थाकृत्यम् ।

विष्णुपुराणे,—

न निर्वपति यः आर्द्धं प्रमीतपितृको द्विजः ।  
इन्दुचये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥

भविष्ये,—

दर्शं स्नात्वा पितृभ्यस्तु दद्यात् कृष्णतिलोदकम् ।  
आर्द्धञ्च विधिवद्द्यात् सन्ततिस्तेन बद्धते ॥

वायुपुराणे,—

अमावस्यां प्रयत्नेन आर्द्धं कुर्वन् शुचिः सदा ।  
सर्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गञ्चानन्तमश्नुते ॥

मातृस्ये,—

समां यावद्भवेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः ।  
समान्ते आर्द्धकृद्वाश्च दद्यात् वत्सपयस्त्रिणीः ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

वासांसि रुचिराण्येव जलकुम्भयुतानि च ।  
 स याति वैष्णवं लोकं पितृणान्तारयेच्छतम् ॥  
 कल्पान्ते राजराजः स्यात् पितृव्रतमिदं स्मृतम् ।  
 पञ्चदशत्रामावास्या पितृव्रतत्वात् ॥

अथ तिथिनिषिद्धानि ।

राजमार्तण्डे,—

प्रतिपद्यनपत्यः स्यात्तृतीयायामपत्नीकः ।  
 दशम्यामधनः स्नाने सर्वं हन्ति त्रयोदशी ॥  
 भोगार्थं क्रियते यत्तु स्नानं यादृच्छिकं नरैः ।  
 तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिकादहिः ॥

व्यासः,—

दशमी नवमी चैव प्रतिपच्च त्रयोदशी ।  
 तृतीया तु विशेषेण स्नाने चैता विवर्जयेत् ॥

स्त्रियाः स्नाननिषेधमाह गार्ग्यः,—

नवमी पुत्रनाशाय खनाशाय त्रयोदशी ।  
 तृतीया भर्तृनाशाय स्नाने ता वर्जयेदतः ॥  
 द्वादश्यां कृष्णपक्षे तु न स्नातव्यं कदाचन ।  
 सुतसन्तानमिच्छन्निपवर्गपरैरपि ॥

आवालः,—

त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्याञ्च विशेषतः ।  
 शूद्रविट्त्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथञ्चन ॥



व्यासः,—

नन्दायां वत्सरेऽतीते निर्वर्त्य चापि मङ्गलम् ।  
 अतुल्यं सुहृदन्धून् पूजयित्वा देवताः ॥  
 धर्मविन्नाचरेत् स्नानमाङ्गिकञ्च पुनः पुनः ।  
 तर्पणं वैश्वदेवञ्च ब्रह्मयज्ञञ्च नाचरेत् ॥

निगमः,—

नावर्त्तयेत् पुण्यकर्म्म तर्पणादिकमन्वहम् ।  
 काम्यनैमित्तिके हिला एकां ह्येकत्र वासरे ॥

एकां केवल । षट्त्रिंशन्मतम्,—

दर्शं स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोस्तु जीवतोः ।  
 नवम्याञ्च न चेत्तत्र निमित्तान्तरसम्भवः ॥

सर्व एवायं निषेधो भोगार्थस्नान एव न वैधस्नाने, अन्यथा-  
 चरितार्थस्य वैधवाधाच्चमत्वात् ।

अतएव वशिष्ठः,—

पुत्रजन्मनि संक्रान्त्यां श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

• नित्यस्नाने च कर्त्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते ॥

वचनमिदं वैधस्नानोपलक्षकं उक्तयुक्तेः । अतएव राजमार्त्तण्डे  
 नित्यनैमित्तिकादहिरित्युक्तम् ।

राजमार्त्तण्डे,—

प्रतिपच्च द्वितीया च दशमी च त्रयोदशी ।

शुक्लस्नानं न कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥

शुक्लस्नानं रोगान्मुक्तिस्नानम् ।

बौधायनः,—

अमावास्यां नवम्याञ्च सप्तम्याञ्च विशेषतः ।

धात्रीफलानि यत्नेन दूरतः परिवर्जयेत् ॥

षट्चिंशन्मतम्,—

दर्शं नवम्यां सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे ।

चन्द्रसूर्यापरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत् ॥

भविष्ये,—

तिलैः स्नानं महापुण्यं कुर्यादामलकैः प्रिये<sup>१</sup> ।

सप्तमी नवमी दर्शं रविसंक्रमणादृते ॥

तुष्यत्यामलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः ।

सर्वकालं तिलैः स्नानमिति व्यासोऽब्रवीन्मुनिः ॥

तथा,—

नवम्यां न सृष्टेत्तैलं नीलीवस्त्रं न धारयेत् ।

न चाप्यामलकैः स्नायात् न कुर्यात् कलहं नरः ॥

शातातपः,—

षष्ठ्यष्टमी पञ्चदशी उभौ पक्षौ चतुर्दशी ।

अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे चुरे ॥

षष्ठ्यां तैलमनायुष्यमष्टम्यां पिशितं तथा ।

चुरकर्म्म चतुर्दश्यां तथा पर्वसु मैथुनम् ॥

षष्ठ्यादिषु यथासंख्येन तैलादिनिषेधो न तु समुदयेनेति  
विवृणोति षष्ठ्यां तैलमनायुष्यमित्यादि, अन्यथा एतद्वचनस्य वैयर्थ्य-

प्रसङ्गः । तर्ह्यष्टम्यादिषु तैलवस्त्रादीनां कथं वर्ज्जनमिति चेद्वचना-  
न्तरादिति ब्रूमः ।

यथा विष्णुपुराणे,—

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याय पूर्णिमा ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसक्रान्तिरेव च ॥

स्त्रीतैलमांससम्भोगी पर्वस्त्रेतेषु वै पुमान् ।

विन्मूत्रभोजन नाम प्रयाति नरकं मृतः ॥

तर्हि किमर्थं शातातपवचने यथासंख्यविधानं, सत्यं, षष्ठ्यां  
तैलमात्रनिषेधार्थं अष्टम्यादिषु मांसादीनां निन्दातिशयार्थञ्च ।  
अतएवानेकवचनेषु षष्ठ्यां तैलमात्रनिषेधः श्रूयते ।

यथा भविष्ये,—

प्रतिपत्सु नवम्याञ्च षष्ठ्यां पञ्चसु पर्वसु ।

अभ्यङ्गनस्य पादाद्यैस्तैल नैव स्पृशेन्नरः ॥

स्मृतिसमुच्चये,—

पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायाञ्च तथा तिथौ ।

तैलेनाभ्यञ्जमानस्तु चतुर्भिरपि हीयते ॥

उपोषितस्य व्रतिनः कृत्तकेशस्य नापितैः ।

अवव्रीत्तिष्ठति ग्रीता यावत्तैलं न संस्पृशेत् ॥

रवौ रविवारे चतुर्भिरायुःप्रज्ञायशोवलैः ।

अङ्गिराः,—

दन्तकाष्ठममावस्यां चतुर्दश्यान्तु मैथुनम् ।

षष्ठ्यां तैलं तथाष्टम्यां पिशित वर्ज्येत् सदा ॥

मनुः,—

मांसाग्ने पौर्णमासी तैलाभ्यङ्गे चतुर्दशी ।

अष्टमी ग्राम्यधर्मा च ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥

ग्राम्यधर्मा मैथुन ज्वलन्तमपि पातयेदित्यनेन निन्दातिशय उक्तः ।

देवलः,—

पञ्चदशां चतुर्दशामष्टम्याञ्च विशेषतः ।

तैलं मांसं व्यवायञ्च चुरकर्मा च वर्जयेत् ॥

बौधायनः,—

पर्वसु नाधीयीत न स्त्रियमुपेयात् न मांसमश्रीयात् न तैलं  
स्पृशेत् न चुरकर्माचरेत् ।

पैठौनसिः,—

पर्वसु न तैलं न मैथुनं न चुरं न मांसमुपेयात् नामाव-  
स्थायां हरितमपि क्षिन्वात् ।

हारीतः,—

तैलं मांसं भगं चौरं सर्वपर्वसु वर्जयेत् ।

पर्वसु लक्ष्मीर्वसति तैले मांसे भगे चुरे ॥

एतेषु वचनेषु पर्वसु स्त्रीतैलमांसचुरकर्माणां सर्वेषां निषेधः,  
षष्ठ्यान्तु तैलमात्रस्यैवेति । एतेन केषाञ्चित् षष्ठ्यामपि स्त्रीमांस-  
वर्जनं भ्रमो हेय एवेति ।

सूतिसमुच्चये,—

सायंसन्ध्यां परान्नञ्च शिलापिष्टं तथैव च ।

अमावास्यां न सेवेत रात्रिभोजनमैथुने ॥

भविष्ये,—

सायंसन्ध्यां परास्त्रञ्च पुनर्भोजनमैथुनम् ।

तैलं मांसं शिलापिष्टममावास्यां विवर्जयेत् ॥

षट्त्रिंशन्मतम्,—

सक्रान्त्यां पञ्चदश्याञ्च द्वादश्यां आह्नुवासरे ।

वस्त्रं न पीडयेन्नैव चारेणापि च योजयेत् ॥

भविष्ये,—

निम्बस्य भक्षणं तैलं तिलैस्तरपणमञ्जनम् ।

सप्तम्यां नैव कुर्वीत कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥

सप्तम्यां स्पृशतस्तैलमिष्टा भार्या विनश्यति ।

शिरःकपालमन्त्राणि नखचर्म्मतिलांस्तथा ।

एतानि क्रमशो नित्यमष्टम्यादिषु वर्जयेत् ॥

शिरो नारिकेलमष्टम्यां कपालमलावुं नवम्यां अन्तःकलम्बिकां दशम्यां नखं शिम्बिकामेकादश्यां [चर्म्मं पूतिकां द्वादश्यां] तिलान् वार्त्ताकुत्रयोदश्यां वर्जयेत् । नारिकेलादीनां शिरःकपालादि-सादृश्यात्तद्व्यपदेशः वार्त्ताकुर्वीजानां तिलसादृश्यम् । अस्मादेव तिथिविशेषनिषेधादन्यत्र कलम्बीभक्षणं प्रतीयते सामान्यनिषेधस्तु दीर्घलताप्रतानरक्तकलम्बीपर इति प्राञ्चः । दोषविशेषार्थस्तिथिविशेषनिषेध इत्यन्ये ।

वामनपुराणे,—

चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलं

१ ग पुस्तके, [ ] चिह्नितार्थो नास्ति ।

चौरश्च षष्ठ्यां प्रतिपत्तु वर्ज्यम् ।  
 मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं  
 योषिन्मघाह्नतिकमूलभेषु ॥  
 नाभ्यङ्गमर्कं न च भूमिपुत्रे  
 चौरन्तु शुक्रे च कुजे च मांसम् ।  
 बुधे च योषां न समाचरेत्  
 श्रेष्वेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ॥

ज्योतिषे,—

पुत्रनाशो यशो मृत्युर्विन्तं सम्पद्भनक्षयः ।  
 आयुरर्कादिवारेषु तैलाभ्यङ्गाद्यथाक्रम ॥

गार्ग्ये,—

पञ्चमी दशमी चैव तृतीया च त्रयोदशी ।  
 एकादशी द्वितीया च पक्षयोरुभयोरपि ॥  
 अभ्यङ्गस्पर्शनाद्यैर्योऽत्र तैलं निषेवते ।  
 चतुर्णां तस्य दृष्टिः स्याद्भुजापत्यवलायुषाम् ॥

अथ कस्तैलशब्दार्थः । तत्र केचित् स्नेहमात्रे तैलपदं रूढं  
 सर्षपैरण्डकरञ्जतैलादिप्रयोगात् शिशुमारतैलादिप्रयोगाच्च, तन्न,  
 ह्येतेऽपि तैलपदप्रयोगप्रसङ्गात् ।

अन्ये तु वीजभवस्नेहे रूढं प्राणिभवस्नेहे तु तैलपदं भाक्तमिति  
 वदन्ति, तदपि मन्दं वैपरौत्यस्य सुवचत्वात् ।

वस्तुतस्तु तिलभवस्नेहे यौगिकं तैलपदं, न च तिलमोदकादि-  
 खतिप्रसङ्ग इति वाच्यं पद्मजशब्दे यद्भवत् स्नेहत्वमत्र प्रयोगोपाधि-

रिति । नचावयवशक्तेर्विलम्बितप्रतीतिरुत्पत्तेन लाघवात् बीजप्रभव-  
स्नेहे वर्षासु रथकार आदधीतेतिवदिति वाच्यं कृत्तयोगसम्भवे  
रूढिकल्पनाया अन्याय्यत्वात्<sup>१</sup> कल्पनागौरवात् ।

तदुक्तं भट्टपादैः,—

लभ्यात्मिका सती रूढिर्भवेद्योगापहारिणी ।

कल्पनीया तु लभते नात्मानं योगवाधतः ॥ इति ।

अतएव प्रोक्षणावासादयेदित्यत्र प्रोक्षणीपदं न सञ्ज्ञतास्वरूढं  
किन्तु प्रोक्षणकरणयोगाद्यौगिकमेवेत्युक्तं वर्षासु रथकार आद-  
धीतेत्यत्र तु सङ्करजातिविशेषे रथकारशब्दस्य रूढिः कृतेति न  
यौगिकरथकर्तृत्वैवर्णिकपरता अवयवशक्तिविमर्शात् विलम्बितप्रती-  
तेरतः कृत्तरूढेरेव योगापहारित्वम् ।

तथाचोक्तं रूढिर्योगं व्याहन्तीति ।

कल्पनीया तु रूढिर्न कृत्त योग वाधितुमीष्टे स्वयमसिद्धत्वा-  
दिति सार्षपादिस्नेहे तैलपदं लाक्षणिकं अतएव तत्र सार्षपं तैल-  
मित्यादिषोपपदप्रयोग एव, निरूपपदतैलपदन्तु तिलभवस्नेहस्यैव  
प्रतीतिरुद्दिश्यतस्तत्रैव विधिनिषेधाविति ।

यत्तु घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्तत इत्यादौ तिलतैलपद-  
स्नेहे तिलजिति पाणिनिसूत्रात् स्नेहानुविहितेन तैलच् प्रत्ययेन  
सिद्धं अतएव तु यस्य यवा भातुः प्रजावतीत्यादिवत् तिलस्य  
तैलमिति प्रयोगोऽशुद्ध एव । एतानि तैलानि हेमन्ते सुखानी-

त्यादौ तु क्वचिनो गच्छन्तीतिवदजहत्कार्यलक्षणया मार्षपादिहेतो-  
ऽपि लक्ष्यते, वक्तुस्तथैव तात्पर्यात् विधिनिषेधयोस्तु लक्षणाप्रमाणा-  
भावादिति । अतएव अतैलं मार्षपं तैलमिति वचनम् । पक्वतैलं  
तु न निषेधविषयम् ।  
यथा स्मृतिसमुच्चये व्यासः,—

अमावास्यां न गच्छेत प्राप्तकालामपि स्त्रियम् ।  
तैलञ्च न सृष्टेदामं वृक्षादींश्छेदयेन्न च ॥  
अत्राममिति श्रवणात् पक्वतैले दोषाभावः प्रतीयते ।  
एवञ्च पूर्वोक्तविष्णुपुराणादिवचनेषु तैलपदमपक्वपर मन्तव्यम्  
तथाच षट्त्रिंशन्मतनाम्ना वचनं पठन्ति ।  
आदित्यादिषु वारेषु निषिद्धास्तु तिथिष्वपि ।  
स्नाते वा यदि वाऽस्नाते पक्वतैलं न दूयति ॥  
मार्षये तामे इव न दोषः निषेधविरहादिति श्रिष्टाचारो-  
ऽप्येवम् ॥

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वमाधाय हृदयान्तरे ।  
सूर्येन्दोरधुना सम्यगुपरागो विविच्यते ॥  
ग्रहणयोग उक्तो ज्योतिषे,—

षट्काष्टके वाप्यथ सप्तमे वा  
द्विर्दादशे वा तमसो युतौ वा ।  
राकावशेषे ग्रहणं सुधांशो-  
र्दंशविशेषे कमलैकबन्धोः ॥  
तमसो राहोः । राका पौर्णमासी । अत्रापि राज्ञा केतुना



वा सह चन्द्रस्य नक्षत्रपादचतुष्टयाभ्यन्तरे यद्यवस्थानं स्यात् तदैव चन्द्रग्रहणं नान्यथेति ।

एवं राज्ञा केतुना वा सह नक्षत्रपादत्रयाभ्यन्तरे सूर्य-  
स्थावस्थान यदि स्यात्तदैव सूर्यग्रहणं नान्यथा तत्रापि कदा-  
चिद्वाभिचारो गणनया निर्णयः सा च गणना जातकार्णवयन्धे  
मया विवृतेति ।

विष्णुधर्मोत्तरे राज्ञं प्रति ब्रह्मवाक्यम्,—

पर्वकाले च सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ क्वादयिष्यति ।

भूमिक्वायानुगच्छन्सन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥

संक्वादयिष्यसि यदा तदा भावमवाप्स्यसि ।

स्नाने जप्ये तथा दाने होमे आद्वे सुरार्चने ॥

पुण्यः स कालो भविता नित्यमेवासुरेश्वर ।

भाव प्रीतिं पर्वकाल इत्यभिधानात् अपर्वंश्रुत्यातग्रहणस्य न  
पुण्यकालत्वमित्यभिहितम् । अत्र चन्द्रसूर्योपरागस्य निमित्तत्व  
प्रतीयते ।

तथा शातातपः,—

अयने विषुवे<sup>१</sup> चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।

अहोरात्रोषितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

ब्रह्मपुराणे,—

नित्यं दयोरयनयोस्तथा विषुवतोर्दयोः ।

चन्द्रार्कयोर्ग्रहणयोर्ब्रह्मपातेषु पर्वसु ॥

अहोरात्रोषितः स्नानं आर्द्धं दानं तथा जपम् ।

यः करोति प्रसन्नात्मा तस्य स्यादक्षयश्च तत् ॥

नित्यं सर्वदा सायाह्नादिनिषिद्धकालेष्वपीत्यर्थः । अहोरात्रो-  
षितः पूर्वं दिने कृतोपवास<sup>१</sup> इत्यर्थः । अतीतार्थकप्रत्ययनिर्देशात्  
इदन्तु नावश्यकं किन्तु फलभूमार्थं फलविशेषोक्तेः ।

तथा ज्योतिःशास्त्रे,—

यस्तिरात्रमुपोष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह ॥

एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च भक्तितः ।

कञ्चुकादिव सर्पस्य निष्कृतिः पापकोषतः ॥

व्यासः,—

ग्रहे सूर्ये तथा चन्द्रे यस्तु आर्द्धं प्रकल्पते ।

तेनेयं सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥

छन्दोगपरिशिष्टम्,—

सुर्धुन्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले ।

कूपस्थान्यपि चन्द्रार्कग्रहणे नात्र संग्रथ' ॥

गारुडे,—

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम् ।

स स्नात' सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥

इत्यादिनानामुनिवचनेषु ग्रहणमात्रनिमित्तता प्रतिपाद्यते  
वैदिके तु कर्मणि ज्ञातस्यैव निमित्तत्वं क्लृप्तं अन्यथाऽसत्कल्पतया

१ ख पुस्तके, पूर्वदिनकृतोपवास ।

पुरुषप्रवृत्तेरभावात्, अथवा नैमित्तिके निमित्तनिश्चयवानधि-  
कारी भवतीति<sup>१</sup> निमित्तज्ञानमवश्यमपेक्षणीयं तच्च ज्ञानं चाक्षुष-  
मेव दर्शनप्रतिपादकं वज्रतरवचनात् ।

यथा ज्ञातातपः,—

सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यं आङ्ग वै राज्ञदर्शने ।

अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति ॥

यस्याल्पधनस्य आङ्गकरणेन सर्व्वस्वव्ययो भवति तेनापि कर्त्तव्यं  
एतेन पङ्के गौरिव सीदतीत्यनेन च आङ्गस्य निमित्तत्वं दर्शितम् ।

यमः,—

स्नानं दानं जपः आङ्गमनन्तं राज्ञदर्शने ।

आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्ज्येत् ॥

विष्णुः,—

सन्ध्यारात्र्योर्न कर्त्तव्यं आङ्गं खलु विचक्षणैः ।

तयोरपि च कर्त्तव्यं यदि स्याद्राङ्गदर्शनम् ॥

राङ्गदर्शनदत्तं हि आङ्गमाचञ्चतारकम् ।

गुणवत् सर्व्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठते ॥

देवस्तः,—

राङ्गदर्शनमक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु ।

स्नानदानादिकं कुर्य्यर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥

पराशरः,—

दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते ।

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥  
 इत्यादिषु दर्शनपदअवणात् दृशेच्च चाचुषज्ञान एव मुख्यत्वात्  
 ज्ञानमात्रपरत्वे लक्षणाप्रसङ्गात् रात्रौ सूर्यग्रहे दिवा चन्द्रग्रहे च  
 मेघच्छतया राज्ञदर्शनाभावे स्नानादिकं न कर्तव्यमेवेति  
 निमित्तस्य चाचुषज्ञानस्याभावात् ।  
 अतएव ज्योतिषे,—  
 रात्रौ सूर्यग्रहश्चन्द्रग्रहो यदि भवेद्दिवा ।  
 अनादिशतम राज्ञे यच्च सूक्ष्मतमं भवेत् ॥

न च,—

नेचेतोद्यन्तमादित्यं नास्त्य चान्त कदाचन ।  
 नोपसृष्टं न वारिस्थ न मध्यं नभसो गतम् ॥  
 इति मतुवक्षणात् दर्शननिषेधाद्दर्शनपदमत्र ज्ञानमात्रपरमिति  
 वाच्यं, रागप्राप्तद्वितीयादिदर्शनमादाय निषेधस्य चरितार्थत्वात्  
 वैधस्नानाद्यङ्गभूतप्रथमराज्ञदर्शनस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् अङ्गस्यापि  
 विधिप्रयुक्तत्वात् अन्यथासिद्धस्य वैधाङ्गवाधाच्चमत्वात् अतएव मा-  
 हित्यात् सर्वाभूतानीति प्रागप्राप्तहिंसैव निषिध्यते न तु पशु-  
 यागाङ्गहिंसैति । तच्च चाचुषं स्नानादिकर्तुरेव प्रकृतत्वात्  
 लाघवाच्च, एवञ्च स्पष्टेऽपि शास्त्रेऽप्युक्तो नाधिकारः । कल्पतरु-  
 कारस्यापि मतमेतत् ।  
 ननु स्नानादिक्रियाकाले सर्वदा दर्शनस्यासम्भवादतीतमेव  
 ग्रहणदर्शनमधिकारसम्पादकं तदा च ग्रहणकालात् परमपि क-  
 स्नानादिकं न प्रसज्येत दृष्टवतोऽधिकारात् ।

सत्यम्,—

सक्रान्ते. पुण्यकालस्तु<sup>१</sup> षोडशोभयतः कला ।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव यावद्दर्शनगोचरः ॥

इति जावालेन दर्शनयोग्यकालस्य पुण्यकालत्वप्रतिपादनात् योग्यता च पुनर्दर्शने शब्दोपग्रीव्यतिरिक्तवाधकमानाभावः स च मेघवृक्षादिव्यवधानेऽप्यस्ति मेघाद्यपसरणेन पुनर्ग्रासदर्शनस्य सम्भवात् मेघाद्यावृत्तत्वेन दर्शनाभावस्थानुमानायोगात् दिवाचन्द्रग्रहरात्रिसूर्यग्रहयोस्तु दिवातनत्वादिना दर्शनाभावोऽनुमातुं शक्यत एव एव ग्रासं दृष्टवतोऽपि गस्तास्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः सत्यपि ग्रासे न कर्मानुष्ठान पुनर्दर्शनवाधे प्रमाणसम्भवात्<sup>२</sup> । एतेन वर्त्तमानग्रहणमेव कर्माङ्गमित्युक्ता गस्तास्तानन्तरमपि स्नानादिकं कर्त्तव्यमिति यत् कैश्चिदुक्तं तन्निरस्तम् । जावालेन यावद्ग्रहणमित्यनभिधाय यावद्दर्शनगोचर इत्युक्ता दर्शनयोग्यकालस्यैव प्रतिपादनात् दर्शनयोग्यता च दिवाचन्द्रग्रहरात्रिसूर्यग्रहयोर्नास्तीति सर्व्वसम्मतमेवेति ।

अन्ये तु, प्रयत्नानपेयप्रतिबन्धकविरहो योग्यतेत्याहुः, तद्युक्तं दर्शनोत्तरं मेघवृक्षे ग्रासेऽनधिकारः स्यात् मेघस्यापि प्रयत्नानपेयत्वात् ।

यत्तु जीमूतवाहनेनोक्तं दर्शनपदं चक्षुर्मूलकज्ञानपरं चक्षुर्मूलता च ज्ञानस्य साक्षात् परम्परया वा ततश्चान्वस्थान्येन दृष्टाभिहिते

१ क पुस्तके, मुख्यकालस्तु ।

२ ख पुस्तके, •सद्भावात् ।

ग्रहणे स्नानाद्यधिकारः चाक्षुषज्ञानमूलाप्रवाक्यजन्यज्ञानयोगिता-  
दिति । तन्मन्दम् । न हि दर्शनपदं चक्षुर्मूलकज्ञानवाचक अनु-  
मित्यादेरपि दर्शनपदार्थत्वापत्तेः किन्तु चक्षुर्विषयसन्निकर्षज-  
ज्ञानाभिधायकं तदा च चक्षुर्मूलकज्ञानपरत्वे लक्षणापत्तिरिति  
अतो नान्धस्याधिकारः ।

अन्ये तु, पूर्वोक्तयमविष्णुशातातपदेवलादिवचनेषु राज्ञदर्शनस्यैव  
निमित्तत्वमवगम्यते ततश्च नैमित्तिके निमित्तनिश्चयवानधिकारीति  
निमित्तस्य राज्ञविषयकचाक्षुषज्ञानस्य ज्ञानान्तरमपेक्षणीयं तदा  
च आप्तवाक्यादिप्रमाणेन राज्ञदर्शनरूपनिमित्तस्य निश्चयज्ञाना-  
न्तरसम्भाव एव स्नानदानादिकर्मणामधिकारः । यत्र चाक्षुषज्ञान-  
मात्रं तस्य तत्कार्यव्यवसायरूपज्ञानान्तरसम्भाव अर्थव्यवसायाभावेन  
हि तस्य प्रमाणाभावात् । दिवाचन्द्रोपरागादिस्थले तु दीपान्तर-  
वासिनां चाक्षुषज्ञानस्य शब्दादिप्रमाणावेद्यतया निश्चयाभावाच्चि-  
मित्तत्वाभावः । ततो राज्ञमदृष्टाप्यन्यदीयराज्ञविषयकचाक्षुषज्ञानं  
प्रमाणेनावधार्य स्नानादिकं कार्यं अतएव श्रीभागवते सूर्यग्रहणे-  
ऽन्धस्य धृतराष्ट्रस्य समागमनवर्णनं सङ्गच्छते इति नारायणो-  
पाध्यायेनापि समयप्रकाशे ग्रहणस्नानादावन्धस्याधिकारोऽस्तीत्युक्त-  
मित्याहुः ।

तदपि मन्दम् । यद्यपि पूर्वोक्तवचनेषु कश्चित् ग्रहणस्य कश्चित्  
राज्ञदर्शनस्य च निमित्तत्वमवगम्यते तथापि लाघवात् ग्रहणमेव  
निमित्तं न तु राज्ञदर्शनं तस्य ज्ञानान्तरापेक्षणेन गौरवयस्तत्वात्  
तदा च नैमित्तिके निमित्तनिश्चयवानधिकारीति न्यायस्त

निमित्तस्य ग्रहणस्य ज्ञान यमदेवतादिवचनैश्चाक्षुषतया विशिष्यते  
ततश्चान्यदृष्टे ग्रासे नान्यस्याधिकारः किञ्च भवतु वा राज्ञदर्शनं  
निमित्तं तथापि प्रकृतत्वान्नाघवाच्च विधिवाक्योपस्थापितस्नानादि-  
कर्तुः स्वीयदर्शनस्यैव निमित्तत्वं न त्वन्यस्येति । यत्तु श्रीभागवते  
सूर्यग्रहणे कुरुक्षेत्रे धृतराष्ट्रागमनमात्रं श्रूयते तत्तत्रागतानां  
बहूनां मुनीनां मित्राणां श्रीगोविन्दस्य च नमस्कारप्रियाज्ञापाद्यर्थं  
सङ्गच्छते इत्यलं वज्रना ।

राज्ञदर्शनस्याशुभसूचकत्वमाह वराहसंहितायाम्,—

जन्मसप्ताष्टरिप्ताङ्गदशमस्ये निशाकरे ।

दृष्टो रिष्टप्रदो राज्ञर्जन्मर्चे निधनेऽपि च ॥

रिप्तां द्वादश अङ्गो नवमस्थानं जन्मर्चं त्रिजन्मनचत्रं निधनं  
चयोविशनचत्रम् । तथाच तत्रैव,—

वैनाशिके च्छत्रे दृष्टं ग्रहणं सुधांशुभास्करयोः ।

जनयति रोगं वज्रधा क्लेशं वित्तचयश्चाशु ॥

दृष्ट इत्यनेनादर्शने रिष्टाभाव इत्यर्थः रिष्टमैहिकदुःख-  
रोगादिपीडा ।

यच्च,—

जन्मसप्ताष्टरिप्तेषु चतुर्थे दशमे तथा ।

नवमे च निशानाथे न कुर्याद्राज्ञदर्शनम् ॥

इति राजमार्त्तण्डनाम्ना गङ्गावाक्यावलीकारेण राज्ञदर्शन-  
निषेधविधायक वचनं लिखितं तत् राजमार्त्तण्डेऽदृष्टतया

१ ख पुस्तके, नवस्थानं ।

निर्मूलमिति प्रतिभाति समूलत्वेऽपि निषेधोऽयं न सर्वसाधारण-  
विषयः किन्तु विन्यस्तसमूलवचनैकवाक्यतया रिष्टपरिहारेच्छुना  
जन्मादिचन्द्रे चिजन्मतारासु वैनाशिकनक्षत्रे च राक्षर्नेचित्य इति  
रिष्टपरिहारेच्छुविषय एव । तत्रापि ऐहिकाल्परिष्टदोषसहिष्णुना  
पश्चात् प्रतीकारेण तद्दोषप्रशमनेच्छुना वा स्नानदानश्राद्धादीनां  
पारलौकिकाक्षयफलाभिलाषुकेण राक्षरीचित्य एव ।

न चानिष्टसाधने कथं प्रवृत्तिरिति वाच्यं बलवदनिष्ठाननु-  
बन्धीष्टसाधनताज्ञानस्यैव प्रवर्त्तकत्वात् । दृश्यते हि लोके बलव-  
दिष्टमिष्टान्नादिवाञ्छायां स्वल्पक्लेशसाधने पाकादौ प्रवृत्तिः तथा  
शास्त्रीये श्लेष्मन्त्यागचिराचोपवासव्रतादावपि । अतएव रिष्टस्थले  
दर्शने प्रतीकारोऽपि वक्ष्यते ।

अथवा वैधक्रियानधिकारिगोचरं रागप्राप्तदर्शनमादाय निषेध-  
विधेश्चरितार्थत्वात् वैधस्नानाद्यङ्गभूतदर्शनं निषेद्धं न शक्यते अङ्गस्यापि  
विधिप्रयुक्तत्वात् न च वैधस्य निषेधः किन्तु रागप्राप्तस्यैव अन्यथा  
सिद्धस्य वैधवाधाक्षमत्वात् अतएव न पश्यागाङ्गहिंसाबाधः ।  
तथा नोपसृष्टमिति मनुवचनात् रागप्राप्तद्वितीयादिदर्शनस्यैव  
निषेधो न वैधस्येति प्रागुक्तम् ।

न च जन्मराशादिगतचन्द्रादिव्यतिरिक्तस्थले राक्षरीचित्य इति  
पर्युदासः, भवेदेवं यदि वीक्षणविधिर्मुख्यस्तिष्ठेत् न च तथा वीक्षण-  
स्थानुपादेयत्वात् किन्तु वीक्षणानन्तरं स्नानदानादीनामुपादेयत्वा-  
त्तेष्वेव विधिप्रवृत्तेः, दृश्यते च सर्व्वत्र स्नानदानादिव्येव विधिः । किञ्च  
उक्तप्रकारेण निषेधविधिसम्भवे पर्युदासलक्षणाया अन्याय्यत्वमेवेति ।



ग्रहणे च शावाशौचतुल्यमशौचं विमुक्तौ जन्माशौचत-  
मशौचम् । स्नानञ्च कार्यं

यथा ब्रह्माण्डपुराणे,— नात्, शावाशौ-

ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तौ सौतिकं सूतग्वचनात् ।

तत्रोत्पत्तिमात्रेण उपसृश्य क्रियाक्रमः ॥त् प्रागप्यशौचं

योऽरूपसृश्य स्नातेत्यर्थः सम्पत्तिमात्रेण भाण्डपरित्याग-

स्नानं न तु विलम्बः कार्यः । आशौचानन्तर-

ते सूर्य्ये रात्रौ मुक्तिं निणी मध्याह्नस्नान-

नस्नानानन्तरमेवेति वक्ष्यते यत्

तेन ग्रहणदर्शने यच्छावाशौचं तस्य

विमुक्तावशौचान्तरविधानमनर्थकं स्यात् । अतः ॥

तु,—

सूतके मृतके चैव सूतकं रात्रिदर्शने । वत् ॥

इति लिङ्गपुराणवचनं तद्वदपि रागादिना स्नानाकर्तुरशौचं  
बोधयति ।

वस्तुतस्तु,—

तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ।

इत्युत्तरार्द्धपर्यालोचनया सूतके मृतके नैव सूतकमित्येव पाठो  
जननमरणाशौचापवादक इति वक्ष्यते ।

तेनादौ मज्जनरूपं शुद्धिस्नानं कृत्वा षडङ्गस्य काम्यवैधस्नान-

जन्मादि] क्रिया<sup>१</sup> कार्या पुनरपि विमुक्तौ जन्माशौचं तस्यापि  
विषयः नै क्रिया कर्तव्या अस्मादेव मुक्तिस्नानानन्तरक्रिया-  
जन्मादिचन्द्रे चि गस्तास्ते चन्द्रे गणितागतमुक्तिकालं निर्णीय  
रिष्टपरिहारेच्छुत् तर्पणदेवाचानित्यश्राद्धादिकं कार्यमेव वक्ष्यमाण-  
पश्चात् प्रतीकारे नस्यैव तत्र चन्द्रोदयपर्यन्तं निषेधः ।  
पारलौकिकाचयपठन्ति,—

न चानिष्टसांख्यतश्चन्द्रो राहोरात्रनगोचरः ।  
वन्धीष्टसाधनताज्ञा मुक्तिकालान्तु स्नात्वा कार्या क्रिया बुधैः ॥  
दिष्टमिष्टान्नादिवाच्य मुक्तिकालान्तु स्नात्वा कार्या क्रिया बुधैः ॥  
शास्त्रीये श्येनसाग वाच्छन्नतया मुख्यदर्शनेऽपि मुक्तिकालं निर्णीय  
दर्शने प्रतीकारोऽपि देवाचार्वादिकं भोजनञ्च कार्यं नचाच दर्शनापेक्षा  
अथवा वैधक्रिय

विधेश्वरितार्थत्वात् वैवलवचने गस्तास्तएव विशेषो वक्ष्यते एवञ्च चिर-  
अतएव दत्तं न तिप्रसङ्गदोषोऽपि परिहृतः ।

मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृ-  
आकलय्य तु तं कालं भुञ्जीत ज्ञान  
अत्र शावाशौचजन्माशौचं तुल्यताभिधा,  
पाकस्थालीपक्वान्नयोऽस्यागः ।  
अतएव षट्त्रिंशन्मतम्,—

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राज्ञदर्शने

१ ग तर्पणक्रिया ।

२ ख पुस्तके, जन्माशौचपदं नास्ति ।

आलो  
एवञ्च मे  
शुद्धिज्ञानं कल  
वचनाभावात् ।  
अतएव दे  
दिनमेघावरणेऽ

स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत सूतमन्नं विवर्जयेत् ॥

एवञ्च ग्रहणादर्शनापि स्थालीपक्वान्नयोः स्नानञ्च कार्यं  
मुक्तिमात्रस्यैव जन्माशौचातिदेशनिमित्तत्वप्रतिपादनात्, श्रावाशौ-  
चातिदेशनिमित्तता तु ग्रहणदर्शनस्यैव षट्त्रिंशन्मतवचनात् ।

ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे मेघाच्छन्ने दर्शनात् प्रागप्यशौचं  
प्रसज्येत । श्रावाशौचातिदेशफलान्तु तत्कालस्यष्टमृन्मथभाण्डपरित्याग-  
संचेलस्नानादि । अतएव ग्रहणदर्शनस्नानं मुक्तिस्नानञ्चाशौचानन्तर-  
माद्यमर्पणपूर्वकसंचेलमज्जनरूपमेव, ग्रहणे स्नानान्तु मध्याह्नस्नान-  
विधिकं सतर्पणमेव । तेन,—

अहोरात्रञ्च नाश्रीयाच्चन्द्रसूर्यग्रहो यदा ।

मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा विधानतः ॥

सूर्याचन्द्रमसोलोकानक्षयान् याति मानवः ।

धौतपाश्चा विशुद्धात्मा मोदते दिवि देववत् ॥

इति शातातपेन स्नानं कृत्वा विधानत इति यदुक्तं तदशौचान्त-  
विधानतो मन्तव्यं ।

अत्र तद्दिने भोजनविधानात् अहोरात्रञ्च नाश्रीयादिति  
पूर्वदिनोपवासविधायकं काम्यम् ।

अहोरात्रोषितः स्नानं आर्द्धं दानं तथा जपम् ।

यः करोति प्रसन्नात्मा तस्य स्यादक्षयञ्च तत् ॥

इति पूर्वोक्तब्रह्मपुराणवचनसमानार्थं सूर्याचन्द्रमसोलोका-  
नित्यादिना फलकथनात् ।

अतएव मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीतेति मुक्तिदर्शनमपि काम्याधि-



कारिविषयं तेन कामिना दर्शनाभावे न भोक्तव्यं । अयञ्च काम्योप-  
वासः पुत्रवता गृहिणा न कार्यः ।

संक्रान्तौ रविवारे च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥

इति ब्रह्मपुराणे पारणोपवासयोर्निषेधात् ।

ब्रह्मपुराणे,—

नाश्रीयादथ तत्काले मुक्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः ।

मुक्तयोस्तु कृतस्नानः पश्चात् कुर्यात् स्ववेष्मनि ॥

तत्काले ग्रहणके, कुर्यादित्यत्राग्नमिति सम्बध्यते अश्रीया  
दिति प्रत्ययविपरिणामेनान्वधात् । स्ववेष्मनीति परान्नभोजन  
निषेधपरं । अत्र मुक्तयोरित्यभिधानात् कदाचिन्नेधादिमुक्त्य-  
दर्शनेऽपि मुक्तिमनुमाय स्नात्वा भोजनादिकं कार्यमिति प्रागुक्तं,  
ग्रस्तास्ते तु वचनादेव भोजननिषेधः ।

यथा देवलः ।

चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात् स्नात्वा विमुक्तयोः ।

अमुक्तयोरस्तगयो दृष्ट्वा स्नात्वा परेऽहनि ॥

अद्यात् स्नात्वा विमुक्तयोरिति नाथं भोजनविधिः रागप्राप्त-  
त्वात् नचावश्यं भुञ्जीतैवेति नियमविधिः पुत्रवद्गृहिगोचरत्वेनोपवास-  
निषेधवैयर्थ्यात् । सर्वेषामेव भोजनस्यावश्यभावनियमात् ततश्च  
परिसङ्ख्येयं मुक्तयोः सतोः स्नात्वैवाद्यात् न तु स्नानात् पूर्वमिति ।

अत्र विमुक्तयोरित्यभिधानात् मुक्तिनिर्णयमात्रं निमित्तं  
न तु दर्शनापेक्षेति प्रागुक्तं । एवञ्च ग्रस्तास्तेऽपि मुक्तिनिर्णयात् परं

भोजनप्राप्तावपवादमाह अमुक्तयोरस्तयोरिति अनोदयनिर्णयात् परमेव भोजनं न तु मुक्तिनिर्णयात् परमित्यर्थः । दृष्टेत्यस्य उदये निर्णीयेत्यर्थो वक्ष्यते ।

एवञ्च चन्द्रग्रहे वक्ष्यमाणवचनात्तद्दिने प्रातर्भोजनं परदिने तु रात्रावुदयं निर्णीय स्नात्वा भोजनं सूर्यग्रहे तु तन्मागपि भोजन-निषेधात्तद्दिने उपवास एव परदिने तदुदयनिर्णयात् परं स्नात्वा भोजनमिति । अयञ्चोपवासः पुत्रवद्गृहिणामपि, काम्यरागप्राप्तोप-वासमादाय निषेधविधेस्वरितार्थत्वात् अतिक्रमे यस्य प्रत्यवायस्त-स्योपवासस्य बाधाक्षमत्वात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव ।

ग्रहणन्तु भवेत्तत्र तत्पूर्वां भोजनक्रियाम् ॥

नाचरेत् सग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते ।

यावत् स्थानोदयस्तस्य नास्तीयात्तावदेव तु ॥

मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा परेऽहनि ।

दिवैकं रात्रौ चापरमिति भोजनद्वयं विहितम् ।

तत्र सूर्यग्रहात् पूर्वं दिवाभोजनं न कुर्यात् रात्रेः पूर्वाह्ने<sup>१</sup> चन्द्रग्रहे तत्पूर्वं दिवाभोजनं न कुर्यात् । रात्रिभोजनस्य तु सायं शशिश्रादिति वक्ष्यमाणनिषेधादिति । रात्रेः परार्द्धे तु चन्द्रग्रहे तत्पूर्वं रात्रिभोजनं न कुर्यात् दिवाभोजने तु न विरोधः ।

तथाच नारदीयपुराणम्,—

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा चन्द्रग्रहो भवेत् ।

सायं तत्र न भुञ्जीत नतु प्रातरभोजनम् ॥

तथा कामधेनुलिखितं कूर्मपुराणवचनम् ।

नाद्यात् सूर्यग्रहात् पूर्वमङ्गि सायं शशिग्रहात् ।

ग्रहकाले च नाश्रीयात्स्नालाश्रीयादिमुक्तयोः ॥

मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्थान्महानिशा ।

दृष्ट्वा स्नात्वा परेऽङ्ग्याद्भस्मास्तमितयोस्तयोः ॥

शशिग्रहात् पूर्वं सायं रात्रिभोजनं न कुर्यादित्यर्थः ।

महानिशा देवलोक्ता ।

महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ।

तत्र,—

मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् ।

अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रहरयामान्तः ॥

इति परिशिष्टवचनपर्यालोचनया सार्द्धप्रहरोपरि यामद्वयं महानिशा । नाचरेत् सग्रह इति सग्रहे ग्रहे चन्द्रे सूर्ये इत्यर्थः । अत्र दर्शनयोग्यग्रहणस्यैव भोजननिषेधे निमित्तत्वं तेन सूक्ष्म-ग्रहणे द्वीपान्तरग्रासे च तत्पूर्वं तत्काले च भोक्तव्यमेव, योग्यता च बाधविरहः । तथैवेति तथैव ग्रासदृशायामस्तमुपागते सतीत्यर्थः । तद्भोजनं कथं कर्त्तव्यमित्यपेक्षायामाह मुक्तिं दृष्ट्वेति ग्रासपरदिने उदयं निर्णीय स्नात्वेव भुञ्जीतेत्यर्थः ।

१अत्र केचित्,—

यावत् स्थानोदयस्तस्य नाश्रीयान्तावदेव तु ।

इत्यनेनैवोदयानन्तरं भोजनप्राप्तौ, मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा परेऽहनि । इति पुनर्विधानं परदिनेऽप्युदयानन्तरं मेघादिना दर्शनाभावे भोजननिषेधार्थम् । किन्तु तत्रापि दर्शनपूर्वकमेव भोजनं अन्यथा मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीतेत्यनर्थकं स्यात् इत्याहुः ॥

तदयुक्तम् । मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीतेत्यनेनैव सिद्धौ यावत्स्थानोदय इति वचनार्द्धस्य वैफल्यं दुर्निवारमेव । उत्तरार्द्धवैफल्याशङ्का तु सुगन्धधूविलसितमिव उदयानन्तरितभोजनस्य मुक्तिनिर्णयानन्तरितस्नाने तरकर्तव्यत्वविधानेन साफल्यात् ततश्च मुक्तिं दृष्ट्वेत्यस्य उदयं ज्ञात्वा इत्यर्थः । अन्यथा त्रिपञ्चसप्ताहादिषु मेघावरणेऽनिस्तारः । एवञ्च दृष्ट्वा ज्ञात्वा परेऽहनीति देवलवचनेऽपि दृष्ट्वेत्यस्य उदयं ज्ञात्वेत्यर्थः सम्पन्नः ततश्च ग्रस्तास्ते चन्द्रे मुक्तिकालं निर्णीय शृङ्खितान् कृत्वा उदयात् प्राक् देवार्चादिकं पाकञ्च कृत्वा कदाचिन्मेघाद्यावरणे उदयमनुमाय पुनः स्नात्वा भोक्तव्यम् ।

सूर्य्यं तु ग्रस्तास्ते मुक्तिकालं निर्णीय रात्रौ शृङ्खितान् कृत्वा परदिने सूर्य्यादयमनुमाय स्नात्वा भोक्तव्यम् ।

तथाच संवत्सरप्रदीपे,—

ग्रस्ते चास्तङ्गते लिन्दौ कृत्वा मुक्त्यवधारणम् ।

स्नात्वा पाकादिकं कार्य्यं भुञ्जीतेन्दूदये ततः ॥

अत्र सुक्तिस्नानं कृत्वा चन्द्रसूर्याभ्यामर्थं ददातीत्याचारः ।  
वचनञ्च पठन्ति ।

उत्तिष्ठ गम्यतां राहो त्यज्यतां चन्द्रसङ्गमः ।

कर्म १ चाण्डालयोगोत्थं मम पापं व्यपोहर ॥

अयन्तु ग्रहणकाले, ग्रहणात् पूर्वञ्च भोजननिषेधो य उक्तः  
स स्नानाद्यकर्तृणामपि ज्ञातव्यः ।

चन्द्रसूर्ययुग्मे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति ।

तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्राच्छुद्धिरित्यते ॥

इति भवदेवभट्टलिखितवचने सामान्यतः प्रायश्चित्तोपदेशात् ।  
अन्यथा ग्रहणकालेऽपि कर्माकर्तृभोजनप्रसङ्गः ।

किञ्च,—

सन्ध्याकाले यदा राज्ञ्यसते शशिभास्करौ ।

तदा दिवा न भोक्तव्यमातुरस्त्रीशिशून् विना ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचने आतुरस्त्रीशिशूव्यतिरेकेणान्येषां सर्वेषां  
भोजननिषेधात् । कर्मकर्तृमात्रगोचरनिषेधे तु आतुरादिप्रति-  
प्रसवो नोपपद्येत ।

तथा बृद्धगोतमः,—

सूर्ययुग्मे तु नाश्रीयात् पूर्वयामचतुष्टयम् ।

चन्द्रयुग्मे तु यामांस्त्रीन् बृद्धवालातुरैर्विना ॥

यामचतुष्टयमिति दिवोपलक्षणं यामांस्त्रीनिति अर्द्धरात्रादध-



सुन्दरहे बोद्धव्यम् । यस्तास्ते भोजननिषेधस्तु दृष्टोपरागविषय एवेति  
केचित्, तन्न, सर्व्वच सामान्योपक्रमात् सामान्यत एव निषेधात् ।

ग्रहणस्नानश्राद्धादिकमशौचेऽपि कार्य्यम् ।

नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृत्युजन्मनोः ।

न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथञ्चन ॥

इति वामनपुराणवचनादिति कल्पतरुसमयप्रकाशादयः ।

अतएव लिङ्गपुराणे,—

सूतके मृतके नैव सूतकं राज्ञदर्शने ।

तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥

सूतके मृतके इति कर्मानधिकारोपलक्षकं न तु नैमित्तिको-  
च्छेदः कर्त्तव्यो हि कथञ्चनेत्यत्र कथञ्चनेत्यभिधानात् ।

अतएव दत्तः,—

नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा यथा ।

तथा तथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते ॥

तेन मलमासे रक्तादिपातेऽपि ग्रहणे स्नानादिकं कार्य्यम् ।

गङ्गावाक्यावलीकारस्तु,—

सूतके मृतके चैव न दोषो राज्ञदर्शने ।

स्नानमात्रं प्रकुर्व्वीत दानश्राद्धं दिवर्ज्ययेत् ॥

इति नामशून्यवचनात् स्नानमेव कर्त्तव्यं नान्यदित्याह तत्तु  
राजादिभिरलिखितत्वान्निर्मूलमेव । समूलत्वेऽप्ययमर्थः सूतके मृतके  
राज्ञदर्शने स्नानादिकर्मसु दोषो नास्तीति पूर्व्वोद्धं नित्यस्य  
कर्मणो हानिरिति प्रागुक्तवचनसमानार्थमेव न दोष इत्युपादानात्

उत्तरार्द्धन्तु महागुरुनिपातिविषयं महागुरुनिपाती तु संवत्सर-  
पर्यन्तं मृतकेऽपि स्नानमात्रमेव कुर्वीत न तु दानश्राद्धादिकम् ।

अतएव मत्स्यपुराणे,—

ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वस्वित्यनेन सपिण्डनात्  
प्रागुपरागश्राद्धं नास्तीत्युक्तम् ।

यत्तु,—

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायात् सूतके मृतकेऽपि च ।

अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी पापं न विन्दति ॥

इति लिङ्गपुराणवचनमिति कृत्वा कालविवेके लिखितं तत्  
सूतकमृतकयोरपि राज्ञदर्शनजनितशावाशौचापनोदनार्थं शुद्धि-  
स्नानविधायकं, अतएव अस्नायी मृत्युमाप्नोतीत्यकरणे दोष उक्तः  
स्नायीत्यादिना च अशौचरूपपापापनोदनफलं स्पष्टमुक्तं काम्यस्नान-  
दानादिकन्तु कामिनामैच्छिकं नैमित्तिकत्वात् सूतकेऽप्यप्युदस्त-  
मेवेति ॥

अथ ग्रहणकर्तव्यकर्माणि ।

विष्णुधर्म,—

स्नाने जपे तथा दाने होमे श्राद्धे सुरार्चने ।

पुण्यः स कालो भविता नित्यमेवासुरेश्वर ॥

नित्यं रात्रिषायाह्लादिकालेष्वपीत्यर्थः ।

तथा यमः,—

स्नानं दानं जपः श्राद्धमनन्तं राज्ञदर्शने ।

आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

ज्ञानमत्र सतर्पण वैधम् । ग्रहणस्त्राने च नदीरजोदोषो नास्ति ।

यद्यदयं आवणादि सर्वा नद्यो रजस्त्रलाः ।

आसु ज्ञान न कुर्वीति वर्जयिता समुद्रगाः ॥

चन्द्रसूर्य्यगृहे चैव रजोदोषो न विद्यते ।

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात् । यथो मासः साक्षात् समुद्रगा

न तु परम्परया, सर्वासां तथात्वात् । आद्धमामात्रेनैव<sup>१</sup> ।

आपद्यनम्रौ तीर्थे च चन्द्रसूर्य्यगृहे तथा ।

आमआद्ध द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ॥

इति प्रचेतोवचनात् । एतच्च आद्धं नित्यमिति प्रागुक्तं सर्व-

ान्यद्वहणे काम्यं ।

भवित्ये,—

योऽर्चयेद्विधिवद्गुणा ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।

क्षतोपवासो विधिवत् स भवेत् पुत्रवान्नरः ॥

आगमे,—

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमित्यते ।

ग्रहणेऽर्कस्य चैवेन्दोः शुचिः पूर्व्वमुपोषितः ॥

<sup>१</sup>[नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः ।

यदा पुण्योदके ज्ञात्वा शुचिः<sup>१</sup> पूर्व्वमुपोषितः ॥]

स्पर्शादिमुक्तिपर्य्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।

१ ख पुस्तके, आद्धन्वामात्रेनैव ।

२ ग पुस्तके, [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

३ ख पुस्तके, ज्ञानशुद्धः ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकञ्चरेत् ॥

तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद्वाह्मणतर्पणम् ।

ततो मन्त्रस्य सिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत् ।

एवञ्च मन्त्रसिद्धिः स्याद्देवता च प्रसीदति ॥

अत्र मज्जनमात्रं ज्ञानम् । ग्रन्थोदये तु नाथं जपः । स्वर्गादि-  
मुक्तिपर्यन्तमित्यभिधानात् ।

छन्दोगपरिशिष्टम्,—

स्वर्भानुना चोपसृष्टे आदित्ये चन्द्रमस्यपि ।

सप्तावरान् सप्त पूर्वानुत्सृष्टस्तारयेद्वृषः ॥

अत्र च सगणेशमातृकापूजा-वसुधारा-दान-वृद्धिआहुतानि प्रा-  
कर्त्तव्यानि ।

सर्वाण्येवान्वाहार्यवन्तीति गोभिलेन गृह्योक्तकर्म्मसु आहु-  
विधानात् वृषोत्सर्गस्य पारस्करगोभिलयोरुक्तत्वात् ।

अथ वृषोत्सर्गे गोयज्ञेन ध्याख्यात इति पारस्करेण गोय-  
ज्ञातिदेशाच्च ।

तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिआहुतं विधीयते ।

इति मत्स्यपुराणवचनाच्च ।

तच्च ग्रहणकाल एव न तु तत्पूर्वं अङ्गानां प्रधानदेशकाल-  
कर्त्तव्यतानियमात् भविष्यद्वासप्रत्यक्षस्य सन्देहेन प्रधानकर्त्तव्यता-  
निश्चयाभावाच्च, अतएव स्तृगक्षेपभक्त्यागे पूर्वदिने अधिवासवाध  
उक्तः । एवं यानि कर्माणि गृह्यग्राहिकया श्रूयन्ते तान्येव कार्याणि  
न तु पुष्करिणीप्रतिष्ठादीनि ।

साधारणज्ञाने फलमाह छन्दोगपरिशिष्टम्,—

स्वर्धून्यम्भःसमानि स्युः सर्वान्यम्भांसि भूतले ।

कूपस्थान्यपि चन्द्रार्कग्रहणे नात्र संग्रहः ॥

भूतल इत्यनेन भूमिष्ठान्येव न तद्भूतानि ।

व्यासः,—

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वं व्याससमा द्विजाः ।

सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

अत्र केचित् असुके मासि असुकराग्रिस्थे भास्करे पौर्णमासी-  
प्रतिपत्सन्धौ राजग्रस्ते निशाकरे इति वाक्यं वर्णयन्ति । तन्मन्दं  
तिथिपक्षोत्तेखविधिवाधापत्तेः न वा सन्धौ राजग्रहः किन्तु पौर्ण-  
मास्यां सूर्यः प्रतिपदि च मोचः तत्रापि पौर्णमास्यां यावद्दण्डाव-  
स्थाने सूर्यः प्रतिपदोऽपि तावद्दण्डान्ते मोच इति चन्द्रग्रहणे  
नियमः, सूर्यग्रहणे तु नायं नियमः कदाचिदभावस्थायां सूर्या  
मोचश्च कदाचित् प्रतिपद्यपि सूर्या मोचश्च कदाचिदुभयोः सम-  
कालव्याप्तिः कदाचिद्विषमकालव्याप्तिश्चेति स च कालनिर्णयः  
सूर्यसिद्धान्तानुसारेणास्माभिर्जातकार्णवग्न्ये विवृतोऽस्ति ।

ततश्च यदा या तिथिर्या वा पक्षस्तदुत्तेखः कार्यः । तदिदं वाक्यम् ।

ॐ अद्य असुके मासि असुकराग्रिस्थे भास्करे शुक्लपक्षे पौर्ण-  
मास्यां तिथौ यदा तु प्रतिपत्समयस्तदा कृष्णपक्षे, राजग्रस्ते  
निशाकरे भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे असुकगोत्रोऽसुकगर्भाहं<sup>१</sup> गङ्गा-  
ज्ञानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽस्मिन् जले स्नानं करिष्ये इति ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

गङ्गायां स्नानफलमाह गारुडे,—

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम् ।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥

अद्येत्यादि चन्द्रग्रहे सूर्यग्रहे वा पृथिव्यधिकरणकसर्वतीर्थ-  
स्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो जाह्नवीस्नानमहं करिष्य इति ॥

ब्रह्मपुराणे,—

गवां कोटिसहस्रस्य सम्यक्दत्तस्य यत् फलम् ।

तत् फलं जाह्नवीस्नाने राज्ञ्यस्ते निशाकरे ॥

दिवाकुरे पुनस्तच्च दशसंख्यमुदाहृतम् ।

अद्येत्यादि '१' गृह्यस्ते निशाकरे गोकोटिसहस्रसम्यग्दानजन्य-  
फलसमफलप्राप्तिकामो स्नानमहं करिष्य इति । राज्ञ्यस्ते  
दिवाकुरे चन्द्रग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलदशगुणफलप्राप्तिकामो  
गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये ।

गारुडे,—

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे<sup>१</sup> सोमग्रहस्तथा ।

चूडामणिरिति स्नातस्तदा योगः प्रकीर्तितः ॥

अन्यस्माद्ग्रहणात् कोटिगुणमत्र फलं लभेत् ।

राज्ञ्यस्ते चूडामणियोगेऽस्मिन् गङ्गाधिकरणकान्यकालीन-  
सूर्यग्रहस्नानजन्यफलकोटिगुणफलप्राप्तिकामोऽस्मिन् जले स्नानमहं  
करिष्ये । चन्द्रग्रहणे च चन्द्रग्रहणस्नानजन्येति विशेषः ।

अन्यत्र तु चूडामणियोगेऽस्मिन् अन्यकालीनचन्द्रसूर्यग्रहण-  
स्नानजन्यफलकोटिगुणफलप्राप्तिकामोऽस्मिन् जले स्नानमहं करिष्ये ।  
पुण्यनद्यादौ फलमाह<sup>१</sup> व्यासः,—

इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्त रवेर्दशगुणञ्च तत् ।

गङ्गातोये तु सप्राप्ते इन्दोर्कोटौ रवेर्दश ॥

अन्यकाले यत्तीर्थस्नाने यत्फलं चन्द्रग्रहे तत्र स्नाने तत्फलं  
लक्षगुणं रविग्रहे तु दशलक्षगुणं गङ्गायान्तु अन्यकालीनगङ्गा-  
स्नाने यत्फलं तदिन्द्रग्रहे कोटिगुणं सूर्यग्रहे तु दशकोटिगुणं  
भवतीत्यर्थः ॥

अद्येत्यादि राजग्रस्ते निशाकरे अन्यदैतत्तीर्थस्नानजन्यफललक्ष-  
गुणफलप्राप्तिकामोऽस्मिन्तीर्थं स्नानं करिष्ये । सूर्यग्रहे तु दश-  
लक्षगुणेति विशेषः । गङ्गायान्तु राजग्रस्ते निशाकरे अन्यकालीन-  
गङ्गास्नानजन्यफलकोटिगुणफलप्राप्तिकामो गङ्गास्नानं करिष्ये इति ॥

सूर्यग्रहे तु दशकोटिगुणेति विशेषः ।

सम्पूर्णग्रहणे फलमाह मार्कण्डेयपुराणे,—

चन्द्रे वा यदि सूर्यं दृष्टे राहौ महाग्रहे ।

अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्यर्कं विशेषतः ॥

अक्षय्यक्षये पुण्ये विशेषो नास्ति तथापि तज्जन्यस्य स्वर्गफल-  
स्योत्कर्षाद्विशेषः । सम्पूर्णग्रस्ते चन्द्रे अक्षय्यपुण्यप्राप्तिकाम इति  
वाक्यम् ।

मात्स्ये,—

गङ्गाकनखले पुण्ये प्रयागं पुष्करं गया ।

कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राजग्रामे दिवाकरे ॥

अत्र गङ्गासाहचर्यात् कुरुक्षेत्रादिव्यपि सूर्यग्रहे प्रागुक्तगङ्गा-  
स्नानफलमेव ।

तथा तत्रैव,—

कोटिजन्मकृतं पाप पुरुषोत्तमसन्निधौ ।

कृत्वा सूर्यग्रहे स्नानं विमुञ्चति महोदधौ ॥

दशजन्मकृतं<sup>१</sup> पापं स्नानान्नश्यति पुष्करे ।

शतजन्मकृतं पापं गङ्गासागरसङ्गमे ॥

जन्मान्तु सहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् ।

तत्सर्वं सन्निहत्यायां राजग्रामे दिवाकरे ॥

तत्सर्वं पापं सन्निहत्यानामनदीविशेषे स्नानान्नश्यतीति पूर्वेण  
सहान्वयः । अत्रोपक्रमोपसंहारयोः सूर्यग्रह इत्यभिधानात् सूर्यग्रह

एवैतत् फलं न चन्द्रग्रहे ।

अथ ग्रहणे वृत्ते निषिद्धानि ।

मनुः,—

व्यह न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राज्ञश्च सूतके ।

ज्योतिषे,—

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिद्धिकास्तनुदर्शने ।

सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोदाहादिमङ्गलम् ॥

१ ग पुस्तके, शतजन्मकृतम् ।



त्रिविधत्वं दिव्यभौमान्तरौचभेदेन, अत्रापि राहोर्दर्शनादेव  
दोषो न तु मेघादिनाऽदर्शन इति ।

ऋणाङ्गीनचत्रेषु ग्रहणे दोषमाह ज्योतिषे,—

रोगाद्यागमवित्तनाशकलहाः संपीडिते जन्मभे  
सिद्धिं कर्म न याति कर्मणि हते भेदस्तु सांघातिके ।  
द्रव्यस्थोपचितस्य<sup>१</sup> समुदयिके संपीडिते संचयो  
वैनाशे तु भवन्ति कार्यविपदश्चित्तासुखं मानसे ॥

जन्मादिसंज्ञामाह अत्रैव,—

जन्माद्यं कर्म ततोऽपि दशमं सांघातिकञ्च षोडशमम् ।  
समुदयमष्टादशमं विनाशसंज्ञं त्रयोविंशम् ॥  
आद्यान्तु पञ्चविंशं मानसमेवं नरः षडक्षः स्यात् ।  
नवनक्षत्रो नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकचैः<sup>२</sup> ॥

यस्मिन् पुंसो जन्म तदाद्यं नक्षत्रं ।

अत्रिः,—

यस्य जन्मर्चमासाद्य ग्रहेते शशिभास्करौ ।  
व्याधिं प्रवासं क्षेपञ्च दिशेत्तस्य महद्भयम् ॥

दोषकालमाह ज्योतिषे,—

ग्रहणं रविचन्द्रमसोर्नाङ्गीनचत्रवासरे यस्य ।  
अब्दाद्धाभ्यन्तरतो दोषो नाङ्गीसमं तस्य ॥  
पूर्वोक्तं जन्मादिनचत्रषट्कं नाङ्गीसञ्चम् ।

१ ख पुस्तके, द्रव्यस्थापचितस्य ।

२ 'क' ०भिषेकचैः ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

तत्प्रतीकारमाह राजमार्त्तण्डे — \*

ग्रहणग्रहपरिपीडितनाडीनचत्रदोषशमनाय ।

सह शतपुष्पैः स्नायात् फलिनीफलचन्दनोशीरैः ॥

शतपुष्पा शलुपा इति यस्य ख्यातिः फलिनी प्रियङ्गु उशीरं  
वीरणमूलं ।

तथा राजमार्त्तण्डे,—

गव्यपयो गुडपूषं दृतदधिमधुपायसं क्रमेणैव ।

तरुणद्विजाय दद्यादनिष्टनाडीविशद्ध्यर्थम् ॥

षट्कनाडीषु यथाक्रमं गव्यदुग्धादिषट्द्रव्याणि ।

तथा,—

दृतकुम्भोपरिनिहितं शङ्खं नवनौतपूरितं दद्यात् ।

नाड्यादिदोषशान्त्यै द्विजाय दोषाकरग्रहणे ॥

आदिशब्दाज्जन्मसप्ताष्टरिप्ताङ्केत्यादिनोक्तानां जन्मराशादीनां

ग्रहणम् ।

तथा,—

तान्नपात्रं तिलैः पूर्णं पूर्णं वा गव्यसर्पिषा ।

भास्करग्रहणे दद्यान्नाडीराशुपपीडितः ॥

राशयो जन्मसप्तत्याः । तथा तत्रैव,—

त्रिमधुरपरिपूर्णं चन्द्रमानानुरूपं

रजतरचितचन्द्रं कांस्यपात्रान्तरस्थम् ।

सितकुसुमसहस्रैः पूजयेद्दैववित्तं

हरति दुरितमस्मात् सर्वकाले शशाङ्कः ॥

दधिमधुघृतपूर्णं ताम्रपात्रान्तरस्थं  
कनकरचितसूर्यं सूर्यविम्बानुरूपम् ।  
अरुणकुसुमवस्त्रैः पूजयेद्देववेत्ता  
हरति दुरितमस्त्राद्राहुणा यस्तभानुः ॥

त्रिमधुरं घृतमधुशर्कराः । तथा,—

जन्माष्टजायान्यखधर्मसंस्थे<sup>१</sup>

निशाकरे जन्मसु तारकासु ।

दृष्ट्वा तमश्चन्द्रमस प्रयत्ना-

दभर्त्स्य दद्यात् कनकं द्विजाय ॥

एते च प्रतीकाराः शक्त्यनुरूप यथासम्भवं कार्याः वित्तश्राव्यं  
न कार्यं । मत्स्यपुराणोक्तप्रतीकारस्तु प्रक्रियागौरवादङ्गद्वयसाध्य-  
त्वाच्च नोक्तः ॥

इति ग्रहणनिर्णयः ।

अथेदानीं सामान्यतस्त्रिधिकृत्यमभिधाय तत्रोक्तानां वक्ष्यमा-  
णानां श्रीगोविन्दादिदेवतापूजानां विधिर्विविच्यते ।

तत्र श्रीभागवते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसम्पादे,—

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।

चयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥

मखः पूजा वैदिकः पुरुषसूक्तादिवेदमन्त्रैर्नरसिंहपुराणादावुक्तः,  
तान्त्रिक आगमोक्तः मिश्रो वैदिकतान्त्रिकाभ्यां सम्बलितः । तत्र  
प्रथमं तान्त्रिकपूजाभिधीयते इतरयोस्तत्सापेक्षत्वात् ।

तत्रैव,—

शुचिः समृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ।

आसीनः प्रागुदग्वार्चैर्दर्शयान्त्वथ समुखः ॥

शुचिः, स्नानकरप्रचालनाचमनैः शौचसम्पन्नः ।

तथाच प्रारदातिलके,—

देशिको विधिवत् स्नात्वा कृत्वा पौर्वाहिकीः क्रियाः ।

यायादलङ्कृतो मौनी यागार्थं<sup>१</sup> यागमण्डपम् ॥

पौर्वाहिकीः प्रातःसन्ध्याद्याः, अलङ्कृतः शुचिवस्त्रतिलका-  
दिनेत्यर्थः । पादप्रचालनमाह देवलः,—

प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रचालयेच्चनैः ।

उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैदके दक्षिणामुखः ॥

आचमनञ्च द्विः कार्यम् ।

निष्ठीविते तथाभ्यङ्गे तथा पादावसेचने ।

इत्यादिवायुपुराणवचनात् ।

समृतसम्भार इति । प्राक् प्रथमं निर्वर्त्तितपूजासाधनः न तु  
तदर्थं पुनरुक्तिश्चेत्यर्थः । दर्भैः कल्पितं सम्बद्धं आसनं यस्य तथा,  
प्राग्यैर्दर्भैः कल्पितासन इति वा ।

आगस्त्ये,—

खगृहे शुद्धभागे तु विलिप्ते गोमयाम्बुना ।

शुद्धासने समासीनः पूजयेच्च स्वशक्तिः ॥

आसनमुक्तं पुरश्चरणचन्द्रिकायाम् ।

सर्वसिद्धौ व्याघ्रचर्मं ज्ञानसिद्धौ मृगाजिनम् ।  
 वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं प्रीतिवर्द्धनम् ॥  
 कौशेयं पुष्टिदं प्रोक्तं काम्बलं सर्वसिद्धिदम् ।  
 वंशासने च दारिद्र्यं दौर्भाग्यं दारुजासने ॥  
 धरण्यां दुःखसम्भूतिः पाषाणे व्याधिसम्भवः ।  
 तृणासने यशोहानिः पल्लवे वित्तविभ्रमः ॥  
 न दौर्चितो विशेष्यातु कृष्णसाराजिने गृही ।  
 कुशास्तरणवस्त्राद्य चतुरस्रं समन्ततः ।  
 एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम् ॥  
 खलिकादिक्रमेणैव विशेष्यतः निराकुलः ।  
 खलिकं पद्मकं वीरं भद्रञ्चेति चतुष्टयम् ॥

कालिकापुराणे,—

आसनञ्चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमासादयेत् न तु ।

तथा,—

सर्वाणि परकीयाणि यानि तानि च वर्जयेत् ।

आसीन इति प्राक् प्राङ्मुख उदक् उदङ्मुखः । अर्चा प्रतिमा  
 तस्यां स्थिरायान्तु सम्मुखः प्रतिमाभिमुखोपविष्टः सन्नित्यर्थः ।

तथा तत्रैव,—

शुचिः सम्मुख आसीनः प्राणसंयमनादिभिः ।

देहं विशेष्य विन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्भूरिम् ॥

शारदातिलके,—

विशेष्टादासने मन्त्री प्राङ्मुखो वायुदङ्मुखः ।

एतेन प्राचीदिग्वदन इति क्रमदीपिकादर्शनादिषु पूजायां  
प्राङ्मुखत्वनियमः<sup>१</sup> इति यत् कैश्चिदुक्तं तन्निरस्तं तदचनस्यैकदेश-  
कीर्तनपरतयैवोपपत्तेः ।

राचौ त्वदङ्मुखत्वनियममाह गोतमः,—

रात्राबुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि ।

शिवार्चनं सदैवैवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥

देवीपूजायामुत्तरदिङ्मुखत्वमुक्तं कालिकापुराणे,—

दिग्विभागेषु कौबेरी दिक् शिवाग्रीतिदायिनी ।

तस्मात्तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ॥

नीचैरासनमासाद्य सर्वान् देवान् प्रपूजयेत् ।

शारदातिलके,—

अनन्तरं देशिकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यावलोकनात् ।

दिशानुत्सारयेद्विघ्नानस्ताह्निस्वान्तरौच्यगान् ।

त्रिभौमानिति विघ्नान् निवारयेत् । मन्त्रपूता दृष्टिः दिव्य-  
दृष्टिः, अस्ताह्निः अस्ताय फड़ित्यस्त्रमन्त्रजप्ताभिरङ्घ्रित्यर्थः ।

योगिनीतन्त्रे,—

नीचैरासनमासाद्य स्वस्तिकादिक्रमेण तु ।

विशेन्निराकुलस्तत्र पादौ संकाद्य वाससा ॥

कुसुमाक्षतसिद्धार्थान् नाराचास्तधिया बुधः ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ॥

ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।

इत्यन्तेऽस्त्रं समुच्चार्य मण्डपान्तः परिक्षिपेत् ॥

अस्त्रं फट्कारम् । शारदातिलके,—

स्थापयेद्दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि साधकः ।

सुवासिताम्सम्पूर्णं सव्ये कुम्भं सुशोभनम् ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ।

नत्वा गुरुं गणेशान् भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥

अत्रेष्टदेवतानमस्कारोऽपि बोद्धव्यः ।

नत्वा गुरुं गणेशानं पुरतः स्वेष्टदेवताम् ।

इति पुरश्चरणचन्द्रिकावचनात् ।

कमदीपिकायाम्,—

ततोऽस्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी

त्रितालदिग्वन्धऊताग्रशालान् ।

विधाय भूतात्मकमेतदङ्गं

विशेषयेच्छुद्धमतिः क्रमेण ॥

ऊताग्रशालोऽग्निप्राकारः ।

शारदातिलके,—

करशुद्धिं समासाद्य कुर्यात्तालत्रयं ततः ।

ऊर्ध्वोर्ध्वमस्त्रमन्त्रेण दिग्वन्धमपि साधकः ॥

अस्त्रमन्त्रेण अस्तायफडित्यनेन ।

भूतशुद्धिमाह तत्रैव,—

सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मानि योजयेत् ।

योगयुक्तेन विधिना चिन्मन्त्रेण समाहितः ।

कारणे पञ्चभूतानि तत्त्वान्यपि विचिन्तयेत् ॥

बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात् परमात्मनि ।

ततः संशोषयेद्देहं वायुबीजेन वायुना ॥

वह्निबीजेन तेनैव निर्दहेत् सकलां तनुम् ।

विश्लेषयेत्ततो दोषानमृतेनामृताम्भसा ॥

आज्ञाव्यापादयेद्देहमापादतप्तमस्तकम् ।

आत्मलीनानि भूतानि स्वस्थान प्रापयेत्ततः ॥

आत्मानं हृदयाभोजमानयेत् परमात्मनः ।

मनुना हंसदेवस्य कुर्याद्व्यासादिकं ततः ॥

आत्मानं हृदयाभोजमानयेदित्युपसंहारात् ध्येय आत्मा स्थितो  
योऽसौ हृदये दीपवत् प्रभुरिति याज्ञवल्क्याच्च, हृदयस्थितमात्मानं  
जीवं दीपशिखाकारं ध्यात्वा शिरसि सहस्रदलकमलस्थे परमात्मनि  
सुषुम्नानाङ्गीवर्त्मना चिन्तन्तेण हंस इति मन्त्रेण योजयेत् ।

तथाचागस्यसंहितायाम्,—

नयनानयनार्थं हि हंसः सोऽहमितीरयेत् ।

ततश्च सर्वकालेन<sup>१</sup> परमात्मनि पृथिव्यादीनि पञ्चभूतानि  
तत्त्वान्यहङ्कारादीनि च व्युत्क्रमेण बीजरूपेण सूक्ष्मभूतकारणरूपेण  
लीनानि चिन्तयेत् ।

अथमर्थः, पादे पृथिव्याः, लिङ्गमूले जलस्य, हृदये तेजसः,  
मुखे वायोः, भाले आकाशस्यावस्थितिः ।



तत्र युक्तमेण पृथिवी<sup>१</sup> सूक्ष्मरूपेण जले जलञ्च तेजसि तेजश्च वायौ वायुश्चाकाशे आकाशञ्च परमात्मनि नयेत् ।

यथाक्रममृष्टौ तु श्रुतिः,—

आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवीति ।

अतएवागस्त्यसंहितायाम्,—

भूतानि नाम पृथिवी जल तेजो मरुद्वियत् ।

यद्यतो जायते तस्मिन् प्रलयोत्पादनं पुनः ॥

प्रलयो लीनता तस्मात् पुनरुत्पादनञ्च सन्धिरार्षः । ततः शंशोषयेद्देहमिति वायुबीजेन वमित्यनेन वायुना वामनासा—  
पूरितवायुनेत्यर्थः । वक्त्रिवीजेन वमित्यनेन दक्षिणासापूरित-  
वायुना तत्तुं दहेत् दग्धमिति चिन्तयेत् । ततो दोषान् पापानि भक्षतया तानि वामनासया वायुना विस्लेषयेत् वह्निः कुर्यात् ततः सहस्रदलकमलस्थं परमात्मानं चन्द्ररूपं चिन्तयित्वा तस्मादमृता-  
म्भसा सुधारूपजलेन अमृतेन<sup>२</sup> जलबीजेन वमित्यनेनाप्लाव्य संमिच्य देहं [समित्यनेन इन्द्रवीजेनापादयेत् जनयेत् शुद्धं सकलं]<sup>३</sup> देहं विभावयेत्, एतच्च शोषणादिकं पञ्चाशन्मात्राभिस्तत्त्वबीजेन कार्य्यम् ।  
यथागस्त्यसंहितायाम्,—

मरुदग्न्यम्बुबीजैस्तु पञ्चाशन्मात्रमात्रकम् ।

प्राणाच्चिरुद्धात्मदेहे शोषणादीन् प्रकल्पयेत् ॥

१ ख पुस्तके, पृथिवी ।

२ ग पुस्तके, जलेन अमृतेन इति पदद्वयं नास्ति ।

३ ग पुस्तके, [ ] चिह्नितशो नास्ति ।

प्रपञ्चसारेऽपि,—

अथ वै शोषणदहनप्रावनभेदेन शोषिते देहे ।

पञ्चाशद्विमात्राभेदैर्विधिवत् समापयेत् प्राणान् ॥

आत्मलीनानीति आत्मनि परमात्मनि लीनानि भूतानि  
सृष्टिक्रमेण सुसुप्तां प्रापयेत् । तथाहङ्कारादीनि च आत्मानश्च  
हंसदेवस्य जीवस्य<sup>१</sup> मन्त्रेण सोऽहमित्यनेन परमात्मनः सकाशात्  
हृत्पद्मानयेदिति भूतशुद्धिः । अत्र शोषणादौ यो विशेष उक्तः  
स क्रमदीपिकानुसारेण मन्त्रव्यः । कुर्यान्न्यासादिकं तत इति ।  
अनन्तरं न्यासादिकं विवृणोति स एव ।

अपिच्छन्दो दैवतानि न्यसेन्मन्त्रस्य मन्त्रवित् ।

आत्मनो मूर्द्ध्नि वदने हृदये च यथाक्रमम् ॥

विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामान् यथाविधि ।

विदध्यान्मातृकान्यासं मन्त्रन्यासमतः परम् ॥

केचित्तु अष्टादिभिश्चतुर्थ्यन्तैर्नैर्मोऽनैर्न्यासं कुर्वन्ति तद्युक्तं  
प्रमाणाभावात् गरुडकालिकापुराणादिषु प्रथमान्तानां केवलानां  
अष्टादीनां न्यासदर्शनाच्च ।

मन्त्रन्यासो द्विविधः अङ्गन्यासस्तत्तन्मन्त्रन्यासश्च स्वयमेवानन्तरं  
तथैव विवेचितत्वात् । प्राणायामानिति बह्वचनान् त्रयः प्राणा-  
यामाः कार्याः कपिञ्जलाधिकरणन्यायात्, एतेन भूतशुद्धि  
अष्टादिन्यासप्राणायाममातृकान्यासमन्त्रन्यासाः पञ्चावशकाः, अन्ये  
तु काम्या इति दर्शितम् । क्रमोऽप्यस्मादचनान्मन्त्रव्यः ।

तथाचागस्यसंहितायाम्,—

शरीरं शोधयेदादावधिकारार्थमन्वहम् ।  
 तीर्थाविगाहनं वाह्येष्यन्तर्भूतविशोधनम् ॥  
 मातृकान्यासयोगश्च शोधयेद्विधनुष्ठितः ।  
 पूजाद्रव्याण्यपि ततः शोधयेत् प्रोक्षणादिभिः ॥  
 शुद्धः शुद्धैश्च द्रव्यैस्तु पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।  
 न चेन्निरर्थकं सर्वं सिन्धुसैकतदृष्टिवत् ॥  
 शौचाचमनहीनस्य स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः ।  
 यथा स्युर्निष्फलाश्चैतदन्तरेण भवेत्तथा ॥

अन्तःशरीरं शोधयेदित्यनेन एकस्मिन् दिने सकृदनुष्ठितेन  
 स्नानभूतशुद्ध्यादिना शरीरशुद्धेर्जातत्वात् प्रतिकर्मणि स्नानभूत-  
 शुद्ध्यादिकं पृथक् नानुष्ठेयमित्युक्तम् । मातृकान्यासश्च देहं शोधये-  
 दित्यर्थः । आदिग्रहणादौच्यताङ्गनार्चनानां ग्रहणम् ।  
 तदुक्तं तत्रैव,—

अवेक्षणं प्रोक्षणञ्च वीक्षणं ताडनं कुम्भैः ।  
 अर्चनञ्चैव सर्व्वेषां पावनत्वं प्रकल्पयेत् ॥

अवेक्षणं रक्षणं अस्त्रमन्त्रेण त्रितालदिग्वन्धनरूपं, प्रोक्षणं  
 वीक्षणञ्च मूलमन्त्रेण अर्चनं पुष्पेणेत्यर्थः ।

शौचेति, शौचाचमनहीनस्य पुंसो यथा सर्वाः क्रिया निष्फ-  
 लास्तथा एतत् पूर्व्वोक्तचतुष्टयस्नान भूतशुद्धि मातृकान्यास द्र  
 शोधनमन्तरेण देवार्चनं निष्फलं भवेदित्यर्थः ।

तथा तच्चैव,—

प्राणायामैर्विना यद्वत् कृतं कर्म निरर्थकम् ।

अतो यत्नेन कर्त्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः ॥

प्राणायाममाह शारदातिलके,—

इदया कर्षयेद्वायुं वाह्यं षोडशमात्रया ।

धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ठ्या तु मात्रया ॥

सुषुम्नामध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।

नाड्या पिङ्गलया चैवं रेचयेद्योगवित्तमः ॥

प्राणायाममिमं प्राङ्मुखोऽगशास्त्रविशारदाः ।

भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन सञ्जाचरेत् ॥

इडा नाम नाडी वामेनासागता, पिङ्गला दक्षिणासागता  
सुषुम्ना तयोर्मध्यगता । व्यत्यासेनेति यथा नासया रेचनं कृतं  
तथैव पुनस्तोलयेदित्यर्थः ।

मात्रोक्ता प्रपञ्चसारे,—

कालेन यावता स्वीयो हस्तः खं जानुमण्डलम् ।

पर्य्यति मात्रा सा तुल्या स्वयैकश्वासमात्रया ॥

अथवा विष्णुपूजायां प्रणवं कामवीजं षोडशादिसङ्ख्यं जपन्  
प्राणायामं कुर्यात् । देवीपूजायान्तु भुवनेश्वरीवीजं, गणेशपूजायां  
गणेशवीजं, [शिवपूजायां शिववीजं]<sup>१</sup> प्रासादाख्यमिति । इष्टमन्त्रेण

१ ख पुस्तके, प्रपञ्चसारकारेण ।

२ ग पुस्तके, [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

प्राणायामे तु यथाशक्तिवारं जपन् वायोः पूरणधारणरेचनानि  
कुर्यात् ।

तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम्,—

यावच्छ्वयं नियम्यासून् मनसैव जपेन्मनुम् ।

आपादमस्तकं यावत् प्रविशत्यनिलो यथा ॥

यावतीभिस्तु मात्राभिरिन्द्रियाण्यपि धारतः ।

प्रभुभ्यान्तः शरीरञ्च तावन्मात्रोऽसुसंयमः ॥

धारतो वायुं धारयतः पुंस इत्यर्थः ।

अतएव सारदातिलके,—

विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामं यथाविधीत्यत्र मूलमन्त्रेण  
प्राणायामे सङ्ख्या नोक्ता ।

यस्त्वाचार्य्येण प्रपञ्चसारे योगिप्राणायाममधिकृत्य मुञ्चेद्दृशिण-  
यानिलमयानयेदामया च मध्यगया संस्थापयेच्च नाद्येत्येवं प्रोक्तानि  
रेचकादीनीत्यनेन रेचनादिक्रम उक्तः, स यद्यपि प्रागुक्तपूरणादि-  
क्रमेण<sup>१</sup> वैकल्पिकस्तथापि न प्राचां व्यवहारविषयः वशिष्ठसंहितादिषु  
वज्रषु तन्त्रेषु पूरणादिक्रमदर्शनात् ।

अत एव श्रीभागवते प्राधान्येन पूरकादिक्रममुक्त्वा <sup>२</sup>रेचकादि-  
क्रमोऽप्युक्तः । यथा

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।

विपर्य्ययेणापि शनैरभ्यसेद्विजितेन्द्रियः ॥

१ ग पुस्तके, °क्रमेण सङ्ख इत्यधिको पाठ ।

२ ग पुस्तके, रेचकादिक्रमोऽपीत्यंशो नास्ति ।

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।

विपर्ययेण रेचकपूरककुम्भकक्रमेणापीत्यर्थः । एतेन वैष्णवे  
रेचनादिक्रमोऽन्यत्र पूरणादिक्रम इति कस्यचिन्मतं निरस्यम् ।  
मातृकान्यासमाह शारदातिलके,—

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिप्राणेषु गण्डयोः ।

ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गास्ये दोःपद्मन्ध्यगणेषु च ॥

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेऽङ्गके ।

ककुक्ष्यङ्गे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥

जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान् यथाक्रमम् ।

मातृकामन्त्रस्थाकारादिचान्तस्यैकपञ्चाशद्वर्णात्मकस्य वर्णान् यथा-  
क्रमं ललाटाद्येकपञ्चाशत्स्थानेषु न्यसेत् ।

चकारपूर्वं पुनर्लकारपाठादेकपञ्चाशदचरता मातृकामन्त्रस्येति ।

ललाटे केशान्तभाग एव । केशान्ते वदने तथा मयनयोरिति  
तन्त्रान्तरदर्शनात् । मुखवृत्ते सुखावरणे प्रदक्षिणक्रमेण भ्रूमध्यादि  
तदन्त इत्यर्थः, अक्ष्यादिदन्तानां द्वये द्वये, उत्तमाङ्गे शिरसि,  
दोःपदामंसोरुमूलाद्यं मन्त्रिचतुष्कं अग्रचतुष्टयञ्च एषु कादिनान्ता  
विंशतिवर्णाः ।

अङ्गके दक्षिणाङ्गके, हृत्पूर्वं हृदयादि यथा स्यात् तथा  
व्यापकभावे पाणिपादचतुष्टये न्यसेदित्यर्थः ।

अस्यैव न्यासस्थान्ये बहवो भेदाः कामाधिकारिविषयास्तेषु  
तेषु फलश्रुतेः । किन्तु तेषामेकस्मिन्नपि कृते देहशुद्ध्या कर्माधि-  
कारो जायत एव फलमप्यधिकं भवतीति ध्येयम् ।

अगस्त्यसंहितायाम्,—

पञ्चाशदक्षरन्यासः क्रमेणैवं विधीयते ।

ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सविन्दुर्विन्दुवर्जितः ॥

नायालक्ष्मीकामबीजपूर्वो वा न्यास इष्यते ।

मूर्त्तिभिः केशवाद्यैस्तु कीर्त्यादिशक्तिभिः सह ॥

मायाबीजपूर्वो लक्ष्मीबीजपूर्वः कामबीजपूर्वश्चेति न्यासत्रयम् ।

प्रकारान्तरमाह मूर्त्तिभिरिति ।

तथाच तन्त्रान्तरे,—

न्यस्तथाः प्रणवादिका नतिपरा विन्दुनिका मातृकाः

श्रीकण्ठादिशिवैश्च शक्तिभिरथो पूर्वोक्तरीत्यादिभिः ।

केशवादिक्रम उक्तः क्रमदीपिकायाम्,—

वर्णानुक्ता सार्द्धचन्द्रान् पुरस्तात्

मूर्त्तीः शक्तौर्दोऽवसानानतिश्च ।

उक्ताः<sup>१</sup> न्यस्येद्यादिभिः सप्तधात्वन्

प्राण शक्तिं क्रोधमप्यात्मनेऽन्तान् ॥

ध्यात्वा तं परमपुमांसमचरैर्यो

विन्यस्येद्दिनमनु केशवादियुक्तैः ।

मेधायुःस्रतिष्ठतिकीर्त्तिकान्ति-

लक्ष्मीसौभाग्यैश्चिरमुपहृंहितो भवेत्सः ॥

अमुमेव रमापुरःसरं

प्रजपेद्यो मनुजो विधिं बुधः ।

१ ग पुस्तके, उक्तान्यासे यादिभि ।

समुपेत्य रमां प्रथीयसीं

पुनरन्ते हरितां व्रजत्यसौ ॥

मूर्त्तीः केशवाद्याः, शक्तीः कीर्त्याद्याः, ऊऽवसाना इत्यनेन केशवाय कीर्त्यै नम इत्यादि प्रयोग उक्तः, एतेन केशवकीर्त्तिभ्यो नम इति केषाञ्चिन्मतं निरस्तं, एतच्चागस्त्यसंहितावचने व्यक्ती-भविष्यति । आदिभिरिति यत्र आदयो दशवर्णा न्यस्यन्ते तत्र सप्तधातून् प्राणशक्तिक्रोधांश्च दश आत्मनेपदान्तान् हत्वा न्यसेत् ।

तच्च 'सधातुप्राणशक्त्यात्मयुक्त्यादिषु विष्णव इति सारदा-वचनात् विष्णुविशेषणतया प्रयोक्तव्यम् ।

धातवश्चोक्ताश्चात्रैव,—

लग्नसृङ्गांसमेदोऽस्थिमज्जशूक्रादिधातवः ।

एतेन, यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नम इत्यादयः प्रयोगाः सन्पन्नाः ।

एवं श्रीत्यादिन्यासो मन्तव्यः । फलमाह ध्यात्वेति, ध्यानञ्च प्रयोगे वक्ष्यते । अत्रैव श्रीबीजयोजनफलातिशयमाह अमुमेवेति ।

मूर्त्तीः शक्तीश्चागस्त्यसंहितायाम्,—

केशवाय च कीर्त्यै च ततो नारायणाय च ।

कान्त्यै ततो माधवाय तुष्ट्यै नम इति न्यसेत् ॥

गोविन्दाय च पुष्ट्यै च विष्णवे हृत्त्यै च ततः ।

मधुसूदनाय शान्त्यै च चिविक्रमाय क्रियायै ॥



वामनाय दयायै च श्रीधराय वदेत्ततः ।  
 मेधायै हृषीकेशाय हर्षायै च नमस्तथा ॥  
 पद्मनाभाय अद्भ्यायै ततो दामोदराय च ।  
 लज्जायै वासुदेवाय लक्ष्म्यै सङ्कर्षणाय च ॥  
 सरस्वत्यै प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नम इतीष्यते ।  
 अनिरुद्धाय रत्यै च खरान्ते प्रवदेदथ ॥  
 चक्रिणे च जयायै च गदिने शार्ङ्गिणे तथा ।  
 दुर्गायै च प्रभायै च खड्गिने विन्यसेदथ ॥  
 सत्यायै शङ्खिने चैव चण्डायै नम उच्यते ।  
 हस्तिने वाण्यै च नमस्ततो मूषलिने वदेत् ॥  
 विलासिन्यै शूलिने च विजयायै ततः परम् ।  
 पाग्निने विरजायै च तथा चाङ्गुशिने वदेत् ॥  
 विश्वायै च मुकुन्दाय विनसायै<sup>१</sup> नमस्तथा ।  
 नन्दजाय सुनन्दायै नन्दिने स्मृतये नमः ॥  
 ततो नराय च्छ्म्यै च नमो नरकजिते तथा ।  
 समृद्धौ हरये शुद्धौ कृष्णाय बुद्धये तथा ॥  
 सत्याय भुक्त्यै सत्वताय नत्यै नम इतीरयेत् ।  
 शौराय च चमायै च शूराय रमायै नमः ॥  
 जनार्दनाय यामायै ततः स्थाङ्गधराय च ।  
 क्लेदिन्यै विश्वमूर्त्तये क्लिन्नायै तदनन्तरम् ॥

वैकुण्ठाय ततो ब्रूयादसुदायै नमस्तथा ।  
 पुरुषोत्तमाय वसुधायै वलिने परायै तथा ॥  
 वलानुजाय परायणायै नम इतीरयेत् ।  
 तथा वालाय सूक्ष्मायै नमः स्यात्तदनन्तरम् ॥  
 वृषभाय च सन्ध्यायै वृषाय प्रज्ञायै नमः ।  
 हंसाय च प्रभायै च वराहाय च निशायै ॥  
 विमलाय अमोघायै नृसिंहाय ततः परम् ।  
 विद्युतायै नमस्तद्वत् वैष्णवीं मातृकीं<sup>१</sup> यजेत् ॥  
 शिरोवदनवृत्तादिस्थानेष्वेवं विधिः स्मृतः ।  
 ॐकारं मारवीजञ्च मातृकाक्षरमेव च ॥  
 एकं देवं यथाशक्ति एकां नम इति क्रमः ।  
 केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम् ॥  
 अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः ।

कामबीजाद्यं प्रकारान्तरमिदम् । ॐकारयोगात्तु फलाति-  
 शयः । प्रणवं विनापि कामादिकेशवन्यासस्य शारदादिषु दृष्टत्वात्  
 अथञ्च केशवादिन्यासो विष्णुविषयः श्रीकण्ठादिस्तु देवीशिव-  
 विषयः । अस्मिन्नेव विष्णुविषये तत्त्वन्यासपञ्जरन्यासौ काम्यौ कर्त्तव्यौ ।  
 तत्त्वन्यासफलमाहागस्यसंहितायाम्,—

सुतीक्ष्ण त्वां प्रवक्ष्यामि तत्त्वन्यासमतः शृणु ।

यत्तत्त्वन्यासमात्रेण तत्त्वमेव प्रजायते ॥

तत्त्वं ब्रह्मैव । न्यासोद्धार उक्तो योगिनीतन्त्रे,—

वर्णान् सविन्दूनुक्तादौ नमोऽन्तोऽथ पराय च ।  
 तत्त्वनामात्मने न्यासो नमोऽन्तोऽयमुदीरितः ॥  
 मताभ्यां सर्वदेहे च जीवप्राणौ न्यसेत् क्रमात् ।  
 हृन्मध्ये बुद्ध्यद्भारमनांसि च फलैः सह ॥  
 शब्दस्पर्शरूपरसगन्धान्स्तान्तेषु नामभिः ।

शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु च यथाक्रमम् ॥  
 ओचं तच्चक्षुषी जिह्वां नासाश्चैव तु पञ्चमीम् ।  
 व्युक्तमेण टवर्गेण स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥  
 कर्मेन्द्रियानि वाक्पाणिपादपायूनुपस्थकम् ।  
 तत्तत्स्थानेषु विन्यसेन्त्रादिचान्तैः पृथक् पृथक् ॥

डादिकान्तैः शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणेषु च ।  
 आकाशवायुतेजांसि जलञ्च पृथिवीं क्रमात् ॥  
 शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु व्यापक पुनः ।  
 परमेष्ठी च पुरुषो विश्वो निवृत्तिरेव च ॥  
 सर्वः कोपः षड्भिरेभिः क्रमादादौ समन्वितान् ।  
 वासुदेवं सङ्कर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥  
 नारायणं नृसिंहञ्च आत्मनेऽन्ताग्र्यसेच षट् ।  
 अस्थानुष्ठानमात्रेण देवभावः प्रजायते ॥

तत्त्वानां जीवादीनां नामानि जीवादिशब्दास्तदन्ते आत्मने  
 इति पदमित्यर्थः ।

प्राञ्चस्तु तत्त्वन्याससमाख्यावशाज्जीवादीनां विशेषतया तत्त्व-  
 पदमपि प्रयुज्यते ।

१[व्योमेति व्योम हकारः मृगुः सकारः अग्नौरेफ इत्यर्थः ।  
 षयलैरिति अगस्त्यसंहितायामपि केवल्योः षलयोन्यास उक्तः, यथा,  
 सहौ सवौ च षष्ठापि यश्च लश्च वलावपीति, क्रमदीपिकायान्तु  
 षेचलावनाणैरित्यनेन षलयोरेको वाकारसहितयोन्यास उक्तः] ।  
 हयग्रीर्षपञ्चरात्रेऽपि,—

थोऽङ्कारं विन्यसेत् पश्चात् प्रणवेन सुरोत्तम ।

इत्यादि, तदयं वैकल्पिको विधिः फलभूमार्थः, यदपि प्रण-  
 वादिरयं न्यास इत्यगस्त्यसंहितायामुक्तं तदपि फलभूमार्थं मन्तव्यम् ।  
 मूर्त्तिपञ्जरन्यासमाह सारदातिलके,—

अतस्तन्मन्त्रवर्णाद्या द्वादशस्वरसंयुताः ।

द्वादशादित्यसंहिता मूर्त्तीर्द्वादश विन्यसेत् ॥

ललाटे केशवं धात्रा कुक्षौ नारायणं पुनः ।

अर्घ्यं हृदि मित्रेण माधवं कण्ठदेशतः ॥

वरुणेन च गोविन्दं पुनर्दक्षिणपार्श्वके ।

अंशुना विष्णुमसंख्यं भगेन मधुसूदनम् ।

गले विवस्वता युक्तं त्रिविक्रममनन्तरम् ॥

वामपार्श्वे तथेन्द्रेण वामनाख्यमथांशके ।

पूष्णा श्रीधरनामानं गले पर्जन्यसंयुतम् ॥

हृषीकेशाक्षयं पृष्ठे पद्मनाभं ततः परम् ।

त्वष्टा दामोदरं पश्चात् विष्णुना ककुदि न्यसेत् ॥

द्वादशाणं महामन्त्रं ततो मूर्ध्नि प्रविन्यसेत् ।

एवं न्यस्तशरीरोऽसौ वासुदेवः स्वयं भवेत् ॥

तन्मन्त्रस्य द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रस्य एकैकवर्णाद्याः ऋ ऋ लृ लृ वृर्जितैः स्वरैर्द्वादशभिः सर्वादौ सयुताः वक्ष्यमाणधात्रादिद्वाद-  
शादित्यैः परतः संहिताः केशवादिद्वादशमूर्त्तीर्न्यसेत् । अत्र  
सानुस्वाराः स्वरा इति कस्यचिन्मतं हेयं प्रमाणाभावात् ।

ऋ ऋ लृ लृ वृर्जितवन्तु स्वराणां क्रमदीपिकायामुक्तम्,—

केशवादियुगषट्कमूर्त्तिभि-

र्धादपूर्वमिहिरान् नमोऽन्तकान् ।

द्वादशाक्षरभवाक्षरैः स्वरैः

कौववर्णरहितैः क्रमाव्यसेत् ॥

अत्र चतुर्थ्यन्तकेशवादिनाम्नः पश्चाच्चतुर्थ्यन्ता धात्राद्यादित्या  
नमोऽन्ता' प्रयोक्तव्या दर्शितम् ।

तथाचागस्यसंहितायाम्,—

नमो भगवते ब्रूयाद्वासुदेवाय इत्यर्थः ।

ओमादेरस्य मन्त्रस्य आदायैकैकमक्षरम् ।

द्विरावृत्त्याक्षरादानं श्रीरामाख्यमनोरपि ॥

एकैकं केशवाद्यन्तु विष्णोर्द्वादशनाम च ।

धात्राद्यैकैकमादाय सूर्यस्यापि च नाम तु ॥

स्वरादिश्च नमोऽन्तोऽयं न्यस्तव्यो न्यास उत्तमः ।

एव विन्यस्य विधिवत् साक्षान्चाराद्यणो भवेत् ॥

चयरोगाभिचाराद्याः प्रशमं यान्ति नान्यथा ।

तन्मूर्त्तिपञ्जरन्यासोऽभिहितः परमेष्ठिनः ॥

द्विरावृत्याचरादानमिति रामचन्द्रस्य षड्चरत्वात् द्विरावृत्या  
द्वादशाचराणि भवन्ति । एतच्च रघुनाथपूजाविषये मन्त्रं नान्य-  
त्रेति । तेन, अॐ केशवाय धात्रे नम इत्यादयः प्रयोगाः सम्यक्ताः ।  
फलकथनाच्च काम्यत्वमस्य न्यासस्य ।

तथा क्रमदौपिकायाम्,—

चैतन्यामृतवपुरर्ककोटितेजा

मूर्द्धस्थो वपुरखिल स वासुदेवः ।

ऊधसं स्वविमलपाथसीव सिक्तं

व्याप्नोति प्रकटितमन्त्रवर्णकीर्णम् ॥

शारदातिलके मन्त्रन्यासमनन्तरमित्युक्त्वा तमेव विवृणोति,—

अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः सजातिभिः ।

अस्त्रं तत्तलयोर्न्यस्य कुर्यात्तालत्रयं ततः ॥

दिशस्तेनैव बध्नीयाच्छोटिकाभिः समन्ततः ।

हृदयादिषु विन्यसेदङ्गमन्त्रांस्तथा सुधीः ॥

हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वज्रिवल्लभा ।

शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय ऊमीरितम् ॥

नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्रायफडिति [ क्रमात् ।

षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षडङ्गेषु नियोजयेत् ॥

पञ्चाङ्गानि मनोरथस्य तत्र नेत्रमनुं त्यजेत् ।

तत्तत्कल्पोक्तविधिना न्यासानन्यान् समाचरेत् ॥

अङ्गैस्तत्तन्मन्त्रेषु विशिष्योक्तैस्तत्तन्मन्त्रवर्णैः सजातिभिः । जातयो-  
नमः स्वाहा वषट् ऊं वौषट् फड़िति मन्त्राः षट्, तत्सहितैः  
एषां सर्वमन्त्रेष्वनुगतत्वाज्जातिपदवाच्यत्वम् । अङ्गुष्ठादौ अङ्गुष्ठाभ्या-  
मित्यादीनां हृदयादौ हृदयाद्येत्यादीनाञ्च प्रयोगस्तत्र तत्र न्यास-  
वशादर्णवल्लभ्यः एतत् सर्वमगस्त्यसंहितावचने व्यक्तीभविष्यति ।  
तत्तल्लयोः करतल्लयोरस्त्वं तत्तन्मन्त्रोक्तं अर्थात् फट्कारसहितं न्यस्य  
तालत्रयं कृत्वा तेनैवास्त्वमन्त्रेण कोटिकाभिरङ्गुष्ठतर्ज्ज्याच्चेपजनित-  
ध्वनिरूपाभिर्दिग्बन्धनं कार्यम् । एवं हृदयादिष्वयङ्गमन्त्रान्  
तत्तन्मन्त्रेषु विशिष्योक्तान् तथा सजातीन् न्यसेदित्यर्थः ।

हृदयादीनां प्रकृतत्वात् तत्सहितान् कृत्वा नम इत्यादीन्  
जातिमन्त्रानाह, हृदयाय नम इति । वक्त्रिवक्त्रभा स्वाहा, नेत्र-  
त्रयायेति त्रिनेत्रदेवताविषयं दिनेत्रदेवतायान्तु नेत्राभ्यां वौष-  
ड़िति प्रयोक्तव्यम् ।

तथाचागस्त्यसंहितायाम्,—

चतुर्दंशस्वरान्ताय मानुस्वाराय वक्त्रये ।

नेत्राभ्यां वौषड़न्ताय रोष्यस्ताय फडात्मने ॥

षड़ङ्गेति । इति प्रकारेणोक्तान् योजयेत् नलङ्गुलीषु हृदयाय  
नम इत्यादि अन्यथा षड़ङ्गेति व्यर्थं स्यात् । एतेन हृदयादयः  
समुदाया एवाङ्गमन्त्रा इत्युक्त्वाऽङ्गुलीष्वपि हृदयाय नम इत्यादि  
ये प्रयुज्यन्ते ते निरस्ताः । तथा सति मन्त्रयन्त्रोद्गारे कवचास्ता-  
दिपदेषु का गतिः स्यात् ।

क्रमदीपिकायामपि नमः पदादीनामेवाङ्गमन्त्रत्वमुक्तं,  
 हृदये नतिः शिरसि पावकप्रिया सवषट् शिखा ऊमपि वर्षणि स्मृतम् ।  
 सफड्स्त्रमित्युदितमङ्गपञ्चकं सचतुर्थि वौषडुदितं दृशौ यदि ॥

तथा व्यक्तमाह अगस्त्यसंहितायाम्,—

अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीनाञ्च तथैव तलपृष्ठयोः ।

न्यासस्ततः षडङ्गानां भवत्येवं प्रकल्पना ॥

हृदि मूर्द्ध्नि शिखायाञ्च सर्वाङ्गे नेत्रयोरपि ।

दिच्छस्त्रञ्च नमः स्वाहा वषट् ऊं वौषड्यथ ॥

तथाचैव फडित्येवं षडङ्गानाञ्च पञ्चवम् ।

तत्तत्स्थाने चतुर्थन्ते तत्तत्पञ्चवयोगतः ॥

तत्तदङ्गगतो न्यासः कर्त्तव्यश्च यथाक्रमम् ।

तत्तत्स्थानेऽङ्गुष्ठादौ च चतुर्थन्त इत्यर्थः ।

तथा तत्रैव हनूमन्मन्त्रस्य करन्यासे स्फुटमुक्तम् ।

नमो भगवते आज्ञनेयायेत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः स्मृतम् ।

रुद्रमूर्त्तय इत्येवं तर्जनीभ्यां स्वाहा ततः ॥

वायुसुतायेत्यपि च मध्यमाभ्यां वषट् तथा ।

अग्निगर्भाय च तथाऽनामिकाभ्यां ऊमीरितम् ।

रामदूताय च पुनः कनिष्ठाभ्याञ्च वौषडित्यादि ॥

तथा कालिकापुराणे मातृकान्यासे,—

आकारञ्च तथोच्चार्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमस्ततः ।

प्रथमं मातृकाङ्गन्तु अङ्गुष्ठद्वयतो न्यसेत् ॥ इत्यादि ।

पञ्चाङ्गानीति पञ्चाङ्गमन्त्रे करतलन्यासोऽपि नास्तीति मन्त्रव्यम



अङ्गन्यासस्य नित्यतोक्ता ज्ञानमालायाम् ।

पूजाजपार्चनाहोमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।

अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ॥

तत्तत्कल्पोक्तेति । अन्यान् मन्त्रस्य प्रतिवर्णं 'न्यासानित्यर्थः ।

सारदातिलके,—

कल्पयेदात्मनो देहे पीठ धर्मादिभिः क्रमात् ।

अंसोरुयुग्मके विद्वान् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ॥

धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यञ्च न्यसेत्ततः ।

मुखपार्श्वनाभिपार्श्वधर्मादींश्च विन्यसेत् ॥

अनन्तं हृदये पद्म सूर्यसोमाग्निमण्डलान् ।

सत्त्वादींस्त्रीन् गुणान् न्यसेत् स्वनामाद्यवरादिकान् ॥

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ।

ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत् पीठमनुं ततः ॥

एव देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

मुद्राः प्रदर्श्य विधिवदर्घ्यस्थापनमाचरेत् ॥

धर्मादिभिः पीठं कल्पयेदित्यनेन पीठपूजायां वक्ष्यमाणाया-  
माधारशक्त्यादीनां न्यासे उपयोगो नास्तीति दर्शितम् । प्रपञ्चसारे-  
ऽप्येवं । क्रमदौपिकायान्तु आधारशक्त्यादीनामपि न्यास उक्तः ।

प्रादक्षिणेनेत्यनेन आदौ दक्षिणांशे ततो वामांशे ततो वामोरौ  
ततः पश्चाद्विणोरी धर्मादिचतुष्टयमित्यर्थः । अधर्मादीनपि  
प्रादक्षिणेन मुखे वामपार्श्वे नाभौ पश्चाद्विणपार्श्वे क्रमादित्यर्थः ।

न्यासस्तु चतुर्थ्यन्तनाम्ना नमोऽन्तेन कार्यः । सूर्यादिमण्डलान् क्रमेण  
 प्रणवस्य वर्णत्रयादिकान् न्यसेत् । पीठपूजायां प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णै-  
 रिति वक्ष्यमाणत्वादिति । आत्मादित्रयमपि स्वनामाद्यचरादिक-  
 मित्यर्थः । ज्ञानात्मानन्तु भुवनेश्वरीवीजाद्यं कृत्वा न्यसेत् । ततो  
 हृदयस्थाभितः पूर्वादिदिक्षु मध्ये च पीठशक्तीर्नव विन्यस्य  
 पश्चात् पीठमन्त्रं हन्मध्ये न्यसेदिति बोद्धव्यं । पीठपूजायां तथा-  
 भिधास्यमानत्वात् ।

एतद्व्यक्तमुक्तं क्रमदीपिकायाम्,—

सूर्येन्दुवक्त्रौ प्रणवांश्च्युक्तान्

आद्यचरैः सत्वरजस्तमांसि ।

आत्मादित्रयमादिवीजसहितं व्योमाग्निमायालवै

ज्ञात्वात्मानमथाष्टदिक्षु परितो मध्ये च शक्तीर्नव ।

न्यसेत् पीठमहामनुञ्च विधिवत् हृत्कर्णिकामध्यगं

नित्यानन्दचितिप्रकाशममलं सञ्चिन्तयेद्भ्राम तत् ॥

देवताभेदेन पृथक् पृथक् नव पीठशक्तयः पीठमन्त्रश्च ।

तत्र विष्णोर्यथा सारदातिलके,—

विमलोल्लर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा ततः परम् ।

प्रक्री सत्या तथेज्ञानाऽनुग्रहा नवमी स्रता ॥

नमो भगवते ब्रूयाद्विष्णवेऽथ पदं ततः ।

सर्वभूतात्मने वासुदेवायेति वदेत्ततः ॥

सर्वात्मसंयोगपद्माद्योगपद्मपदं ततः ।

पीठात्मने नमोऽन्तोऽयं प्रणवादिर्मनुर्मतः ॥

शक्तैर्यथा,—

जयाख्या विजया पञ्चादजिता चापरानिता ।

नित्या विलासिनी दोग्ध्री चाघोरा मङ्गला नव ॥

ह्रीं पद्मासनाय नमः पीठमन्त्रः प्रकीर्तितः ।

दुर्गापीठस्तु वक्ष्यते । शिवस्य यथा,—

वामा च्येष्टा ततो रौद्रौ कालौ कलविकरणी ।

वलविकरणी<sup>१</sup> पञ्चादलप्रमथनी ततः ॥

सर्वभूतदमनी च नवमी स्थान्ननोन्ननी ।

ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठा-  
त्मने नमः इति पीठमन्त्रः ।

अन्येषान्तु देवानां पीठशक्तिपीठमन्त्रास्तत्तत्कल्पेषु द्रष्टव्याः ।

एवं देवं पीठत्वेन सञ्चिन्त्य हृत्पद्मे दृष्टदेवतां ध्यायेत् । ध्यानन्तु  
यक् पृथक् वक्ष्यते ।

कालिकापुराणे,—

प्रत्यञ्जीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ।

षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् ॥

मुद्राः प्रदर्शयन्ति विष्णोर्मुद्राः शङ्खाद्याः ।

यथागस्त्यसंहितायाम्,—

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धनु-कौस्तुभ-गारुडाः ।

श्रीवत्सवनमालाश्च त्र्योनिमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥

मुद्रालक्षणं वक्ष्यते । शङ्खस्थापनस्यावश्यकत्वमुक्तमागस्त्ये,—

१ ग पुस्तके, वलविकरणी पदं नास्ति ।

विनैव शङ्खपूजां यो वैष्णवः पूजयेद्भरिम् ।

पूजाफलं न चाप्नोति स सम्यक्पूजकोऽपि सन् ॥

अर्घ्यस्थापनमुक्त्वा तदिधिमाह तत्रैव,—

शङ्खमस्ताम्बुना प्रोक्ष्य वामतो वक्त्रिमण्डले ।

साधारं स्थापयेद्विद्वान् दन्दुस्तुतसुधामयैः ॥

तोयैः सगन्धपुष्पाद्यैः पूजयेत्तं यथाविधि ।

आधारं पावकं शङ्खं सूर्यं तोयं सुधाकरम् ॥

स्मरेद्वक्त्रार्कवन्दनानां कलास्तास्तेष्वनुक्रमात् ।

मूलमन्त्रं जपेत् स्पृष्ट्वा न्यसेत्तस्याङ्गमङ्गवित् ॥

अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठयेत् ।

दर्शयेद्धेतुमुद्राङ्गं बोधयेत्तत्त्वमुद्रया ॥

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायान्निः प्रपूरयेत् ।

किञ्चिदर्घ्याम्बु संगृह्य प्रोक्ष्यन्मभिसि योजयेत् ॥

अर्घ्यस्रोत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।

आत्मानं यागवस्त्रानि मण्डपं प्रोक्षयेद्गुरुः ॥

प्रोक्षणीपात्रतोयेन मनुनान्यान्यपि क्रमात् ।

अस्त्रमन्त्रजपितजलेन शङ्खं प्रोक्ष्य स्ववामभागे भूमौ वक्त्रि-  
मण्डले त्रिकोणे आधारसहितं स्थापयेत् ततश्चन्द्रमण्डलनिर्गत-  
सुधारूपैस्तोयैर्गन्धपुष्पाद्यैश्च तं शङ्खं यथाविधि पूरयेत् ।

आदिशब्दात्,

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाद्यतिलसर्षपैः ।

सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम् ॥

ति वक्ष्यमाणद्रव्यानां ग्रहणम् ।

यथाविधीति वक्ष्यमाणकुम्भपूरणविधिना त्रिभागजलेन पूरणम् ।

तथा कालिकापुराणे,—

पूर्व्ववन्मण्डल कृत्वा अर्घ्यपात्रे ततो जलैः ।

त्रिभागैः पूरयेत् पात्रं पुष्पं तत्र विनिक्षिपेत् ॥

तथा,—

आत्माभेदेन विधिवन्मातृकां प्रतिलोमतः ।

जपेन्मूलमनुञ्चेव पूजयेद्देवताधिया ॥

देवताधिया जलं चिन्तयन्नित्यर्थः ।

गन्धपुष्पादिदानन्तु नमोमन्त्रेण कार्यम् ।

यथा क्रमदीपिकायाम्,—

तत्र गन्धसुमनोऽक्षतानयो निक्षिपेद्भृदयमन्त्रमुच्चरणम् ।

तीर्थावाहनमथत्र कार्यं यथा तत्रैव ।

तत्र तीर्थमनुनाभिवाहयेत्तीर्थमुष्णरुचिमण्डलान्ततः ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।

एष तीर्थमहः प्रोक्तो दुरितौघनिवारणः ॥

क्रमदीपिकायान्तु सविन्दुकैः प्रतिलोमाक्षरैः पूरणं यस्त्रिखितं  
तत्फलातिशयार्थम् । अन्यत्र केवलविलोममातृकाविधानात् ॥

आधारमिति । आधारादिकं वज्रादिरूपेण स्मृत्वा तेष्व-  
धारादिषु वज्रादीनां कला अपि सरेत् । वज्रादीन् कलाश्च  
पूजयेदिति तात्पर्यम् ।

तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम्,—

शङ्खमन्त्रेण<sup>१</sup> संशोध्य सदाधारे निधाय च ।

पूरयेच्छुद्धतोयेन मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥

पूजयेदग्निसूर्य्येन्दुविम्वैस्तत्तत्कलान्वितैः ।

तत्तत्कलानां संख्या तु दशद्वादशषोडश ॥

आधारशङ्खतोयेषु तत्तदात्मानमर्चयेत् ।

तीर्थावाहनमन्त्रेण तीर्थमावाहयेज्जले ॥

विम्वैर्मण्डलैस्तत्तदग्न्यादिकलान्वितै<sup>२</sup>रित्यर्थः ।

कुत्र वा कथं वा पूजयेदित्याशङ्क्याह आधारेति यथाक्रम-  
माधारादिषु तत्तद्दशादिसंख्यकलात्मानं कृत्वा तत्तन्मण्डलमर्चये-  
दित्यर्थः ।

तेन दशकलात्मने वक्त्रिमण्डलाय नम इत्यादयः प्रयोगाः ।

जपन्मूलमनुमिति जलं स्पृष्ट्वाष्टवारं मूलमन्त्रं जपेत्, तस्य  
मन्त्रस्याङ्गं षडङ्गञ्च विधिज्ञो न्यसेत् ।

तदुक्तं क्रमदीपिकायाम्,—

<sup>३</sup>[संस्पृशन् जपतु मन्त्रमष्टश इति] ।

अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा कवचमन्त्रेण  
ऊमित्यनेन वक्ष्यमाणवगुण्डमुद्रयाऽवगुण्डयेत् ।

१ ग पुस्तके, शङ्खं मन्त्रेण ।

२ क पुस्तके, तत्तत्कलान्वितैः ।

३ ग पुस्तके, [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

क्रमदौपिकायान्तु,—

वर्धणा समवगुण्य दोर्युजेति स्वातन्त्र्येण यस्मिंश्चितं तत् सार-  
दाद्यसम्मतमिति ।

तस्य बोधनमुद्रया बोधयेत् ।

धेनुमुद्रा सन्निरोधनमुद्रा च वक्ष्यते ।

दक्षिणेऽर्घ्यस्येति विशेषः । अर्घ्यपाचस्योत्तरतो वामे इत्यर्थः ।

पाद्याचमनीयद्रव्याणि वक्ष्यन्ते ।

यागवस्त्रानि पूजासाधनद्रव्यानि गन्धपुष्पादीनि मनुना दृष्टेन  
अन्यानि पूजाद्रव्याधारपाचादीनि ।

अनन्तरमात्मार्चनमाह शारदातिलके ।

न्यासक्रमेण देहे स्वे धर्मादीन् पूजयेत्ततः ।

पुष्पाद्यैः पीठमन्त्रान्त तस्मिंश्च परदेवताम् ॥

विना निवेद्य गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत् ।

पञ्चकालं पुनः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिमनन्यधीः ॥

उत्तमाङ्गे हृदाधारे पदे सर्वाङ्गके क्रमात् ।

गुरुपदिष्टविधिना शेषमन्यत् समापयेत् ॥

स्वदेहे पीठन्यासोक्तविधिना तेषु तेषु स्थानेषु धर्माय नमः  
इत्यादिक्रमेण धर्मादीन् पीठमन्त्रान्तान् पुष्पाद्यैर्गन्धपुष्पैः पूजयेत् ।  
तस्मिंश्च पीठरूपे देहे हृन्मध्ये परदेवतामिष्टदेवं सच्चिन्त्य गन्धाद्यै-  
र्गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः पञ्चोपचारैर्नैवेद्यवर्जितैश्चतुर्भिः समर्चयेत्तत-  
श्चानन्यधीर्देवतात्मनोरभेदबुद्धिः सन् उत्तमाङ्गादिषु पञ्चसु पञ्च  
पुष्पाञ्जलीन् यथाक्रमं दद्यात् ।

गुरूपदिष्टेति । क्रोड़निहितोत्तानकरयुगलः समकाययीवो  
निमीलितलोचनः सर्वैश्वर्यसम्पन्नं देवं विभाव्य सोऽहमिति मन्त्रं  
जपन् अनन्यमतिर्देवाकारतया आत्मानं विभावयन् आनन्दामृतमग्नौ  
निरुच्छासः क्षणं तिष्ठेदिति गुरूपदेशः ।

क्रमदीपिकायान्तु,— वाह्यार्चननिरपेक्षः सर्वोपचारसहितः  
स्वदेह एव देवार्चनविशेषो जपसहितोऽभिहितः, स च सर्वदान-  
योगशीलस्यैव ।

गौतमीतन्त्रे,—

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च ।

नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले ॥

हरेरित्युपलक्षणं, शालग्रामे सर्वदेवार्चनेनैव कार्यं सर्वदेव-  
मयस्य हरेर्नित्यं तत्र सन्निधानात् ।

लिङ्गपुराणे,—

‘[कामासक्तोऽपि वै नित्यं भक्तिभावविवर्जितः ।

शालग्रामशिलां पुत्रोऽर्चयेत् सोऽच्युतो भवेत् ॥

कोटिलिङ्गसहस्रेषु पूजितैर्यत्फलं भवेत् ।

तत्फलं कोटिगुणितं शालग्रामशिलार्चने ॥

द्वादशशिला यो वै शालग्रामसमुद्भवाः ।

अर्चयेद्वैष्णवो नित्यं तस्य पुण्यं निबोध मे ॥]

कोटिलिङ्गसहस्रेषु पूजितैर्जाह्नवीतटे ।



काशीसमे युगान्यष्टौ दिनेनैकेन तद्भवेत् ॥

मणौ सूर्यकान्तादौ च सर्वदेवार्चनं यन्त्रे मन्त्राक्षरसहिते  
तन्मन्त्रेषु विशिष्योक्तेः ।

यथागस्त्यसहितायाम्,—

यन्त्रं मन्त्रमयं प्राङ्मूर्तिर्देवता मन्त्ररूपिणी ।

यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य प्रसाधयति राघवम् ॥

सर्वेषामपि मन्त्राणां पूजा यन्त्रे प्रशस्यते ।

यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य यदभीष्टं तदाप्नुयात् ॥

मण्डले सर्वतोभद्रादौ सर्वदेवार्चनं प्रतिमासु तत्तद्देवता-  
प्रतिहृतिषु तथा वारिपूर्णकुम्भेऽपि ।

यथागस्त्ये,—

निधाय कलसं तत्र तौर्यतोयप्रपूरितमित्यादि ।

नरसिंहपुराणे,—

अश्वघ्नौ हृदये सूर्यं मण्डले प्रतिमासु च ।

यन्त्रे तेषु हरः सत्यगर्जनं मुनिभिः स्मृतम् ॥

आवश्यकपूजा तु सर्वाभावे मनसैव कार्या ।

यथा कालिकापुराणे,—

प्रवासे पथि वा मार्गे स्थानाग्राप्तौ जलेऽपि वा ।

कारागारनिबद्धो वा प्रायोवेगगतोऽपि वा ॥

अशुचिर्वा महामायापूजां कुर्याच्च मानसीम् ।

तत्र यन्त्रादौ प्रथममुत्तरे गुरुपूजां दक्षिणे गणेशपूजामाह

क्रमदीपिकायाम्,—

वायव्याशादौशपर्यन्तमर्च्या पीठस्योदक् गौरवी पंक्तिरादौ ।

पूज्योऽन्यत्राप्याम्बिकेयः कराब्जैः पाशं दन्तं शृण्णभीतिं दधानः ।

गुरुपंक्तिरुक्ता ज्ञानार्णवे,—

श्रीगुरुश्च महेशानि गुरुः परमसंज्ञकः ।

परमेष्ठौ गुरुः पश्चात् पूजयेत् स्वगुरुत्रयम् ॥

अन्यत्र दक्षिणे भागे गणेशं ध्यात्वावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

तथा,—

गणेशं विघ्ननाशाय संपूज्य पूजयेद्धरिम् ।

गणेशध्यानं प्रयोगे लिख्यते ।

गणेशादिपूजा सामान्यार्थादकेनैव कार्या न तु प्रधानोदकेन ।

यथा नारदतन्त्रे,—

सामान्येनार्थपात्रेण वह्निः कुर्यात् प्रपूजनम् ।

विशेषार्थं न दातव्यं प्रायश्चित्तं प्रपद्यते ॥

अस्तेण पात्रं संशोध्य हन्मन्त्रेण प्रपूरयेत् ।

निचिपेत्तीर्थमावाह्य गन्धादीन् प्रणवेन तु ॥

दर्शयेद्धेतुमुद्राञ्च सामान्यार्थमिदं स्मृतम् ।

पीठपूजामाह तत्रैव,—

आराध्याधारशक्त्याद्यमरचरणपावध्ययो मध्यभागे

धर्मादीन् वक्त्रिरचःपवनशिवगतान् दिक्षधर्मादिकांश्च ।

मध्ये शेषाब्जविम्बत्रितयगुणगणात्मव्रजं केशराणां

मध्ये मध्ये च शक्तीर्नव समभियजेत् पीठमन्त्रेण भूयः ॥

अमरचरणपो देववृचः कल्पवृच इति यावत् । विम्बत्रितयं  
सूर्यसोमाग्निमण्डलान् गुणगणं सत्वादित्रयं, आत्मव्रजं आत्मादि-  
चतुष्टयम् ।

तथाच शारदातिलकम्,—

आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रान्तमर्चयेत् ।

योगिनीतन्त्रे,—

आधारशक्तिं मध्येऽथ ततः कूर्मं समर्चयेत् ।

तत्रानन्तं तत्र पृथ्वीं सागरं तत्र पूजयेत् ॥

तत्र रत्नमयं द्वीपं तस्मिंश्च मणिमण्डपम् ।

यजेत् कल्पतरुं तत्र साधकाभीष्टसिद्धिदम् ॥

अधस्तात् पूजयेत्तस्य वेदिकां रत्ननिर्मिताम् ।

पश्चादभ्यर्चयेत्तस्यां पीठं धर्मादिभिः क्रमात् ॥

आग्नेयादिषु कोणेषु धर्मादीन् पादरूपिणः ।

गात्ररूपानधर्मादीन् दिक्षु मध्येऽथ संयजेत् ॥

शेषं पद्मं तत्र सूर्यचन्द्रपावकमण्डलान् ।

प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णैरादिवर्णैर्गुणत्रयम् ॥

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमादिना ।

ज्ञानात्मानञ्च चिच्छक्त्या पीठशक्तीर्नव क्रमात् ॥

केशरेषु च पूर्वादि मध्ये च पूजयेत् सुधीः ।

आसनं पीठमन्त्रेण मध्ये पुष्पैः प्रकल्पयेत् ॥

मूलेन मूर्तिं सकार्थं क्वायायां कल्पशास्त्रिनाम् ।

आवाह्यं पूजयेत्तस्यां मन्त्री मन्त्रस्य देवताम् ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

आधारशक्त्यनन्तरं प्रकृत्यै नम इति केचिद्यजन्ति तदसङ्गतम्,  
शारदातिलकादिषु सर्व्वतन्त्रेष्वनुकृतात् ।

यच्च,—आधारशक्ति प्रकृति कमठ शेषक्षमाक्षीरसिन्धूनिति  
क्रमदीपिकावचनं, तस्यायमर्थः,—

आधारशक्तिस्वरूपा प्रकृतिः प्रधानमित्येकैव न तु पृथगिति ।

नारदपञ्चरात्रे नारायणपूजायाम् ।

तत आधाराशक्तिश्च कूर्माञ्जानन्तमेव च ।

तथाचागस्त्यसंहितायाम्,—

आधाराशक्तिकूर्माभ्यां नागाधिपतये तथा

पृथिव्यै च तथा क्षीरसागराय नमस्तथा ।

श्वेतद्वीपाय च तथेत्यादि । ————

अत्र विष्णुविषये, क्षीरसागरः श्वेतद्वीपश्च विशेषः, अन्यत्र  
सागरमात्रं रत्नद्वीपश्चेति ।

तस्यां रत्नवेदिकायां पौठं धर्मादिभिरित्यनेन धर्माधारभ्यैव  
पौठपूजा आधारशक्त्यादिपूजात्वाधारपूजामात्रमिति दर्शितम् ।

अतएव प्रपञ्चसारे आधारशक्त्यादिपूजा नोक्ता, शारदातिल-  
केऽपि तज्ज्ञासो नोक्तः ।

आदिना आद्यचरेण, चिच्छक्त्या भुवनेश्वरीवीजेन, मध्ये पौठ-  
मध्ये, मूलेन मूलमन्त्रेण, मूर्त्तौ देवताकारं, संकल्प्य विभाज्य, तस्यां  
मूर्त्तौ देवतामावाह्य उपाचारैः पूजयेत् ।

तथा शारदातिलके,—

मूलेन मूर्त्तिं कृष्णाग्निं कायायां कल्पशास्त्रिनाम् ।

आवाह्य पूजयेत्तस्यां मन्त्रौ मन्त्रस्य देवताम् ॥  
 मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुक्तावर्तना सुधीः ।  
 आनीय तेजः स्वस्थानात् नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ॥  
 संयोज्य ब्रह्मरन्ध्रेण मूर्त्यामावाहयेत् पुनः ।  
 संस्थापनं सन्निधानं सन्निरोधमनन्तरम् ॥  
 सकलीकरणं पश्चादिदधादवगुण्डनम् ।  
 अमृतौकरणं कृत्वा कुर्वीत परमौकतिम् ॥

आवाहनप्रकारमाह मूलमन्त्रमिति ।

देवं सञ्चिन्त्य मूलमन्त्र पठन् तेजोरूपतामापाद्य तत्तेजः  
 स्वस्थानादात्मस्थानात् इत्यज्ञात् पुष्पाञ्जलौ मूलमन्त्रेण नासिकारन्ध्रेण  
 निर्गमय्य पूर्वसंकल्पितमूर्त्यां तदीयब्रह्मरन्ध्रद्वारा संयोज्य प्रवेश्य  
 इहागच्छागच्छेति स्वमुद्रया आवाहयेत् तिष्ठ तिष्ठेति स्थापनं  
 सन्निहितो भवेति सन्निधापनं सन्निरुद्धो भवेति सन्निरोधनं  
 स्वस्वमुद्राभिः कृत्वा सकलीकरणं देवताङ्गे षडङ्गन्यासं अवगुण्ड-  
 नादीनि च तुष्णीं स्वस्वमुद्रया कुर्यात् । अत्र सकलीकरणात्  
 पूर्वमभिमुखो भवेति तन्मुद्रया सम्मुखीकरणं बोद्धव्यम् । मुद्रास्त-  
 वक्ष्यन्ते । ततः प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

यथागस्त्ये,—

राममावाह्यं सस्थाप्य सन्निधाप्य च मुद्रया ।  
 प्रसाद्य सम्मुखीकृत्य सन्निरुध्य च पूजयेत् ॥  
 सकलीकृत्य तत्प्राणान् तदीयानौन्द्रियाण्यपि ।  
 प्रतिष्ठाप्यार्चयेद्विष्णुमन्यथा निष्कलं भवेत् ॥

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमाह शारदातिलके,—

पाशादित्र्यचराद्यन्ते स्यादमुष्यपदं पुनः ।

ततः प्राणा इह प्राणाऽमुष्य जीव इह स्थितः ॥

अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्यपदं भवेत् ।

वाङ्मनश्चक्षुश्श्रोत्रघ्राणप्राणा अनन्तरम् ॥

कमादिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठदयम् ।

प्रत्यमुष्यपदात् पूर्वं पाशादीन् विनियोजयेत् ॥

अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः ।

पाशादित्र्यचरं, आं ह्रीं क्रौं इति वीजत्रयं आत्मा हंस इति ।

अमुष्येति देवतानामकीर्त्तनं प्रत्यमुष्यपदात् पूर्वं पाशादित्र्यचरं हंस इति वदेत् । स्यादपदस्य ठदयमिति संज्ञा । शारदातिलके एवायं मन्त्रो यादिवर्णसंयोगेन प्रकारान्तरेण वक्ष्यते । स च मन्त्रो वग्नादिषट्कर्म्मस्वस्थिरप्रतिमायाञ्च नियोज्यः, अथञ्च मन्त्रो यत्र सद्योविसर्जनं तत्रैवेति तत्त्वम् ।

एतच्चावाहनादिकं विसर्जनञ्च शालग्रामे प्रतिष्ठितप्रतिमायाञ्च न कार्यं तत्र देवतायाः सदैव सन्निध्यात् । किन्तु हृदयस्थ-तेजः पुष्पाञ्जलिना तत्रस्थदेवतायां संक्रमय्य समुखीकरणवगुण्ठ-नामृतौकरणपरमौकरणानि कुर्यात् विरोधाभावात् ।

अतएव पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्,—

शालग्रामे स्यावरे च नानाहनविसर्जने ।

शालग्रामशिलादौ तु देवः सन्निहितः मदा ॥

स्यावरे प्रतिष्ठितदेवे ।

तथा श्रीभागवते,—

उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायास्तुद्धवार्चने ।

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ॥

उद्वासो विसर्जन, स्थण्डिले मण्डलादौ ।

मुद्राश्चोक्ता. शारदातिलके,—

आवाहनादिका मुद्राः प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ।

याभिर्विरचिताभिस्तु मोदन्ते सर्वदेवताः ॥

सम्यक् सुपूजितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः ।

आवाहनौ समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः ॥

अधोमुखीकृता सैव प्रोक्ता स्थापनकर्माणि ।

आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका ॥

सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेय तन्त्रवेदिभिः ।

अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ॥

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिः ।

सव्यहस्तलता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।

अत्रगुण्डनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती ॥

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टकनिष्ठानामिका पुनः ।

तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा समीरिता ॥

अमृतौकरण कुर्यात्तथा देशिकसत्तमः ।

अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली ॥

महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ।

प्रयोजयेदिमा मुद्रा देवतायागकर्माणि ॥

आगच्छे,—

उत्तानमुष्टियुगलं समुखीकरणीं सूता ।  
विष्णोर्मुद्राश्चोक्ता नारदतन्त्रे,—

वाममुष्टिधृताङ्गुष्ठा गोपयित्वा तदक्षकम् ।

वामाङ्गुष्ठस्य मूलेन तदयं विन्यसेत्ततः ॥

मुष्टिवाङ्गविनिचिप्रदक्षहस्ताग्रदेशतः ।

शङ्खमुद्वेपमाख्याता प्रशप्ता देवतार्चने ॥

विपर्यस्तौ तस्तौ हत्वा वामदक्षिणहस्तयोः ।

अङ्गुष्ठतर्ज्जनीमध्ये द्वे कनिष्ठे प्रसारिते ॥

तर्ज्जनीमध्यमानामा विरप्ताः षट् प्रसारिताः ।

सुराप्ता चक्रमुद्वेपमाख्याताऽष्टारचक्रवत् ॥

अन्योन्याभिमुखाङ्घ्रिष्ठाङ्गुली प्रोद्धृतमध्यमौ ।

मंजिष्ठादुन्नतौ शूलौ गदामुद्वेपमीरिता ॥

दत्ताङ्गुष्ठद्वयं मध्ये परितोऽष्टाङ्गुलीनय ।

कुटिलान् प्राङ्गुलीन् कुप्यात् पद्ममुद्रा सुशोभना

प्रकारान्तरेण पद्ममुद्रोक्ता कालिकापुराणे,—

मणिवन्वादाकरमं मयोव्य करयोर्द्वयोः ।

अङ्गुष्ठे चापि मयोव्य तर्ज्य च कनिष्ठिके ॥

निष्कृतिगो द्वयोः पादोरङ्गुल्यो विरत्नामतः ।

पद्ममुद्रा समाख्याता चतुर्वर्गप्रदा नृपगन् ॥



रदतन्त्रे,—

अन्योऽन्याभिमुखं लग्ने कनिष्ठे द्वे अनाभिकाम् ।  
वामां दक्षिणतर्ज्जन्या<sup>१</sup> धृत्वाऽन्यास्तु षडङ्गुलीः ॥  
एकत्र प्रोन्नताः कृत्वा योजयेत् कौस्तुभाभिधा ।  
तिथ्येक् कृत्वा कनिष्ठे द्वे विपरीतं निधोजयेत् ॥  
तदधोऽङ्गुष्ठयुगलं वह्निः किञ्चिदिनिर्गतम् ।  
तर्ज्जनीमध्यमानामाः संक्षिष्टास्तु परस्परम् ॥  
प्रकुर्यात् प्रोन्नताः सर्वा मुद्रा गारुडसंज्ञिता ।  
कनिष्ठाद्वयमूले तु तर्ज्जन्यग्रद्वयं भवेत् ॥  
मध्यमानामिके द्वे द्वे अङ्गुष्ठद्वयमध्यतः ।  
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोरस्त्रं लग्नं श्रीवत्ससंज्ञिता ॥  
वनमाला भवेन्मुष्टिद्वयी प्रोद्धततर्ज्जनी ।  
मालाकारं तर्ज्जनीभ्यां ताभ्यामारभ्य कण्ठतः ॥  
भ्रामयेत् पादपर्यन्तं देवदेवस्य चक्रिणः ।  
तर्ज्जनीभ्यामनामे द्वे बद्धा तदुपरिस्थिते ॥  
प्रसारिते मध्यमे द्वे सरले तु कनिष्ठके ।  
व्यत्ययान्मध्यमामध्यभागे च विनियोजयेत् ॥  
मध्यमाधःस्थिताङ्गुष्ठा योनिमुद्रा समीरिता ।  
ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठीयाग्रस्तस्य कनिष्ठिका ॥  
दक्षिणाङ्गुष्ठसंलग्ना तत्कनिष्ठा प्रसारिता ।  
तर्ज्जनीमध्यमानामाः किञ्चित् सङ्कुच्य चालिताः ॥

वेणुमुद्रेयमुदिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ।  
 दक्षिणाङ्गुष्ठे बद्धान्यमङ्गुष्ठं तु तदयकम् ॥  
 दक्षाङ्गुलीभिः सपौड्य वामाभिस्ताश्च पौडयेत् ।  
 हृदये स्थापिता विल्वमुद्रा विल्वफलालतिः ॥

कालिकापुराणे,—

मुद्रां विना तु यज्जप्यं प्राणायामः सुरार्चनम् ।  
 योगो ध्यानासने चापि निष्फलानि तु भैरव ॥  
 पूजा तु पौड्योपचारैः कार्या अग्नौ दग्धभिस्तथाप्यग्नौ  
 पञ्चभिरुपचारैरिति ।

प्रपञ्चसारे,—

आसनं स्वागत चार्घ्यं पाद्याचमनीयकम् ।  
 मधुपर्काचमनानवसनाभरणानि च ॥  
 सुगन्धममनोधूपदीपनैवैश्वन्दनाः ।  
 प्रयोजयेदङ्गनायामुपचारांस्तु पौड्यम् ॥  
 अर्घ्यपाद्याचमनमधुपर्कादग्ना अपि ।  
 गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दग्धप्रमाणम् ॥  
 गन्धादयो निवेद्यान्ता पूजा पक्षोपचारिकी ।

अर्चाद्यान्तरं पाद्याचमनीयक्षीप्तम् । गार्ग्यादिमन्त्रादिषु  
 पाद्याचमनीयान्तरमर्घ्यमुक्तम् । कालिकापुराणे पाद्याद्याचमनीय-  
 कम् उक्तं, दग्धापूजाया वक्ष्यते ।

तथा श्रीभागवते,—

पाद्याद्याचमनीयाद्यैः पाणवाभोविभूषणैः ।

अतश्चैच्छिको वैकल्पिकः त्रिविधः क्रमः । वन्दना प्रदक्षिणी-  
कृत्य नमस्कारः, प्रदक्षिणनमस्कृतिरिति कालिकापुराणात् । देव्याः  
षोडशोपचारास्तु स्वागतवर्जिता अञ्जनसहिता एवेति वक्ष्यन्ते ।

अत्यन्ताशक्तावुपचारद्वयेनापि पूजामाह कालिकापुराणे,—

सम्यक् सम्पादिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।

उपचारांस्ततः सम्यक् पञ्चैतान् वितरेत् पुनः ॥

गन्ध पुष्पञ्च धूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च ।

अभावे गन्धपुष्पाभ्यां तदभावे च भक्तिः ॥

अत्र यद्यपि, देवानां नमसा कार्यं पितृणाञ्च स्वधेति च ।  
इति देवलवचनान्नमःपदेनैव देवदानमिति परिभाषा, तथापि  
स्वाहापदेनार्थं स्वधापदेनाचमनीयमधुपर्कौ सर्वमन्यत् नमःपदेन  
देयं विशेषवचनात् ।

यथा शारदातिस्तके,—

पाद्यं पादाम्बुजे दद्याद्देवस्य हृदयानुना ।

अनुर्मन्त्रः हृदयानुना हृन्मन्त्रेण नम इत्यनेन ।

रुद्रजामले शम्भुनायुक्तम्,—

पाद्यं पादाम्बुजे दद्यादङ्गो चाचमनीयकम् ।

अर्थं शिरसि देवस्य पुष्पदूर्वाचतानि च ॥

नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट् चेति यथाक्रमम् ।

योगिनीतन्त्रेऽपि,—

अर्थं स्वाहेति शिरसि दद्याद्दूर्वाचतादिकम् ।

पाद्यं नमः इति प्रोच्य दद्यात् पाद्यन्तु पादयोः ॥

स्वधेत्याचमनीयन्तु देवस्य मुखपङ्कजे ।

स्वधेति मधुपर्कञ्च पुनराचमनीयकम् ॥

स्नानीयं वसनं पुष्पं धूपं दीपं स्नजं तथा ।

चन्दनञ्च नमोऽन्तेन तत्तच्छब्देन कल्पयेत् ॥

पूर्ववचने वौषडिति पुष्पदानमुक्तम् । अस्मिंश्च वचने नमः-  
पदेनेति तदयं कल्पः ।

पुरस्सरणचन्द्रिकायामपि,—

नमःस्थाने स्वधा ब्रूयादेतेनाचमनं मुखे ।

मधुपर्कं प्रयुञ्जीत तेनैव वदने बुधः ॥

एतेन शारदातिलके स्वधामन्त्रेणेत्यत्र ि

प्रकरणापरिचयाच्च सुधामन्त्रेणामृतबीजेन वमित्यनेनेति केषा-  
च्चिद्वाख्यानमपास्तम् ।

उत्सर्गप्रकारश्च उक्तो यथा ।

मूलमन्त्रं समुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ।

चतुर्थ्यन्तामथाभाष्य द्रव्यं द्रव्यं नमो वदेत् ॥

कालिकापुराणे,—

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च ।

यस्य यद्दीयते द्रव्यमलङ्कारादिकाश्चनम् ॥

तेषां दैवतमुच्चार्य हत्वा प्रोक्षणपूजने ।

उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ॥

वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।

अर्घ्यपात्राहितैस्तोयैर्विना यद्विनिवेदितम् ॥

दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्व्वं तन्निष्कलं भवेत् ।

रोगान्नोद्धात् प्रमादाद्वा अर्धपात्रपरिष्कृतम् ॥

तोयं स्तुतं चेत् पात्रात्तत् पुनः कुर्यात्तदामृतम् ।

अल्पावशेषे तोये तु पात्रे मन्त्रामृतौक्यते ॥

तचान्यदुदकं दद्यात्तत्तेनैवामृतं भवेत् ।

नार्धं प्रदद्यादन्येभ्यो मूलदेवाय कल्पितम् ॥

परिवारगणांस्तत्र सामान्यार्घ्येण पूजयेत् ।

प्रोक्षणपूजने कृत्वा द्रव्यदेवतामुच्चार्य्य मूलमन्त्रेणोत्सृज्य द्रव्य-  
नाम गृहीत्वा देवतायै निवेदयेदित्यर्थः ।

तेनाय प्रयोगः ।

वमिति वरुणबीजेन द्रव्यं प्रोक्ष्य अमुकद्रव्याय नम इति पुष्पं  
दत्वा मूलमन्त्रं पठित्वा अमुकदेवाय अमुकद्रव्यं अमुकदैवतं नम  
इति अर्घ्यादकेनोत्सृज्य इदममुकद्रव्यमिति निवेदयेदिति ।

प्रत्युपचारान्ते तुष्णीं जलदानमुक्तम् शारदातिलके,—

देवस्य मस्तकं कुर्यात् कुसुमोपहितं सदा ।

पूजाकाले देवताया नोपरि भ्रामयेत् करम् ॥

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरे ।

उपचारमाह शारदातिलके,—

अथोपचारान् कुर्व्वीत तन्त्रवित् स्वागतादिकान् ।

स्वागतं कुशलप्रश्नं निगदेदग्रतो गुरुः ॥

पाद्यं पादाम्बुजे दद्यात् देवस्य हृदयानुना ।

एतत् श्यामाकदूर्वाजविष्णुक्रान्ताभिरौरितम् ॥

स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।

जातीलवङ्गककौलैस्तदुक्तं तन्त्रवेदिभिः ।

अर्घ्यं दिशेत्ततो मूर्ध्नि स्वाहामन्त्रेण देशिकः ॥

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशागतिलसर्षपैः ।

सदूर्ध्वैः सर्वदेवानामेतदर्थमुदीरितम् ॥

स्वधामन्त्रेण वै कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।

आज्यं दधिमधून्मिश्रमेतदुक्तं मनीषिभिः ॥

तेनैव मनुना दद्यादङ्गिराचमनीयकम् ।

गन्धाङ्गिः कारयेत् स्नानं वाससी परिधापयेत् ॥

दद्यात् यज्ञोपवीतञ्च हाराद्याभरणैः सह ।

स्वागतादिकानिति ।

प्रथमं पीठमन्त्रेणैव पुष्पाञ्जलिना आसनं कल्पितमतः स्वागता-  
दिकानित्युक्तं अतएव तत्र पश्चात् सर्वत्र पीठमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिना  
आसनदानमुक्तम् । यथा भुवनेश्वरीतन्त्रे,—

बीजाद्यमासनं दत्वा मूर्तिं तेनैव कल्पयेत् ।

नारायणमन्त्रेऽपि,—

दत्वा तेनासनं मन्त्रौ मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ।

शिवमन्त्रेऽपि,—

अमुना मनुना दद्यादासनं गिरिजापतेः । इति

अगस्त्यसंहितायामपि पीठमन्त्रमुक्त्वा ।

‘इति मन्त्रेण तन्मध्ये कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं पुनः ।

एवं कृत्वा मने पुष्पैर्देवमावाह्य पूजयेत् ।

तथा,— आमन पीठमन्त्रेण मध्ये पुष्पैः प्रकल्पयेत् ।

शक्तौ तु काष्ठाद्यामनमपि पृथक् दद्यात् ।

अतएव कालिकापुराणे,—

आमन प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवनेत्र वा ।

वाक्त्र वा चार्द्धेण कौशं मण्डपम्योत्तरे सृजेत् ॥

अयत् इति आवाहनानन्तर कर्त्तव्यानामुपचाराणामयत् इत्यर्थः । श्यामाकम्पणभेदः ।

आगस्त्ये श्यामाकं पूर्वमेव चेति दूष्वायवत् श्यामाकाय-  
मपीति । अन्ये तु श्यामाकतण्डुलानाऽऽ । अन्न पद्मपुष्पं विष्णु-  
क्रान्ता अपराजिता तदयमित्यर्थः । अक्षता आर्द्रतण्डुलाः । मर्त्य-  
देवानामिति प्राक् पद्यादपि मर्त्यापचारेषु सम्बध्यते. तेनैव मनुजा  
स्वधेत्यनेन ।

पाद्यादिपात्रप्रमाणमुक्तं कालिकापुराणे,—

वस्त्रमुलविहीनन्तु न पात्र कारयेत् कश्चित् ।

मर्त्यत्र स्पर्णवत्ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ॥

तथा तत्रैव,—

न दद्याद्वास्करायाधं शृङ्गातोयैर्विचक्षणः ।

तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत् ॥

मधुपर्कपात्रमुक्तं तत्रैव,—

दद्यात्तु काश्यपात्रेण रौप्यस्पर्णभवेन वा ।

गन्धाद्भिरिति, आगस्त्ये,—

अन्यानिवेदितं तोयं मृकृतिस्थं सुशीतलम् ।

हेमादिकलसान्तःस्थं पूजासाधनमिष्यते ॥

निषिद्धवस्तान्याह कालिकापुराणे,—

निर्देशं मलिनं जीर्णं तथा गात्रावलम्बितम् ।

परकीयं ह्यग्निदग्धं शूचीविद्धं तथाऽसितम् ॥

उप्लवेशमधौतञ्च सेशरक्तादिदूषितम् ।

नीलौरक्तं कीटजगधं दैवे पैत्रे च वर्ज्येत् ॥

सर्वदेवानां गन्धमाह शारदातिलके,—

गन्धचन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः ।

आगस्ये,—

चन्दनं मलयोत्पन्नमनाम्रातं सुशीतलम् ।

कर्पूरागुरुकस्तुरीहिमान्यादिसुशीतलम् ॥

अनन्यार्पितगन्धोऽयं ग्रस्यतेऽर्चनकर्म्मणि ।

तथा तत्रैव,—

संघुष्य<sup>१</sup> तुलसीकाष्ठं यो दद्याद्राममूर्द्धनि ।

कर्पूरागुरुकस्तुरीचन्दनञ्च न तत्समम् ॥

कालिकापुराणे,—

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यात् मलयजं सदा ॥

पुष्पाण्याह शारदातिलके,—

न चान्यानि सुगन्धीनि पुष्पपत्राणि साधकः ।



सनोज्ञानि च पूजायामाददौत विचक्षणः ॥

मलिन भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेगादिदूषितम् ।

अङ्गसंस्पृष्टमाघ्रातं त्यजेत् पर्युषितं गुरुः ॥

पुष्पाणि पत्राणि तुलस्यादीनि ।

ज्ञानमालायाम्,—

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् ।

पुष्पाञ्जलिविधिं हित्वा यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥

आगस्त्ये,—

अनन्यार्पितपूतानि गन्धवन्ति मितानि च ।

पीतान्यपि सनोज्ञानि कौटादिरक्षितानि च ॥

पुष्पाण्येवात्र ग्रस्यन्ते नेतस्त्वं निरर्थकम् ।

मितानि पीतानीत्यनेन विगिर्यविहितेतरनोत्तरकपुष्पनिषेधः ।

तथा तत्रैव,—

नीलोत्पलैर्ममिकैश्च करवीरैश्च चम्पकैः ।

जातिप्रसूनेर्विल्लैश्च पुष्पागैर्वकुलैरपि ॥

कदम्बैः केतकैः पुष्पैः करुणाशोककिंशुकैः ।

प्रत्ययैः कोमलैश्चैव पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥

पद्मवैद्यैश्च पत्रैश्च जलस्युत्पलमुद्भवैः ।

केतकैः शुक्रवर्णैश्च, किंशुकैः पलाशैस्तथा ॥

तथा तत्रैव,—

मुकुलैः पतितैश्चैव खण्डितैः शोषितैरपि ।

अनर्हैरपि पुष्पैश्च दलैः पत्रैश्च वर्जयेत् ॥

येन केनापि पुष्पेण पत्रेणापि दलेन वा ।

यतः कुतश्चिदानीय यत्र तत्रोद्भवेन च ॥

भवार्थी जौवितार्थी च नार्चयेद्गर्हितस्थले ।

चम्पकपद्मयोर्मुकुलस्यापि दानमुक्तं ज्ञानमालायाम्,—

कलिकाभिस्तथाऽन्याय्यं विना चम्पकपद्मजैः ।

पतितैर्भूमौ पतितैः खण्डितैः खण्डग्रः क्षतैः दलैः दलप्रधानैः

दमनकमरुषकादीनां नवपल्लवैः पत्रैर्विल्लादीनां अनर्हैरिति पुष्पा-  
दिषु त्रिषु सम्बध्यते । अनर्हतां विवृणोति येन केनापीति ।

येन केनाप्यानीतेन गन्धरूपहीनेन च यतः कुतश्चिदन्यजा-  
दिहस्तात् परोद्यानादितश्चानीतेन यत्र तत्रोद्भवेनाशुचिस्थले जातेन  
पुष्पादित्रयेन नार्चयेत् । भवार्थी सम्पत्कामः ।

भविष्ये,—

स्वयं विग्रीर्णकुसुमं जलेऽन्तःशालितं तथा ।

आसनस्थं भूमिलग्नमधोवासस्थितञ्च यत् ॥

निगन्धं मलिनं कीटजगधं पर्युषितं तथा ।

आघ्रातमुपयुक्तञ्च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

गन्धहीनमपि ग्राह्यं पवित्रं यत् कुशादिकम् ।

पद्मानि सितरक्तानि कुमुदान्युत्पलानि च ॥

एषां पर्युषिताशङ्का कार्या पञ्चदिनोर्द्धतः ।

अन्येषां कुसुमानान्तु यावद्गन्धविपर्ययः ॥

प्रहरं तिष्ठते जातौ करवीरमहर्निशम् ।

तुल्यस्यगन्धविल्वानां नास्ति पर्युषितात्मता ॥

ब्राह्मे,—

सर्वं पर्युषितं वज्र्यं पत्रं पुष्पं जलं तथा ।

पवित्रं जाह्नवीतोयं पवित्रं तुलसीदलम् ॥

भविष्ये,—

पुष्पैररक्ष्यमानैः पत्रैर्वा गिरिमग्नैः ।

आत्मारामोद्भवैर्वापि न क्षिप्तैर्नागुशीरितैः ॥

आत्मारामोद्भवैरित्यनेन परारामोद्भवनिषेधः ।

तथा मारदीयपुराणे<sup>१</sup> राक्षसीप्रपद्ये,—

पारक्ष्यारामजातैस्तु कुसुमैरर्चयेत् पुमान् ।

तेन पापेन लिप्तेऽहं यद्येतदनुत भवेत् ॥

मनु,—

दण्डैःकुसुमक्षेयमक्षेयं मन्त्रावहम् ।

आगच्छे,—

परारोपितदृष्टेभ्यः पुष्पाङ्गानीय योऽर्चयेत् ।

अविज्ञाय च तस्यैव निष्फलं तस्य प्रजितम् ॥

यत्तु,—

दण्डैःकुसुमक्षेयमक्षेयं मनुरब्रवीत् ।

इति पठन्ति, तद्यदि साकरं तदा,—

अदेवचरितं पुष्पं देवतार्थं तथैव च ।

आददानः परचेत्राच्च दण्डं दातुमर्हति ॥

इति मत्स्यपुराणवचनैकवाक्यतया राजदण्डाभावपरम् । क्लिष्टै-  
र्मलिनैरशुचीरितैरशुच्याद्धतैः ।

हारीतः,—

स्नानं कृत्वा तु ये केचित् पुष्पं गृह्णन्ति मानवाः ।

देवतास्तत्र गृह्णति भग्नो भवति दासवत् ॥

वचनमिदं स्नानमात्रविषयं कृतेति त्वानिर्दिष्टात् ।

शङ्खः,—

उद्यगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च ।

वर्जनीयानि पुष्पाणि रक्तपुष्पाणि यानि च ॥

विष्णुः,—

नोद्यगन्धि नागन्धि न कण्टकिजं न रक्तम् । कण्टकिजं सितं  
सुगन्धि यत्तद्दद्यात् । रक्तमपि जलजं किंशुकञ्च ।

वामनपुराणे,—

सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ।

अर्कधूस्ररमन्दारशिरीषैर्नार्चयेद्भूरिम् ॥

केतकी वसन्तकेतकी सिता ।

भविष्ये,—

द्रोणञ्च खादिरं वेणुं कुसुमं वकुलस्य च ।

तगरं करवीरञ्च सितरक्तं पलाशजम् ॥

कुशपुष्पं चम्पकञ्च अशोकं कुञ्जकं तथा ।

विसन्ध्या यूथिका कुन्दं शतपत्रञ्च मल्लिका ॥

जाती च तुलसी विष्णोः प्रशस्तानि यथोत्तरम्

आगच्छे,—

विष्णो. शिरसि विन्यस्तमेकं श्रीतुलसीदलम् ।

अनन्तफलदं विद्वन् मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥

पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्मितं तुलसीदलेः ।

मान्यं मलयजालिप्तं दद्यात् श्रीराममूर्धनि ॥

किन्तस्य वज्रभिर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणेः ।

किन्तीर्थसेवया दानैरूपेण तपसापि वा ॥

पत्रं पुष्पं दलञ्चैव श्रीतुलस्याः समर्पितम् ।

रामाय मुक्तिमार्गस्य द्योतकं सर्वमिदृशम् ॥

सम्पूज्य विधिवद्ग्राम भाष्य श्रीतुलसीदलेः ।

भवार्णवमहन्नेषु दुःखपाशादिमुच्यते ॥

पूजायोग्यैर्दलैः पत्रैः पुष्पैर्वा यो यजेद्भूरिम् ।

यानि न्यूनातिरिक्तानि पूर्णानि तस्य तान्यष्टौ ॥

दलैः कोमलाद्यैः । तथा,—

न तस्य नरके क्लेशो योऽर्चयेत्तुलसीदलैः ।

निर्मान्यतुलसीमालायुक्तो यश्चार्चयेद्भूरिम् ॥

यद्यत्करोति तत्सर्वमनन्तफलदं भवेत् ।

यदि न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम् ॥

तुलसीपत्रमात्रेण युक्तं तत् परिपूर्यते ।

शालग्रामशिलातोयं तुलसीदलवासितम् ॥

ये पिवन्ति पुनस्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते ।

नृसिंहपुराणे,—

जातीपुष्पसहस्रेण योऽर्चन्मासं सुशोभनम् ।  
 विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुष्पफलं शृणु ॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।  
 वसेद्विष्णुपुरे श्रीमान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥  
 पत्राण्यपि च पुष्पानि हरेः प्रीतिकराणि च ।  
 अपामार्गदलं पुष्पं ततो मृद्गरजं स्रुतम् ॥  
 तस्माच्च खादिरं पत्रं शमीपत्रं ततोऽपि च ।  
 दूर्वापत्रं ततः श्रेष्ठं ततोऽपि कुशपत्रकम् ॥  
 विल्वपत्रादपि हरेस्तुलसीपत्रमुत्तमम् ।

शिवस्य पुष्पाणि भविष्ये,—

करवीरो वकश्वैव अर्कं उन्मत्तकस्तथा ।  
 पाटला वृक्षतौ चैव तथाच गिरिकर्णिका ॥  
 तथा काशस्य पुष्पाणि मन्दारश्चापराजिता ।  
 शमीपुष्पाणि पुन्नागं कुलकं शङ्खिनी तथा ॥  
 पुष्पाणि ब्रह्मवृक्षस्य तथा विल्वः शिवप्रियः ।  
 कुसुमस्य च पुष्पाणि तथा वै कुमुदस्य च ॥  
 सुरभीणि तथान्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ।

उन्मत्तो धूस्ररः शङ्खिनी बला इति ख्याता । ब्रह्मवृक्षः पलाशः ।

अथ निषिद्धानि । भविष्ये,—

केतकी चातिमुक्तस्य कुन्दो यूथी मदन्तिका ।  
 शिरीषमर्जबन्धूककेतकानि विवर्जयेत् ॥

अतिमुक्तो माधवीक्षता ।

गिवपुराणे,—

कनकानि कदम्बानि राषौ देयानि शङ्करे ।

दिवा शेषाणि पुष्पाणि द्विवाराचौ च मणिका ॥

सूर्यपुष्पाण्याह भविष्ये,—

मालतीमधिकाटुम्बाजवाकागोऽतिमुक्तक\* ।

पाटला करवीरस्य वकम्लक एव च ॥

शतपत्राणि चान्यानि रक्तानि सुरभीणि च ।

कुञ्जकस्तर्गोऽगोकः कर्णिकारः कुरुण्टकः ॥

चम्पको धातकद्याकौ जातौवकुलपाटलाः ।

विन्वपत्रं शमीपत्र पत्र भृङ्गरजस्य च ॥

तमानपत्र धात्र्यास्य मदैव तपनप्रिय ।

तुलसी कान्ततुलसी तथा रक्तस्य चन्दनम् ॥

केतकीपत्रपुष्पञ्च भयन्तृष्टिकर रवे. ।

धात्रौ आमलकी केतक्याः पत्र पुष्पञ्च ममुदीरित अन्यपुष्पाणा  
पत्रनिषेधात् केतक्यास्तद्विधिः ।

तथा,—

शमीपत्रं\* वृक्षत्यास्य कुसुमं तुल्यमुच्यते ।

करवीरममा ज्ञेया जातौवकुलपाटलाः ॥

तथा,—

मुकुलैर्नाञ्चयेद्भानुं मक्षिण न निवेदयेत् ।

१ ख, ग, पुस्तके, शमीपुष्पम् ।

कृष्णलोन्मत्ततिलकं काञ्चीञ्चैवापराजिताम् ।

न कण्टकारिकापुष्पं तथान्यद्गन्धवर्जितम् ॥

कृष्णलो गुञ्जा काञ्ची वराहक्रान्ता ।

देवीपुष्पाण्याह देवीपुराणे,—

चतुर्कालोद्भवैः पुष्पैर्मल्लिकाजातिकुञ्जकैः ।

सितरक्तैस्तथा पद्मैः कुन्दमन्दारचम्पकैः ॥

करवीरार्कपुष्पैश्च सार्धपैश्चापराजितैः ।

सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णैश्चापि चतुर्विधैः ॥

वकुलैरतिमुक्तैश्च वन्धुकागस्त्यसम्भवैः ।

लताभिर्ब्रह्मवृक्षैश्च दूर्वाङ्गुरैश्च कोमलैः ॥

मञ्जरीभिः कुशानाञ्च केतकीविल्वपत्रकैः ।

पुष्पैः पत्रैर्यथालाभं जलजैः स्थलजैरपि ॥

धान्यानां कुसुमैर्देवीं पत्रैश्चापि प्रपूजयेत् ।

लताभिः कोमलशाखाभिः ।

यत्तु पठन्ति,—

न दूर्व्यार्चयेद्देवीं न तुलसा गणेश्वरम् ।

नाचतैश्च हृषीकेशं न केतक्या महेश्वरम् ॥

तद्यदि साकर स्यात् तदा दुर्गातिरिक्तदेवीविषयो दूर्वान्निषेधः ।

देवीपुराणादौ दुर्गाया विहितत्वात् । एवं नाचतैश्च हृषीकेशमिति

केवलाचतपूजाविषयम् । अर्घ्यादौ तु विहिता एवाचताः ।

सर्वदेवामां धूपमाह शारदातिलकै,—

अग्ररुश्रीरगुगुलुशर्करामधुचन्दनैः ।



धूपयेदाव्यसंमिश्रैर्नैर्चैर्देवस्य देगिक' ॥

उग्रीरं वीरणमूलम् । नीचैर्देवस्थाधस्तात् यथा उत्थाय देवस्य  
नासारन्ने मंगच्छते ।

कालिकापुराणे,—

न यच्चधूपं कुचापि माधवाय निवेदयेत् ।

विष्णु । न जीवजातं धूपार्थं ।

नारसिंहे,—

महिषाक्ष गुग्गुलुञ्च आज्ययुक्तं सशर्करम् ।

धूपं ददाति राजेन्द्र नरमिन्दाय भक्तिमान् ॥

कालिकापुराणे,—

न भूमौ वितरेद्धूप नामने न घटे तथा ।

यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत् ॥

दीपमाह शारदातिलके,—

वत्स्यां कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा ।

आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभगाग्निनः ॥

तिलजेत्यनेन सार्पपादिक्लेहनिषेधः ।

आरोप्य दीपवृत्ते संस्थाप्य उच्चैर्देवतामभ्युखं दर्शयेत् ।

कालिकापुराणे,—

द्वतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोल्लवस्ततः ।

नेत्राङ्गालकरः स्रष्टिर्दूरतापविवर्जितः ॥

सुगन्ध' शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।

दक्षिणे दीपवृत्तस्यः प्रदीप' श्रीचित्रद्वये ॥

वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।

दीपवृक्षाश्च कर्त्तव्यास्तैजसाद्यैः प्रयत्नतः ॥

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपस्नेहान् घृतादिकान् ।

दत्त्वा मिश्रीकृत स्नेहं तामिश्र नरकं व्रजेत् ॥

प्रथमो मुख्यः । दूरताप विवृणोति तत्रैव ।

लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलः ।

न स दीप इति ख्यातो मोघवक्त्रिरिति स्मृतः ॥

तथा तत्रैव,—

तैजसं दारव सौहं मार्त्तिकं नारिकेलजम् ।

दणराजोद्भव वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ॥

दणराजोद्भवं तालफलास्थिमयम् ।

निषिद्धवर्त्तिकामाह तत्रैव ।

ग्राणं वादरजं वस्त्रं जीर्णं मलिनमेव वा ।

उपयुक्तन्तु न दद्यात् वर्त्तिकार्थं कदाचन ॥

ग्राणं शणसूत्रं, कार्पासं वादरञ्च तदित्यमरकोषदर्शनात्  
कार्पासादिकवस्त्रं वादरं तत्र जातं तद्भवां दशामित्यर्थः ।

तथाच शङ्खः,—

दशां विवर्जयेत् प्राज्ञो यद्यप्याहतवस्त्रजाम् ।

उपयुक्तं पूर्वं हतोपयोगम् ।

महाभारते,—

नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम् ।

दीपहर्त्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ॥

नेवेद्यमाह आगस्त्ये,—

पायमापूपमिष्टान्नफलोपेतं हरेर्मुने ।

शुद्धञ्च षड्रभोपेतमनन्यापितमिष्यते ।

नैवेद्यमर्चनायान्तु मताम्बूनं प्रकल्पयेत् ॥

शारदातिलके,—

स्तादूपदश विमल पायम महगर्करम् ।

कदलीफलसयुक्तं साव्यं मन्त्री निवेदयेत् ॥

उपदश व्यञ्जनम् ।

चामनपुराणे,—

हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालय ।

—तिलमुद्गादयो माषा ग्रीहयश्च प्रिया हरेः ॥

शारदातिलके,—

उपचारेः समभ्यर्च्यं दर्शयेच्छचचामरम् ।

कर्पूरशकलान्मिश्रं ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ॥

आगस्त्ये,—

कर्पूरशकलान्मिश्रं नागवल्लीदलान्मिश्रितम् ।

सुधाविन्दुसमायुक्तं पूगीफलमनोहरम् ॥

ताम्बूलं रघुनाथस्य दत्त्वा कामानवाप्नुयात् ।

सुधाविन्दुयूर्णविन्दुः । एतेन पर्णचूर्णपूगफलानां ताम्बूलसंज्ञेति दर्शितम् । कर्पूरयोगे तु फलातिशय एव शारदातिलकवचनात् ।

कालिकापुराणे,—

नैवेद्य दक्षिणे वामे पुरतो न तु पृष्ठतः ।

दीप दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः ॥

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे ।

निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भक्षणम् ॥

नृसिंहपुराणे,—

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाधमनीयकम् ।

शेषोपचारः प्रणामस्तु पश्चाद्वक्ष्यते ॥

नैवेद्यात् परमावरणपूजामाह शारदातिलके,—

अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपि ।

केशरेष्वग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ॥

नेत्रमग्रे दिशास्त्रस्तमित्यर्चैर्दङ्गदेवताः ।

पश्चादभ्यर्चनीयाः स्युः कक्षोक्ता वृत्तयः क्रमात् ॥

अन्ते यजेत्लोकपालान्मूलपारिषदान्वितान् ।

हेतिजात्यधिपोपेतान्दिक्षु पूर्वोदितः क्रमात् ॥

द्वन्द्वमग्निं यमं रक्षो वरुणं पवनं विधुम् ।

ईशानं पद्मगाधीशमध ऊर्ध्वं पितामहम् ॥

अङ्गादिलोकपालान्तमिति परिभाषा ।

आवरणपूजाविधिरुक्तोऽगस्त्यसंहितायाम्,—

गणपत्यादयः सर्वे द्वारङ्गावृत्तिरूपिणः ।

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनमोऽन्ताः स्वस्वनामभिः ॥

पूजनीयाः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाचतादिभिः ।

द्वारदेवता अङ्गदेवता आवरणदेवताश्चेत्यर्थः स्वस्वनामभिः  
करणैः प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनमोऽन्ताः कृत्वा पूजनीयाः, तेन ॐ—  
अमुकाय नम इति प्रयोगः सम्पन्नः ।

अङ्गपूजायान्तु हृदयाय नम इत्यादि सज्जाङ्गमनां प्रतिभा  
ॐ हृदयाय नम इत्यादि प्रयोगः ।

अङ्गपूजास्नानमाह केसरेखिति ।

कोणकेसरचतुष्टये हृदयगिरिः प्रियावतशानि चकारि । ८०  
मार्दन पारिषदा परिवारा. ऐतिरप्यम् ।

जात्यधिपाक्षोक्ता योगिनीतन्त्रे,—

इन्द्रः सुरपतिश्चाग्निजेजमां प्रेतपां यमः ।

रक्षोऽधिपो नैष्ठतमु वरुणस्तु जलाधिपः ॥

प्राणानामधिपो वायुर्नक्षत्राधिपतिः ग्रहो ।

ईशानः सर्वविघ्नेशोऽनन्तो आगाधिपः स्युः ॥

ब्रह्मा तु सर्वलोकानामधिपः परिकल्पितः ।

गरुडपुराणे व्यक्तमुक्तम्,—

इन्द्राय सुराधिपतये मवाहनपरिवारायुधाय नम इत्यादि ।

रक्षो नैष्ठतं पवन वायुं विधुं भोम, वज्रपु तन्त्रेषु दिक्पाल-  
मध्ये भोमस्यैव पूजोक्ता, कश्चित्तु कुवेरस्यापि विकल्पः । पद्मगाथो-  
ग्रामनन्तं पितामहं ब्रह्माणम् ।

दिव्यवस्त्रोक्ता योगिनीतन्त्रे,—

यच्चैव भानुः स वियत्युदेति

प्राचीं तु तां वेदविदो वदन्ति ।

मध्यं तथा पूजकपूज्ययोस्तु

सदागमजाः प्रवदन्ति मन्तः ॥

तथा नारदतन्त्रे,—

देवतासङ्मुखं प्राची विज्ञेया देवतार्चनं ।

दक्षभागो दक्षिणा दिक् पश्चाद्भागस्तु पश्चिमा ।

उदीची वामभागस्तु तन्मध्ये कोणकल्पना ॥

ततो जपं कुर्यात् । पुरस्वरणचन्द्रिकायाम्,—

प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासपूर्वकम् ।

ध्यात्वेष्टदेवतारूपमात्मानं प्रजपेन्मनुम् ॥

सङ्ख्यापूर्त्तौ पुनः कुर्याद्दृष्ट्यादिप्राणसंयमान् ।

आरम्भे समापने च प्रणवमुच्चारयेत् ।

यथा मनुः,—

स्रवत्यनोद्धृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति ।

ततोऽर्घ्यादकेन जपं समर्पयेत् ।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

शारदातिलके,—

यथाशक्ति च संजप्य मूलमन्त्रमनन्यधीः ।

तं जपं सर्वसम्पत्तौ देवतायै समर्पयेत् ॥

जपमालादिप्रकारस्तु मदीयपुरस्वरणपद्धतौ द्रष्टव्यः ।

मात्स्ये,—

गीतवादित्रनिर्घोषं देवताये तु कारयेत् ।

घण्टा भवेद्दशकस्य सर्ववाद्यमयी यतः ॥

ततस्तु प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमेत् ।

यथा श्रीभागवते,—

सत्यैरुच्चावचैः सम्यक् पौराणैः प्राकृतैरपि ।  
 सुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥  
 प्रपन्न पाहि मामीश भीतं मृत्युमृषार्णवात् ।  
 इति शेषं मया दत्तं गिरस्थाधाय सादरम् ।  
 उदासयेच्चेदुदासं ज्योतिर्ज्यातिपि तत् पुनः ॥

उच्चावचैर्यथेष्टैः प्राकृतैराधुनिकैः स्वकल्पितैरन्यकल्पितैर्वा ।

स्वकल्पितानान्तु सर्वथा प्राधान्यं यथा कान्तिकापुराणे,—

यः स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमोविधिः ।  
 क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकश्रुतमस्तु सः ॥  
 पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।  
 स मध्यमो नमस्कारो भवेदाचनितः सदा ॥  
 यत्तु मानुषवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।  
 स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारस्य पुत्रकौ ॥

असाधुशब्दैस्तु न स्तोतव्यं, यथा,—

मोहादज्ञानतः स्तौति योऽपशब्दैर्जनार्दनम् ।  
 स याति नरकं घोरं कालसूत्रमवाश्रुतः ॥

दण्डवदष्टाङ्गैरित्यर्थः ।

वामनपुराणे,—

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य कृत्वाष्टाङ्गप्रणामकम् ।  
 दशाश्वमेधस्य फलं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

नृसिंहपुराणे,—

नमस्कारः स्मृतो यज्ञः सर्वयज्ञेषु चोत्तमः ।  
नमस्कारेण चैकेन अष्टाङ्गेन हरिं व्रजेत् ॥  
उरसा शिरसा दृष्ट्या वक्षसा मनसा तथा ।  
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग इव्यते ॥

विष्णुधर्म,—

जानुभ्यां चैव पाणिभ्यां<sup>१</sup> शिरसा च विचक्षणः ।  
कृत्वा प्रणामं देवस्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥  
परमाणूनि यावन्ति ललाटे पुरुषस्य तु ।  
पार्थिवानि भवन्तीह नमतो मधुसूदनम् ।  
तावन्यब्दानि विप्रेन्द्राः स्वर्गलोके महीयते ॥

एवं प्रणम्य सर्वं समर्थं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।

यथा चागस्त्ये,—

मनोवाक्कायजनितं कर्म यन्मे शुभाशुभम् ।  
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो देवाय शार्ङ्गिणे ।

तथा,—

अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकरद्वयी ।  
महामुद्रेयमाख्याता न्यूनाधिकसमापनी ॥

ततश्च,—

प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युगह्वारणात् ।  
इति पठन् शेषं निर्मात्यं भगवते मया दत्तमिति विभाव्य



गिरस्थाधाय मूलमन्त्रेण देवं ज्योतीरूपं विभाव्य चमस्वेत्युक्त्वा  
धन्वादिस्थं तत् ज्योतिः पुष्पेण सह नासारन्ध्रद्वारा ज्योतिषि  
स्त्रीयद्धत्पद्मस्थे ज्योतीरूपे भगवति उदासयेत् स्थापयेत् । वाम-  
केश्वरतन्त्रे, चमस्वेति विसर्जयेत् ।

तथा पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्,—

स्थापयेदात्मद्वत्पद्मे परिवारगणैः सह ।

उदास्यं चेदित्यनेन शालग्रामे प्रतिष्ठितप्रतिमायाश्च विसर्ज-  
नाभावादुदासनं नास्तीत्युक्तं, किन्तु निर्माल्यमात्रं गिरसि धार्यम् ।  
ततो भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र निर्माल्यपुष्पनैवेद्यैर्विष्णो-  
रनुचरं विष्वक्सेनं ध्यात्वा पूजयेत् ।

कालिकापुराणे,—

ऐशान्यां मण्डलं कुर्यात् त्रिकोणं रुचिरं समम् ।

विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिणः पूजनाय वै ॥

निर्माल्यधारी विष्णोस्तु विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।

शङ्खचक्रगदापाणिर्दीर्घशस्त्रजटाधरः ॥

रक्तपिङ्गलवर्णस्तु सितपद्मोपरि स्थितः ।

षष्ठतीयः स्वरान्तेन संयुतो बिन्दुनेन्दुना ।

कौर्त्तितस्तस्य मन्त्रोऽयं तेन तं परिपूजयेत् ॥

पकारस्य द्वतीयवर्णो वकारः स्वरान्तेन श्रौकारेण ततो  
वौमिति विष्वक्सेनमन्त्रः ।

शम्भोर्निर्माल्यधारी भृङ्गरिटिः । दुर्गायाम्

चण्डेश्वरी निर्माल्यधारिणी ।

देवदत्तद्रव्यस्योत्तरां प्रतिपत्तिमाह, विष्णुः,—

सूर्याय दत्तं मगेभ्यः, शिवाय दत्तं भस्माङ्गेभ्यो, ब्रह्मणे दत्तं विप्रेभ्यो, दुर्गायै दत्तं स्त्रीभ्यो, विष्णवे दत्तं सात्त्वतेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा दद्यात् । मगा अनिकेता नटनर्त्तकादयः भस्माङ्गाः पाशुपताः सात्त्वता वैष्णवा ब्राह्मणाश्च तदितरा अपि । दद्यादेषां सत्त्वं जनयेदित्यर्थः । अत्र केचित्,—

तवोपयुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारभूषिताः ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

इति श्रीभागवतदर्शनात् विष्णुदत्तद्रव्यस्य स्वयमुत्तरप्रतिपत्ति-  
स्थानमित्याहुः ।

तत्र, स्वदत्तद्रव्ये स्वत्वाभावेन स्वोपयोगविरोधात्, अपि दीपावलोकं मे नोपयुज्यात् कदाचनेति तदीयवचनान्तरविरोधाच्च । तवोपयुक्तेति वचनन्तु अन्यतो लब्धस्रग्गन्धादिविषयम् ।

एवञ्च,— विष्णोर्निवेदिताग्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् ।

पितृभ्यश्चापि दातव्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥

इति वचनं यदि साकरं स्यात् तदा तदप्यन्यतो लब्धनैवेद्य-  
विषयं मन्तव्यम् । अन्यथा उत्सृष्टस्यापि पुनरुत्सर्गप्रसङ्गः । न च  
तथा, उत्सृष्टस्वत्वाभावेन पुनरुत्सर्गविरोधात् ।

वस्तुतस्तु विष्णुदत्तद्रव्यात् स्वत्वाभावेऽपि वचनाद्यथा ब्राह्मणे-  
स्वर्पणम् । तथा विष्णवे स्वदत्तगन्धपुष्पनैवेद्यानि वचनात् स्वय-  
मुपयोक्तव्यानि नान्यानि वस्तुलङ्कारादीनि अतएव अपि दीपा-  
वलोकमित्यादि श्रीभागवतम् ।

यथा सम्वत्सरप्रदीपे श्रीविष्णुधर्मात्तरवचनम्,—

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम् ।

अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम् ॥

अनिवेद्य हरेर्भुञ्जन् सप्तजन्मानि नारकी ॥

तथापि श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे पयोव्रते ।

उदास्य देवं स्वधान्वितन्निवेदितमग्रतः ।

अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामसमृद्धये ॥

अत्र चित्तशुद्ध्यादिफलकथनादन्यत्रापि भोजनाग्रतः स्वदत्त-  
विष्णुनैवेद्यभोजनं प्रतीयते । अन्यथा व्रताङ्गत्वे वैफल्यं फल-  
कथनस्येति । तथाचागस्त्यसंहितायाम्,—

निर्मात्यतुलसीमालां शिरस्यपि निधाय वै ।

निर्मात्यचन्दनेनाङ्गमङ्गयेत्तस्य नामभिः ॥

पापिष्ठो वायपापिष्ठो विज्ञो वायज्ञ एव वा ।

भवेदेवाधिकार्यत्र रामाराधनकर्म्मणि ॥

अत्र प्रात्यहिकदेवार्चायां प्रकृतत्वात् प्रत्यहं लाभसम्भवाच्च  
स्वदत्तनिर्मात्यचन्दनमेव प्रतीयते ।

अतो विष्णवे स्वदत्तगन्धपुष्पनैवेद्यानां स्त्रोपयोगः सिद्धो  
नान्येषां वचनाभावात् ।

यत्तु,— निर्मात्यं नोपयोक्तव्यं रुद्रस्य तपनस्य च ।

उपयुक्तस्तु तन्मोहात् पच्यते नरके ध्रुवम् ॥

इति भविष्यपुराणवचनं, तद्गङ्गाङ्गव्यतिरिक्त-

विषयं तेषां विहितत्वात् ॥

## अथ द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रस्य पूजाप्रयोगो लिख्यते ।



स्नातः शुचिः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा पादौ प्रक्षाल्य समाचान्तः  
कृतपूः । सन्धारः शुचिस्थाने आसनमुपकल्प्य दिव्यदृष्ट्यावलोकनेन  
दिव्यान् अस्त्रायफडिति जपितजलैश्चान्तरीक्षगान् वामपार्श्व-  
घातैस्त्रिभिर्भौमान् विघ्नानुत्सार्य आधारशक्तिपद्मासनाय नमः ।  
इत्यासनं सम्पूज्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा स्थिरप्रतिमायान्तु 'तदग्र-  
मुखस्तत्रोपविश्य,

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।

ये भूता विघ्नकर्तारसो नश्यन्तु नृसिंहाज्ञया ॥

इत्यस्त्रायफडिति सिद्धार्थाक्षतादीन् सर्व्वतो विकीर्य्य कृता-  
ञ्जलिर्भूत्वा वामपार्श्वे गुरुभ्यो नमः, दक्षिणपार्श्वे गणेशाय नमः  
सङ्मुखे श्रीवासुदेवाय नमः । अस्त्रायफडिति हस्तौ विग्रोष्ठ-  
तेनैवास्त्रमन्त्रेण तालचयमूर्द्धाङ्गं कृत्वा क्कोटिकाभिर्दिग्बन्धनं विधाय  
परितोऽग्निप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात् ।

इत्पद्मादात्मानं दीपशिखाकारं शिरसि सहस्रदलकमलस्ये  
परमात्मनि सुषुम्नावर्त्मना हंस इति मन्त्रेण संयोज्य पादस्थ-  
पृथिवीं लिङ्गमूलस्थजले तज्जलं हृदयस्थतेजसि, तत्तेजो मुखस्ये  
वायौ, तदायुं भालस्थाकाग्रे, तदाकाग्रं सहस्रदलस्ये परमात्मनि  
संयोज्य बुद्ध्यहङ्कारादींश्च तत्रैव लीनानि विचिन्त्य वामनासापूरणेन

यमिति धूस्रवर्णं वायुबीजं विचिन्त्य पञ्चाशद्दारं जपन् वायुमुत्तोल्य  
देहं शुष्कं विभाव्य दक्षिणनासापुटेन रेचयेत् । तेनैव दक्षिणनासापुटेन  
वायुमुत्तोल्य रमित्यग्निबीजमरुणवर्णं पञ्चाशद्दारं जपन् देहं दग्धं  
परिभाव्य वामनासापुटेन भस्मरूपेण पापेन सह रेचयेत् । ततस्ते-  
नैव वामनासापुटेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलकमलस्थं परमात्मानं  
चन्द्ररूपं ध्यात्वा यमिति वरुणबीजं पञ्चाशद्दारं जपन् तस्माच्च-  
न्द्रादमृतवृक्षा आश्लाव्य लमित्यनेन इन्द्रबीजेन शुद्धं देहं जन-  
यित्वा आत्मलीनानि पञ्चभूतानि सृष्टिक्रमेण यथास्थानं स्थाप-  
यित्वा सोऽहमिति मन्त्रेण परमात्मनः सकाशादहङ्कारादितत्त्वैः  
सह जीवात्मानं हृत्पद्मे स्थापयेत् इति भूतशुद्धिः ॥

अनन्तरं ऋष्यादिन्यासः ।

प्रजापतिर्ऋषिर्मस्तके गायत्रीच्छन्दो मुखे श्रीवासुदेवो देवता  
इति इति विन्यस्य ग्रणवं जपन् प्राणायामत्रयं<sup>१</sup> कुर्यात् ।

यथा,— इङ्गया कर्षयेदायुं वाह्यं षोडशमात्रया ।

धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ठ्या तु मात्रया ॥

सुषुम्नामध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।

नाद्या पिङ्गलया चैवं रेचयेद्योगवित्तमः ॥

प्राणायाममिमं प्राङ्मुख्येण श्वास्त्रविशारदाः ।

भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ॥

इष्टमन्त्रेण प्राणायामे तु यथाशक्तिवारं जपन् वायोः पूरण-  
धारणरेचनानि कुर्यात् ।

१ ख पुस्तके, प्राणायामम् ।

ततो मातृकान्यासः ।

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः ।

ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गाख्ये दोःपत्तन्ध्यग्रकेषु च ॥

पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयेऽंसके ।

ककुब्धं च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः ॥

जठराननयोर्नख्येन्मातृकार्णान् यथाक्रमम् ।

एषु स्थानेषु अकारादीन् चकारान्तान् वर्णान् न्यसेत् ॥

अं नमः आं नमः इं नमः ईं नम इत्यादिक्रमेण तु फला-  
धिक्यम् । केशवादिन्यासे तु ततोऽपि फलाधिक्यम् ।

केशवादिन्यासो यथा,—

प्रथमं लक्ष्मीनारायणं ध्यात्वा तद्रूपमात्मानं विभाव्य पूर्वोक्त-  
स्थानेषु न्यसेत् । ध्यानं यथा,—

हस्तैर्विभ्रत् सरसिजगदाशङ्खचक्राणि विद्यां

पद्मादशौ कनककलसं मेघविद्युद्विलासम् ।

वामोत्तुङ्गस्तनमधिरसाकल्पमाश्लेषलोभा-

देकीभूतं वपुरवतु नः पुण्डरीकाक्षलक्ष्योः ॥

ललाटे श्रीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः ।

मुखवृत्ते श्रीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः ।

चक्षुषोः श्रीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः ।

श्रीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः ॥

कर्णयोः श्रीं उं विष्णवे धृत्यै नमः ।

श्रीं ऊं मधुसूदनाय शान्त्यै नमः ।

नासयोः श्री० ऋ० त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः ।

श्री० ऋ० वामनाय दयायै नमः ॥

गण्डयोः श्री० लृ० श्रीधराय मेधायै नमः ।

श्री० लृ० हृषीकेशाय हृषायै नमः ॥

ओष्ठद्वये श्री० ए० पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः ।

श्री० ऐ० दामोदराय लज्जायै नमः ॥

दन्तपङ्क्तिद्वये

श्री० ओ० वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः ।

श्री० औ० सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमः ॥

शिरसि श्री० अ० प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः ।

मुखे श्री० अ० अनिरुद्धाय रत्यै नमः ॥

दक्षिणहस्तसन्धित्तुष्टयाग्रेषु

श्री० क० चक्रिणे जयायै नमः ।

श्री० ख० गदिने दुर्गायै नमः ॥

श्री० ग० शार्ङ्गिणे प्रभवायै नमः ।

श्री० घ० खड्गिने सत्यायै नमः ॥

श्री० ङ० शङ्खिने चण्डायै नमः ।

वामहस्तचतुष्टयसन्ध्याग्रेषु—

श्री० च० हस्तिने वाण्यै नमः ।

श्री० छ० मुषलिने विलासिन्यै नमः ॥

श्री० ज० शूलिने विजयायै नमः ।

श्री० झ० पात्रिने विरजायै नमः ॥

श्री० ज० अङ्कुशिने विश्वायै नमः ।

दक्षिणपादचतुष्टयसन्ध्यगेषु—

श्री० ट० सुकुन्दाय विनदायै नमः ।

श्री० ठ० नन्दजाय सुनन्दायै नमः ॥

श्री० ड० नन्दिने स्मृत्यै नमः ।

श्री० ढ० नराय ऋद्धौ नमः ॥

[श्री० ण० नरकजिते समृद्धौ नमः]<sup>१</sup> ।

वामपादचतुःसन्ध्यगेषु—

श्री० त० हरये शृद्धौ नमः ।

श्री० थ० कृष्णाय बुद्धौ नमः ॥

श्री० द० सत्याय भुक्त्यै नमः ।

श्री० ध० सात्वताय नत्यै नमः ॥

श्री० न० सौराय क्षमायै नमः ।

पार्श्वद्वये ।

श्री० प० शूराय रमायै नमः ।

श्री० फ० जनार्दनाय उमायै नमः ।

पृष्ठे श्री० व० भूधराय क्लेदिन्यै नमः ॥

नाभौ श्री० भ० विश्वमूर्त्तये क्षिप्त्रायै नमः ।

उदरे श्री० म० वैकुण्ठाय वसुदायै नमः ॥

हृदये श्री० य० दुर्गात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमः ।

दक्षिणांसे श्री० व० ऋद्धगात्मने वलिने परायै नमः ॥



ग्रीवायां श्री० ल० मांसात्मने वलानुजाय परायणायै नमः ।  
 वामांसे, श्री० र० मेद आत्मने वालाय सूक्ष्मायै नमः ॥  
 हृदयादिहस्तद्वये ।

श्री० श० अस्थ्यात्मने वृषमाय सन्ध्यायै नमः ।

श्री० ष० मज्ज्वात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमः ॥

हृदयादिपादद्वये ।

श्री० स० शुक्रात्मने<sup>१</sup> हंसाय प्रभायै नमः ।

श्री० ह० प्राणात्मने वराहाय निशायै नमः ॥

उदरे श्री० ल० शक्त्वात्मने विमलायामोघायै नमः ।

[मुखे श्री० च० क्रोधात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः]<sup>२</sup> ।

ततस्तत्त्वन्यासः काम्यो यथा । सकलशरीरे

श्री० म० नमः पराय जीवात्मने नमः<sup>३</sup> ।

भ० नमः पराय प्राणात्मने नमः ।

हृदये— व० नमः पराय बुद्ध्यात्मने नमः ॥

फ० नमः परायाहङ्कारात्मने नमः ।

प० नमः पराय मन आत्मने नमः<sup>४</sup> ॥

शिरसि, ल० नमः पराय शब्दात्मने नमः ।

मुखे, ध० नमः पराय स्पर्शात्मने नमः ॥

१ ख ग, पुस्तकद्वये, शुक्रात्मने ।

२ ग पुस्तके, [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

३ ख पुस्तके, पराय जीवात्मने नम इत्यंशो नास्ति ।

४ क ख पुस्तकद्वये, मन आत्मात्मने नम ।

- हृदि, द० नमः पराय रूपात्मने नमः ।  
 गुह्ये, थ० नमः पराय रसात्मने नमः ॥  
 पादे, त० नमः पराय गन्धात्मने नमः ।  
 कर्णयोः, ए० नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः ॥  
 त्वचि, ढ० नमः पराय त्वगात्मने नमः ।  
 चक्षुषोः, ड० नमः पराय चक्षुषात्मने नमः ॥  
 जिह्वायां, ठ० नमः पराय जिह्वात्मने नमः ।  
 नासायां, ट० नमः पराय नासात्मने नमः ॥  
 मुखे, झ० नमः पराय वागात्मने नमः ।  
 हस्ते, झ० नमः पराय पाष्ठात्मने नमः ॥  
 पादे, ज० नमः पराय पादात्मने नमः ।  
 शूदे, ऋ० नमः पराय पाय्वात्मने नमः ॥  
 उपस्थे, च० नमः पराय उपस्थात्मने नमः ।  
 शिरसि, ङ० नमः परायाकाशात्मने नमः ॥  
 मुखे, घ० नमः पराय वाय्वात्मने नमः ।  
 हृदि, ग० नमः पराय तेज आत्मने नमः ॥  
 गुह्ये, ख० नमः पराय जलात्मने नमः ।  
 पादे, क० नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः ॥  
 हृदि, श० नमः पराय पुण्डरीकात्मने नमः ।  
 ह० नमः पराय द्वादशकलायुक्तसूर्यमण्डलात्मने नमः ॥  
 स० नमः पराय षोडशकलायुक्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः ।  
 व० नमः पराय दशकलायुक्तवक्त्रिमण्डलात्मने नमः ॥

शिरसि ष० नमः पराय परमेष्ठिवासुदेवात्मने नमः ।

मुखे य० नमः पराय पुरुषसङ्कर्षणात्मने नमः ॥

हृदि, ल० नमः पराय विश्वप्रद्युम्नात्मने नमः ।

गुह्ये, र० नमः पराय निवृत्त्यनुरुद्धात्मने नमः ॥

पादयोः, ल० नमः पराय सर्वनारायणात्मने नमः ।

सकलशरीरे

त्रौ० नमः पराय कोपनृसिंहात्मने नमः ।

ततो मूर्त्तिपञ्जरन्यासः काम्यो यथा ।

ललाटे, अ ॐ केशवाय धात्रे नमः ।

उदरे, आ न नारायणायार्थ्यन्ते नमः ॥

हृदि, इ मो माधवाय मित्राय नमः ।

कण्ठे, ई भ गोविन्दाय वरुणाय नमः ॥

दक्षिणपार्श्वे, उ ग विष्णवे अंगवे नमः ।

दक्षिणोर्ध्वे, ङ व मधुसूदनाय भगाय नमः ॥

दक्षिणगले, ए ते त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः ।

वामपार्श्वे, ऐ वा वामनाथ इन्द्राय नमः ॥

वामोर्ध्वे, ओ सु श्रीधराय पूष्णे नमः ।

वामगले, औ दे हृषीकेशाय पर्यन्याय नमः ॥

पृष्ठे, अ० वा पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः ।

ग्रीवायां, अः य दामोदराय विष्णवे नमः ॥

मूर्द्ध्नि, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ततः कराङ्गन्यासः । अङ्गुष्ठादिषु, ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । नम-

स्तूर्जनीभ्यां स्वाहा । भगवते मध्यमाभ्यां वषट् । वासुदेवाय  
अनामिकाभ्यां ऊं । समस्तेन कनिष्ठाभ्यां फट् । अस्त्राय फड़िति  
तालत्रयं दिग्वन्धनञ्च कृत्वा हृदयादिषु न्यसेत् । ॐ हृदयाय नमः  
नमः शिरसे स्वाहा भगवते शिखायै वषट् वासुदेवाय कवचाय ऊं  
समस्तेनास्त्राय फड़िति तालत्रयं दिग्वन्धनञ्च कुर्यात् ।

यथा शारदातिलके,—

तारेण हृदयं प्रोक्तं नमसा शिर ईरितम् ।

चतुर्वर्णैः शिखा प्रोक्ता पञ्चार्णैः कवचं मतम् ॥

समस्तेन भवेदस्त्रमङ्गकल्पनमीरितम् ।

ततो मूर्द्धादिषु द्वादशस्थानेषु यथाक्रमं मन्त्रस्य द्वादशाक्षरान्  
न्यसेत् । यथा तत्रैव ।

मूर्द्धिं भाले दृशोरास्ये गले दोष्णोर्हृदम्बुजे ।

कुक्षौ नाभौ ततो लिङ्गे जानुनोः पदयोर्न्यसेत् ॥

ततः पीठन्यासः । प्रणवादिनमोऽन्तेन न्यसेत् । दक्षिणांसे, धर्माय  
नमः । वामांसे, ज्ञानाय । वामोरौ, वैराग्याय । दक्षिणोरौ  
ऐश्वर्याय । मुखे, अधर्माय । वामपार्श्वे, अज्ञानाय । नाभौ,  
अवैराग्याय । दक्षिणपार्श्वे, अनैश्वर्याय । हृदये, अनन्ताय पद्माय  
अ० सूर्यमण्डलाय । उ० सोममण्डलाय, म० वज्रिमण्डलाय  
स० सत्याय, र० रजसे, त० तमसे आ० आत्मने, अ० अन्तरात्मने  
प० परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

हृदयाद्यष्टदिक्षु

विमलायै उत्कर्षिण्यै ज्ञानायै क्रियायै योगायै प्रज्ञायै सत्यायै

ईशानायै । हृन्मध्ये अनुग्रहायै । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने  
वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः ।

एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।

ध्यानं यथा,—

विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदा  
मन्मोजं दधत सिताब्जनिलयं कान्त्या जगन्मोहनम् ।  
आवद्धाङ्गदहारकुण्डलमहामौलिं स्फुरत्कङ्कणं  
श्रीवत्साङ्गमुदारकौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः सुतम् ॥  
इति मनसा सर्वोपचारैः सम्पूज्य ।

शङ्खचक्रगदापद्मधेनुकौस्तुभगारुडाः ।

श्रीवत्सवनमालाञ्च योनिमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥

ततोऽर्घ्यस्थापनम् ।

स्वामे भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्राधारं विन्यस्य तत्र  
द्वादशकलात्मने वक्त्रिमण्डलाय नम इत्याधारं सम्पूज्य तदुपरि  
अस्त्राय फडिति त्रिः प्रोक्षित शङ्खं संस्थाप्य तत्र द्वादशकलात्मने  
सूर्यमण्डलाय नम इति शङ्खं संपूज्य चन्द्रमण्डलनिर्गतसुधारूपेण  
ध्यातैः शुद्धतोयैः ।

च० ल० ह० स० ष० श० व० ल० र० य० म० भ० व०  
फ० प० न० ध० द० य० त० ण० ढ० ड० ठ० ट० ज० झ०  
ज० ङ० च० छ० घ० ग० ख० क० अः अ० औ० ॐ ऐ० ए०  
लृ० लृ० कृ० चृ० ऊ० उ० ई० इ० आ० अ० ।

इति विपरीतमाह्वकामन्त्रं मूलमन्त्रञ्च जपन् पूजयेत् । नमो

मन्त्रेण तत्र गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वा अष्टौ द्रव्याणि  
निक्षिप्य षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय नम इति जलं सम्पूज्य  
दृष्टदेवतारूपं जलं विभाव्य ।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इति मन्त्रेण तीर्थमावाह्य जलं स्पृष्ट्वा मूलमन्त्रमष्टधा जप्त्वा  
मन्त्राङ्गाणि विन्यस्य अस्त्राय फड़िति तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा  
ऊमिति मन्त्रेण दीर्घाधोमुखतर्जनीभ्रामणरूपयाऽवगुण्ठनमुद्र-  
याऽवगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य सन्निरोधनमुद्रया सन्नि-  
रोधयेत् ।

ततस्तद्वक्षिणे अस्त्राय फड़िति प्रोक्षितं प्रोक्षणीपात्रमाधाय  
नम इति मन्त्रेण जलेन प्रपूर्य ओङ्कारेण गन्धपुष्पे निक्षिप्य तत्रा-  
र्घ्यजलं किञ्चिन्निक्षिपेत् ।

एवं क्रमेणार्घ्यस्योत्तरे पाद्यमाचमनीयञ्च स्थापयेत् ।

पाद्यद्रव्याणि पद्मपुष्पशामाकापराजितादूर्वादीनि<sup>१</sup> । आचम-  
नीयद्रव्याणि लवङ्गकक्कोलजातीफलानि । ततश्च प्रोक्षणीजलेना-  
त्मानं पूजासाधनद्रव्याणि सर्वाणि मूलमन्त्रेण प्रोक्ष्य संवीक्ष्य च  
कुशैः सन्ताड्य अस्त्राय फड़िति तालत्रयदिग्बन्धनैः संरन्धेत् ।  
अथात्मपूजा ।

स्वदेहे पीठन्यासविधिना तत्तत्स्थानेषु धर्माय नम इत्यादि-  
क्रमेण धर्मादीन् पीठमन्त्रान्तान् गन्धपुष्पैः संपूज्य हृत्पद्ममध्ये

१ ग पुस्तके, 'दूर्वायाणि ।

दृष्टदेवं विचिन्त्य तद्रूपतया ध्यातमात्मानं पृथक्कृतैर्गन्धपुष्पधूप-  
दीपैश्चतुर्भिरुपचारैरभ्यर्च्य मस्तके हृदये मूलाधारे पादे सर्वाङ्गे  
च पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दत्वा क्रोड़निहितोत्तानकरयुगलः समकाय-  
यीवो निमीलितलोचनः सर्वैश्वर्यसम्पन्नं देवं विभाव्य सोऽहमिति  
मन्त्रं जपन् अनन्यमतिर्देवाकारतयात्मानं भावयन्नानन्दामृतमग्नौ  
निरुच्छासो यथेष्टं तिष्ठेत् ।

ततो यन्त्रे मण्डले शालग्रामे मणौ<sup>१</sup> प्रतिमायां वा वासुदेवं  
पूजयेत् । तत्र पीठस्योत्तरे वायव्यादीशानपर्यन्तं गुरुपंक्तिं पूजयेत् ।  
श्रीगुरुभ्यो नमः परमगुरुभ्यो नमः परापरगुरुभ्यो नमः परमेष्ठि-  
गुरुभ्यो नमः । तत्र पीठदक्षिणे गणेशं ॐ गणानान्वेति मन्त्रेणा-  
वाह्यं पञ्चोपचारैः पूजयित्वा तन्मन्त्रं किञ्चिज्जप्त्वा स्तुत्वा प्रणमेत् ।  
एकाक्षरगणेशमन्त्रस्य ध्यानं यथा ।

सिन्दूराम त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मेर्दधानं  
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युत्करविलसद्बीजपूराभिरामम् ।  
वालेन्दुज्योतिर्मौलिं करिपतिवदनं दानपूराङ्गण्डम्  
भोगीन्द्रावद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥  
ततः पीठपूजां प्रणवादिनमोऽन्तेन तत्तन्नाम्ना कुर्यात् ।

मण्डलमध्ये—

आधारशक्तये, कूर्माय अनन्ताय पृथिव्यै क्षीरसागराय श्वेतदी-  
पाय रत्नमण्डपाय कल्पवृक्षाय रत्नवेदिकायै ।

आग्नेयादिकोणचतुष्टये—

धर्माय ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय ।

पूर्वादिचतुर्दिक्षु—

अधर्माय अज्ञानाय अवैराग्याय अनैश्वर्याय ।

मध्ये—

शेषाय पद्माय अ० सूर्यमण्डलाय ज० सोममण्डलाय म०  
वक्त्रिमण्डलाय स० सत्ताय र० रजसे त० तमसे आ० आत्मने  
अ० अन्तरात्मने प० परमात्मने द्वौ० ज्ञानात्मने नमः ।

पूर्वाद्यष्टकेशरेषु—

विमलायै उत्कर्षिण्यै ज्ञानायै क्रियायै योगायै प्रज्ञायै सत्यायै  
ईशानायै ।

मध्ये—

अनुग्रहायै पुनर्मध्ये ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने  
वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपौठात्मने नम इति पुष्पाञ्ज-  
लिना आसनं दद्यात् ।

ततस्तत्र पुष्पासनमध्ये कल्पतरुच्छायायां मूलमन्त्रेणैष्टदेवता-  
मूर्तिं संकल्प्य पूर्ववद्देवं संचिन्त्य मूलमन्त्रं जपन् तेजोरूपतामा-  
पाद्य तत्तेजो हृत्पद्मात् पुष्पाञ्जलौ मूलमन्त्रेण वहन्नासापुटेन निर्ग-  
मय्य पूर्वसङ्कल्पितमूर्तिं तदीयब्रह्मरन्ध्रद्वारा प्रवेश्य मूलमन्त्रं पठन्  
श्रीभगवन् वासुदेव इहागच्छागच्छेत्यावाहनमुद्रयावाह्य तिष्ठ ति-  
ष्ठेति संस्थापनमुद्रया संस्थाप्य सन्निहितो भवेति सन्निधापनमुद्रया  
सन्निधीकृत्य प्रसन्नो भवाभिमुखो भवेति संमुखीकरणमुद्रया सम्मुखी-



कृत्य सन्निरुद्धो भवेति सन्निरोधनमुद्रया सन्निरुध्य देवताङ्गे षडङ्ग-  
न्यासं कृत्वा अवगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणमुद्रा दर्शयित्वा प्राण-  
प्रतिष्ठां कुर्यात् ।

आं ह्रीं क्रौं हं सः श्रीवासुदेवस्य प्राणा इह प्राणाः, आं ह्रीं  
क्रौं हं सः श्रीवासुदेवस्य जीव इह स्थितः आं ह्रीं क्रौं हं सः  
श्रीवासुदेवस्य सर्वेन्द्रियाणि, आं ह्रीं क्रौं हं सः श्रीवासुदेवस्य  
वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

इति प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

शालग्रामे प्रतिष्ठितदेवे चावाहनविषर्जने न स्तः किन्तु इद-  
यस्यतेजः पुष्पाञ्जलिना तत्रस्थदेवतायां संक्रम्य सम्मुखीकरण-  
सकलीकरणवगुण्ठनपरमीकरणमुद्रा दर्शयेत् ।

ततश्च काष्ठाद्यासनसङ्गावे मूलमन्त्रेणासनं दद्यात् । न चेत्  
प्रागेव पीठमन्त्रेण पुष्पासनं दत्तमस्तीति ।

ततः स्वागतन्ते कुशलन्ते इति वृद्धा पाद्याचमनीयार्घ्यमधुपर्कपुन-  
राचमनीयस्नानीयवस्त्रालङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यादीनि दद्यात् ।

वमिति वरुणबीजेन द्रव्यं संप्रोक्ष्य अमुकद्रव्याय नम इति  
संपूज्य मूलमन्त्रं पठित्वा श्रीवासुदेवाय इदममुकद्रव्यममुकदेवतं  
नम इति अर्थोदकेन उत्सृज्य इदममुकद्रव्यमिति निवेदयेत् ।

अत्र स्वाहापदेनार्घ्यं स्वाहापदेनाचमनीयमधुपर्कौ, अन्यत् सर्वं  
नमःपदेन देयं ।

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरे ॥

पूजाकाले देवताया नोपरि भ्रामयेत् करम् ।

नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न तु पृष्ठतः ॥

दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो न तु वामतः ।

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे ॥

निवेदयेत् पुरोभागे गन्धपुष्पादिभूषणम् ।

देवताभिमुखे दीपं धूपं दद्यादधः पुनः ॥

ततश्छत्रचामरादिकं दर्शयेत् । घण्टादिकञ्च वादयेत् । ताम्बूलञ्च दत्त्वा आवरणानि पूजयेत् ।

प्रथममङ्गावरणमाग्नेयादिकोणकेशरेषु ।

ॐ हृदयाय नमः । नमः शिरसे स्वाहा । ॐ शिरसे नमः ।

भगवते शिखायै वषट् ॐ शिखायै वषट् । वासुदेवाय कवचाय

ॐ ॐ कवचाय ॐ ॐ कवचाय नमः । चतुर्दिक्केशरेषु समस्ते-

नास्त्राय फट् ॐ अस्त्राय फट् । ॐ अस्त्राय नमः । पूर्वादिचतु-

र्दिक्पत्रमूलेषु वासुदेवाय सङ्कर्षणाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय ।

आग्नेयादिकोणपत्रमूलेषु ॐ शान्त्यै नमः एवं अग्न्यै सरस्वत्यै रत्यै ।

चतुर्दिक्पत्रमध्ये त्रिराष्ट्र्या केशवादिद्वादशमूर्त्तयः पूजयेत् ।

ॐ केशवाय नमः एवं नारायणाय माधवाय गोविन्दाय

मधूसूदनाय त्रिविक्रमाय वामनाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मना-

भाय दामोदराय । प्रणवं नमः सर्वत्र ।

पत्रवाह्येऽष्टदिक्षु,—

ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।

- ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ॐ यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ॐ नैर्ऋताय रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ॐ वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ॐ वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।  
 ईशानाय सर्वविद्याधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।

निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये,—

- ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।

इन्द्रेगानयोर्मध्ये,—

- ॐ ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये सवाहनपरिवारायुधाय नमः ।

ततस्तदाह्ने अष्टदिक्षु,—

- ॐ वज्राय नमः । एवं शक्तये दण्डाय खड्गाय पाशाय  
 अङ्गुशाय गदायै शूलाय । निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये चक्राय । इन्द्रेगा-  
 नयोर्मध्ये पद्माय ।

ततो मूलमन्त्रेण भगवते पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्राणायामत्रयं  
 कृत्वा शिरोमुखद्वयेषु ऋषिच्छन्दोदेवता विन्यस्य दृष्टदेवतारूपं  
 आत्मानं विभाव्य मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा अर्घ्योदकेन जपं  
 समर्पयेत् ।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्तत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देव तत्प्रसादादधोक्षज ॥

ततः पुनः प्राणायामत्रयं कृत्वा श्रुत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रसीद

भगवन्निति दण्डवत् प्रणमेत् ।

मनोवाक्कायजनितं कर्म यन्मे शुभाशुभम् ।

तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो देवाय शार्ङ्गिणे ॥

इत्यर्घ्यादकेन समाप्य<sup>१</sup> महामुद्रां दर्शयित्वा मूलमन्त्रेण स्वाभीष्टं प्रार्थ्य प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युघहार्णवादिति पठन् स्वाभीष्ट-सम्पादकनिर्माख्यं भगवता दत्तमिति विभाव्य शिरस्थाधाय मूल-मन्त्रेण ज्योतीरूपं देवं विचिन्त्य चमस्वेत्युक्त्वा यन्त्रादिस्यं तज्ज्योतिः पुष्पेण सह नासारन्ध्रद्वारा मूलमन्त्रेण हृत्पद्मस्थे ज्योतीरूपे भग-वति परिवारगणैः सह स्थापयेत् । स्थापितप्रतिमायां शालग्रामे च विसर्जनं नास्ति । तत ऐशान्यां भूमौ त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र निर्माख्यपुष्पेण निर्माख्यनैवेद्येन च वौ विष्वक्सेनाय नम इति पूजयेत् ।

इति तान्त्रिकविष्णुपूजा समाप्ता ।

एवमन्यदेवानामपि पूजा किन्तु अङ्गन्यासपीठशक्त्यावरणेषु विशेषस्तन्तन्मन्त्रकल्पे ज्ञेयः ।

इदानीं वैदिकपूजाभिधीयते ।

कूर्मपुराणे,—

तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्भूरिम् ।

तद्विष्णोरितिमन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण वा ॥

नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तस्तुर्वपि ।

तत्र शुचिः पूर्ववदासने उपविश्य भूतशुद्धिप्राणायाममात्मका-  
न्यासान् विधाय ॐकारेण षडङ्गन्यासं कृत्वा पुरुषसूक्तस्य ऋष्या-  
दिकं विन्यस्य षोडशस्तवः स्वाङ्गे विन्यसेत् ।

नरसिंहपुराणे,—

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुभस्तस्य देवता ।

पुरुषो यो जगदीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥

आनुष्टुभस्य अनुष्टुप्छन्दसः सूक्तस्य पौरुषस्य सहस्रशीर्षा  
इत्यादेर्यज्ञेन यज्ञमित्यन्तस्य ऋक्षोडशकस्य त्रिष्टुप्छन्दोऽङ्गः  
सम्भूत इत्यादिसप्तदशी ऋगन्ते समीपे यस्य तस्य जगदीजं पुरुषो  
देवता ऋषिस्तु नारायण इत्यर्थः ।

तथाग्निपुराणे,—

प्रथमां विन्यसेदामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।

तृतीयां वामपादे च चतुर्थीं दक्षिणे तथा ॥

पञ्चमीं वामजानौ च षष्ठीं तु दक्षिणे तथा ।

सप्तमीं वामकथां तु अष्टमीं दक्षिणे तथा ॥

नवमीं नाभिमध्ये च दशमीं हृदये तथा ।

एकादशीं कण्ठमध्ये द्वादशीं वामवाङ्गके ॥

त्रयोदशीं दक्षिणे च तथास्त्रे च चतुर्दशीम् ।

अच्छणोक्तया पञ्चदशीं विन्यसेन्मूर्द्ध्नि षोडशीम् ॥

यथा देवे तथा देहे न्यासं कृत्वा विधानतः ।

न्यासमात्राद्भवेत् सोऽपि स्वयमेव जनार्दनः ॥

एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चात् पूजां समाचरेत् ।

शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं ध्यायेज्जनाईनम् ॥

ध्येयः सदा सविहमण्डलमध्यवर्त्ती

नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी

हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

देवे प्रतिमायां यथैवं न्यासस्तथात्मदेहेऽपि न्यासं कृत्वा देवं  
ध्यायेत् । हिरण्मयवपुस्तेजोमयवपुर्वर्णोऽपि स्वर्णवर्ण एव । ततः  
सामान्यार्थं विधाय पूजामारभेत् । नरसिंहपुराणेऽप्येतद्भक्तमुक्तम् ।

नृसिंहपुराणे,—

अर्चनं संप्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः ।

यत् कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥

ध्येयः सदासविहमण्डलेत्यादि,—

दद्यात् पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा ।

अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ॥

आद्ययावाद्येद्देवं ऋचा तु पुरुषोत्तमम् ।

द्वितीययासनं दद्यात् पाद्यं चैव तृतीयया ॥

चतुर्थार्थं प्रदातव्यं पञ्चम्याचमनीयकम् ।

षष्ठ्या स्नानं प्रदद्याच्च सप्तम्या वस्त्रमेव च ॥

यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ।

दशम्या पुष्पदानं स्यादेकादश्या च धूपकम् ॥

द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्या चरुं तथा ।

चतुर्दश्याञ्जलिं वध्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ॥

षोडशोदासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत् ।  
 स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ॥  
 षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति<sup>१</sup> देवदेवं समर्चयन् ।  
 संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति ॥  
 चरुं नैवेद्य उदासनं विसर्जनम् ।

तत्र<sup>२</sup> स्वागतं मधुपर्कभरणानि यज्ञोपवीतं पुष्याञ्जलिकरण-  
 क्षाधिकमिति । शेषकर्माणीति द्वाविंशत्यध्याये मार्कण्डेयसहस्रा-  
 लीकसम्वादे प्रागुक्तं गृहीतम् ।

यथा,—

नमस्कारेण चैकेन अष्टाङ्गेन हरिं व्रजेत् ।  
 स्तोत्रैर्जपैश्च देवाये यः स्तौति मधुसूदनम् ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।  
 गीतवाद्यादिकं नृत्य<sup>३</sup> शङ्खतुर्यादिनिस्त्रनम् ॥  
 यः कारयति विष्णोः स विष्णुलोके महीयते ।

अथ वैदिकपूजाप्रयोगः ।

स्नातः शुचिराचान्तः पूर्ववदासने उपविश्य भूतशुद्धिप्राणायाम  
 मातृकान्यासान् विधाय ॐकारेण करन्यासं षडङ्गन्यासश्च कुर्यात् ।  
 पुरुषसूक्तस्य नारायणचर्चिर्मस्तुकेऽनुष्टुप्चन्दो मुखे जगद्बीज  
 पुरुषो देवता इति चतुर्वर्गाग्रये श्रीपुरुषाराधने विनियोगः ।

१ क प्रसूते, यथा सासिद्धिमाप्नोति ।

२ ख, ग, अत्र ।

३ ख, नित्यम् ।

स्वदेहे मन्त्रन्यासो यथा,—

ॐ सहस्रशीर्षेति वामकरे । पुरुष एवेदमिति दक्षिणकरे ।  
एतावानस्येति वामपादे । त्रिपादूर्ध्वमिति दक्षिणपादे । ततो  
विराडिति वामजानुनि । तस्माद्यज्ञादिति दक्षिणजानुनि । तस्मा-  
द्यज्ञादिति वामकक्ष्याम् । तस्मादश्वा इति दक्षिणकक्ष्याम् । तं  
यज्ञमिति नाभौ । यत्पुरुषमिति हृदये । ब्राह्मणोऽस्येति कण्ठे ।  
चन्द्रमा मनस इति वामवाहौ । यत्पुरुषेणेति मुखे । सप्तास्या-  
सन्निति अक्ष्णोः । यज्ञेन यज्ञमिति मूर्द्ध्नि विन्यसेत् ।

एवं विन्यस्य ध्यानं कुर्यात्,—

शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं ध्यायेज्जनाईनम् ।

१ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्ववर्त्ती

नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी

हारौ हिरण्यवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

एवं ध्यात्वा मनसाभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् । अस्ताय फडिति  
साधारं शङ्खं प्रोक्ष्य नम इति मन्त्रेण पूरयित्वा ।

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यङ्गुशमुद्रया तीर्थमावाह्य ॐकारेण गन्धपुष्पाक्षतादीनि  
दत्त्वा धेनुमुद्रां प्रदर्श्य ॐकारमष्टधा जपेत् । तद्दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रं



संस्थाप्य जलेनापूर्य्य गन्धपुष्पे दत्वा अर्घ्यजलं किञ्चिद्दत्वा तज्जले-  
नात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य एवमर्घ्यं वामे पाद्यमाचमनीयञ्च  
स्थापयेत् ।

मण्डले प्रतिमायां वा अश्वशौ सूर्य्यरश्मिषु ।

शालयामे मणौ वापि पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥

मण्डलस्योभयपार्श्वे गुरुं गणेशञ्च सम्पूज्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं दत्वा  
पूर्व्ववत् ध्यात्वा वहन्नासापुटेन तेजः पुष्पाञ्जलिना ॐ सहस्रशीर्षेति  
मण्डलादिषु संस्थाप्य भगवन् श्रीमहापुरुष इहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ  
वन्निहितो भवाभिमुखो भव इति तत्तन्मुद्राः प्रदर्श्य पुरुष एवेद-  
मिति पुष्पाञ्जलिमासनं काष्ठासनं वा यथासामं दद्यात् । सर्व्वत्र  
मन्त्रान्ते श्रीपुरुषाय इदममुकद्रव्यं नम इत्यर्घ्योदकेनोत्सृजेत् ।

ॐ एतावानस्येति पाद्यम् । त्रिपादूर्द्ध्वमित्यर्घ्यम् । ततो विरा-  
डित्याचमनीयम् । तस्माद्यज्ञादिति स्नानीयम् । ततः पूर्व्ववदाच-  
मनीयम् । तस्माद्यज्ञादिति वस्त्रम् । ततः पूर्व्ववदाचमनीयम् ।  
तस्मादश्वा इत्युपवीतम् । तं यज्ञमिति गन्धम् । यत्पुरुषमिति  
पुष्पम् । ब्राह्मणोऽस्येति धूपम् । चन्द्रमा मनस इति दीपम् ।  
नाभ्या आसीदिति नैवेद्यम् । पूर्व्ववर्त्युनराचमनीयम् । यत्पुरुषे-  
णेति पुष्पाञ्जलिदानम् । ततोऽष्टाचरमन्त्रं वासुदेवमन्त्रं वा यथा-  
शक्ति जप्त्वा जप समर्थं ॐ सप्तास्यामन्निति प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वा  
प्रसीद भगवन्निति दण्डवत् प्रणम्य चमस्वेति उक्त्वा, ॐ यज्ञेन  
यज्ञमिति तचस्यं तेजः पुष्पेण सह क्षत्पन्ने स्थापयेत् । वौ विष्णुक्-  
सेनाय नम इति ऐशान्यां त्रिकोणमण्डले निर्मात्येन पूजयेत् ।

अथ वा एवमुक्तप्रकारेण ।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥

इति मन्त्रेण निर्व्यापकन्यासं विधाय पूर्व्ववदावाहनादिकमु-  
द्वासनान्तं सर्व्वं तद्विष्णोरिति मन्त्रेण कुर्यात् । एवमन्येषामपि  
देवानां पूजां तेषां वैदिकमन्त्रेण कुर्यात् ।

इति वैदिकपूजाविधिः ।

मिश्रपूजा तु पूर्व्वोक्ततान्त्रिकप्रकारे वैदिकमपि मिश्रीकृत्य  
पूजयेत् । अत्र फलवाङ्मयम् ।

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वमाधाय हृदि सादरम् ।

त्रिविधः सर्व्वदेवानां पूजाविधिरुदीरितः ॥

इति त्रिविधदेवपूजाः ।

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वे समाधाय मनोऽधुना ।

संक्रान्तिर्नलिनीबन्धोः सम्यगत्र विविच्यते ॥

अग्निपुराणे,—

अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षड्ग्रहीतयः ।

चतस्रो विष्णुपद्मस्य संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ॥

मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे त्वद्वद्विष्णायणे ।

विषुवती तुलामेषे आषां मध्ये तथापराः ॥

वृषवृश्चिककुम्भेषु सिंहे विष्णुपदी तथा ।

धनुर्मिथुनकन्यासु मीने च षड्ग्रहीतयः ॥

अतीतानागते पुण्ये द्वे त्वद्वद्विष्णायणे ।

त्रिंशत् कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः सूताः ॥

वर्त्तमाने तुलासेषे नाड्यस्त्रयस्यतो दश ।

षड्ग्रीत्यामतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः ॥

पुण्याख्या विष्णुपद्याश्च प्राक् पञ्चादपि षोडश ।

या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः सूताः ॥

मृगो मकरसंक्रान्तिरुत्तरायणं कर्कटसंक्रान्तिर्दक्षिणायणमित्यर्थः

आसामयनविषुवसंक्रान्तीनामपराः षड्ग्रीतिविष्णुपद्यः ।

स्वस्ये नरे सुखासीने यावत् स्पन्दति लोचनम् ।

तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्त्तितः ॥

तत्पराञ्छतशो भागस्तुटिरित्यभिधीयते ।

त्रुटेः सहस्रभागो यः स कालो रविसंक्रमे ॥

इति देवीपुराणोक्तसंक्रान्तिकालस्य कर्मायोग्यत्वात् तत्सन्नि-  
हितकालानां पुण्यकालत्वमाह अतीतानागते इति उत्तरायण-  
मतीतं सत्पुण्यं, दक्षिणायणमनागतं भविष्यदिति कृत्वा पुण्यमि-  
त्यर्थः । कर्कटे दक्षिणायणेऽनागते भविष्यति संक्रान्तेः प्राक्-  
कालीनास्त्रिंशन्नाड्यो दण्डाः पुण्याः स्नानदानादिकर्माहर्हाः । तथा  
मकरे उत्तरायणे अतीते संक्रान्तेः परकालीना विंशतिनाड्यः<sup>१</sup>  
पुण्या इत्यर्थः ।

तथा च देवीपुराणम्,—

यावद्विंशकला भुक्तास्तत्पुण्यञ्चोत्तरायणे ।

१ ग, अथ मकरे ।

२ ग, परकालीनविंशतिनाड्य ।

निरंशे भास्करे दृष्टे दिनान्तं दक्षिणायणे ॥

संक्रान्तिक्षणे भास्करोऽंशशून्यो भवति तस्मिन् भास्करे ज्ञाते सति संक्रान्तेः परं यावद्विंशतिकला भुक्ता भवन्ति तावत्कालमुत्तरायणे पुण्यमित्यर्थः । दक्षिणायणे तु दिनान्तं दिवावसाने प्रमाणं अक्षोराचाङ्गं त्रिंशद्दण्डाः पुण्यमित्यर्थः ते च संक्रान्तेः प्राक्तना एव । भविष्यत्ययने पुण्यमिति वक्ष्यमाणैतदीयापरवचनात् । वर्त्तमाने तुलामेषे इति उभयतः प्राक् पश्चादपि दश नाड्यो मिलित्वा विंशतिरित्यर्थः ।

तथा वृहन्नारदीयेऽपि,—

तत्र च कर्कटे ज्ञेयो दक्षिणायणसंक्रमः ।

पूर्वतो घटिकास्त्रिंशत् पुण्यकालं विदुर्बुधाः ॥

तुलायां चैव मेषे च पूर्वतः परतः स्थिताः ।

ज्ञेया दशैव घटिका दत्तस्थाचयकारिकाः ॥

यच्च,—

षड्दशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्वये ।

भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे ॥

इति देवीपुराणवचनं तत्र वृत्ते चेति चकारोऽवृत्ते चेति समुच्चयार्थः वर्त्तमाने वाक्ता आर्षः नारदीयाग्निपुराणवचनाभ्यां सहैकवाक्यत्वात् देवीपुराणे अयनपदं गोवल्लीवर्द्धन्यायादक्षिणायनपरम् । देवीपुराणे विषुवे षड्दशीत्याञ्च कालसंख्या नोक्ता साचाद्या अग्निनारदीयपुराणवचनाभ्यामवगन्तव्या । पुण्याख्या इति विष्णुपद्यास्तु प्रागपि पश्चादपि षोडश नाड्य इत्यर्थः । एतद्वचनैक-

।क्यत्वात् षड्भीतिविषयायनेषु कचिदतीतानां कचिदनागतानां  
तत्तत्सख्याविशेषविधिविरोधाच्च ज्ञातातपजावाप्तवदनमपि विष्णु-  
पदौविषयमेव ।

यथा ज्ञातातपः,—

अर्वाक् षोडश विज्ञेया नाद्यः पञ्चाच्च षोडश ।

कालः पुण्योऽर्कसंक्रान्तेर्विदग्धिः परिकीर्तितः ॥

जावालः,—

संक्रान्तेः पूर्वकालस्तु षोडशोभयतः कला ।

या याः सन्निहिता नाद्य इति सर्वसंक्रान्तिविषयम् ।

यत्तु,—

अतीतानागतो भोगो नाद्यः पञ्चदश स्रुताः ।

इति देवीपुराणवचन, तस्मायमर्थः,—

संक्रान्तेरतीतानागतो भोगो भोगहेतुः पुण्यजनककालः स्रुता  
स च पञ्चदश नाद्यः स्रुतास्तदपि विष्णुपदौविषयमेव षोडशदण्डात्  
पञ्चदशदण्डानां प्राशस्त्यप्रदर्शनपरम् ।

यच्चापरं देवीपुराणवचनम् ।

मन्दा मन्दाकिनी ध्वाङ्गी घोरा चैव महोदरी ।

राचसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप ॥

मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी मता ।

चिप्रे ध्वाङ्गी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्तिता ॥

चरे महोदरी ज्ञेया क्रूरे च्चवे तु राचसी ।

१ ग, कचिदतीताना पदं नास्ति ।

मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रितर्चै तु संक्रमे ॥

त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादश एव च ।

क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥

तदयनादिद्वादशसंक्रान्तिषु भ्रुवादिनचत्रविशेषसञ्चारान्मन्दा-  
दिनामतया सप्तधा भिन्नासु पूर्वोक्तकालमध्ये सञ्चारसन्निहितानां  
यथासंख्यं त्रिचतुःपञ्चादिनाङ्गिकानामतिप्राशस्त्यप्रदर्शनपरं अतएव  
तत्पुण्यं पारमार्थिकमित्युक्तम् ।

भ्रुवादिनचत्राण्युक्तानि ज्योतिषे,—

उत्तराचयरोहिण्यो भ्रुववर्गः प्रकीर्तितः ।

पूर्वाणि त्रीणि भरणी मघा चोगणः स्मृतः ॥

अवणादित्रयं स्वाती चरवर्गः पुनर्वसुः ।

पुष्याश्विनी तथा हस्ता क्षिप्रनामा गणः स्मृतः ॥

चित्रातुराधारेवत्यो मृगशीर्षं मृदुगणः ।

अश्लेषाद्रा तथा ज्येष्ठा मूला क्रूरगणः स्मृतः ॥

कृत्तिका च विशाखा च मिश्रसंज्ञाबुभौ स्मृतौ ।

एतत् सर्वं दिवासंक्रान्तिविषयं रात्रिसंक्रान्तीनां वक्ष्यमाणवि-  
शेषवचनाप्रातले प्रागुक्तानां सामान्यवचनानां पदाहवनीयन्यायेन  
तदितरपरत्वादिति ।

रात्रौ द्वादशसंक्रान्तिषु व्यवस्थामाह ।

देवीपुराणम्,—

अर्द्धरात्रे त्वसमूर्णे दिवा पुण्यमनागतम् ।

समूर्णे चार्द्धरात्रे च उदयेऽस्तमयेऽपि वा ॥

मानार्द्धं भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरौदले ।

सम्पूर्णे त्वभयोर्ज्ञेयमतिरेके परेऽहनि ॥

अर्द्धरात्रादूर्वाक् द्वादशखेव संक्रमेषु अर्थान्तद्विवशीयं दिवा पुण्यं अर्द्धरात्रे सपूर्णेऽतीते सति संक्रमे अनागतं भाविदिवा पुण्यमित्यर्थः । अर्द्धरात्रेऽन्यूनातिरिक्ते<sup>१</sup> संक्रमे उदये सति तदारभ्य भावि दिवा पुण्यं अस्तमयेऽस्तमयपर्यन्त अतीतदिवा च पुण्यमित्यर्थः । वाशब्दः समुच्चये । अत्र दिवामात्र पुण्यमुक्तं तत् किं सर्व्वमुत कियदेति सन्देहे आह मानार्द्धमिति । दक्षमर्द्धं, रात्रेः प्रथमार्द्धं संक्रान्तौ भास्करे अर्थात् दिवा मानार्द्धं सन्निहितत्वाच्चेष्ट-दिवा<sup>२</sup> पुण्यमित्यर्थः । अर्द्धरात्रादतिरेके संक्रान्तौ परेऽहनि प्रथ-मदिनार्द्धं पुण्यं सान्निध्यात् । अतएव या याः सन्निहिता नाद्य इत्युक्तम् । सम्पूर्णे त्वभयोरिति । सम्पूर्णार्द्धरात्रे संक्रान्तौ उभयोः पूर्वापर<sup>३</sup> [दिनयोरर्द्धं पूर्वं] दिनस्योत्तरार्द्धं परदिनस्य पूर्वार्द्धं च पुण्यमित्यर्थः ।

अत्रैव विशेषमाह देवीपुराणे,—

आदौ पुण्यं विजानीयाद्यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत् ।

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयं चापरेऽहनि ॥ इति ।

सम्पूर्णार्द्धरात्रे संक्रमणे पूर्वदिवसौयतिथिर्यदि संक्रमणकाले स्यात्तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धमेव पुण्यं न तु परदिनस्य पूर्वार्द्धं एवञ्च यदभयोः पुण्यत्वमुक्तं तद्विचतिथिपक्षे बोद्धव्यम् । एवञ्च अन्यतिथ्य-नुरोधेनार्द्धरात्रात् परतः संक्रान्तावपि पूर्वदिनपरार्द्धदिनस्य

१ ख, ग. चन्यूनातिरिक्ते ।

२ ग, [ ] चिन्विताशो नास्ति ।

पुण्यत्वमस्त्वित्याशङ्कां निवारयति अर्द्धरात्र इति रात्रेः परार्द्धसंक्रमणे सर्वदैव परदिनपूर्वार्द्धमेव पुण्यमित्यर्थः ।

यन्तु समयप्रकाशे त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टेत्यादिवचनं मन्दादिसंक्रान्तिगोचरतया सन्ध्यासंक्रान्तिविषयं दिवारात्रिसंक्रान्त्योर्यथायथं व्यवस्थापितत्वादित्युक्तम् । तदयुक्त रात्रिसंक्रान्तौ विशेषवचनदर्शनात् सामान्यानां यावद्दिग्भक्त्या भुक्ता इत्यादिवचनानां तदितरपरत्वावगमात् सन्ध्यासंक्रान्तिष्वपि प्रवृत्तेर्विपरीतोत्तरे नियामकविरहाच्च । नन्वेवं रात्रिसंक्रमणेऽपि दिनस्यैव पुण्यत्वमुक्तं तत्कथम्—

राजदृग्दर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययद्विषु ।

स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥

इति देवत्ववचनं सङ्गच्छते । सत्यं, प्रातर्दक्षिणायनादिषु सञ्चारे तत्पूर्वकालस्य दिवाशेषे च षड्भूतुत्तरायणादिषु सञ्चारे परकालस्य पुण्यत्वाद्रात्रौ स्नानदानादिविधायकत्वमस्येति । निशीति सायाह्नादिनिषिद्धकालोपलक्षकं, अतएव विवाहोपरागादिनिमित्तकश्राद्धादिकं सायाह्नादौ निर्विवादम् ।

चैपुराणे—

मन्दा विप्रजने शस्ता मन्दाकिन्यस्तु राजनि ।

ध्वाङ्गी वैशेषु विज्ञेया घोरा शूद्रे शुभप्रदा ॥

महोदरी तु चौराणां शौण्डिकानां जयावहा ।

चण्डालपुङ्गवादीनां राक्षसी क्रूरकर्माणाम् ॥

सर्वेषां कारुकाराणां मिश्रिता भूतिवर्द्धनी ।

नृपाः पीडयन्ति पूर्वार्द्धे मध्याह्ने च द्विजोत्तमाः ॥



अपराहे तथा वैश्याः शूद्राश्चास्तमये रवौ ।  
 पिशाचास्तु प्रदोषे तु अर्द्धरात्रे तु राक्षसाः ॥  
 अर्द्धरात्रे व्यतीते तु पौष्यन्ते नटनर्त्तकाः ।  
 उषःकाले तु सप्राप्ते हन्ति गोखामिनौ जनान् ।  
 हन्ति प्रव्रजितान् सर्वान् सन्ध्याकाले न संग्रयः ॥  
 पौष्यन्ति पौष्यन्ते आर्षः ।

राजमार्त्तण्डे,—

सुप्तः संक्रमते भानुर्गरादिकरणत्रये ।  
 आदिद्वये चोपविष्ट ऊर्ध्वश्चैव ततो द्वये ॥  
 दुर्भिक्षं रोगसम्पत्तिमूर्द्धः सन् सक्रमन् रविः ।  
 सुप्तः करोति कल्याणमुपविष्टः समं फलम् ॥  
 आदिद्वये वववालवयोः ।

तथा,—

कुजार्कशनिवारेषु महासंक्रमणं यदा ।  
 तदा भवेत् प्रजानाशो दुर्भिन्नादिभयं भवेत् ॥  
 तुलासक्रमणे रात्रौ मेषसक्रमणे दिवा ।  
 उभयोः शस्यवृद्धिः स्यादिपरीत विपर्यये ॥

यत्तु,— सूर्योदये विषुवतो जगतां विपत्ति  
 मध्यन्दिने विकलता वज्रशस्यहानिः ।  
 अस्तङ्गते दिनकरे वज्रशस्यवृद्धि-  
 रैश्वर्यभोगविजया निशि चार्द्धरात्रे ॥

इति वचनम् । तदेतदधनैकवाक्यतया जलविषुवपरम् ।

ज्योतिषे,—

नाडीनक्षत्रदिवसे रविभौमग्रनैश्वराः ।

संक्रान्तिं यस्य कुर्वन्ति तस्य क्लेशोऽभिजायते ॥

गोमूत्रसर्षपैः स्नानं सर्वौषधिजलेन च ।

ग्रहं सम्पूज्य तं दद्यात् विप्राय कनकोत्तमम् ॥

ग्रहणविवेचने नाडीनक्षत्राणि प्रागुक्तानि । यस्य ग्रहस्य सञ्चा-  
रस्तं सम्पूज्य इत्यर्थः ।

सर्वौषधिरुक्तस्तत्रैव ।

सुरा मांसौ वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।

शठी चम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥

शैलेयं शैलजमिति ख्यातम् । रजनीद्वयं हरिद्रा दारुहरिद्रा च ।

तथा,— यस्य जन्मर्चमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥

तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोभ्रसंयुक्तैः ।

स्नानं जन्मनृत्ये रविसंक्रान्तौ नृणां शुभदम् ॥

सिद्धार्थः श्वेतसर्षपः ।

अथ संक्रान्तिज्ञातानि ।

देवीपुराणे,—

संक्रान्त्यां यानि दत्तानि हव्यकथानि मानवैः ।

तानि तस्य ददात्यर्कः सप्तजन्म पुनः पुनः ॥

विष्णुः,— आदित्यसंक्रमणं विषुवद्वयं विशेषेणायनद्वयं जन्मर्च-  
मभ्युदयश्चेति ।

एतांस्तु आद्धकालान् वै काम्यानाह प्रजापतिः ।

आद्धमेतेषु यदत्त तदानन्याय कल्पते ॥

आदित्यसंक्रमणमिति गोवलीवर्द्धन्यायात् विषुवाचनेतरपरं  
विषुवाचनयोस्तु फलातिशयः ।

सक्रान्तिआद्धञ्च पिण्डरहितं कार्यम् ।

अयनद्वितये आद्ध विषुवद्वितये तथा ।

सक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वापनादृते ॥

वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां कार्तिकस्य च ।

आद्धं कार्यञ्च शुक्लायां संक्रान्तिविधिना नरैः ॥

चयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रचयेऽहनि ।

आद्ध कार्यं पायसेन दर्शनायनवच्च तत् ॥

इति ब्राह्मपुराणवचनात् । सक्रान्तिविधिना पिण्डदानेतर  
विधिना युगाद्यास्तपि आद्धमित्यर्थः । न चैषां वचनानामना-  
करत्वाशङ्का ब्रह्मपुराणाग्निपुराणयोर्दृष्टत्वात् सवत्सरप्रदीपाद्यनेक-  
समूहेषु लिखितत्वाच्च ।

मान्यास्तु,—

ततः प्रभृति सक्रान्ताबुपरागादिपर्वसु ।

त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि ॥

इति भक्त्यपुराणवचनात् पिण्डदानविधिनिषेधयोर्विकल्पः ।

दाने तु फलातिशय इत्याहुः । तदयुक्तम् ।

तत्रैव भक्त्यपुराणे,—

ततः प्रभृति पितरः पिण्डसंज्ञान्तु लेभिरे ।

इति परिभाषितत्वात्त्रिपिण्डमाचरेदित्यस्य तदीयवचनस्य  
त्रयः पिण्डाः पितरोऽचेति व्युत्पत्त्या त्रिपिण्डं त्रैपुरुषिकश्राद्ध-  
मिति व्याख्यानात् । अतएवैकोद्दिष्टं मृताहनीति मृताहे ऐक-  
पुरुषिकोपहारः कृतः ।

राजमार्तण्डे,—

रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यस्तु मानवः ।

सप्तजन्मन्यसौ रोगी निर्धनश्चाभिजायते ॥

एतेन संक्रान्तिस्नानं नित्यमुक्तम् ।

वराहपुराणे,—

मृते जन्मनि संक्रान्त्यां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

भविष्ये,—

संक्रान्त्यां पचयोरन्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

गङ्गास्नातो नरः कामाद्ब्रह्मणः सदनं व्रजेत् ॥

अथने विषुवे चैव यः स्नायाज्जाह्नवीजले ।

गङ्गास्नानस्य वर्षार्द्धकृतस्य फलमाप्नुयात् ॥

संक्रान्तौ गङ्गास्नानं काम्यं नित्यन्वनुषङ्गेन गतार्थम् ॥

संक्रान्तौ दानमाह राजमार्तण्डे,—

अथने कोटिगुणितं सत्तु विष्णुपदीफलम् ।

षड्ग्रीतिसहस्राणि षड्ग्रीत्यासुदाहृतम् ॥

शतमिन्दुचये दानं सहस्रन्तु दिनचये ।

विषुवे शतसाहस्रमाकामावैध्वनन्तक्रम् ॥

१ आ—आषाढी, का—कार्तिकी, मा—माघी, वै—वैशाखी,  
आसु पौर्णमासीषु दानमनन्तक कल्पान्तस्याधिफलकमित्यर्थः ।  
देवीपुराणे,—

एकधापि हतं कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ।

धर्माद्विबद्धते ह्यायूरान्यपुत्रसुखानि च ॥

अधर्माद्वाधिशोकादि विषुवायनसन्निधौ ।

विषुवेषु च यज्ज्ञप्तं दत्तं भवति चाक्षयम् ॥

तथा,— तुलामेषप्रवेशे तु त्यागे च मिथुनस्य च ।

रवेर्महाफलं ज्ञेयं तेभ्योऽपि स्थान्महाफलम् ॥

यदा प्रविशते भानुर्मकरं द्विजसत्तमाः ।

भविष्ये,—

उपोष्यैव च संक्रान्त्यां प्रातर्योऽभ्यर्चयेद्भूरिम् ।

स्नात्वा पञ्चोपचारेण स कामानखिलान् लभेत् ॥

पूर्वदिनमुपोष्येत्यर्थः ।

तथा,—

कृत्वोपवास विधिवद्विषुवे योऽर्चयेच्छिवाम् ।

शक्तिमान् वज्रपुत्रश्च स भवेदलवान्नरः ॥

तथा,—

योऽभिवीचेत विषुवे गत्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।

रामं कृष्णं सुभद्राञ्च स वैष्णवपुर व्रजेत् ॥

अत्र,— मासपक्षतिथौनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्व्वशः ।

उभेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्नवेत् ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणवचनात् सञ्चारपूर्वकाले पूर्वसौरमासो-  
ल्लेखः सञ्चारपरकाले तु परसौरमासोल्लेखः कार्यः ॥

तत ॐ अद्यामुके मासि अमुकराशितोऽमुकराशौ रवेरमुक-  
संक्रान्त्याममुकपक्षेऽमुकतिथावस्मिन् भारतवर्षाख्यभूपदेशे इत्यादि-  
वाक्यं मन्तव्यं वाक्यरचनाविचारस्तु दानकौमुद्यां द्रष्टव्यः ग्रन्थ-  
गौरवभियात्रोपेक्षितः ।

विष्णुपुराणे,—

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याऽथ पूर्णिमा ।

पर्वण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥

स्त्रीतैलमांससभोगी पर्वस्वेतेषु वै पुमान् ।

विन्मूत्रभोजन नाम प्रयाति नरकं मृतः ॥

अत्राधुनिकाः,—

निषेधोऽयं स्नानादिविधिवत् पुण्यकाल एव ततः परं मत्स्या-  
दीनामुपभोगो निर्विवाद एवेति लोभाध्यापितकुतर्काः श्रिष्टाचारं  
विलोपयन्ति, तन्नन्दम् यद्यपि विधौ संक्रान्तिपदेन पुण्यकालो  
लक्ष्यते तथापि,—

अष्टम्यां पक्षयोरन्ते रविसंक्रान्तिवासरे ।

पक्षोपान्ते स्त्रियं तैलं मांसञ्च परिवर्जयेत् ॥

इति ब्रह्मपुराणे वासरग्रहणात् सञ्चारोपलक्षितदिन एव निषेधः,  
तदेकवाक्यतया विष्णुपुराणवचनमपि सञ्चारोपलक्षितदिवसपरम् ।

न च वासरस्योपलक्षितत्वेऽपि पुण्यकाल एव विधिवन्निषेधोऽपि  
भविष्यतीति वाच्यम् ।

निमित्तं कालमाश्रित्य वृत्तिर्विधिनिषेधयोः ।

तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिर्निषेधः कालमात्रके ॥

इति प्रचेतोवचनात्, वासरपदवैयर्थ्यापत्तेः ।

एवञ्च,—

निरंशं दिवसं विष्टिं व्यतीपातञ्च वैष्टितिम् ।

केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्य पापाहमपि वर्जयेत् ॥

इत्यादौ ज्योतिषे <sup>१</sup>[रविणा निरंशीकृतमहोरात्रं व्याप्यैव शुभकर्माणां निषेधोऽपि सङ्गच्छते अन्यथा महद्देशसं स्यात् । अथवा सञ्चारक्षणस्यातिसूक्ष्मत्वात् तत्र विधिनिषेधानुपपत्त्या संक्रान्तिपदेन विधौ निषेधे च सर्व्वत्रैव सञ्चारोपलक्षितदिनमेवा-  
च्यते तदा च 'तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिर्निषेधः कालमात्रके' इति वचनात् पुण्यकाले विधिनिषेधस्त्वहोरात्रव्यापीति अतएव संक्रान्तेः पुण्यकालस्तु इत्यादिवचनैः पुण्यजनकत्वमेव तत्तदुग्रनसोक्तं अन्यथा पुण्यपदवैयर्थ्यापत्तेः ।

न च रात्रेः परार्द्धे सञ्चारे तद्विवसस्योपलक्षणात् कथं पर-  
दिने विधिनिषेधाविति वाच्यं, तथाविधसञ्चारे तद्विवसीयविधेः परदिने वचनेनातिदिष्टत्वात् ।]

यथा देवीपुराणे,—

सम्पूर्णं त्वभयोर्ज्यमतिरेके परेऽहनीति ।

राजमार्त्तण्डे भोजराजः,—

अर्द्धरात्रादधश्चेत् स्यात्तस्मिन्नेवाहनि क्रिया ।

ऊर्द्ध सक्रमणे भानोरपरेऽहनि तत्क्रिया ॥

१[निषेधस्तु सञ्चारोपलक्षितदिन एव प्रागुक्तवचनात् अन्यथा परदिनदिवाूर्द्धस्य पुण्यकालत्वे रात्रौ सञ्चारक्षणे स्त्रीसङ्गमप्रसङ्गः<sup>१</sup> तथाूर्द्धरात्रसञ्चारे पूर्वापरदिवाूर्द्धयोः पुण्यकालत्वात् तत्र दिनद्वये मांसादिवर्जनप्रसङ्गः तन्मध्ये च रात्रौ मांसभक्षणादिप्रसङ्गश्च स्यात् ।]

अथ दधिसंक्रान्तिव्रतम् ।

तच्चोत्तरायणसंक्रान्तिमारभ्य वर्षैकं यावत् प्रतिसंक्रान्तौ कार्यम् । तत्रायं विधिः ।

स्नातः शुचिराचान्तः खस्ति वाच्यं संकल्पं कुर्यात् । अद्यामुके मासि अमुकराशितोऽमुकराशौ रवेरमुकसंक्रान्त्याममुकपक्षेऽमुकतिथावारभ्य वर्षैकं यावत् प्रतिसंक्रान्तौ भारतवर्षाख्यभूपदेशे अमुकगोचनामाहं हृदयसन्तापनाशधनधान्यसमृद्धिसौख्यविद्विक्कामो दधिसंक्रान्तिव्रतं करिष्ये ।

स्त्रियास्तु हृदयसन्तापानुत्पत्त्यवैधव्यधनधान्यसमृद्धिसौभाग्यसौख्यविद्विक्कामेति विशेषः । मोक्षकामस्य तु संसारसन्तापप्रशमनकाम इति विशेषः । इति संकल्प्य भूतशुद्धिप्राणायाममात्मकान्यासान् विधाय ॐकारेणाङ्गन्यासं कृत्वा तद्विष्णोरिति मन्त्रेण व्यापकत्रयं विधाय नारायणं ध्यायेत् ।

१ ख पुस्तके, [ ] चिह्नितसन्दर्भो नास्ति । २ ग पुस्तके, स्त्रीसङ्गः ।



१ उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिग शङ्खं गदां पद्मज  
चक्रं विभ्रतमिन्दिरावसुमतीसशोभिपार्श्वद्वयम् ।  
कोटीराङ्गदह्वारकुण्डलधरं पीताम्बर कौस्तुभो-  
दीप्तं विश्वधर स्ववचविलसच्छ्रीवत्सलक्ष्म भजे ॥

इति ध्यात्वा मनसा सम्पूज्यार्थस्थापनं कृत्वा प्रोक्षणीयानं  
पाद्यञ्च स्थापयेत् । ततो घटे गणेशं ध्यात्वावाह्य प्रोक्षणीजलेन  
पाद्यादिभिः सम्पूज्य स्वर्णताम्रादिमयीं मलच्छ्रीकनारायणप्रतिमां  
शास्त्रग्रामं वा तद्विष्णोरिति मन्त्रेणाष्टाक्षरनारायणमन्त्रेण वा  
दक्ष्णा स्पर्शयित्वा घटे वा मण्डले वा संस्थाप्य पुनर्धात्वा तद्विष्णो-  
रिति मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वावाह्य मन्त्रद्वयान्यतमेन पाद्यादिभिरुप-  
चारैः पूजयेत् । विशेषतो गव्यं दधि दद्यात् । नारी तु प्रणव-  
वर्जितेन मन्त्राक्षरनारायणमन्त्रेणेति ।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ वासुदेवाय नमः ॐ नारायणाय  
नमः ॐ देवकीनन्दनाय नमः ॐ यदुश्रेष्ठाय नमः ॐ वार्ष्णेयाय  
नमः ॐ असुराक्रान्तभारहारिणे नमः ॐ धर्मसत्यापकाय नमः ।  
इति कृष्णाष्टकेन सम्पूज्य कया शृणुयात् ।

भविये अगस्त्य उवाच,—

नृणां हृदयमनापः कर्मणा केन भाधव ।  
प्रतेन वा विनश्येत् तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥

श्रीकृष्ण उवाच,—

एतदर्थं कथां दिव्यां शृणु वक्ष्यामि तेऽनघ ।

१ स मन्त्रे, उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिगमिद्यादि ध्यायेत् ।

चैरोदधौ पुरा विप्र शेषपर्यङ्कशायकः ॥  
 अभवं तत्र मे लक्ष्मीः पादसंवाहिकाऽभवत् ।  
 अथ तस्योदधेस्तीरे गत्वा काचन कन्यका ॥  
 रोदिति स्नातिसन्तप्ता विलप्य च पुनः पुनः ।  
 शोकेनं महतात्यर्थं मनस्तापेन दुःखिता ॥  
 तस्यास्तथा रुदत्यास्तु दुःखाकुलितचेतसः ।  
 निशम्य करुणं लक्ष्म्या वारि सुस्ताव चक्षुषः ।  
 तप्तानां वाष्पविन्दूनां पतितानां समोपरि ॥  
 तेषां स्पर्शादहं निद्रां महर्षे त्यक्त्वांस्तदा ।  
 अवोचं च तदा लक्ष्मीं कारुण्यद्रुतचेतसम् ॥  
 कस्मात्त्वं रोदिषि शुभे किन्ते शोकस्य कारणम् ।  
 एवमुक्ता तु सा लक्ष्मीः प्रत्युवाचातिदुःखिता ॥  
 देवास्य जलधेस्तीरे प्रत्यहं कापि कन्यका ।  
 रोदित्यन्यन्तदुःखार्ता करुणञ्च विनापिनी ॥  
 तस्यास्तथाविधां वाचं निशम्य मम वेगतः ।  
 सुस्ताव नेत्रजं वारि कारुण्यान्मघुसूदन ॥  
 मनुष्याणां कथं देव हृत्तापो नोपपद्यते ।  
 तन्मे ब्रुहि जगन्नाथ श्रोतुं कौतूहलं मम ॥

देव उवाच,—

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि दधिसंक्रान्तिनामकम् ।  
 व्रतमस्ति मनुष्याणां हृत्तापग्रमनं परम् ।  
 शुभे काले तु सप्तात्रे संक्रान्तिर्या शुभा भवेत् ॥

उत्तरायणमक्रान्तिविशेषेण प्रशस्यते ।  
 तवारभ्य व्रत चैतत् कार्यमावत्सराच्छुभे ॥  
 मां त्वया सहितं दध्ना स्वपयित्वा प्रयत्नतः ।  
 गन्धादिभिश्च विधिवदुपचारैः समर्चयेत् ॥  
 गव्यं दधि शुभं देवि नम हस्ते प्रदापयेत् ।  
 दधिभोज्य ब्राह्मणाय प्रदद्यात् प्रीतये मम ॥  
 मामि मामि च संक्रान्तौ दधिभोज्यञ्च वत्सरम् ।  
 रमाप्ते तु व्रते देवि गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥  
 वस्त्रयज्ञोपवीताद्यैर्विशेषेण समर्चयेत् ।  
 द्वादश ब्राह्मणान् भात्या भोजयेद्दधिभिः सह ॥  
 विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात् प्रतिष्ठार्थं व्रतस्य च ।  
 एव हते व्रते देवि क्षत्तापो नोपपद्यते ॥  
 वैधव्यदुःखगमन धनधान्यममृद्धिदम् ।  
 दम्पत्यो, प्रीतिजनन मर्त्यमौख्यविवर्द्धनम् ॥  
 कर्त्तव्य पुरुषैः स्त्रीभिर्व्रतं मोक्षकरं परम् ।  
 एवमेव कथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥  
 कथामेताञ्च ये पुण्यां शृण्वन्ति श्रद्धया नराः ।  
 सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

इति श्रुत्वा स्तुत्या प्रणम्य ब्राह्मणाय भोज्यं दद्यात् । अथेत्यादि  
 दधिमक्रान्तिव्रतकर्माणि मन्त्रस्मृत्यौ कनाराधणप्रीतिकामो यथागोच-  
 नाये ब्राह्मणाय भोज्यमिदं सदधि सोपकरणं सम्प्रददे । तस्य  
 काञ्चनदक्षिणा देया प्रतिमासीयव्रतेऽपि दक्षिणेत्याचारः । ततः

क्षमस्वेति हृदये उदास्य दधिसहितं हविष्यान्नं भुञ्जीत । वत्सरान्तरे  
उत्तरायणसंक्रान्त्यां यथाविधि व्रतं कुर्यात् । तत्र वज्रदधिभिः  
क्षपयित्वा षोडशोपचारैर्विशेषतो दधिवस्त्रयज्ञोपवीताद्यैः सलक्ष्मीकं  
नारायणमर्चयित्वा द्वादशब्राह्मणेभ्यः सदधीनि सवस्त्राणि भोज्यानि  
दत्त्वा स्तुत्वा पुनःपुनः प्रणम्य व्रतं समर्पयेत् ।

ॐ अद्येत्यादि तत्तत्फलकामनया कृतैतद्दधिसंक्रान्तिव्रतं श्रीस-  
लक्ष्मीकनारायणाय समर्पये प्रीयतां भगवान् विष्णुः ।

ॐ अद्येत्यादिकृतैतद्दधिसंक्रान्तिव्रतकर्माणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणा-  
भिदं काञ्चनं यथागोचरनामभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं संप्रददे । ततः क्षम-  
स्वेति १ हृदये देवमुदास्याक्किद्रं कृत्वा शान्तिं कुर्यात् ॥

इदानीं मासकृत्ये निरूपयितव्ये मासज्ञानाधीनत्वान्तत्वा-  
त्यानां प्रथमं सामान्यतो मासपदार्थं निरूप्य १ चैत्रादिमासविशेषो-  
ऽपि निरूप्यते ।

अत्र केचित्,—

हारीतेन चान्द्रमासि मासशब्दस्य सङ्केतितत्वात्तच्चैव मास-  
शब्दो मुख्योऽन्यत्र भाक्तः ॥

यथा हारीतः,—

इन्द्राग्नी यत्र ह्वयेते मासादिः स प्रकीर्तितः ।

अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ॥

१ ख पुस्तके, खहृदये ।

२ ग पुस्तके, चैत्रादिपदवाच्यमासविशेषः ।

तमतिक्रम्य तु रविर्यदा गच्छेत् कदाचन ।

आद्यो मलिन्मुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः ॥

शुक्लप्रतिपदि इन्द्राग्नियागः कृष्णप्रतिपदि अग्नीषोमयागः  
एतौ दर्शपौर्णमासान्तर्गतौ पिण्डपितृयज्ञाद्भूतः पितृविशिष्ट-  
सोमदैवतोऽग्नौकरणहोमो दर्शं विहितः, मासादिः समाप्तावित्य-  
नेन शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तिश्चान्द्रो मास इत्युक्तं तं मासमतिक्रम्य  
रविर्यदि गच्छेत् तत्र यदि सञ्चारं न करोति तदा स मासो  
मलिन्मुच इत्याहुः ॥

तन्मन्द मलमासोपयुक्तचान्द्रमासस्यैव हारीतेन सङ्केतितत्वात्,  
तमतिक्रम्येत्यादिना तथैवोपसंहारात्, किन्तु वह्नां मुनीनां सौर-  
सावनचान्द्रनाचत्रेषु तुल्यसङ्केतदर्शनाच्चतुर्ध्वं नानार्थो मासशब्दो  
मुख्यः ।

न च नानार्थकल्पनागौरवाच्चान्द्रे मुख्योऽन्यत्र भाक्त इति  
वाच्यम् । विनिगमनाविरहात् सर्वत्र मुनीनां तुल्यसङ्केतदर्शनाच्च,  
अन्यथा नानार्थोच्छेदापत्तेः ।

यथा ब्रह्मसिद्धान्ते,—

चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः ।

एकराशौ रविर्यावत् काल १मासः स भास्करः ॥

शुक्लादिः शुक्लप्रतिपदादिरित्यर्थः पञ्चावयववाचित्वाद्च शुक्ल-  
शब्दस्य ।

यथा वराहसंहितायाम्,—

दर्शाद्दर्शश्चान्द्रस्त्रिंशद्विंशसु सावनो मासः ।

रविसंक्रान्तिषु चिह्नः सौरसु निगद्यते तज्ज्ञैः ॥

दर्शादित्यवधौ पञ्चमी न त्वभिविधौ तदा हि मासानां दर्शादित्वे दर्शान्तक्षणादित्वे वा वत्सरे षष्ठां मासानां लोपापत्तिः स्यात् ।

न चैक एव दर्शः पूर्वमाससमापकः परमासारम्भकश्चेति वाच्यं एकस्य द्वयोरवयवत्वविरोधात् मासानां परस्परपरीहारेणावस्थानप्रसिद्धिबाधाच्च दर्शं मृतस्य सांवत्सरिकश्राद्धानध्यवसायाच्च । अतएव विष्णुधर्मवचने सन्निकर्षादयारभ्येत्यत्र सन्निकर्षोत्तरकाललक्षणा ।

यथा विष्णुधर्मोत्तरे,—

चन्द्रमाः कृष्णपक्षान्ते सूर्य्येण सह युज्यते ।

सन्निकर्षादयारभ्य सन्निकर्षमथापरम् ॥

चन्द्रार्कयोर्बुधैर्मासश्चान्द्र इत्यभिधीयते ।

सावने च तथा मासि त्रिंशत् सूर्य्यादयाः स्मृताः ॥

आदित्यराशिभोनेन सौरो मासः प्रकीर्तितः ।

सर्व्वर्चपरिवर्त्तैस्तु नाचत्रो मास उच्यते ॥

राजमार्तण्डे,—

मासो रवेः स्यात् प्रतिराशिभोगात्

शुक्लादिदर्शान्तमितोऽथ चान्द्रः ।

त्रिंशद्दिनैरप्यथ सावनाख्यो

भानां भवेद्भः परिवर्त्तनेन ॥

रत्नमालायाम्,—

दर्शावधिं चान्द्रमुग्रन्ति मासं  
सौर तथा भास्करराशिभोगात् ।

त्रिंशद्दिन सावनसंज्ञमाह—

नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च ॥

सूर्यसिद्धान्ते,—

नाडीषध्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रचक्षते ।

तत्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ॥

ऐन्द्रवस्तिथिभिस्तद्वत् सक्रान्त्या सौर उच्यते ।

तथा त्रिंशता अर्कोदयैः सावन इत्यर्थः । षष्टिदण्डमात्रेणैव  
नाक्षत्रं दिनं अर्कोदयस्तु राशिविशेषावस्थानवशेन यावन्ति पलानि  
दिनभोगः स्यात् तदधिकषष्टिदण्डैर्भवति ।

तच्च तत्रैव ।

ग्रहोदयप्राणधृता खखाष्टैकोद्भूता १८०० गतिः ।

चक्रासवो २१६०० लब्धयुता आहोरात्रासवः क्रमात् ॥

इत्यनेनाहोरात्रमानं वक्ष्यते ततश्च सावनसवत्सरेणैकदिना-  
धिकवत्सरो नाक्षत्रो भवतीत्येतयोर्भेदः । अथच नाक्षत्रो मासो  
गणनोपयुक्त एव व्यवहारोपयुक्तस्तु विष्णुधर्मोत्तराद्युक्तश्चन्द्रस्य  
भगणभ्रमणात्मक एव स च प्रागेवोक्त इति । ऐन्द्रवस्तिथिभिस्तद्व-  
दिति तद्वत् त्रिंशता तिथिभिश्चान्द्रो मास इत्यर्थः ।

अत्र यद्यपि सामान्येन त्रिंशता तिथिभिरित्युक्तं तथापि  
हारौतब्रह्मसिद्धान्तवराहसंहिताविष्णुधर्मराजमार्तण्डादीनां पूर्वा-

पन्यस्तवचनैकवाक्यतया शुक्लप्रतिपदादिभिस्त्रिंशता तिथिभिरिति बोद्धव्यम् ।

अतएव तत्रैव सूर्यसिद्धान्ते त्रयोदशाध्याये,—

त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम् ।

इति पित्र्याहोपसंहारात् तस्य च शुक्लकृष्णपचनियतत्वादेत-  
देव विवृतम् ।

यथा मनुः,—

पित्ये राव्यहनी मासः प्रविभागस्तु पचयोः ।

कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्व्वरी ॥ इति ।

यत्तु,—

एकाह्नेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ।

न्यूनाः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तथा ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचने ।

मुख्यं आर्द्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति ।

इति मरीचिवचने ।

मृताह्ने प्रतिमासं कुर्यात् । इति विष्णुवचने च ।

मासपदं, तत्त्रिंशत्तिथिप्रचयमात्रे लाक्षणिकम् । अतएव पौर्ण-  
मास्यन्तेऽपि सुतरामेव लाक्षणिको मासशब्द इति ध्येयम् ॥

एवञ्च मासशब्दस्य नानार्थत्वे सति ।

रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मल्लिस्तुतः । इति ।

आब्दिके पितृकृत्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः । इति ।

मेषगरविसंक्रान्तिः शशिमासे भवति यत्र तच्चैवमित्यादौ



चान्द्रो मास इत्यादि भोपाधिप्रयोगः सङ्गच्छते । अन्यथा तदनर्थकं स्यादिति ।

एतेन सौरादिषु त्रिषु रूढं मासपदं चान्द्रे तु मासश्चन्द्र-  
स्तस्यायमिति व्युत्पत्त्या त्रिशत्तिथिप्रचये यौगिकमिति ये वदन्ति  
तेऽपि निरस्ताः हारीताद्यनेकमुनिभिः सौरादिवच्चान्द्रेऽपि सङ्के-  
ताभिधानात् अन्यथा तस्य वैफल्यप्रसङ्गात् अनेकमुनिवचनेषु  
चान्द्रो मास इत्यत्र चान्द्रपदस्य पुनरुक्तवैफल्याच्च, मासपदादेव  
तथा प्रतीतेः ।

एवञ्च मासस्य चतुर्विधत्वे सति द्वादशमासाः संवत्सरः  
इति श्रुतेः ।

सौरेणाब्दस्तु मानेन यदा भवति भार्गव ।

सावने च तदा माने दिनषट्कं प्रवर्द्धते ॥

सौरसंवत्सरस्यान्ते मानेन शश्विजेन तु ।

एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि भृगुनन्दन ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचनाच्च सौरादिभिश्चतुर्विधैर्द्वादशभिर्मासै-  
श्चतुर्विधः संवत्सर इति ।

न चाधिमासपाते त्रयोदशभिश्चान्द्रमासैः सवत्सर इति  
वाच्यम् ।

षष्ठा तु दिवसैर्मासः कथितो वादरायणैः ।

पूर्वमर्द्धं परित्यज्य उत्तरार्द्धं प्रशस्यते ॥

इति वचनेन मासद्वयस्यैकमासत्वाभिधानात् । अथवा धर्म्म-  
कार्योपयुक्तैरेव द्वादशभिर्मासैश्चान्द्रसंवत्सरव्यवहारो न त्वधिकेनेति ।

यत्तु,—

मेषादयो द्वादशैते मासाः संवत्सरः स्मृतः ।

इति सूर्यसिद्धान्तवचनं तत् सौरसंवत्सरस्य मेषादित्प्रदर्शन-  
परम् ॥

इदानीं चैत्रादिपदवाच्यं निरूप्यते ।

अत्र केचित् सौरे चान्द्रे च मास्युभयचैव प्रयोगभूयस्त्वदर्शनादु-  
भयचैव चैत्रादिपदशक्तिरित्याहुः तन्न एकत्र लक्षणया सम्भवति  
प्रयोगनिर्वाहे नानार्थताकल्पनमन्याय्यं शुक्लादिशब्दवत् गौरवात् ।  
तथा चोक्त कल्पनातो लक्षणेव श्रेयसीति, अगत्यैव हि नानार्थ-  
ताङ्गीक्रियते यथाक्षादिषु मुख्यसम्बन्धाभावेन लक्षणानुपपत्त्या  
विनिगमनाविरहेण च स्वीकृतेति । न चात्रापि विनिगमनाविरह-  
इति वाच्यम् । चान्द्रमास्येव चैत्रादिपदानां सङ्केतदर्शनात् ।

यथा ब्रह्मगुप्तः,—

मेषगरविसंक्रान्तिः श्रविमासे भवति यत्र तच्चैत्रम् ।

एवं वैशाखाद्या वृषादिसंक्रान्तियोगेन ॥

तथा च श्रुतिः,—

सा वैशाखस्यामावास्या या रोहिण्या सम्बध्यते इति ।

अत्र चामावास्यान्तकाले सूर्याचन्द्रमसोः सहावस्थाननियमेन  
वृषार्कं एवामावास्यायां रोहिणीयोगसम्भवात् 'मेषार्कं चासम्भवात्  
श्रुत्यापि ब्रह्मगुप्तलक्षणं स्वहस्तितम् ।

हारीतेनापि,—

इन्द्राग्नी यत्र ह्वयेते मासादिः स प्रकीर्तितः ।

अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृषोमकौ ॥

इत्यनेन सूर्यगतेर्मन्दत्वशीघ्रत्वाभ्यां तद्वागौ कदाचित्तिथि-  
द्वयलाभात् आद्धसशये कदाचिच्च तत्तिथ्यलाभे आद्धलोपप्रसङ्गात्  
सौरमासचिह्नं विहाय इन्द्राग्नी यत्र ह्वयेते इत्यनेनोक्तचान्द्रमास-  
स्यैव पौषमासादिसंज्ञां विधाय इतरव्यावर्तकेन तेन मासादि-  
मासचिह्नेन निर्विवादं सांवत्सरआद्ध इति वदता चान्द्रमासेव  
मासादिपदानां शक्तिरुक्ता ।

एवञ्च,—

मासादिषट्कमासेषु शार्ङ्गिणः शयनावधि ।

चूडाकर्म्म प्रशंसन्ति मुनयो व्रतकर्म्म च ॥

द्वौ द्वौ मासादिमासौ स्यादुत्तोरयन त्रिभिः ।

इत्यादौ सौरमासे मासादिपदं मकरस्थरव्यारब्धसादृशाद्गौणं  
अग्निर्मानवक इतिवदिति ।

एतेन ब्रह्मपुराणादौ बहुप्रयोगदर्शनात् पौर्णमास्यन्तमासे  
मासादिपदशक्तिर्दर्शान्ते लक्षणाऽस्त्वित्यपि निरस्तं पूर्वोपन्यस्तश्रुति  
हारीतब्रह्मगुप्तादौ दर्शान्त एव सङ्केतितत्वात् अनुवादकशास्त्रतः  
सङ्केतशास्त्रस्य वलीयस्त्वाच्च पौर्णमास्यन्तचैत्रादेश्चैत्रपौर्णमास्यन्त-  
विशत्तिथिप्रचयात्मकतया लक्ष्यस्यावश्यं वाच्यत्वेन दर्शान्तचैत्रसा-  
पेक्षत्वाच्च । एवञ्च दर्शान्ते मासि चैत्रादिप्रयोगे निर्णीते सति केचित्  
नक्षत्रेण युक्तः कालः सास्मिन् पौर्णमासीति पाणिनिस्मरणात्

चिचानचत्रयुक्ता पौर्णमासी चैत्रौ सास्मिन् मासे इति व्युत्पत्त्या  
पुनरणप्रत्ययेन यौगिकं चैत्रादिपदमाहुः, तत्र अहोरात्रचिरात्र-  
दशरात्रादिष्वपि चैत्रादिपदप्रसङ्गात् ।

मासे योगरूढमिति चेत् नचत्रयोगव्यभिचारेऽपि कार्त्तिक-  
कादिपदप्रयोगात् ।

तथा ज्योतिषे,—

अन्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयौ फाल्गुनश्च त्रिभौ मतः ।

शेषा मासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया ॥

पौर्णमास्यां कृत्तिकादिक्रमेण द्विदिनचत्रयोगात् अन्योपा-  
न्ययोराश्विनभाद्रयोः फाल्गुने च नचत्रययोगात् कार्त्तिकादयो  
द्वादश मासा भवन्तीत्यर्थः ।

‘पाणिनिना तु प्रायिकयोगमाश्रित्य यथाकथञ्चित् व्युत्पत्ति-  
दर्शितेति । न च कृत्तिकादिपदेन कृत्तिकारोहिण्योरन्यतर-  
मुपलक्ष्यते एवमन्येष्वपि मासेष्विति वाच्यं अन्योपान्त्यौ त्रिभौ  
ज्ञेयाविति वचनस्यापि प्रायिकयोगमाश्रित्योक्तत्वादत्रापि व्यभि-  
चारदर्शनात् ।

यथा ब्रह्मपुराणे,—

आग्नेयन्तु यदा ऋचं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित् ।

महती सा तिथिः प्रोक्ता स्नानदानेषु चोत्तमा ॥

यदा याम्यन्तु भवति ऋचं तस्यां तिथौ क्वचित् ।

तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्त्तिता ॥

प्राजापत्यं यदा षष्ठ तिथौ तस्यां नराधिप ।

सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥

आग्नेयं कृत्तिका, याम्य भरणी, प्राजापत्य रोहिणीत्यर्थः । अत्र पौर्णमास्यां भरणीयोगेऽपि कार्तिकत्वं प्रत्युत भवन्मते आश्विनत्वमेव तस्येति । तुलार्कस्य षोडशदिनमारभ्य षड्विंशतिदिनाभ्यन्तरे या पौर्णमासी तस्याञ्च तुलार्कारब्धचान्द्रमासान्तर्गतत्वात् 'कार्तिकी-त्वेनाव्यभिचरितायामवश्यमेव भरणीयोगः पौर्णमास्यन्तकाले सप्तमराशावर्काक्रान्तांशसमसख्यांशे चन्द्रावस्थाननियमात्, एवञ्च वृश्चिकार्कस्य दशमदिनादूर्ध्वं चतुर्दशदिनपर्यन्तं, तुलार्कारब्धचान्द्रमासान्तर्गता या कार्तिकी पौर्णमासी तस्यामेव रोहिणीयोगो नान्यत्र कार्तिक्यामिति । यदा तु वृश्चिकार्कस्य षोडशं दिनमारभ्य त्रयोविंशतिदिनाभ्यन्तरे वर्त्तमानायां पौर्णमास्या वृश्चिकारब्धचान्द्रमासान्तर्गतत्वादायहायणीत्वेनाव्यभिचरितायां रोहिणीयोगोऽवश्यमेव कदाचिन्मृगशिरायोगः पौर्णमास्यन्तकाले चन्द्रार्कयो-रन्योऽन्येन सप्तमराशौ समांशावस्थाननियमात् । तदा च नचत्रव्यभिचारात् मार्गशीर्षस्यापि कार्तिकत्वं प्रसज्येत एवमन्येऽपि मासेषु नचत्रव्यभिचारः सुधीभिरुक्त इति ।

अन्ये तु मौनस्वरविप्रारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तस्थान्द्रो मास-स्यैव इत्यादिलक्षणं वदन्ति । तदपि न चारु चयमासाव्याप्ते ।

यथा ज्योतिषे,—

असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्

द्विसंक्रान्तमासः चयाख्यः कदाचित् ।

चयः कार्तिकादित्रये नान्यदा स्यात्

तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च ॥

तथा ज्योतिषे,—

यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मम्

यत्कार्तिकादित्रितये चयाख्यम् ।

मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्ना

द्विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु ॥

चयमासस्य द्विसंक्रान्तले मध्ये मासैकलोपप्रसङ्गः स्यात् ।

यथा शुक्लप्रतिपदि धनुःसञ्चारः अमावस्यायाञ्च मकरसञ्चारः  
तस्य च मासस्य वृश्चिकस्यरविप्रारब्धत्वेन <sup>१</sup>[मार्गशौर्वत्वात् तत्परस्य च  
मासस्य मकरस्यरविप्रारब्धत्वेन सुतरां] माघत्वात् धनुःस्यरविप्रार-  
ब्धमासाभावात् पौषलोपः स्यात् । अस्त्वेवमिति चेत् तद्वर्षे  
तन्मासविहिततिथिलुप्यसांवत्सरिकश्राद्धादीनां लोपापत्तिः स्यात्  
ततश्च प्रतिसवत्सरं कुर्यादिति विधिबाधः प्रसज्येत । <sup>२</sup>एतेन मेष-  
स्यरविसमायश्चान्द्रो मासश्चैत्र इत्याद्यपि निरस्तं मलमासस्य पूर्व-  
मासत्वप्रसङ्गः स्यादिति । अन्ये तु ब्रह्मगुप्तलक्षणमेव साधु मन्यन्ते ।  
यदाह ब्रह्मगुप्तः,—

मेषगरविसक्रान्तिः शशिमासे भवति यत्र तच्चैत्रम् । एवं  
वैशाखाद्या वृषादिसंक्रान्तियोगेन । तच्चैत्रमिति, चैत्र एव चैत्रं

१ ख पुस्तके, [ ] चिह्नितशो नास्ति ।

२ ग, एतेन च ।

स्वार्थेऽन् देवतादिशब्दवत् कश्चित् स्वार्थिकप्रत्यया निङ्गमतिवर्त्तन्ते  
एतच्च लक्षणं चयमासेऽपि मङ्गतम्, उभयार्कमञ्चारेणैकस्यापि  
मासस्योभयसंज्ञासमावेशात् । किन्त्वत्रापि मलमासाव्याप्तिर्दोषः ।

रविण लङ्घितो मासश्चात्र ख्यातो मलस्युचः ।

इत्यादिवचनात् रविमकान्तिरहितस्यैव मलमासत्वात् ।

न चानामको मलमास इति वाच्यं न निर्विशेषं मामान्यमिति  
न्यायेन चैत्रादिसंज्ञातिरिक्तमामाभावात् ।

न च,— वत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत् ।

नैर्घृतेर्यातुधानैश्च समाक्रान्तो विनामकः ॥

इति वचनादिति वाच्यं एतस्यामूलत्वात् समूलत्वेऽपि चैत्रादि-  
मासविशेषचिह्नितकार्याभावात् लाक्षणिकं विनामकं विनामक-  
पदमिति । विनामकेरिति कालमाधवीये पाठः ।

अमावस्यामतिक्रम्य कुल्लौरं याति भास्करः ।

द्विराषाढं न विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥

इत्यादिराजमार्त्तण्डादिवचने द्विराषाढादिपदप्रयोगाच्च ।

न च द्विराषाढादिप्रयोगो गौण इति वाच्यं युगपद्वृत्ति-  
द्वयविरोधात् द्वित्वसम्भवाच्च मलमासमरणे तन्मासस्यानामकत्वेन  
सांवत्सरिकश्राद्धे मणिण्डीकरणे चानध्यवसायाच्च चैत्रादिविशेष-  
चिह्नाभावादिति, मृताहे मणिण्डीकरणविधानाच्च तत्तन्मासविशेषा-  
ङ्किततिथिविशेषस्य मृताहशब्दवाच्यत्वात् अन्यथातिप्रसङ्गादिति ।

एकसंज्ञौ यदा मामौ स्यातां सवत्सरे कश्चित् ।

तत्राद्ये पितृकार्याणि देवकार्याणि चोत्तरे ॥

इति राजमार्त्तण्डवचने एकसंज्ञत्वकथनाच्च तत्राद्ये पितृकार्यार्था-  
णीति पितृकार्यपद सपिण्डीकरणपरम् ।

सपिण्डीकरणे चैव नाधिमासं विदुर्बुधाः ।

इति हारीतवचनात् ।

तथा,— रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मल्लिस्तुचः ।

तत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत् ॥

इति भीमपराक्रमवचने तत्र मलमासे वैशाखादिपुरस्कारेण  
विहितं यत्कर्म तदुत्तरे प्रकृतवैशाखादौ मासि कुर्यादित्यभिधा-  
नान्मल्लिस्तुचस्य वैशाखादिसंज्ञा स्फुटैवोक्ता अन्यथा मलमासे कर्म-  
विधानाभावात्तदसङ्गतं स्यात् ।

तथा ज्योतिषे,—

पक्षद्वयेऽपि संक्रान्तिर्यदि न स्यात् सितासिते ।

तदा तन्मासविहितमुत्तरे मासि कारयेत् ॥ इति ।

तथा,— आद्यो मल्लिस्तुचो ज्येष्ठो द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः ।

इति हारीतवचने आद्यं द्वितीयमित्यपि मासयोरेकनामत्वे  
सत्येव सङ्गच्छते इति ।

वस्तुतस्तु,—

सा वैशाखस्यामावास्या या रोहिण्या सम्बध्यते ।

इति श्रुत्यनुसारात् लक्षणांतरमुच्यते ।

मेषगतरविसञ्चाररहितसंक्रान्तमासादितरो मीनस्तरविसं-  
योगी शशिमासश्चैव इत्यादि । मीनस्तरविसंयोगी शशिमासश्चैव  
इत्युक्ते फाल्गुनेऽतिव्याप्तिवारणाय मेषगतरविसञ्चाररहितसंक्रा-



न्तमासादितर इत्युक्तं फाल्गुनस्तु मेषगतरविसञ्चाररहितसंक्रा-  
न्तमासादितरो न भवत्येवेति । संक्रान्तपदन्तु मलमासाव्याप्ति-  
वारणायेति । सर्व्वेष्वेव मलमासेषु सर्व्वमासलक्षणातिव्याप्तिवारणाय  
मीनस्थरविसंयोगीत्यादिपदम् ।

न च प्रतिपत्त्यमक्षणे<sup>१</sup> उत्तररागिसंयोगरूपे रविसञ्चारे मति  
पूर्व्वमासो मलमास एव उत्तरमासस्य प्रकृतमासत्वान्तन्नामकता-  
ऽवश्यं वाच्या तत्र पूर्व्वरागिस्थरविसंयोगाभावात्प्रक्षणाव्याप्तिरिति  
वाच्यम् । सूर्य्यमण्डलस्य<sup>२</sup> महत्वादेकदेशेनोत्तररागिसंयोगे मत्यपि  
परभागेण पूर्व्वरागिसंयोगमत्वान्नाव्याप्तिः ।

एवञ्च वृषगतरविसञ्चाररहितसंक्रान्तमासादितरो मेषस्थ-  
रविसंयोगौ मासो वैशाख इत्यादिलक्षणमितरेषु मासेषूक्तम् ।  
एतेन एकस्यापि क्षयमासस्योभयार्कसञ्चारेणोभयलक्षणव्याप्त्या  
उभयमासत्वं सङ्गतमिति ।

न च क्षयमासमरणे तन्मासस्योभयसङ्गतत्वात् सांवत्सरिकश्चा-  
द्भानध्यवसाय इति वाच्यम् ।

तिथ्यर्द्धे प्रथमे पूर्व्वो द्वितीयार्द्धे तदुत्तरः ।

मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥

इति व्यासवचनात् तिथेः पूर्व्वार्द्धे मरणे पूर्व्वमासीयतिथि-  
र्ग्राह्यः परार्द्धमरणे तु परमासीयतिथिरिति व्यवस्था न चैतदना-  
करमिति शङ्का कालमाधवीयादिषु पाश्चात्यसृतिषु लिखित-

त्वादिति । एवञ्च चैत्रादिपदार्थे निर्णीते चैत्रपौर्णमास्यन्-  
त्रिशक्तिप्रचयो गौणचैत्र इत्यादिलक्षणं ज्ञेयम् ।

न च मौनस्थरविप्रारब्धकृष्णप्रतिपदादिपौर्णमास्यन्तश्चैत्र इति  
वाच्यम् । कुम्भस्थरविप्रारब्धकृष्णप्रतिपदादावव्याप्तेः ।

न च मौनस्थरविसमाप्यकृष्णपक्षतदव्यवहितशुक्लपक्षौ चैत्र  
इत्यादिलक्षणं वाच्यम् । त्रयमासाव्याप्तेः ।

एव चैत्रादिपदानां चान्द्रे शक्तिः सौरै प्रयोगभूयस्त्व-  
दर्शनाच्चिरुदलक्षणा ततश्च प्रमाणसङ्गावे सौर एव चैत्रादिः  
प्रमाणाभावे तु मुख्यश्चान्द्र एव यत्र तु गौणचान्द्रे प्रकरणादिकं  
प्रमाणमस्ति तत्र गौणमेव चैत्रादिपदमित्याद्यपि ज्ञेयम् ।  
मलमासविवेचनन्तु शुद्धिकौमुद्यां द्रष्टव्यं विस्तरभयान्नेह  
प्रस्तुतम् ।

अथ पक्षपदार्था निरूप्यते ।

अत्र केचिदुक्ततरवचनदर्शनाच्चान्द्रमासार्द्धे पक्षपदशक्तिमाहुः ।

यथा वायुपुराणे,—

शुक्लपक्षस्य पूर्वार्द्धे आहुः कुर्याद्विचक्षणः ।

कृष्णपक्षापराह्णे तु रोहिणन्तु न लङ्घयेत् ॥

मनुः,—

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षादिप्रियते ।

तथा आहुःस्य पूर्वार्द्धादपराह्णे विप्रियते ॥

ब्रह्मपुराणे,—

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु आहुः कुर्यादिने दिने ।

कान्थायन,—

शाकेनाप्यपरपक्ष नातिक्रमेदिति ।

तन्मन्द भावनेषु पञ्चदशाहोरात्रेषु पक्षपदस्य सङ्केतितत्वात् ।

यथा विष्णुपुराणे,—

चिन्महर्षे कथितमहोरात्रञ्च यन्मया ।

तानि पञ्चदश ब्रह्माण् पक्ष इत्यभिधीयते ॥

तथाचामरकोषे,—

ते तु चिंशदहोरात्रः पक्षस्ते दशपञ्च च ।

नचोभयत्र शक्तिगौरवात् निरुद्धलक्षणाया प्रतिपदादिपञ्चदश-  
तिथिप्रचये प्रयोगिनां समर्थितत्वात् । न च वैपरीत्याशङ्का  
सङ्केतग्राहकशास्त्राभावात्, अनुवादकशास्त्रतः शक्तिग्राहकशास्त्रस्य  
वलीयत्वाच्च ।

पक्षौ पूर्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावभौ ।

इत्यमरकोषे शुक्लकृष्णयोर्विधेयत्वेन पक्षपदस्थानुवादकत्वाच्च  
न च प्रयोगभूयस्त्वदर्शनाशङ्का निरुद्धलक्षणायाः शक्तितुल्यत्वात्  
सौरे मासे चैत्रादिशब्दवत्, किन्तु शुक्लकृष्णपदयोः प्रतिपदादि-  
पञ्चदशतिथिप्रचये शक्तिरिति ।

अथ चतुनिरूपणम् ।

सूर्यसिद्धान्ते,—

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासास्तत्तरायणम् ।

कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायणम् ॥

द्विराशिमाना चतवस्ते चापि शिशिरादयः ।

सूर्यभुक्तराशिदयमानेन माघादि चतवो भवन्ति ते च चतवः  
 शिशिरादयः शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः उत्तरायणे चतुत्रयं  
 दक्षिणायने चतुत्रयमित्यर्थः । तेन मकरादिराशीनां भानोर्दिदि-  
 राशिभोगकाल चतुरिति चतुलक्षणम् ।

तथाच रत्नमालायाम्,—

मृगादिराशिदयभानुभोगात्

षडूर्त्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः ।

ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तद्व-

द्धेमन्तनामा कथितस्य षष्ठः ॥

तथाच विष्णुपुराणे,—

द्वौ मासावर्कजावृतुः इत्यनेन सौरमानेनैव मासद्वये चतुपदस-  
 क्केत उक्तः । तथाच श्रुतिग्राहकशास्त्रेऽमरकोषे द्वौ द्वौ माघादि-  
 मासौ स्यादृतुस्तेरयनं त्रिभिरिति अत्र तैरयनं त्रिभिरित्यनेन  
 सौरमासेनैव चतुपदश्रुतिर्दर्शिता ।

तथाच श्रुतिः,—

तपस्तपस्थौ ग्रीष्मिरावृतुः । मधुश्च माधवश्च वार्सान्तकावृतुः ।

शुक्रश्च शुचिश्च गैश्चावृतुः<sup>१</sup> । अथैतदुदगयनं देवानां दिनम् ।

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतुः । द्रुपस्योर्जश्च शारदावृतुः ।

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतुः ।

अथैतदक्षिणायनं देवानां रात्रिरिति । .

अत्र हि उत्तरायणदक्षिणायनोपसंहारात् अयनस्य च सौर-  
नियतत्वात् लक्षण्या तपस्तपस्यादिपदानां सौरपरत्वात् श्रुत्यापि  
सौरेणैव मासेन ऋतुपदशक्तिः सहस्तिता । तेन तपस्तपस्यादि-  
पदानां मुख्यवृत्त्यनुरोधेन मुख्यचान्द्रमासद्वये केषाञ्चिद्वृत्तपद-  
वाच्यताभ्रमो हेय एव ।

अतएव आह्वयविवेके ।

आश्वयुज्याञ्च कृष्णायां त्रयोदशां मघासु च ।

प्रावृद्धृतौ यमः प्रेतान् पितृंश्चाथ यमालयात् ॥

इति वचनव्याख्यानानुसारे प्रावृद्धृतुरत्र ऋतुः संवत्सर इति  
मतेन व्याख्यातम् । अन्यथा मघात्रयोदशा मुख्यचान्द्रमासद्वयत्वेन  
सुतरां प्रावृद्धृतुगोचरत्वादन्यथा व्याख्यानमसङ्गतं स्यात् ।

यच्च,—

मुख्य आह्वं मासि मासि अपर्याप्तावृत्तं प्रति ।

इति मरौचिवचने चान्द्रेण ऋतुशब्दप्रयोगः, स च गौण एवा-  
वश्य वाच्यः तस्य शिशिरादिशब्दवाच्यत्वाभावात् न निर्विशेषं  
सामान्यमिति न्यायेन शिशिरादिषडतिरिक्तत्वभावाच्च ।

यच्च,—

विशेषतश्च कार्त्तिक्यां द्विजेभ्यः संप्रयच्छति ।

शरद्व्यापाये रत्नानि पौर्णमास्यामिति स्थितिः ॥

इत्यादिविष्णुपुराणवचने पौर्णमास्यन्तगौणचान्द्रेण ऋतुसमा-  
प्तेरवगम्यते । तत् पौर्णमास्यन्तमासद्वये शरदादिपदस्य भाक्तत्वात्,  
न च वैपरीत्याशङ्का सङ्केतयाहकशास्त्राभावात् । अनुवादकशास्त्रतः

शक्तियाहकशास्त्रानां वलीयस्त्वाच्च श्रुतेरपि स्मृतेर्दुर्बलत्वाच्चेति  
प्रकृतमनुसरामः ।

अथ वैशाखकृत्यम् ।

भविष्ये,— तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विशेषतः ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यञ्च महापातकनाशनम् ॥

तुलादिराशुल्लेखेन विधानात् सौरमास एव प्रातःस्नानादिकृत्यं  
ब्रह्मचर्यं स्त्रीपरित्यागः, एषां त्रयानां मिलितानामेवैतत्फलं न  
प्रत्येकस्य । तथाच कर्मविपाके वैशाखमाहात्म्ये ।

उषस्युषसि वैशाखे ब्रह्मचर्यं व्यवस्थितः ।

राजन् मेषगते भानौ यस्मिन् कस्मिन् जलाशये ॥

यताहारः स्थितः स्नाहि सर्वपापैः प्रमुच्यसे ।

ब्रह्मचर्यैकभक्तेन मेषभानावुपस्थिते ॥

स्नाहि कूपोदकेनापि राजन् पापभयाद्दितः ।

तत्रैव गङ्गास्नाने फलविशेषमाह ।

अङ्गिरा उवाच,—

गवामर्द्धप्रसृतानां लज्जं दत्त्वा तु यत् फलम् ।

तत्फलं प्राप्स्यते स्नात्वा राजन् मेषे च जाङ्गवीम् ॥

तथा तत्रैव ब्राह्मणप्रेतसम्वादे ।

मेषभानौ च गङ्गायां कामतो वाऽप्यकामतः ।

मज्जन्न मज्जति कापि नरः संसारसागरम् ॥

सखे स्नातोऽसि तस्यां त्वं तस्यैकाहस्य मे फलम् ।

देहि त्यक्त्वा इमं देहं प्राप्नोमि परमाङ्गतिम् ॥

क्वापि कदापीत्यर्थः । अत्र कामतो वाऽप्यकामत इत्यभिधानात्  
हवित्थ ब्रह्मचर्यं विनापि गङ्गास्नातः, स्नानमात्रस्य फलमिति  
दर्शितम् । वैशाखे केवलैकभक्तेन यत्फलं तदाह स्कन्दपुराणे,—

वैशाखे यः क्षिपेन्मासमेकभक्तेन वै नरः ।

स याति श्रेष्ठतां लोके पूजितो धनवानपि ॥

एतदपि सौरकृत्यम् ।

मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽस्ति मेषगते रवौ ।

मेषस्थे च विधौ तस्य नास्त्येव विषजं भयम् ॥

मेषरवौ मेषस्थे चन्द्रे चतुर्दश्यमावस्था प्रतिपदा भवेत् ।

मत्स्यपुराणे,—

वैशाखे पुष्पलवणं वर्ज्जयित्वा तु गोप्रदः ।

भूत्वा विष्णुपदं कल्प्य स्त्रित्वा राजा भवेदिह ॥

एतदपि सौरवैशाख एव पुष्पलवणमिति द्वन्द्वसमासात् समु-  
दितवर्ज्जनस्य फलं, मासान्ते गोप्रदानं, विष्णुपदं विष्णुपुरम् ।

भविष्ये,— गन्धश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणि च ।

देयानि दिजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥

विष्णुधर्म,—

तोयपानप्रदानेन वैशाखे सुखमश्रुते ।

आतपत्रप्रदानाच्च खर्गलोके मद्दीयते ॥

एतदपि सौरवैशाख एव ।

भारते,—

मौनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भानुमान् ।

स्वर्णभारसमं तोयं पलमेकं युधिष्ठिर ॥

प्रपाः कार्याः प्रयत्नेन सर्वलोकहिताय वै ।

विष्णुपुराणे,—

कृत्तिकाप्रथमे भागे यदा भानुस्तथा शशी ।

विशाखायास्तुतुर्थांशे मुने तिष्ठत्यसंशयम् ॥

तदैव विषुवाख्योऽयं कालः पुण्योऽभिधीयते ।

दत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ॥

शौरवैशाखशेषदिनत्रये रविः कृत्तिकाप्रथमपादे तिष्ठति तन्मध्ये  
विशाखाशेषपादे यदा चन्द्रावस्थानं तदा कृष्णप्रतिपदेवेति नियमः  
तदा विषुवाख्यो योगविशेषः कृतकृत्यता चाचयफललाभात् अचय-  
त्वञ्च कल्पान्तस्थायित्वम् ।

न्योतिषे,—

पञ्चाननस्यौ गुरुभूमिपुत्रौ

मेघे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।

मासाभिधाना करभेण युक्ता

तिथि र्व्यतीपात इतीह योगः ॥

अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त-

दानेन पापं परिहाय सर्वम् ।

सुरत्वमिन्द्रत्वमिलाधिपत्यं

लभेत् पुमान् दानवशात्तदैव ॥

पञ्चाननः सिंहः मासाभिधाना द्वादशीतिथिः । करभं हस्ता-  
नक्षत्र इत्या वृथिवी ।



भविष्ये,—

वैशाखं यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै दिजन्मने ।

ददात्यभुक्त्वा रावेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥

वैशाख व्याप्य अत्यन्तसंयोगे द्वितीया प्रत्यहमित्यर्थः । पूर्णं शीतलजलपूर्णं एतच्च विषुवसंक्रान्तिमारभ्य परसंक्रान्तिपर्यन्तं प्रत्यहं कार्यमिति प्राञ्चः । आचारोऽपि तथाविध एव ।

एवञ्च फलस्य माससाध्यत्वेन कर्मक्यादिविषुवसंक्रान्तावेकत्र संकल्पं कृत्वा,—

ॐ एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः ॥

इति भविष्यपुराणोक्तमन्त्रेण प्रत्यहं सभोज्यं जलपूर्णघटं ब्राह्मणाय भोजनात् प्राक् दद्यात् । मासान्ते दक्षिणा देया । संकल्प-स्त्वैवम् ।

अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथौ रवेर्महाविषुवसंक्रान्ता-वारभ्यापरसंक्रान्तिं यावत् प्रत्यहममुकगोचोऽमुकशर्माहं परम-गतिप्राप्तिकामः सभोज्यं शीतलजलपूर्णं घटं यथागोत्रनाम्ने ब्राह्मणाय दास्ये इति ।

वैशाखे शुक्लपक्षे यवश्राद्धमावश्यकं ब्रीहियवपाकौ चेति नित्यप्रकरणे विष्णुपुराणवचनात् । तत्र “शरदसन्तथोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते” इति परिशिष्टवचनात् वसन्तनियमः ।

तत्रापि,—

पौषे चैवे कृष्णपक्षे नवान्न नाचरेद्गुधः ।

पितरस्तत्र गृह्णन्ति दाता च नरकं व्रजेत् ॥

इति महार्णवप्रकाशलिखितविष्णुधर्मवचनात् वैशाखस्तु सौर  
एव वसन्ते विधानात् ऋतोश्च तस्यैव मासद्वयात्मकत्वमिति प्रागे-  
वोक्तम् । तत्रापि नन्दादिषु निषेधो यथा ज्योतिषे,—

नन्दायां भार्गवदिने चयोदशां त्रिजन्मनि ।

अत्र आर्द्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात् ॥

तिष्ठेषु जन्मतारास्त्वित्यर्थः ।

महाभारते,—

न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेये च भारत ।

प्रौष्ठपदा भाद्रपदादयं आग्नेयं कृत्तिका ।

ज्योतिषे,—

नक्षत्राणि तथैवात्र दारुणोग्राणि वर्जयेत् ।

तथा,—

अश्लेषाद्रा तथा ज्येष्ठा मूला च दारुणः स्मृतः ।

पूर्वाणि त्रीणि भरणी मघा चोग्रगणो भवेत् ॥

अत्र केचित्,—

मेघादौ शक्रवो देया वारिपूर्णा च गर्गरी ।

तथा,—

शक्रून् शर्करया मिश्रान् दद्यात् सजलगर्गरीम् ॥

दद्यादिवचनदर्शनात् विधुवसक्रान्त्यामेव यवपाकश्राद्धमित्याहुः  
तदशुद्धं यवशक्रुषु प्रमाणाभावात् दद्यादिति दानविधानात् आहु-  
प्रमाणाभावाच्च पुरातनयवशक्रुदानेनापि वचनोपपत्तेश्च । किन्तु

विषुवसक्रान्तिः पूर्वोक्तनिषेधाविषयः स्यात् तदा तत्रापि यव-  
पाकश्राद्ध निर्विवादमेव ।

यत्तु,— निरश दिवसं विष्टि व्यतीपातश्च वैष्टितिम् ।

केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्यं पापाहमपि वर्जयेत् ॥

इति वचनात् संक्रान्तौ श्राद्धनिषेध इत्याधुनिकैरुक्तं तदप्यशुद्धं  
विवाहादीनि मङ्गलकर्माण्येवास्य निषेधस्य विषयाः न तु श्राद्ध-  
दानादि, मङ्गलकर्मापक्रमाभिधानात् । अन्यथा पापाहविष्टिव्यती-  
पातादौ युगाद्यादिषु दानश्राद्धादिनिषेधप्रसङ्गः । प्रत्युत संक्रान्त्या-  
दिषु श्राद्धदानादीनां महाफलं श्रूयते ।

यथा देवौपुराणे,—

संक्रान्त्यां यानि दत्तानि हव्यकव्यानि मानवैः ।

तानि तस्य ददात्यर्कः सप्तजन्म पुनः पुनः ॥

विषुवेषु च यज्जप्तं दत्तं भवति चाक्षयम् ।

तथा,—

शतमिन्दुचये दानं सहस्रन्तु दिगचये ।

विषुवे शतसाहस्रमाकामावैश्वनन्तकम् ॥

वैष्टितिव्यतीपातावधिलक्ष्य सूर्यसिद्धान्ते,—

स्नानं दानं जपः श्राद्धमन्त्रानन्तगुणं भवेत् ।

किञ्च केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्यमित्यनुरोधात् शुभलग्न एव  
नवान्नश्राद्धप्रसक्तेः पूर्वोक्तवर्जनप्रसङ्गः ।

न च यवान्नभक्षणार्थं श्राद्धमिति वाच्यं श्राद्धस्य नित्यत्वात् ।

न तावाद्यौ महाराज विना श्राद्धं कथञ्चन ।

इति आहुं विनैव यवानामभक्ष्यत्वाभिधानात् तदन्यदिनेऽपि  
भक्षणसिद्धेस्त्यलं वज्रना । अत्र यद्यद्यत्ततीया प्राशुक्तनिषेधा-  
विषयस्तदा तस्यां यवानां प्राशस्यस्य वक्ष्यमाणत्वात् तत्रैव यवआहुं  
कार्यम् ।

तथा ब्रह्मपुराणे,—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां जनार्दन ।

यवानुत्पादयामास युगञ्चारब्धवान् कृतम् ।

ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिव्यामवतारयत् ॥

तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ।

आहुया क्रियते तत्र तदानन्त्याय कल्प्यते ॥

सिन्धोस्तोरे विशेषेण सर्वमचयमुच्यते ॥

होमश्चायं विष्णुमुद्दिश्यैव अर्चासाहचर्यात् । सिन्धोः समुद्रस्य ।

अत्र आहुमचयनिमित्तं पृथगिति कश्चित् तन्मन्दं आहुभेदे विधि-  
गौरवापत्तेः प्राप्तआहुस्यैव गुणफलविधित्वं न्याय्यं प्राप्तिस्तु यवपाक-  
निमित्तेन युगादित्वेन चेति ।

यथा ब्रह्मपुराणे,—

युगाद्येषु युगान्तेषु आहुमचयमुच्यते ।

विष्णुपुराणे,—

वैशाखमासस्य तु या तृतीया

नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे

चथोदशी पञ्चदशी च माघे ॥

एता युगाद्याः कथिताः पुराणै-  
 रनन्तपुण्यास्त्रिययश्चतस्रः ।  
 पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्र  
 दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ॥  
 श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं  
 रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ॥

अत्र पञ्चदशीसामान्यश्रुतेर्विशेषाकाङ्क्षायां तमिस्रपद्मानुषङ्गस्यौ-  
 चित्यान्माघे पञ्चदशी अभावस्या न तु पौर्णमासी अन्यथा चकार-  
 वैयर्थ्यात् ।

न च,—

वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।  
 कार्तिके शुक्लपक्षे तु चेता च नवमेऽहनि ॥  
 तथा भाद्रपदे कृष्णे त्रयोदश्याञ्च द्वापरम् ।  
 माघे तु पौर्णमास्यान्तु घोरं कलियुगं स्मृतम् ॥

इति ब्रह्मपुराणे विरोधान्न तमिस्रपक्ष<sup>१</sup> इति वाच्यम् । अग्नि-  
 पुराणादिवचनैकवाक्यतया अनुषङ्गस्यैव न्याय्यत्वात् ।

यथाग्निपुराणे,—

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात् कृतम् ।  
 चेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम् ॥  
 दर्भे तु माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके ।

कृष्णे कलिर्दिसप्ताथ ज्ञेया मन्वन्तरादयः ॥

निरगात् निःशेषेण प्राप्तमित्यर्थः ।

तथा वायुपुराणे,—

दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम् ।

कलिः कृष्णत्रयोदश्यां नभस्ये मासि निर्गतः ॥

तथा ब्राह्मे,—

त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रक्षयेऽहनीति पूर्वमुक्तमेव ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

दे शक्ते दे तथा कृष्णे युगाद्ये परिकीर्त्तिते ।

शक्ते पूर्वाह्निके ज्ञेये कृष्णे चैवापराह्निके ॥

ब्रह्मपुराणवचनन्तु पाश्चात्याः माघे च पञ्चदश्यान्विति पठन्ति ।

अन्ये तु कल्पभेदेन व्यवस्थामाहुः । तन्मतेऽपि विष्णुपुराणे चकारस्य वैयर्थ्यभियाऽनुषङ्गस्यैवावश्यकत्वात् वराहकल्पवृत्तान्तमधि-  
कृत्य पराशर इत्यग्निपुराणात् विष्णुपुराणीयकल्पस्यैव<sup>१</sup> अस्मिन्  
वराहकल्पेऽनुष्ठानस्य न्याय्यत्वात् अनेकमुनिसम्मतत्वाच्चाभावस्यैव  
युक्तेति । अतएव माघभाद्रमासौ पौर्णमास्यन्तावेव सर्वत्र तु तथैव  
तिथिकृत्याभिधानात् । युगाद्याश्चाद्वन्तु पिण्डरहितमेव कार्य्यमिति  
संक्रान्तिप्रकरणे प्रागुक्तमस्ति ।

अत्र यदि तदहरेव यवपाकनिमित्तं आहुं क्रियते तदा तस्य  
युगाद्याश्चाद्वस्य च न तन्तेनानुष्ठानं सपिण्डापिण्डयोर्वैषम्यात्  
किन्तु नित्येन साङ्गेन यवश्राद्धेन हीनाहुं युगाद्याश्चाद्वमनुषङ्गेन

गतार्थं अतिशयफलार्थिभिस्तु पृथगपौष्क्या क्रियते । तत्रोभयदिने  
पूर्वाह्णे द्वितीयालाभे ।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।

रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥

इति देवीपुराणात् परदिने उदयगामिन्यामेव युगाद्याविहित  
क्षानादिदैवकृत्य जन्मतिथौ वर्षवृद्धिविहितमाचवत्, अक्षयद्वितीया-  
विहितन्तु वक्ष्यमाणदिष्णुपूजावारिदानादि युग्मादरात् कार्यं युगा-  
द्यालेनाविधानात् ।

आहुन्तु यस्मिन् दिने पूर्वाह्णे आहुयोग्यद्वितीया लभ्यते तत्रैव  
निर्विवादम् ।

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे आहुं कुर्याद्विचक्षणः ।

क्षणापक्षापराह्णे तु रौहिणन्तु न लङ्घयेत् ॥

इति वायुपुराणवचनात् उभयदिने पूर्वाह्णे आहुयोग्यकाललाभे  
परदिन एवोदयगामिन्यां शुक्लपक्षे तिथिर्याह्या यस्यामभ्युदितो  
रविरिति वचनात् ।

विष्णु, —वैशाखे शुक्लद्वितीयायामुपोषितोऽक्षतैर्वासुदेवमभ्यर्च्य तानेव  
ऊत्वा दत्वा च सर्वपापेभ्यः पूतो भवति । यच्च तस्मिन्नहनि  
प्रयच्छति तदक्षयमाप्नोति ।

उपोषितो द्वितीयायामित्यर्थात् अक्षतैर्यवैः ।

अक्षतान्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ।

भृष्टान्तु व्रीहयो लाजासूर्णितास्ते च शक्ताः ॥

इत्यभिधानकोषात् ।

दुर्गां प्रकृत्य देवीपुराणे,—

तृतीयायान्तु वैशाखे रोहिण्युच्चैः प्रपूज्य च ।

उदकुम्भप्रदानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥

तेन रोहिणीयुक्तायामच्यतृतीयायां दुर्गापूजापूर्वककुम्भदानस्य  
ब्रह्मलोकमहितत्वं फलमित्यर्थः । °

तथा,—

इत्येषा कथिता राजन् तृतीया तिथिरुत्तमा ।

यामुपोष्य नरो भक्त्या वृद्धिमृद्ध्यां श्रियं लभेत् ॥

विष्णुधर्मे,—

भक्ष्यभोज्यसमायुक्तां बर्द्धनीं यः प्रयच्छति ।

तृतीयायान्तु वैशाखे ब्रह्मलोके महीयते ॥

बर्द्धनी घटीत्यर्थाञ्जलपूर्णा । भक्ष्यं मोदकादि भोज्यं शक्तुकादि ।

भविष्ये,—

वारिदानं प्रशस्तं स्थान्मोदकानाञ्च वै भवेत् ।

वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीयां चन्दनस्य च ॥

वारिणा तुष्यते देवी मोदकैर्भव एव च ।

दानान्तु चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संग्रहः ॥

यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा वज्र ।

तत्सर्वमच्यं यस्मात्तेनासावचया स्मृता ॥

तृतीयामिति कालकर्म, चन्दनस्य दानं प्रशस्तमित्यनुषङ्गः ।

कञ्जजो ब्रह्मा । एतेषु विष्णुभविष्यादिवचनेषु कृतकर्मणामच्यत्वेन  
तृतीयामात्रस्याच्यश्रुतेर्नञ्चविशेषयोगः प्राशस्त्यार्थ एव ।



यथा,—

वैशाखे मासि राजेन्द्र शुक्लपक्षे तृतीयिका ।  
अथवा सा तिथिः प्रोक्ता कृत्तिकारोहिणीयुता ॥

यमः,—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तिथौ सक्तम् ।  
गङ्गातोषे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

नरसिंहपुराणे,—

तथाक्षयतृतीयायां शिष्यं नाध्यापयेद् भुवम् ।  
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यायाञ्च विवर्जयेत् ॥  
अथापनं तथा त्यक्तः ? स्नानकाले च वर्जयेत् ।

ब्रह्मपुराणे,—

वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जाङ्गवी जङ्गुना पुरा ।  
क्रोधात् पीता पुनः त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ।  
तस्मात्तां पूजयेत्तत्र सर्वकामफलेच्छया ॥

नारदीये,—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु द्वादशी वैष्णवी तिथिः ।  
तस्यां शीतलतोयेन स्नापयेत् केशवं शुचिः ॥

द्वयमेव पिपीतकद्वादशी ।

अत्र तिथिद्वये युग्मादरात् पूर्वदिन एवैतत् व्रतं कार्यम् एत-  
च्चोपवासमन्तरेणापि कार्यम् अन्यथा द्वादशीक्षये व्रतलोपापत्तेः,  
उपवासे तु फलातिशयः ।

अथ पिपीतकौत्रतविधिः ।

स्नातः शुचिराचान्तो निवर्त्तितनित्यकृत्यः स्वस्ति वाच्य सङ्कल्पं  
 कुर्यात् । ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा चुत्पिपासाजनकयम-  
 लोकगतिपरित्यागपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामः श्रीविष्णुपूजापूर्वकप्र-  
 त्यब्दयथाक्रमलवणसशर्करदधिमोदकतण्डुलसमेतवस्त्राच्छादितमा-  
 ल्यालङ्कृतसुवासितशीतलजलपूरितब्राह्मणसम्प्रदानकचतुरष्टदादशषो-  
 ढशकुम्भदानात्मकचतुर्वर्षमाध्यपिपीतकदादशीव्रतमहं करिष्ये । गन्ध-  
 पुष्पाभ्यां करौ सम्राज्यं अस्त्राय फड़िति तालत्रयदिग्वन्धनञ्च कृत्वा  
 भूतशुद्धिप्राणायाममातृकान्यासान् विधाय कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा भगवते मध्यमाभ्यां ,  
 वषट् वासुदेवाय अनामिकाभ्यां ॐ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय  
 कनिष्ठाभ्यां फट् । ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते  
 शिखायै वषट्, वासुदेवाय कवचाय ॐ ॐ नमो भगवते वासु-  
 देवाय अस्त्राय फड़िति तालत्रयं दिग्वन्धनञ्च कृत्वा भगवन्तं  
 चिन्तयेत् ।

विष्णुं शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदा  
 मन्मोजं दधतं सिताब्जनिलय कान्त्या जगन्मोहनम् ।

आबद्धाङ्गदहारकुण्डलमहामौलिं स्फुरत्कङ्कणं  
 श्रीवत्साङ्गमुदारकौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥

ध्यात्वा मानसैरुपचारैरभ्यर्च्य सोऽहमिति विभाव्यात्मशिरशि  
 पुष्पं दत्वा पूर्ववदर्थस्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यञ्च विधाय पाद्या-  
 चमनीयपात्रञ्च स्थाप्यम् ।

ततो घटे गणेशं पूजयेत्,—

सिन्दूराभ त्रिनेत्र पृथुतरजठर हस्तपद्मैर्दधान  
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युक्करविलसद्बीजपूराभिरामम् ।  
वालेन्दुद्योतिमोलि करिपतिवदन दानपूराद्रगण्ड  
भोगौन्द्रावद्धभूष भजत गणपति रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥

इति ध्यात्वा मनसा सम्यूज्य ॐ गणानान्त्वा गणपतिमिति  
मन्त्रेण घटे आवाह्य ग गणपतये नम इति पाद्यादिभिः सम्यूज्य-  
स्तुत्वा प्रणमेत् ।

एकदन्त महाकाय लम्बोदरगजाननम् ।

विघ्ननाशकर देव हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥

ततः शालग्रामे घटे वा विष्णु पूजयेत् । पूर्ववत् ध्यात्वा  
अष्टदिक्षु,— विमलायै उत्कर्षिण्यै ज्ञानायै क्रियायै योगायै प्रभैय  
सत्यायै ईशानायै । मध्ये अनुग्रहायै नमः । ॐ नमो भगवते  
विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठा-  
त्मने नम इति पुष्पाञ्जलिना आसनं दत्वा पूर्ववद्वात्वा ।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चचुराततम् ।

इति मन्त्रेणावाह्य द्वादशाक्षरमन्त्रेण मूर्तिं सङ्कल्प्य भगवन्  
श्रीवासुदेव इहागच्छागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितो भव  
सन्निरुद्धो भव आवाहनादिसुद्राः प्रदर्श्य द्वादशाक्षरमन्त्रेण  
पुष्पाञ्जलि दत्वा तेनैव मन्त्रेण पाद्याचमनीयार्थमधुपर्कपुनराच-  
मनीयानि दत्वा जलपूर्णसुग्रीतल सुवासित स्नानार्थं भगवते

दत्त्वा पुनराचमनवस्त्रयज्ञोपवीतालङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूल-  
चन्दनादीनि दत्त्वा शङ्खघण्टादिभिस्तोषयेत् ।

चतुर्दिक्षु,—

वासुदेवाय सङ्कर्षणाय प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय,

आग्नेयादिकोणेषु । शान्त्यै त्रियै सरस्वत्यै रत्यै नमः ।

ततो द्वादशकेशरान् प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत् ।

केशवाय नारायणाय माधवाय गोविन्दाय विष्णवे मधुसूदनाय  
त्रिविक्रमाय वामनाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामो-  
दराय ।

दिक्षु इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः वज्राद्यायुधेभ्यो नमः ।

ततो द्वादशाक्षरमन्त्रं किञ्चिज्जप्त्वा सुत्वा प्रणम्य कुम्भानुसृजेत् ।  
सुवासितसुशीतलजलपूर्णकुम्भान् एतत्सम्प्रदानब्राह्मणान् वरुणञ्च  
समभ्यर्च्य ॐ अद्येत्यादि असुकगोत्रोऽसुकशर्माहं बुत्पिपासाजनक-  
यमलोकगतिपरित्यागपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकाम एतान् वस्ताच्छा-  
दितान् चन्दनचर्चितान् सुवासितसुशीतलजलपूरितान् सल्लवणान्  
चतुरः कुम्भान् यथागोत्रनामभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं सम्प्रददे । कृतैत-  
ज्जलपूर्णकुम्भदानकर्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणां काञ्चनं तन्मूल्यं वा  
सम्प्रददे । एवं ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा यथाशक्ति भोज्यान्यपि दद्यात् ।  
एवं द्वितीयेऽब्देऽष्टौ कुम्भान् शर्करादधिसंयुतान् तृतीये द्वादशकु-  
म्भान् मोदकयुक्तान् चतुर्थे षोडशकुम्भान् तण्डुलयुक्तानिति ।

अथ कथा ।

ब्रह्मपुराणे शतानीक उवाच,—

जलदानस्य माहात्म्यं यत्त्वया कथितं पुरा ।  
तदहं श्रोतुमिच्छामि पिपीतककथां शुभाम् ॥  
पुरा केन कृता कस्मात् द्वादशी सा पिपीतकी ।  
किम्वा विधानं देवर्षे कथयस्व विशेषतः ॥

नारद उवाच,—

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि द्वादशीं तां पिपीतकीम् ।  
यां कृत्वा यमलोकान्तु स गतो वैष्णवं पुरम् ॥  
पिपीतक इति ख्यातो ब्राह्मणः सशितव्रतः ।  
चिरं तस्मा तपोऽरण्ये काले मृत्युमुपेयिवान् ॥  
यमदूतैः समागत्य नीयमानोऽथ स दिजः ।  
ददृशे वज्रलान् नारी नरान् निरयसंस्थितान् ॥  
असिपत्राद्यनेकेषु कुम्भीपाकेषु च स्थितान् ।  
कृतार्त्तरावांस्तान् दृष्ट्वा विषादमगमद्विजः ॥  
क्षुत्पिपासाकुलो भूत्वा यमदूतवशङ्गतः ।  
बहून् वस्त्रावृतान् कुम्भान् दददर्शातिमनोहरान् ॥  
प्रासादे स्थापितांस्तत्र पुष्पाद्यैरुपशोभितान् ।  
कचित् प्रधावमानांश्च किङ्करान् यमशासनैः ॥  
नीयमानांस्ततः प्रेतान् वध्यमानान् स्वकर्म्मभिः ।  
दृष्ट्वा भीतिममायुक्तसृण्वया परिपौडितः ॥  
सन्दह्यमानो राजेन्द्र ययाचे किङ्करान् जलम् ।  
वज्रशः सेव्यमानैस्तु किङ्करैरभिताडितः ॥  
मुहूर्तं तत्र संस्थाप्य नीयते किङ्करैः पुनः ।

नीयमानोऽथ ददृशे वज्रशोभं क्षमोत्तमम् ॥  
 सच्छाय शीतलं रत्नं पुष्पं पिप्पलसंज्ञकम् ।  
 लखन्ते वज्रशस्त्रं कुम्भाः स्रग्दामबन्धनाः ॥  
 शीततोयेन सम्पूर्णश्लेष्मादिताः शुक्रावाममा ।  
 रचन्ति वटवस्तांस्तु किङ्कराः शस्त्रपाणयः ॥  
 तोयदर्शनमात्रेण साक्षादः स द्विजोऽभवत् ।  
 विनयावनतो भूत्वा यथाचे किङ्करान् जलम् ॥  
 अपानभावाद्देहस्य विनाशो जायते मम ।  
 तस्मात्तोयप्रदानेन प्राणान् रचन्तु माधवः ॥  
 श्रुत्वा वाक्यन्तु विप्रस्य तमुचुर्यमकिङ्कराः ।  
 विष्णुव्रतमकृत्वा तु तोयनेतत् सुदर्शभम् ॥  
 याचमानस्ततोच यमदूतैः स ताडितः ।  
 श्रत्यन्तार्त्तं तु विप्रेन्द्रो नीतो वेवन्तान्तिकम् ॥  
 कृतार्त्तरावं तं दृष्ट्वा यमः प्रोवाच मादरम्<sup>१</sup> ।  
 मा रोदीर्विप्र तद् ब्रुहि का ते पीडामिं चेतमि ॥  
 स यथाचेऽथ ततोचं दृष्ट्वा व्याकुलचेतनः<sup>२</sup> ।  
 श्रुत्वा वाक्यन्तु विप्रस्य तमुवाचाय धर्मराट् ॥  
 त्वया तन्न ह्यन पूर्वं येनेतदभ्यते जलम् ।  
 यत्कृत्वा सुकृती मर्त्या त्रिष्णुनोक गतः पुरा ॥

वैष्णवस्त्वञ्च विप्रेन्द्र दृषया नैव पीड्यसे ।

तत्तपो न कृतं पूर्वं येनैतत्प्रभ्यते जलम् ॥

विप्र उवाच,—

उच्यतां मे व्रत देव येन प्राप्नोमि तज्जलम् ।

यम उवाच,—

वैष्णव तद्भ्रत विप्र कुरु गत्वा निजास्तयम् ।

विधानं शृणु धर्मज्ञ व्रतस्यास्य विशेषतः ॥

वैशाखे शुक्लपक्षस्य द्वादशी वैष्णवी तिथिः ।

तस्यां सुगीतलतोयैः स्नापयित्वा तु केशवम् ॥

पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च धूपदीपैर्विधानतः ।

नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैस्ताम्बूलैः शुक्लवाससा ।

जपित्वा वैष्णवं मन्त्रं दण्डवत् प्रणिपत्य च ॥

दद्याद्विप्रेभ्यः सम्पूज्य कुम्भांस्तोयेन पूरितान् ।

प्रथमे चतुरः कुम्भान् दद्यात् लवणसंयुतान् ॥

मास्यदानसमायुक्तान् सुसिक्त(१)जलपूरितान् ।

शुक्लवस्त्रावृतमुखानुपवीतसमन्वितान् ॥

द्वितीयेऽष्टौ तथा कुम्भान् शर्करादधिसंयुतान् ।

तृतीये द्वादशकुम्भान् तथा मोदकसंयुतान् ॥

चतुर्थे षोडशकुम्भान् तण्डुलैश्च समन्वितान् ।

दद्यात् सम्पूज्य विप्रेन्द्र द्विजातिभ्यो निजाश्रमे ॥

दक्षिणां काञ्चन दद्यात् कुर्याद्वाह्मणतोषणम् ।

अनेन विधिना कृत्वा प्रयाति वैष्णव पदम् ॥

यः करोति व्रतं चैतन्न भवेत् स दृषाकुलः ।  
 यमवाक्यं समाकर्ण्य गत्वा सोऽथ निजाश्रमम् ॥  
 चकार द्वादशीं विष्णोरगमद्वैणवं पुरम् ।  
 पिपौतकस्य नाम्ना तु विख्याता वैष्णवी तिथिः ॥  
 यः कुर्याच्च नरो भक्त्या नारी वा व्रतमुत्तमम् ।  
 प्रयाति परमं स्थानं वासुदेवस्य निश्चितम् ॥  
 ततो देव प्रणम्य समाप्य विसृज्य दक्षिणं दत्वा ब्राह्मणैः  
 सह पारणं कुर्यात् । इति पिपौतकद्वादशीव्रतविधिः ॥ • ॥

महाभारते,—

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु तिला देया द्विजातिषु ।  
 तिला भक्षयितव्याश्च तथैवाल्लभन तिलैः ॥  
 कार्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे ।  
 आलभनमुदत्तनम् ।

ब्रह्मपुराणे, -

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु सृष्टाः कमलयोनिना ।  
 रुष्णा गौराश्च तिलामृतप्रये सर्वदेहिनाम् ॥  
 तस्मात् कार्यं तिलैः स्नानं कर्त्तव्यं तिलतर्पणम् ।  
 तिलानग्नौ च जुहुयाद्विष्णवे तान् निवेदयेत् ॥  
 तिलतैलेन देयाश्च दीपा देवेभ्य एव हि ।  
 तिलैः समधुभिर्युक्तं ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम् ॥  
 मन्त्रं जपेच्च पौराणं पारम्पर्यक्रमगतम् ।  
 तिलास्तु सोमदैवत्या सुरैः सृष्टास्तु गोमये ॥



स्वर्गप्रदाः स्वतन्त्राश्च ते मां रचन्तु नित्यशः ।  
 दातव्या दक्षिणास्तेभ्यस्तिलैर्मधुयुतैः पुनः ॥  
 एवं कृते स मुक्तः स्यात् पापैर्जन्मशतोद्भवैः ।  
 मन्त्रजपस्तु ब्राह्मणभोजनसमये । मन्त्रमाह तिलास्त्विति ॥

यमः,—

वैशाखां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान् पञ्च सप्त वा ।  
 चौद्रयुक्तैस्तिलैः कृष्णैराशयेद्यदि वेतरैः ॥  
 प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि राजते ।  
 यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

इतरैः शुक्लैः धर्मराजः प्रीयतां श्रीविष्णुः प्रीयतामिति  
 बोक्त्वा पञ्च सप्त ब्राह्मणान् कृष्णैः शुक्लैर्वा तिलैर्मधुमिश्रैर्भोजयेत् ।  
 वैशाखीमुपक्रम्य आवासः—

सुवर्णतिलयुक्तैश्च ब्राह्मणान् पञ्च सप्त वा ।  
 तर्पयेद्रत्नपातैस्तु ब्रह्मदत्तां व्यपोहति ॥

विष्णुधर्मः,—

मोदकानुदकुम्भांश्च दत्त्वाऽन्नसहिताक्षरः ।  
 वैशाखे पौर्णमास्यान्तु ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 धान्यमन्नं तथा शाकं हिरण्यं गां तिलानपि ।  
 दानं श्रेयस्करञ्चात्र स्त्रीणाञ्च पुरुषस्य च ॥  
 अथ ज्यैष्ठ्यकृत्यम् ।

विष्णुधर्मः,—

वृषसंक्रमणे दानं गवां पुष्टं महाफलम् ।

वामनपुराणे,—

उदकुम्भश्च धेतुश्च तालवृन्तं सचन्दनम् ।

त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सह ॥

ज्यैष्ठे मासि विशेषेण यदिच्छेद्वैष्णवं पदम् ।

महाभारते,—

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् ।

स दुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥

कृत्रं चोपानहौ दत्वा ज्यैष्ठे मासि द्विजोत्तमाः ।

अचयं फलमाप्नोति स्वर्गलोकञ्च गच्छति ॥

कृचादिदानं शौरज्यैष्ठकृत्यं निदाघप्रक्रमात् ।

भविष्ये,—

ज्यैष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ कृष्टाष्टम्यां त्रिलोचनम् ।

यः पूजयति देवेशमीशलोकं स गच्छति ॥

अत्र च यावन्ति तिथिकृत्यानि तानि सर्वाणि कृष्णप्रतिपदादि-  
पौर्णमास्यन्तमासव्यवस्थया कार्याणि ब्रह्मपुराणादौ तथैव प्रक्रमात् ।

अथ सावित्रीचतुर्दशी ।

राजमार्त्तण्डे,—

ज्यैष्ठेऽसितचतुर्दश्यां सावित्रीव्रतमुत्तमम् ।

अवैधव्याय कुर्वन्ति स्त्रियः श्रद्धासमन्विताः ॥

ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः ।

वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः ॥

एतच्च व्रतं सन्ध्यायामारभ्य प्रदोषे कर्त्तव्यम् ।

यथा भविष्ये,—

ज्यैष्ठ्यक्षणाचतुर्दश्यामुपवासपरा सती ।

सन्ध्यायामर्चयेद्देवीं सावित्रीं देवमातरम् ॥

सत्यवन्त च सावित्रीं वटमूले तथा यमम् ।

एवमेतद्ब्रतं कृत्वा वर्षाणि च चतुर्दश ॥

अवैधव्यमवाप्नोति पुत्रांश्च चिरजीविनः ।

अतएव वचनात् गायत्रीदैवतमिदं व्रतं सावित्रीपूजानन्तरं  
पृथक् सत्यवत्सावित्र्योः पूजाविधानात् तस्मादत्र यस्मिन् दिने  
सन्ध्याकाले चतुर्दशी लभ्यते तत्रैव व्रतम् ।

एतन्मूलकमेव नारदवचनम्,—

दिवाभागे त्रयोदश्यां यदा चतुर्दशी भवेत् ।

तत्र पूज्या महासाध्वी देवी सत्यवता सह ॥

उभयदिने तु सन्ध्यायां चतुर्दश्या लाभे अलाभे वा परदिन  
एव चतुर्दश्यामारभ्यामावास्यायां समाप्यम् ।

यथा स्कन्दपुराणे,—

भूतविद्धाप्यमावास्या न कर्त्तव्या कदाचन ।

वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतन्तु शिखिवाहन ॥

लिङ्गपुराणे,—

शिवा घोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी ।

कुङ्कुयुक्तैव कर्त्तव्या कुक्कामेव हि पारणम् ॥

पारणमपि फलेनैव कार्यम् ।

पराशरः,—

सावित्रीमर्चयित्वा तु फलाहारा परेऽहनि ।

ततश्चाविधवा नारी वित्तभोगान् लभेत सः ॥

यत्तु संवत्सरप्रदीपे भविष्योत्तरनाम्ना वचनं लिखित्वा त्रयो-  
दशीमारभ्योपवासत्रयममावास्यायाञ्च व्रतं कार्यमित्युक्तं । तच्चिन्त्यं  
पूर्वोक्तानेकवचनविरोधात्, भविष्योत्तरवचनन्तु यदि साकरं स्यात्  
तदा सावित्रीप्रतिमादानविषयं न तु व्रतविषयं तथैवोपसंहारात् ।  
उपवासत्रयमपि तत्रैव । यथा भविष्योत्तरे,—

पञ्चदश्यां तथा ज्यैष्ठे वटमूले महासती ।

त्रिरात्रोपोषिता नारी विधानेन प्रपूजयेत् ॥

अशक्त्या तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया ।

अथाचितं चतुर्दश्याममावस्यामुपोषणम् ॥

तत्र वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ।

सावित्रीप्रतिमां हत्वा सर्ववयवशोभिनीम् ॥

सौवर्णीं राजतीं वापि यथाशक्तिविनिर्भिताम् ।

पूजयित्वा विधानेन प्रभाते विमले शुभे ॥

प्रतिमां ब्राह्मणे दत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।

एवं दत्वा द्विजेन्द्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिर ॥

अवैधव्यमवाप्नोति सावित्रीतुल्यसन्ततिः ।

अथाचारात् सावित्रीव्रतविधिर्लिख्यते ।

वटमूले गोमयेनोपलिप्ते प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य  
सायंसन्ध्यायां स्वस्ति वाच्यं सङ्कल्पं कुर्यात् । ॐ अद्येत्यादि अमु-

कगोत्रा अमुकदेवी अवैधव्यकामा श्रीसावित्रीपूजापूर्वकसत्यवत्  
सावित्रीयमपूजासावित्युपाख्यानश्रवणात्मकचतुर्दशवर्षसमाप्य सावि-  
त्रीचतुर्दशीव्रतमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य भूतशुद्धिं कृत्वा सामान्यार्थं  
विधाय वटमूले घटं स्थापयित्वा तत्र गणेशं यथाविधि सम्यज्य  
कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

सां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः शीं तर्जणीभ्यां स्वाहा सू मध्यमाभ्यां  
वषट् सैं अनामिकाभ्यां ह्रं सौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् सः करतलपृष्ठाभ्यां  
फट् । सां हृदयाय नमः शीं गिरसे स्वाहा सूं शिखायै वषट्  
सैं कवचाय ह्रं सौं नेत्रत्रयाय वौषट् सः अस्त्राय फट् इति ताल-  
त्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा सावित्रीं ध्यायेत् ।

सुक्ताविद्रुमहेममौनशशभृच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैः ।

सुक्तासिन्धुनिवद्धरत्नमुकुटां पूर्णेन्दुकोटिप्रभाम् ।

सावित्रीं वरदाङ्गुशाभयकरां पाश कपालं गुण

शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैरभ्यर्च्यार्घ्यस्थापनं कृत्वा पुनर्देवीं  
ध्यात्वा घटे आवाहयेत् ।

भगवति सावित्रि देवि इहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ सन्निहिता  
भव सन्निरुद्धा भव इत्यावाहन्यादिकाः पञ्च मुद्राः प्रदर्श्य सावित्यै  
नम इति मन्त्रेण पाद्यार्घ्याचमनीयमधुपर्काचमनपुनराचमनस्नानी-  
यवस्नातङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सम्यज्य प्रणमेत् ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसन्ध्य त्वामुपासते ।

ब्रह्मर्षयो मरीच्याद्या स्तथा देवर्षयोऽपि च ॥

त्रयीरूपासि देवि त्वं रजःसत्वतमोमयी ।

विष्णुब्रह्मेशरूपाऽसि वेदमातर्नमोऽस्तु ते ॥

ततस्तत्रैव सावित्रीं सत्यवन्तञ्चावाह्य सत्यवत्सावित्रीभ्यां नम  
इत्यादिभिरुपचारैर्विशेषतोऽर्चयेत् । ततो यममावाह्य यमाय नम  
इति पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य प्रणमेत् ।

यमस्त्वं पितृलोकानां शास्ता वै कर्मणा नृणाम् ।

फलदः सर्वभूतानां यमोऽसि वरदो भव ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततो वटवृचं पुष्पाञ्जलिना पूजयेत् ।

वटोऽसि वृचनाथस्त्वं ख्यातो हरिहरात्मकः ।

भवतु त्वत्प्रसादेन व्रतं मे सफलं विभो ॥

वटवृक्षाय नमः । ततः सावित्र्युपाख्यानं शृणुयात् ।

भविष्यपुराणे सुमन्तुरुवाच,—

वनवासगतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्द्रौपद्या च समन्वितः ॥

मार्कण्डेयं महात्मानं मुनिं धर्मश्रुतां वरम् ।

पप्रच्छ राजशार्ङ्गलो विनयावनतः स्थितः ॥

युधिष्ठिर उवाच,—

भगवन् चिरजीवी त्वं दृष्टलोकपरापरः ।

दृष्टपूर्वा त्वया काचित् कचिदेव पतिव्रता ॥

स्वयं प्राप्य महद्दुःखं भर्तुरुद्धारकारिणी ।

यथेयं द्रौपदी कृष्णातनुः प्रंसितुमर्हति ॥

एवमुक्तो नृपेणाय मार्कण्डेयो महातपाः ।

कथां स कथयामास धर्मराजाय धीमते ॥

मार्कण्डेय उवाच,—

मद्रदेशे महाराज बभूवाश्वपतिर्नृपः ।

ब्रह्मण्यः शीलसम्यन्नः प्रजापालनतत्परः ॥

अभूत्तस्य महादेवी मालवी नाम सुन्दरी ।

पतिव्रता महाभागा शीलाचारसमन्विता ॥

अनपत्यः स राजर्षिः सावित्रीं समपूजयत् ।

षष्ठे षष्ठे तदा काले बभूव मितभोजनः ॥

एतेन नियमेनासन् वर्षाण्यष्टादशैव तु ।

सावित्र्या ऊतवानग्निं पुत्रकामो महामनाः ॥

अथाग्निहोत्रे सावित्रीं तस्य प्रत्यक्षतां गता ।

वरं ददौ नृपश्रेष्ठ कन्या तव भविष्यति ॥

वशस्थितिकरौ भूयो न वक्तव्यं त्वया वचः ।

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी सावित्री नृपसत्तम ॥

अथ सा मालवी राज्ञो महिष्यश्वपतेर्नृपः ।

असूत कन्यां सयुक्तां लक्ष्मणैर्लोकसुन्दरीम् ॥

सावित्र्या वरदानेन यस्माज्जातेयमुत्तमा ।

सावित्रीति ततस्तस्या नाम चक्रे पिता नृपः ॥

अथ सा राजभवने वरुधे लक्ष्मणान्विता ।

अतीतशैशवा राजन् बभूवाहुतदर्शना ॥

न च तां वरयामास कश्चिदागत्य भूपतिः<sup>१</sup> ।

राजा च चिन्तयाविष्टो दुहितुर्वरकारणात् ॥  
 अथ सा पितुराज्ञातो रथमारुह्य शोभनम् ।  
 ययौ तपोवनं रम्यं वृद्धामात्यैरधिष्ठिता ॥  
 ततो वनानि रम्याणि सा वभ्राम मनोरमा ।  
 नानातपस्विनस्तत्र ददर्श विपुल्लेखणा ॥  
 वानप्रस्थान् वज्रविधान् राजर्षीण् संश्रितव्रतान् ।  
 तत्र साश्वपतेः पुत्रं द्युमत्सेनस्य भूपतेः ॥  
 मनसा वरयामास सत्यवन्तं स्वकं पतिम् ।  
 अथाजगाम नगरं सा पितुः पित्रनन्दिनी ॥  
 तस्मिन् काले सोऽश्वपतिर्नारदेन समागतः ।  
 अथ तं परिपप्रच्छ देवर्षिर्नारदो नृपम् ॥  
 केयं कुत्र गता वेति तमथ प्रावदन्नृपः ।

राजोवाच,—

देवर्षे मम कन्येयं सावित्री नामतः श्रुता ।  
 ममैवानुज्ञया याता तपोवनमनिन्दिता ॥  
 स्वयम्बरं वरयितुं तदस्याः श्रूयतां वरः ।  
 एतया योऽभिलषितः स कः कीदृग्गुणाश्रयः ॥  
 अथ सा नारदेनोक्ता मनसाभिमतं वरम् ।  
 कथयामास मुनये पित्रे च विनयान्विता ॥

सावित्र्युवाच,—

आसीच्छास्त्रेषु धर्मात्मा द्युमत्सेनाङ्गयो नृपः ।  
 स समीपगतै राजा भूमिपालैः पराजितः ॥



वनं जगामानुगतः पत्न्या वालसुतेन च ।  
तपस्यभिरत्तस्याथ तस्य पुत्रो गुणाकरः ॥  
सत्यवान् नाम देवर्षे मनसा स वृतो मया ।  
तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्यं नृपः प्रोवाच नारदम् ॥

राजोवाच,—

भगवन् के गुणास्तव के वा दोषा भवन्ति हि ।  
एतत् सर्वमग्रेषेण कथयस्व मुने मम ॥

नारद उवाच,—

महात्मा सत्यवान् वाग्यौ शीलवान् प्रियदर्शनः ।  
मातापितृहिते युक्तः पण्डितः शूरसम्मतः ॥  
आचारयुक्तः सुमनाः सत्यवादी दृढव्रतः ।  
एते चान्ये च बहवो गुणाः सत्यवति प्रभो ॥  
दोषस्त्रैको महान्स्त्वस्य गुणानाक्रम्य तिष्ठति ।  
अथ प्रभृति राजेन्द्र वर्षमेकं स सत्यवान् ॥  
जीविष्यति ततस्त्रायुस्तस्य ज्ञानिर्भविष्यति ।  
न त्सावित्र्या न विहितं भद्रमेतत् कथञ्चन ॥  
अन्यं वरं वरयतु सावित्री नृपतेः सुतम् ।  
एतच्छ्रुत्वाऽथ सावित्री प्रत्युवाच शुभानना ॥  
सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।  
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥  
दीर्घायुरथवात्प्यायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।  
सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ।

मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते ॥

क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मनसस्ततः ।

नारद उवाच,—

स्थिरा बुद्धिर्नरश्रेष्ठ सावित्या दुहितुस्तव ।

नैषा वारयितुं शक्या धर्मादस्मात् कथञ्चन ॥

नान्यस्मिन् पुरुषे सन्ति ये सत्यवति वै गुणाः ।

प्रदानमेव तस्मान्मे रोचते दुहितुस्तव ॥

मार्कण्डेय उवाच,—

एवमुक्त्वा खसुत्पत्य नारदस्त्रिदिवङ्गतः ।

राजापि दुहितुः सज्जं वैवाहिकमकारयत् ॥

ततोऽस्या निश्चयं बुद्ध्या स राजाऽश्वपतिस्तदा ।

रथमारोप्य तां कन्यां प्रययौ सपुरोहितः ॥

तपोवनं मुनिजनैरावृतं कृतसम्भृतिः ।

अथ सोऽश्वपतिर्गत्वा द्युमत्सेनं महौपतिम् ॥

उवाच नृपते कन्या ममेयं वरवर्णिनी ।

भवत्सुतं सत्यवन्तं वरयामास चेतसा ॥

स त्वमेतां स्तुषां राजन् गृह्णाणोपाहृतां<sup>१</sup> मया ।

द्युमत्सेन उवाच,—

द्युताः स्म राज्यात् वनमासमाश्रिता-

श्चराम धर्म्मं नियतास्तपस्विनः ।

कथन्त्वन्हा वनवास आश्रमे  
निवस्यते क्लेशमिमं सुता तव ॥

अश्वपतिस्वाच,—

अनुरूपोऽसि युक्तश्च त्वं ममाहं तवापि च ।  
सुषां प्रतीच्छ मत्कन्यां भार्यां सत्यवतः सतः ॥

द्युमत्सेन उवाच,—

पूर्वमेवाभिलषितः सम्बन्धो मे त्वया सह ।  
भ्रष्टराज्यस्त्वहमिति तत एतदिचारितम् ॥  
अभिप्रायस्त्वयि यो मे पूर्वमेवाभिकाङ्क्षितः ।  
स निर्वर्त्ततु मेऽद्यैव काङ्क्षितोऽह्यसि मेऽतिथिः ॥  
ततः सर्वान् समानाय्य दिजानाश्रमवासिनः ।  
यथाविधिसमुदाहं कारयामासतुर्नृपौ ॥  
दत्त्वा सोऽश्वपतिः कन्यां यथाहं सपरिच्छदाम् ।  
ययौ स्वमेव भवनं युक्तः परमया सुदा ॥  
गते पितरि सर्वाणि सज्जस्थाभरणानि च ।  
जगट्के वल्कलान्येव वस्त्रं काषायमेव च ॥  
अथ सा राजतनया सावित्री विनयान्विता ।  
शश्रुशश्रुरयोः सेवां भर्त्तुरप्यकरोत्सदा ॥  
भक्त्या परमया नित्यं शश्रुशश्रुरयोस्ततः ।  
भर्त्तुश्च दयिता ह्यासौत्तापसानाञ्च सम्प्रता ॥  
ततः सा नारदवचो धारयन्ती स्वचेतसा ।  
गणयामास दिवसान् पचं मासं तथायनम् ॥

ततस्त्रिरात्रमात्रे तु तस्मिन् संवत्सरे स्थिते ।  
 श्वश्रुश्वशुरयोः पत्युराज्ञां जग्राह सा सती ॥  
 कर्तुं व्रतं त्रिरात्राख्यमुपवाससमन्विता ।  
 अथ तस्मिन् दिने प्राप्ते नारदेन निवेदिते ॥  
 सत्यवान् विपिनं गन्तुमुपक्रममथाकरोत् ।  
 स्कन्धे परशुमादाय हस्ते कृत्वा करण्डिकाम् ॥  
 फलं काष्ठमथादातुं विज्ञाय पितरौ तदा ।  
 सावित्री चोदिते सूर्ये कृत्वा पूर्वाह्निकीः क्रियाः ॥  
 सर्वानिव दिजान् वृद्धान् श्वश्रुं श्वशुरमेव च ।  
 अभिवाद्यानुपूर्व्येण प्राञ्जलिर्निधमस्थिता ॥  
 अवैधव्याग्निषस्तेषां जग्राह विनयान्विता ।  
 श्वशुरावथ सावित्री जगादैकान्तमाश्रिता ॥  
 विपिनं द्रष्टुमिच्छामि सह भर्ता कुतः हलात् ।  
 तामुचतस्तौ श्वशुरौ पारणादिवसस्तव ॥  
 अकृत्वा तां कथं गन्तुं वनमिच्छसि शोभने ।

सावित्र्यावाच,—

अस्तङ्गते मयादित्ये भोक्तव्यं कृतकामया ।  
 एष मे हृदि सङ्कल्पः समयश्च कृतो मया ॥  
 भर्ता सहैव भोक्तव्यं मया परमया मुदा ।  
 न पत्युः सन्निधौ क्लान्तिर्मम काचन विद्यते ॥  
 ततोऽनुज्ञां प्रददतुस्तस्यै तौ श्वशुरौ तदा ।  
 जगाम सत्यवान् सोऽपि विपिनं सह भार्यया ॥

गत्वा तत्र फलैर्वन्यैः स करण्डौमपूरयत् ।  
 अथ काष्ठं कुठारेण पाटयामास सत्यवान् ॥  
 तस्य पाटयतः काष्ठ मध्याङ्गे महती व्यथा ।  
 मूर्ध्नि जातः ततः सोऽथ सुष्वाप नृपनन्दनः ॥  
 सावित्र्या उरुदेशे तु सन्निवेश्य शिरस्तथा ।  
 अथ सा नारदवचो ध्यायन्ती दैवतानि च ॥  
 जगाम शरणं साध्वी भर्तुर्जीवितकाङ्क्षया ।  
 अथ सा पाशहस्तञ्च कृष्ण रक्तेक्ष्ण यमम् ॥  
 ददर्श सत्यवत्पार्श्वे स्थितं विपुलतेजसम् ।  
 ततः सत्यवतस्तस्य राजपुत्रस्य वेपथः ॥  
 अङ्गुष्ठमात्रं पुरुष निश्चकर्ष यमो वलात् ।  
 यमस्तु तं तदा बध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः ॥  
 तदानीं सापि सावित्री सम्भ्रमाक्रान्तमानसा ।  
 शनैः शरीरं तद्भर्तुर्मृतं भूमावशाद्ययत् ॥  
 विनयावनता भूत्वा प्राञ्जलिर्यममन्वगात् ।  
 यत्र पाशेन बद्धा तं पतिं तस्या यमोऽनयत् ॥

यम उवाच,—

त्व निवर्त्तस्व सावित्री कुरु स्वाम्यौर्द्धदेहिकम् ।  
 कृत भर्तुस्त्वया नूनं यावद्भयं गतं त्वया ॥

सावित्र्युवाच,—

यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति ।  
 मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्माः सनातनः ॥

तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुः स्नेहाद् व्रतेन च ॥

तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः ।

धर्म<sup>१</sup> प्रधानं मुनयो वदन्ति

धर्माधिपं त्वामपि चामनन्ति ।

सर्वस्य लोकस्य हतञ्च वेत्ति

सर्वं ततस्त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

यम उवाच,—

वरं वरय मुश्रोणि सत्यवज्जीवनादृते ।

सावित्र्युवाच,—

ममान्धौ अशुरौ देव तपोवनमुपागतौ ।

सचक्षुषौ भवेतां तौ त्वत्प्रसादेन सूर्यज ॥

यम उवाच,—

एवमस्तु निवर्त्तस्व गच्छ अशुरयोर्गृहम् ।

अमस्त्वा मासृशङ्गद्रे त्वां ग्लानामिव लक्षये ॥

सावित्र्युवाच,—

अमः कुतो भर्तृसमीपतो मे

यतो हि भर्ता मम सा गतिर्भुवा ।

यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गति

दैवेश भूयोऽपि वचो निबोध मे ॥

सतां सद्यत् सङ्गतमीप्सितं वरं

ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते ।

न वाऽफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं  
ततः संतां सन्निवसेत् समागमे ॥

यम उवाच,—

तुष्टोऽस्मि तेऽनया वाचा वरं वरय सुव्रते ।  
क्षते सत्यवतो जीवाद्यदिच्छसि ददामि तत् ॥

सावित्र्युवाच,—

द्वतं पुरा मे शशुरस्य वैरिभिः  
स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः ।  
जह्यात् स्वधर्मं न च मे गुरुर्यथा  
द्वितीयमेतद्वरयामि ते वरम् ॥

यम उवाच,—

एवमस्तु निवर्त्तस्व त्वं सावित्रि स्वमन्दिरम् ।

सावित्र्युवाच,—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्माणा मनसा गिरा<sup>१</sup> ।  
अनुग्रहश्च दानञ्च सतां धर्मः सनातनः ।  
सन्तस्ततोऽप्यभिचेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते ॥

यम उवाच,—

जीवनेन विना भर्तुर्वरं वृणुष्व शोभने ।  
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि प्रीतिमान् पुनः ॥

सावित्र्युवाच,—

पुत्रहीनो मम पिता तस्य पुत्रशतं भवेत् ।

१ क, मनसापि वा ।

यम उवाच,—

कुलस्य सन्तानकरं पितुः पुत्रशतं भवेत् ।  
त्वं निवर्त्तस्व सावित्रि दूरं पन्थानमागता ॥

सावित्र्युवाच,—

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवान्  
ततोऽथ वैवस्वत उच्यसे बुधैः ।  
समेन धर्मेण च रञ्जिताः प्रजाः  
ततस्तवाह्वैश्वर धर्म्मराजता ॥

आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सञ्चयः ।  
तस्मात् सत्तु विशेषेण सर्व्वः प्रणयमृच्छति ॥

यम उवाच,—

परितुष्टोऽस्मि भद्रन्ते चतुर्थं त्वं वरं वृणु ।  
विना सत्यवतः प्राणान् यदिच्छसि ददामि तत् ॥

सावित्र्युवाच,—

अस्य सत्यवतः पुत्रशतमौरसमुत्तमम् ।  
जायतां मयि देवेश त्वत्प्रसादेन सूर्य्यज ॥

यम उवाच,—

भविष्यत्येवमेवं हि परितुष्टो ददामि तत् ।  
अतिदूरं समायाता निवर्त्तस्व स्वमन्दिरम् ॥

सावित्र्युवाच,—

सतां सदा शाश्वतधर्म्मवृत्तिः  
सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति ।



सतां सद्भिर्नाफलः सङ्गमोऽस्ति  
 सङ्गो भय नानुविन्दन्ति सन्तः ॥  
 सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं  
 सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति ।  
 सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन्  
 सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः ॥  
 न कामये भर्तृविनाशता सुखं  
 न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम् ।  
 त्वयैष दत्तः शतपुत्रतावरः  
 कथं त्वया मे ह्रियते पतिः पुनः ॥  
 वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं  
 त्वमेव सत्यं वचनं कुरुष्व ॥

मार्कण्डेय उवाच,—

एवमुक्तस्तु सत्रीङो<sup>१</sup> यमः पाशादमोचयत् ।  
 अङ्गुष्ठमात्रं पुरुष सत्यवद्देहिनिःसृतम् ॥  
 धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदमब्रवीत् ।  
 एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि ॥  
 चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया शार्ङ्गमवाप्स्यति ।  
 इद्धा यज्ञैश्च धर्मेण ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥  
 त्वयि पुत्रशतञ्चैव सत्यवान् जनयिष्यति ।  
 एवं तस्यै वरं दत्त्वा धर्मराजः प्रतापवान् ॥

निवर्त्तयित्वा सावित्रीं स्वमेव भवनं ययौ ।  
 सावित्र्यपि जगामाशु यत्र सुप्तः स सत्यवान् ॥  
 स चेतनां ततः प्राप्य सत्यवांस्तामभाषत ।  
 चिरं सुप्तोऽस्मि दयिते त्वया किं न विबोधितः ।  
 क्व सासौ पुरुषः श्यामो योऽसौ मां सञ्चकर्ष ह ॥

सावित्र्युवाच,—

गतः स भगवान् देवः प्रजासंयमनो यमः ।  
 विश्रान्तोऽसि महाभाग कथयिष्यामि तेऽखिलम् ॥  
 यदि शक्यं त्वमुत्तिष्ठ विगाढां पश्य शर्व्वरीम् ॥

मार्कण्डेय उवाच,—

उपलभ्य ततः संज्ञां सत्यवान् समचिन्तयत् ।  
 कथमुद्य गमिष्यामि पिचोरन्तिकमाकुलः ॥  
 करण्डिका फलैः पूर्णा काष्ठभारश्च तिष्ठतु ।  
 रक्षार्थमेतं परशुं गृहीत्वा गम्यतां शुभे ॥  
 अन्यथा का गतिस्तत्र पिचोरद्य भविष्यति ।  
 ततस्तमाह सावित्री ब्रजावो यदि मन्यसे ॥  
 ततस्तां सत्यवान् प्राह परशुं त्वं गृहाण मे ।  
 पलाशषण्डे सावित्री पन्था व्यावर्त्तते द्विधा ॥  
 तत्रोत्तरेण यः पन्थास्तेन गच्छ त्वमाशु च ।  
 एतस्मिन्नेव काले तु धुमत्सेनो महीपतिः ॥  
 लब्धचक्षुस्तदा रात्रौ सेव्यया सह भार्य्यया ।  
 आश्रमांस्तापसानाञ्च व्यचरत् पुत्रलिप्सया ॥

शुशोच चातिदुःखार्त्तः पुत्रं ताञ्च शुभां वधूम् ।  
 स गौतमादिभिर्विप्रैः सान्वितः शोककर्षितः ॥  
 सर्व्वे तमूचुर्मुनयो न शोकं कुरु भूपते ॥  
 यथाऽस्य भार्य्या सावित्री ग्रीलाचारसमन्विता ।  
 यथा च ते दृशोर्लाभश्चिर जीवति सत्यवान् ॥  
 एतस्मिन्नेव काले तु सावित्र्या सह भार्य्यया ।  
 सत्यवानागतस्तत्र पित्रोः प्रीतिं विवर्द्धयन् ॥  
 अथ तैः सर्व्वतो विप्रैः पृष्टस्त्वं केन हेतुना ।  
 दिवसे न समायातः पितरौ तव दुःखितौ ॥  
 ततः स कथयामास शिरःपीडादिकं तथा ।  
 ततस्ते विप्रसङ्गाताः सावित्रीमिदमब्रुवन् ॥  
 कथयस्व तु सावित्रि वृत्तान्तो यो वनेऽभवत् ।  
 ततः सा कथयामास यमसन्दर्शनादिकम् ॥  
 चक्षुर्लाभश्च राज्यञ्च द्वौ वरौ अशुरस्य मे ।  
 पितुः पुत्रस्य च गतं पुत्रानाञ्चात्मनः शतम् ॥  
 चतुर्वर्षशतायुश्च भर्तुः प्राप्तं तथा यमात् ।  
 तच्छ्रुत्वा परमप्रीता विप्रास्ते खगटहं ययुः ॥  
 सत्यवानपि संसुप्तः पितृभ्यां सह भार्य्यया ।  
 अथ रात्र्यां व्यतीतायां सङ्गतास्ते तपोधनाः ॥  
 कृतपूर्वाह्निकाः सर्व्वे सावित्रीं प्रशशंसिरे ।  
 शाल्वदेशादयामात्या द्युमत्सेनं महीपतिम् ॥  
 आगत्योचुर्महाराज स्वामात्येन हतो रिपुः ।

तव पूर्व्वेण सत्येन वयमभ्यागता इह ॥  
 अचक्षुर्वा सचक्षुर्वा त्वं राजा भव भूपते ।  
 ततस्तैरभ्यनुज्ञातो ब्राह्मणैः स महीपतिः ॥  
 तैरमात्यैः परिवृतो महादेव्या च सेव्यया ।  
 पुत्रेण च तथा वध्वा सावित्र्या ग्रीलयुक्तया ॥  
 ययौ स्वपुरमव्यग्रो हर्षसम्पूर्णमानसः ।  
 तत्र गत्वा द्युमत्तमेनः सत्यवन्तं प्रियं सुतम् ॥  
 यौवराज्ये महाराजः स्थापयामास धर्मतः ।  
 सावित्र्याश्चापि काशेन जज्ञे पुत्रशतं वरम् ॥  
 भ्रातृणाञ्च शतं जातं सोदर्याणां महात्मनाम् ।  
 एवमात्मा पिता माता श्वश्रुश्च श्वशुरः पतिः ॥  
 भर्तुः कुलञ्च सावित्र्या सर्व्वं कृच्छात् समुद्धृतम् ।  
 एवमेषापि पाञ्चाली ग्रीलाचारसमन्विता ॥  
 तारयिष्यति वः सर्व्वान् सावित्रीव कुलाङ्गना ।  
 एवमाश्वसितस्तेन मार्कण्डेयेण धीमता ॥  
 युधिष्ठिरः प्रीतमनाः काम्यके न्यवसदने ।  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या सावित्र्याख्यानमुत्तमम् ॥  
 स सुखी सर्व्वसिद्धार्यो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः ।  
 इति भविष्यपुराणे सावित्र्युपाख्यानम् ।

ततः स्तुत्वा देवीं प्रणम्य दक्षिणां दत्त्वा देवान् विसृज्य आचाराङ्गन्धमाल्यादिभिः स्वपतिं पूजयेत् ।

इति सावित्रीव्रतं समाप्तम् ।

ब्रह्मपुराणे,—

ज्येष्ठे शुक्लचतुर्थ्यान्तु जाता पूर्वमुमा सती ।

तस्मात् सा तत्र समूज्या स्त्रीभिः सौभाग्यवद्भूये ॥

राजमार्त्तण्डे,—

ज्येष्ठे मासि मिते पक्षे षष्ठी चारण्यसंज्ञिता ।

व्यजनैककरास्तस्थामटन्ति विपिने स्त्रियः ॥

तां विन्ध्यवासिनीं देवीं पूजयेद्युर्वने गताः ।

कन्दमूलफलाहारा लभन्ते सन्ततिञ्च ताः ॥

तस्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वोपहारिकी ।

आरोग्यकामैर्वालानां पुत्रवद्भिर्विशेषतः ॥

तां षष्ठीसंज्ञया प्रभिद्धां कन्दं शालूकादि मूल मानकच्चादि ।

ब्रह्मपुराणे,—

ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखी सृता ।

तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानञ्चैव विशेषतः ॥

यां काञ्चित् सरितं प्राप्य दद्याद्भर्तिलोदकम् ।

मुच्यते दशभिः पापैर्महापातकसंश्रितैः ॥

अत्र नदीमात्रे स्नानस्य सतिलतर्पणाङ्गकस्य दशपापक्षयः  
फलं प्रतीयते ।

भविष्ये,—

ज्येष्ठे शुक्लदशम्यान्तु हस्तयोगेन जाङ्गवी ।

हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा सृता ॥

अत्र गङ्गाया तर्पणं विनापि हस्तायोगे दशविधपापक्षयः फल

सतर्पणस्नाने तु फलातिशयः । अन्यनद्यास्तु हस्तायोगेऽपि फलाधिक्यं  
नास्ति विशेषाश्रवणात् वक्ष्यमाणवचने हस्तार्था गङ्गावतरणस्य निमि-  
त्तकत्वकथनात् गङ्गायामेव हस्तायाः फलातिशयहेतुत्वाच्च ।

यत्तु,—

ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तमंथुता ।

हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्यता ॥

इति भविष्योत्तरवचनं तदपि पूर्ववचनैकवाक्यतया गङ्गास्नान-  
विषयम् ।

भविष्ये,—

ज्यैष्ठे मासि दशम्यान्तु कुजहस्तसमागमे ।

गङ्गा स्वर्गादपाटत्य मर्त्यलोकमवातरत् ॥

दशजन्मकृतं पापं दशपापानि चैव हि ।

आवृणोत्यप्रयत्नेन स्नानमात्रेण जाह्नवी ॥

अत्र भौमवारे हस्तायोगे गङ्गास्नानात् दशजन्मकृताशेषपा-  
पक्षयो दशविधपापक्षयश्च फलं प्रतीयते ।

ब्रह्मपुराणे,—

ज्यैष्ठे शुक्लदशम्यान्तु भवेद्भौमदिनं यदि ।

ज्ञेया हस्तर्चसंयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥

अत्रापि सर्वपापक्षयः फलं गङ्गायामेव पूर्ववचनैकवाक्यत्वात् ।

स्नानकाले पठनीयमाह काशीखण्डे ।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥

परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।

पारुष्यमनृतञ्चैव पैशून्यञ्चापि सर्वशः ।  
 असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥  
 परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।  
 वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥  
 एतानि दश पापानि प्रशमं यान्तु जाह्नवि ।  
 स्नातस्य मम ते देवि जले विष्णुपदोद्भवे ॥

तत्र गङ्गापूजामाह भविष्ये,—

ज्येष्ठे मासि शिते पक्षे दशम्यां हस्तसंयुते ।  
 गङ्गातीरे तु पुरुषो नारी वा भक्तिभावतः ॥  
 पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैर्दशविधैस्तथा ।  
 तथैव दीपैस्ताम्बूलैः पूजयेच्छुद्धयान्वितः ॥  
 स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ।  
 दशप्रसूति कृष्णांश्च तिलान् सपौषि वै जले ॥  
 शक्रपिण्डान् + + + + प्रदद्याद्दशसंख्यया ।  
 पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य हेमरौप्यादिनिर्मिताम् ॥  
 गङ्गायाः प्रतिमां भक्त्या मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।  
 ॐ नमो नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै नमो नमः ॥  
 पञ्चाष्टतेन च स्नानमर्चायास्तु विशिष्यते ।  
 नारायण महेशश्च ब्रह्माणं भास्करं तथा ॥  
 भगौरथश्च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम् ।  
 गन्धपुष्पादिभिश्चैव यथाशक्ति प्रपूजयेत् ॥  
 दशप्रसूतिलान् दद्यात् दशविप्रेभ्य एव हि ।

दुर्गायाश्च यथा यात्रा तथा कुर्यान्महाधनैः ॥  
 एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाय्यविवर्जितः ।  
 सद्यो दशविधैः पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ॥  
 मुच्यते नात्र सन्देहो ब्रह्मणो वचनं यथा ।

वाराहे,—

यस्तिष्ठत्येकपादेन कुरुक्षेत्रे महेश्वरि ।  
 वर्षाणामयुतं सप्त वायुभक्षो जितेन्द्रियः ॥  
 ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ।  
 पुरुषोत्तममालोक्य ततोऽधिकफलं लभेत् ॥

तत्रैकादश्यां उपवासो द्वादश्यां दर्शनमित्यर्थः ।

भविष्ये,—

यमुनापलिले स्नात्वा पुरुषो मुनिसत्तम ।  
 ज्यैष्ठे मास्यमले पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ॥  
 समभ्यर्च्यार्च्युतं सम्यक् मयुरायां समाहितः ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥

अविकलं सम्पूर्णम् ।

ब्राह्मे,—

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य विशोका विष्णुना पुरा ।  
 विभूषिता शुभैर्माल्यैस्तस्मात्तां तत्र पूजयेत् ॥  
 विशोका लक्ष्मीः ।

तथा,—

ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां पुण्यैश्चम्यकसम्भवैः ।



अर्चयित्वा महादेवं रुद्रलोके महीयते ॥

भविष्ये,—

ज्यैष्ठे मासि तिलान् दत्त्वा पौर्णमास्यां विशेषतः ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यसंग्रहम् ॥

विष्णुः,—

ज्यैष्ठी ज्येष्ठायुक्ता चेत्तस्यां कचोपानदानेन गाणपत्यमवाप्नोति ।

स्कान्दे,—

पौर्णमासीषु चैतासु मासर्चसहितासु च ।

अन्यदा स्नानदानाभ्यां फलं दशगुणं स्मृतम् ॥

एतच्च सकलपौर्णमासीसाधारणं महाज्यैष्ठ्यास्तु विशेषः प्रागुक्त-  
स्तत्त्ववचनोक्तमस्ति ।

“अथाषाढकृत्यम् ।

गारुडतन्त्रे,—

शिरौषसम्भवं मूलं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।

यः पिवेन्मिथुनस्थोऽर्कं तस्य सर्पभयं कुतः ॥

तथा,— आद्रायाः प्रथमे पादे क्षीरमश्नाति यो नरः ।

अपि रोषान्वितस्तस्य तच्चक्रः किं करिष्यति ॥

सौराषाढस्य चत्वारिंशद्दण्डाधिकषड्दिवसादूर्द्ध्वं दशदिवस-  
पर्यन्तमाद्रायाः प्रथम पादे रविस्तिष्ठति । एतच्चाम्बुवाचीसञ्ज्ञकम् ।

यथा राजमार्त्तण्डे,—

चत्वारिंशल्लिप्ताधिकषड्भागे रविर्घटा भवति ।

ज्ञेया तदाम्बुवाची शिवर्चमास्थितो यावत् ॥

रवौ रौद्राद्यपादस्थे पृथिव्या जायते रजः ।

तस्माद्दिनत्रयं यावद्बीजवापं परित्यजेत् ॥

न स्वाध्यायं वषट्कारं न देवपितृतर्पणम् ।

हलानां वाहनञ्चैव मङ्गल्यं नैव चाचरेत् ॥

शिवर्चमाद्रा स्वाध्यायोऽध्ययनं न तु ब्रह्मयज्ञनिषेधः वषट्कारः  
काम्यहोमारम्भः तर्पणं श्राद्धं । तच्च—

नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा ।

पितरः सृष्टयन्त्यक्षमष्टकासु मघासु च ॥

इति शातातपेन वर्षोपक्रमे विहितमावश्यकं नवोदकश्राद्धमेव  
आद्रास्थे रवौ तस्य विधानात् ।

यथा रुद्रजामले,—

अश्विन्यादि तु मैत्रेषु विवाहे कृत्तिकादि तु ।

वर्षाकाले तथाद्रादि नक्षत्रगणनं स्मृतम् ॥

तेनाद्रायाः प्रथमपादं वर्ज्यित्वा शेषपादत्रयस्थे रवौ नवोदक-  
श्राद्धं कार्यमित्यायातम् । मङ्गल्यं विवाहादि ।

आधुनिकाः ।

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमस्वाध्यायौ प्रयत्नतः ।

स्वाध्यायभूमिश्चाशुद्धामात्मानश्चाशुचिं द्विजः ॥

इति मनुवचनात् पृथिव्या रजोयोगेनाशुद्धतया अध्ययनप्रतिषेध  
इति वदन्ति । तन्मन्दं भूमे रजोयोगासम्भवात् तदधिष्ठातृदेवताया  
रजोयोगे भूमेरशुद्धिः कुतः, अन्यथा भोजनदेवार्चनपञ्चमहायज्ञा-  
दीनामपि निषेधप्रसङ्गः ।

स्कान्दे,—

आषाढश्चापि थो मासमेकभक्तं समाचरेत् ।

राज्ञोऽसौ मान्यतां प्राप्य कामानाप्नोति पुस्कलान् ॥

अत्र सौराषाढ इति प्राञ्चः ।

भविष्ये,—

आषाढे मासि भूताहे शिवं सम्पूज्य यत्नतः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥

भूताहः कृष्णचतुर्दशी ।

भविष्ये,—

मैत्राद्यपादे खपितीह विष्णु वैष्णव्यमध्ये परिवर्त्तते च ।

पौष्णावसाने च सुरारिहन्ता विबुध्यते मासचतुष्टयेन ॥

निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् ।

अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादशमेव कारयेत् ॥

मैत्रमनुराधा वैष्णवं अवणा पौष्णं रेवती ।

निशादेरन्यत्र काले उक्तनक्षत्रपादयोगो यदि स्यात् तथापि केववलायां द्वादशमेव निशासु शयनादिकं न तु नक्षत्रपादानुरोधादन्यत्र किन्तु नक्षत्रपादयोगे फलातिशय इत्यर्थः । अत्र द्वादशमेव शयनादिकमायातम् ।

यथा राजमार्त्तण्डे,—

दिवा खपिति नो विष्णु निशि न प्रतिबुध्यते ।

द्वादशमेव कर्त्तव्यं पादयोगो न कारणम् ॥

तथा तच्चैव प्रतिपदादिपञ्चदशतिथिषु क्रमेण-देवानां शय-  
नाभिधाने विष्णोर्द्वादशां शयनमुक्तं यथा,—

वक्त्रिः स्कन्दपुरन्दरौ गणपतिर्लक्ष्मीर्यमो भास्करो  
वायुः पर्वतकन्यका वसुमती तोयाधिपः केशवः ।  
ब्रह्मा चैव महेश्वरो धनपतिः सर्वेऽप्यमी शेरते  
उत्तिष्ठत्यमुना क्रमेण विबुधाः स्वे स्वे दिने पूजिताः ॥

यथा वाराहे,—

कृत्वा वै मम कर्माणि द्वादशां मत्परो नरः ।

ममैव बोधनार्थायिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिष्टूयमानो

भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।

प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या

जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥

एवं कर्माणि कुर्वन्ति द्वादशां ये यशस्विनि ।

मम भक्त्या नरश्रेष्ठा यान्ति ते परमां गतिम् ॥

अत्र द्वादशेष्वेव हरेः प्रबोधकाल उक्तः एवञ्च शयनकालोऽपि स  
एव शयनप्रबोधयोरेकतिथिलनियमात् ।

तथा वामनपुराणे,—

एकादशां जगत्स्वामिशयनं परिकल्पयेत् ।

शेषाहिभोगपर्यङ्क कृत्वा सम्पूज्य केशवम् ॥

अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादशां प्रयतः शूचिः ।

लब्ध्वा पीताम्बरधरं देवं निद्रां समानयेत् ॥

अत्र एकादशीसमये दिवाशयनीयपरिकल्पनं रात्रौ द्वादशी-  
समये निद्रेत्युक्तम् । एवञ्च द्वादशां शयननिर्णये सति ।

एकादश्यान्तु शृङ्गायामाषाढे भगवान् हरिः ।

भुजङ्गशयने श्रेते यदा क्षीरार्णवान्तरे ॥

तदा तत्प्रतिमा कार्या सर्वलक्षणसयुता ।

सुप्ता च शेषपर्यङ्के शैलमृद्भिश्च दारुभिः ॥

नानाविधोपकरणैः पूज्या च विधिपूर्वकम् ।

उपवासस्तु कर्त्तव्यो रात्रौ जागरणं तथा ॥

ततो रात्र्यां व्यतीतायां द्वादशां पूजयेत् पुनः ।

इति ब्रह्मपुराणवचनस्थाप्ययमर्थः । एकादशां एकादशुपवास-  
दिने द्वादशीक्षणे हरिः श्रेते इति ।

अन्येतु,—एकादश्यान्तु शृङ्गायां कार्त्तिके मासि केशवम् ।

प्रसुप्त बोधयेद्रात्रौ अङ्गाभक्तिसमन्वितः ॥

इति ब्रह्मपुराणदर्शनाच्छयनसमयेकादश्यामेव स्थापप्रबोधयोरेक-  
तिथित्वनियमादित्याहुः । तत्र पूर्वानेकवचनैकवाक्यतया रात्रौ  
प्रसुप्त केशव एकादशां गतायां द्वादशां दिवा बोधयेदिति वच-  
नार्थः । एतेन एकादशां द्वादशां वेति विकल्पनापि निरस्ता  
वाक्यभेदप्रसङ्गात् । अन्येतु,—

क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां सन्निशेद्धरिः ।

निद्रां त्यजति कार्त्तिक्यां तयोस्तु पूजयेत् सदा ॥

इति यमवचने आषाढीकार्त्तिकीपदयोः पौर्णमास्यां योगरू-  
ढित्वात् कल्पभेदव्यवस्थामाहुः । तन्मन्दम्,—

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदस्यान्याय्यत्वात् पूर्वोक्तानेकवचनेक-  
वाक्यतया आषाढीकार्तिकीपदयोर्योगानुबन्धात् द्वादशीपरत्वात्  
ततः सिद्धं द्वादक्षां शयनं प्रबोधश्चेति ।

अथाषाढे दशम्यान्तु शुक्लायां लघुभुङ्गः ।

कृत्वा सायन्तनीं सन्ध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः ॥

इति देवीपुराणाद्दशम्यां सायं सङ्कल्पयेत् ।

तत्र सङ्कल्पवाक्यमुक्तं वराहपुराणे,—

एकादक्षां निराहारो भूत्वा चैवापरेऽहनि ।

भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाच्च शरणं मे भवाच्युत ॥

इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुण्याञ्जलिमुपचिपेत् ।

तत एकादक्षां पूर्वोक्ते पूर्वोक्तविधिना विष्णुमभ्यर्च्य दिवा  
शय्यादिकमुपकल्प्य रात्रौ द्वादशीसमये हरेः स्थापनं कार्यम् । यदि  
कदाचित् पूर्णैकादशशुवासः स्यात् तदा परदिने रात्रौ शयनं कार-  
यित्वा पारणा कार्य्येति । तत्र शयनमन्त्रो वराहपुराणोक्तो यथा,—

ॐ नमो नारायणाय इत्युक्त्वा

ॐ पश्यन्तु मेघान्यपि मेघश्यामं

द्युमागतं सिच्यमानां महीमिमाम् ।

निद्रां भगवान् गृह्णातु लोकनाथ

वर्षाव्विम पश्यतु मेघवृन्दम् ॥

इति मन्त्रेण विष्णुं स्थापयित्वा,—

ॐ सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।

विवुद्धे त्वयि वुध्येत जगत् सर्वं चराचरम् ॥

इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिना पूजयेत् ततः प्रातर्यथाविधि सम्पूज्य  
पारणेति ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

आस्तीर्णशयनं दत्वा ग्रीण्येद्भोगशायिनम् ।

आषाढशुक्लद्वादशां विष्णुलोके महीयते ॥

आस्तीर्णशयनं शोभनास्तरणयुक्तखट्वादि ।

ब्रह्मपुराणे,—

सुप्ते तु सर्वलोकेशे नक्तंभोजी भवेन्नरः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वलोकेश्वरो भवेत् ॥

अथ चातुर्मास्यव्रतानि ।

नारदीये,—

एकादशान्तु गृहीयात् सक्रान्तौ कर्कटस्य वा ।

आषाढ्यां वाथ दर्शे वा चातुर्मास्यं व्रतक्रियाम् ॥

चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किञ्चिद्वनीयते ।

नान्यथा वार्षिकं पापं विनिहन्त्यप्रथमव्रतः ॥

चतुरो वार्षिकान् मासान् यो मासं परिवर्जयेत् ।

चत्वारि भद्राण्यप्नोति कौर्त्तिमायुर्यशोवलम् ॥

दर्शवेति । आषाढ्याः पूर्वे दर्शे इत्यर्थः ।

मात्से,—

आषाढ्यादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः ।

विप्राय भोजनं दत्वा कार्तिक्याङ्गोपप्रदो भवेत् ॥

स वैष्णवपुरं याति विष्णुव्रतमिदं महत् ।

अस्य चाषाढ्यामारभः कर्त्तिक्यां समाप्तिः । अत्र सर्वेषु व्रतेषु  
पूर्वाक्तविधिना विष्णुमभ्यर्च्य तदग्रे सर्वं व्रत गृहीयात् ।

ॐ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।

निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोतु प्रसादात्तव केशव ॥

गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे स्त्रियाम्यहम्<sup>१</sup> ।

तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनाद्न ॥

भविष्योत्तरे,—

चतुरो वार्षिकान् मामान् देवस्योत्थापनावधि ।

स्त्री वा नरो वा मङ्गको गृहीयान्नियमानिमान् ।

मधुरस्वरो भवेन्नित्यं नरो गुडविवर्जनात् ॥

तैलस्य वर्जनात् पार्थ सुन्दराङ्गः प्रजायते ।

कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशोऽभिजायते ॥

योगाभ्यासी भवेद्यस्तु म ब्रह्मपदमाप्नुयात् ।

तामूलवर्जनाङ्गो गौ रक्तकण्ठश्च जायते ॥

घृतत्यागात् सुलावण्यं<sup>२</sup> सर्वं स्निग्धवपुर्भवेत् ।

फलत्यागात्तु मतिमान् वज्रपुत्रश्च जायते ।

पादाभ्यङ्गपरित्यागात् वपुःशौरभ्यमाप्नुयात् ॥

दधिदुग्धपरित्यागात् गोस्य लोकं लभते नरः ।

लभते सन्ततिं दीर्घां स्थालीपकमभजयन् ॥

भृमौ सस्तरशायी च विष्णोरनुचरो भवेत् ।

१ मूलपुस्तके, त्वहं स्त्रिये ।

२ ख पुस्तके, सलावण्य ।



सदासुनिः सदायोगी मधुमासविवर्जनात् ॥  
 निराधिनीरुगोजस्त्री विष्णुभक्तश्च जायते ।  
 एकान्तरोपवासेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥  
 धारणासखलोन्नाञ्च गङ्गास्नान दिने दिने ।  
 मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽऽखलिता भवेत् ॥  
 भूमौ भुङ्क्ते नरो यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् ।  
 विष्णोर्य सद्ने कुर्यादुपलेपनमार्ज्जने ॥  
 कल्पस्थायी भवेत्तत्र स नरो नात्र संशयः ।  
 प्रदक्षिणशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ॥  
 हसयुक्तविमानेन स वैष्णवपुरं व्रजेत् ।  
 नक्तभोजी समग्रन्तु तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥  
 एकभक्ताग्रनान्नित्यमग्निहोत्रफलं लभेत् ।  
 अयाचितेन चाप्नोति वापीकूपप्रपाफलम् ।  
 पत्रेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥  
 शिलायां भोजने नित्यं प्रयागस्नानज फलम् ।  
 माषदयपरित्यागाच्च 'नरः परिभूयते ॥  
 एवमादिब्रतैः पार्थ तृष्टिमाप्नोति केशव ।

खलार कटादि निराधिर्नानसपीडारहितः श्यामकृष्णभेदा-  
 न्माषकलायद्वयम् ।

मात्से,—आषाढ्यादि चतुर्मासमभ्यङ्गं वर्ज्येद्बुधः ।

भोजनं पुष्कलं दद्यात् स याति भवनं हरेः ॥

१ ग पुष्कले, न रोगे परिभूयते ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

आषाढ्यादिब्रतं यस्तु वर्ज्येन्नखकर्त्तनम् ।

वार्त्ताकुञ्च चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम् ॥

कार्तिक्यां तत्पुनर्हेम ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

हेमनिर्मितं तत् वार्त्ताकुफलं दृतमधुघटान्वितं दद्यात् अत्र  
स याति भवनं हरेरिति फलानुषङ्गः । एतेन वार्त्ताकुफलमभक्ष्य-  
मिति केषाञ्चिन्नतमिति निरस्तम् ।

भविष्ये,—

पौर्णमास्यामाषाढस्य शिवं सम्पूज्य यत्नतः ।

उपवीतं शिवे दद्याच्छिवभक्तांश्च पूजयेत् ॥

पुनरेव च कार्तिक्यां पूजयित्वा समापयेत् ।

यः कुर्याद्विधिवद्भक्त्या चातुर्मासौपवित्रकम् ॥

कल्पकोटिशतं सायं रुद्रलोके महीयते ।

विष्णुः,—

आषाढ्याषाढयुक्ता चेत्तस्यामन्नप्रदानेन तदेवाक्षयमाप्नोति ।

भविष्ये,—

आषाढपौर्णमास्यां यो विधिवत् पूजयेच्छिवम् ।

सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥

अथ आवणकृत्यम् ।

शातातपः,—

अयनादौ सदा देयं द्रव्यमिष्टं द्विजेषु च ।

यदा कर्कटकं याति भगवान् चण्डदौधितिः ॥

अत्र विश्वजिज्ञायात् स्वर्गः फलम् ।

कन्दोगपरिशिष्टम्,—

यद्यद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।

तासु स्नान न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥

यद्यो मासः, सौर एव,—

सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।

न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः ॥

इत्यत्रिवचनात् ।

नदीलक्षणमुक्तं परिशिष्टे,—

धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते ।

न ता नदीशब्दवहा गतास्ते परिकीर्त्तिताः ॥

धनुर्हस्तचतुष्टयं तास्त्रित्यभिधानादुद्धृतोदके न दोष इति प्राञ्चः, ।

पठन्ति च,—

उद्धृतेषु च तोयेषु रजोदोषो न विद्यते ।

साक्षात् समुद्रगा न तु परम्परया, अन्यथा अव्यावर्त्तकत्वात् ।

निगमः,—

तपनस्य सुता गङ्गा गोमती च सरस्वती ।

रजसा न प्रदूष्यन्ति येचान्ये नदसञ्ज्ञकाः ॥

यत्तु,—

आदौ कर्कटके देवी अह यावद्रजस्वला ।

चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते शुद्धा भवति जाङ्गवी ॥

इति नामशून्य वचनं तद्रजोयोगमात्रं बोधयति न तु स्नाना-  
दिनिषेधकम् ।

अपवादमाह परिशिष्टे,—

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे प्रेतश्राद्धे तथैव च ।

चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ।

भारते,—

आवण नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।

यत्र तत्राभिवृद्धिश्च प्राप्नोति ज्ञातिभिर्धनैः ॥

अत्रापि सौरो मासः ।

भविष्ये,—

अशून्यशयनां नाम द्वितीयां शृणु भारत ।

यामुपोय्य च वैधव्य स्त्री न याति नरेश्वर ॥

पत्नौवियुक्तश्च नरो न कदाचित् प्रजायते ।

कृष्णपक्षे द्वितीयायां आवणे मासि भारत ।

अशून्यशयना प्रोक्ता श्रीहरेः शयनात् परम् ।

मातृस्ये,—

आवणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः ।

क्षीरार्णवे सलक्ष्मीकः सदा वसति केशवः ॥

तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

गोभृहिरण्यशय्यादि सप्तकल्पशतानुगम् ॥

अशून्यशयना नाम द्वितीया सा प्रकीर्तिता ।

न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते ॥

नारी वा विधवा ब्रह्मण् यावच्चन्द्रार्कतारकम् ।

सलक्ष्मीकं गोविन्दं सम्पूज्य इत्यर्थः ।

भविष्ये,—

सुप्ते जनार्दने कृष्णे पञ्चम्यां भवनाङ्गने ।

पूजयेन्मनसादेवीं स्तुहीविटपसश्रयाम् ॥

करवीरैः शतपत्रैर्जातौपुष्पैः सचन्दनैः ।

स्तपयेद्गव्यपयसा तथा श्रौतोदकेन च ॥

सद्यन्त पयसा पूष दद्यात् धूप सगुगुलुम् ।

पूजयित्वा नरो देवीं न सर्पभयमाप्नुयात् ॥

मनसादेवीत्येकपदमलुक्प्रसासानुशासनात् मा च विषहरौति  
ख्याता, स्तुही सिद्धुः ।

~ तथा,— आवणे मासि पञ्चम्या कृष्णपक्षे नराधिप ।

द्वारस्थोभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥

पूजयेद्विधिवद्दीर चौरदूर्वाङ्कुरैः कुशैः ।

ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः ॥

न तेषां सर्पतो वीर भय भवति कुचचित् ।

पिचुमर्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे ।

स्वयञ्चापि तदश्रीयाद्भोजयेद् ब्राह्मणानपि ॥

विषोल्बणा नागाः । तेचोक्ता गारुडे,—

वासुकिस्तचकश्चैव कालियो मणिभद्रकः ।

ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥

पिचुमर्दी निम्बः । उभयदिने लाभे युग्मादरात् व्यवस्था ।

~ यन्तु,—

पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्यायुक्ता तु नारद ।

इति ब्रह्मवैवर्तवचनं, तत् भिन्नश्रुतिकल्पनाभयात् युग्मवचनवि-  
रोधाच्च तदेकवाक्यतयाऽयुक्त्यकारप्रक्षेपेण व्याख्येयमिति प्रागुक्तम् ।

अथ पूजाविधिः ।

गृहाङ्गने गोमयेनोपलेपिते खुहीशाखामारोप्य तत्पार्श्वद्वये  
गोमयेनाष्टौ नागान् विलिख्य खस्ति वाच्यं संकल्प्य कृत्वा कृतभूत-  
शुद्धिप्राणायामो विघ्ननाशाय घटे गणेशं सम्पूज्य ह्रीं ह्रीं ह्रीं  
ह्रीं ह्रीं ह्रीं इति मन्त्रैः षडङ्गन्यासं कृत्वा देवीं ध्यायेत् ।

हेमाङ्गोजनिभां गलद्विषधरालङ्कारसंगोभितां  
स्मेराक्षां परितो महोरगगणैः संसेव्यमानां सदा ।  
देवीमास्तिकमातरं शिवसुतामापौनतुङ्गस्तनीं  
हस्ताङ्गोजयुगेन नागयुगलं संविभ्रतीमाश्रये ॥

इति ध्यात्वा मनसा सम्पूज्य पूर्ववदर्थस्थापनं कृत्वा ह्रीं पद्मा-  
सनाय नम इति पुष्पाञ्जलिना आसनं दत्वा पूर्ववत् ध्यात्वा सो-  
ऽहमिति विभाव्य पुष्पाञ्जलिना नाभारम्भेण तेजो निर्गमय्य  
खुहीशाखायामावाहयेत् ।

आस्तिकस्य मुनेर्मातर्जगदानन्दकारिणि ।  
एहोहि मनसादेवि नागमातर्नमोऽस्तुते ॥  
आगच्छ वरदे देवि सर्वकल्याणकारिणि ।  
खुहीशाखां समारुह्य तिष्ठ पूजां करोम्यहम् ॥

भगवति श्रीमनसादेवि इहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ सन्निहिता  
भव सन्निरुद्धा भव प्रसन्ना भव इत्यावाहनस्थापनसन्निधापन  
सन्निरोधनावगुण्ठणसकलीकरणामृतौकरणपरमीकरणमुद्राः प्रदर्श्य

प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा मं मनसादेवै नम इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा तेनैव  
मन्त्रेण पाद्यार्घ्याचमनीयानि दत्वा—

ॐ चैलोक्यपूजितां देवीं नागाभरणभूषिताम् ।

स्तपयामि महाभागां पुत्रायुर्धनवृद्धये ॥

इति मन्त्रेण दुग्धेन स्तपयित्वा—

ॐ गन्धचन्दनमिश्रेण तोयेन नागमातरम् ।

स्तपयामि महाभागां सर्व्वसम्पत्तिहेतवे ॥

इति ग्रीतलोदकेन स्थापयेत् ।

वस्त्रालङ्कारजातीकरवौरादिकुसुमैरभ्यर्च्यं सगुगुलुधूपदीप-ना-  
नाविधफल-सद्यतपायसपिष्टक-दधि-दुग्ध-मोदकादीनि दत्वा पुन-  
राचमनीयं माख्यं चन्दनं ताम्बूलञ्च निवेद्य शङ्खघण्टादिकं वादयेत् ।

ततो वासुकादि अष्टनागानावाह्य पाद्यादिभिरभ्यर्च्यं दूर्वा-  
ङ्कुरैः कुशैर्दुग्धेन च विशेषतः पूजयेत् ।

ॐ वासुकये नमः ॐ तच्चकाय कालियाय मणिभद्राय  
ऐरावताय धृतराष्ट्राय कर्कोटकाय धनञ्जयाय इति सम्पूज्य—

नागराज नमस्तेऽस्तु पाहि मां शरणागतम् ।

चायस्व सर्पभीतिभ्यः सर्व्वान् कामान् प्रयच्छ मे ॥

इति प्रणमेत् । ततः पुष्पाञ्जलिना देवीं प्रणमेत् ।

अयोनिसम्भवे मातर्महेश्वरसुते शुभे ।

पद्मालये नमस्तुभ्यं रक्ष मां वृजिनार्णवात् ॥

जरत्कासमुनेः पत्नी भगिनी वासुकेः पुनः ।

आस्तिकस्य मुनेर्माता वरदाऽस्तु सदा मम ॥

ततो दक्षिणां दत्वा चमस्वेति देवीं नागांश्च विसर्ज्जयेत् ।

## अथ भाद्रकृत्यम् ।

वामनपुराणे,—

मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषी ।

हृषीकेशप्रीणनार्थं फालितं सगुडोदनम् ॥

फालितं खण्डविशेषः ।

स्कान्दे,—

यस्तु भाद्रपदे मासि एकभक्तं समाचरेत् ।

स तेन कर्मणा राजन् धनवानभिजायते ॥

इदं सौरकृत्यमिति प्राञ्चः ।

अथ रोहिण्यष्टमी ।

ब्रह्माण्डे,—

रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी ।

श्रद्धैरात्रादधस्रोद्धै कलयापि यदा भवेत् ॥

तत्र जातो जगन्नाथः कौस्तुभौ हरिरीश्वरः ।

महापुण्यतमः कालो जयन्त्याख्यो हि स स्मृतः ॥

श्रद्धैरात्रे तु योगोऽय तारापत्युदये तथा ।

सोपवासो हरेः पूजां कृत्वा तत्र न सीदति ॥

जयन्त्यामुपवासन्तु कृत्वा योऽभ्यर्चयेद्भूरिम् ।

तस्य जन्मशतोद्भूतं पापं नाशयतेऽच्युतः ॥

शतमेकादशीञ्चैव एकञ्च रोहिणीव्रतम् ।

एकादशीशतद्राजन्मधिकं रोहिणीव्रतम् ॥

ततोऽतिदुर्लभां मत्वा तस्यां यत्नं समाचरेत् ।



अर्द्धरात्रेऽष्टममुहूर्ते रोहिणीसहिताष्टमी यदि लग्न्यते तदैव  
जयन्तीयोग इत्यर्थः । न सौदतीत्यनेनास्य नित्यत्वं दर्शितम् ।  
एकादश्याधिकतया यन्नाच्चरणाभिधानाच्च ।

तथाच भविष्योत्तरे,—

जयन्त्यामुपवासस्तु महापातकनाशनः ।

सर्वैः कार्यैः महाभक्त्या पूजनीयस्तु केशवः ॥

अकुर्वन् निरयं याति यावदिन्द्रास्तुर्दृश ।

फलश्रवणात् काम्यत्वञ्चास्येत्यर्थः । एवञ्चोपवाससमर्थस्य एका-  
दशीवदनुकल्पविधिर्द्रष्टव्यः । भाद्रमासोऽत्र पौर्णमास्यन्त एव  
सर्वत्र तथैव सकलतिथिकृत्याभिधानात् । अतएव मुख्यचान्द्राभि-  
प्रायेण श्रावणेऽपि विष्णुपुराणे उक्तम्,—

प्राष्टट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामह निशि ।

उत्पत्स्यामि<sup>१</sup> नवम्याञ्च प्रसूति त्वमवाप्स्यसि ॥

भविष्ये,—

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिण्या सह संयुता ।

भवेत् प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ॥

जयन्त्यामुपवासन्तु कृत्वा योऽभ्यर्चयेद्धरिम् ।

तस्य जन्मशतौद्धूत पापं नाशयतेऽप्युतः ॥

शरीरं मानसं वाग्जं पापं यत्समुपावर्जितम् ।

कौमारे यौवने वाल्ये वार्द्धके च विशेषतः ॥

तत्पापं शमयेत् कृष्णस्तिथावस्थां सुपूजितः ।  
 उपवासो जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः ॥  
 तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं जयन्त्यां यत्कृतं भवेत् ।  
 धनधान्यप्रदा पुण्या सर्वपापहरा शुभा ॥  
 समुपोध्या जनैर्यत्नाज्जयन्ती नाम चाष्टमी ।  
 जयन्त्या उपवासस्तु महापातकनाशनः ॥  
 स कार्यः परया भक्त्या पूजनीयश्च केशवः ।

अत्र समुपोध्या जनैर्यत्नादित्यनेन च नित्यत्वं दर्शितम् ।

भविष्योत्तरे,—

सिंहराशिगते सूर्य्यं गगने जलदाकुले ।  
 मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्द्धरात्रके ॥  
 शशाङ्के वृषराशिस्थे नक्षत्रे रोहिणीयुते ।  
 वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् ॥  
 सुहृर्त्तो विजयो नाम जयन्ती नाम शर्व्वरी ।  
 एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन ॥  
 सप्तजन्मकृतात्पापात् मुच्यते नात्र संग्रहः ।

सिंहराशिगते सूर्य्यं इत्यनेनैव प्राप्तौ मासि भाद्रपद इति चान्द्र-  
 भाद्रपरम् । तेन कदाचित् सौरश्रावणेऽपि भवति । जयन्तीयोगस्तु  
 सिंहराशिगते सूर्य्य एव भवति न तु सौरश्रावणे विशेषविधानात्  
 अन्यथा वैयर्थ्यात् । नक्षत्रे रोहिणीयुते इति, सप्तविंशतिं वा विभ-  
 क्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य भागा नक्षत्राणि तन्मध्ये रोहिण्यधिष्ठितो  
 यो भागस्तत्र गते शशाङ्के सतीत्यर्थः । सप्तजन्मकृतपापक्षयः पुनः

पूजनासामर्थ्यात् केवलोपवासेनैवेत्यर्थः । यद्युपवासासमर्थो रात्रावर्चनं  
कृत्वा हविष्यादिकं करोति तथापि १जन्मदयार्जितपापं नाशयति ।

यथा भविष्ये,—

रोहिण्यामर्द्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् ।

तस्यामर्चयन् सौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मकम् ॥

अतएव रात्रौ पूजा कार्या ।

अर्द्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये तथा ।

सोपवासो हरेः पूजां कृत्वा तत्र न सौदति ।

इति पूर्वोक्तवचनाच्च ।

रात्रौ च जागरस्तत्र नृत्यगीतसमाकुलः ।

कृष्णस्तत्र च सपूज्यो यशोदा देवकी<sup>१</sup> तथा ॥

इति ब्रह्मपुराणवचनाच्च ।

कृष्णाष्टम्यान्तु रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरेः ।

इति गरुडपुराणवचनाच्च ।

जयन्तीयोगाभावे तु पूर्वाह्नः एवाष्टम्यां पूजेति । तत्र यदि  
पूर्वदिने जयन्तीयोगो लभ्यते तदा सप्तमीविद्धापि कार्या योगस्य  
बलीयस्त्वात् । यदि च दिनद्वये जयन्तीयोगस्तदा युग्मादरेण  
व्यवस्था । यदा तु एकस्मिन् दिने रात्रिमात्रे तिथियोगो नक्षत्रयो-  
गश्च, परस्मिन् दिने रात्र्यर्द्धे तिथिमात्रयोगस्तदा नक्षत्रानुरोधात्  
रात्र्यर्द्धयोगं विहाय रात्रिमात्रयोगोऽभ्यर्हणीयः ।

१ ख, ग, जन्मत्रयार्जितम् ।

२ ख, देवकी ।

यथा भविष्ये,—

कार्या बिद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमौ ।

तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिमान्ते च पारणम् ॥ इति ।

तथा विष्णुधर्म,—

सुहृत्तमप्यहोरात्रे यस्मिन् युक्तं प्रदृश्यते ।

अष्टम्या रोहिणीष्टचं तां सुपुण्यामुपोषयेत् ॥

यदा चैकस्मिन् दिने रात्रौ नक्षत्रतिथियोगः अपरदिने दिवा नक्षत्रतिथियोगस्तदा रात्रौ नक्षत्रस्य वीर्यवत्वात् रात्रौ नक्षत्र-योगोऽभ्यर्हणीयः ।

यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह ।

इति वक्ष्यमाणवचनात् ।

यदि चोभयदिने रात्रौ नक्षत्रतिथियोगो नास्ति तदा यस्मिन् दिने दिवा नक्षत्रयोगस्तत्र नक्षत्रानुरोधात् निर्विवादैव व्यवस्था । यदा च दिनद्वये रात्रौ नक्षत्रयोगस्तदाऽस्तसम्बन्धेन व्यवस्था ।

यथा विष्णुधर्मोत्तरे,—

उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।

यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह ॥

यदा च दिनद्वय एवास्तसम्बन्धेन नक्षत्रयोगस्तदा युग्मादरेण व्यवस्था एतन्मूलकमेव “सा सर्वापि न कर्त्तव्या सप्तमीसहिताष्टमौ” इति मदनपारिजातलिखितपद्मपुराणवचनम् । यत्र च बुधवारे

प्रातः किञ्चिदष्टमी अनन्तरं नवमीक्षयः तिथिद्वयञ्च रोहिणीयुक्तं  
स्यात् तदा पूर्णमष्टमीं विहाय सैवार्हणीया ।

यथा स्कन्दपुराणे,—

उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ।

भवेत्तु बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्चसंयुता ॥

अपि वर्षशतेनापि लभ्यते चाथवा न वा ।

नवमीक्षये सत्येव संयोगः, उदये किञ्चिदष्टमीति विशेषवि-  
धानात् सकला यदीत्यभिधानाच्च ।

अतएव अपि वर्षशतेनैव लभ्यते इत्येतदप्युपपद्यते अन्यथा प्रायेण  
बुधवारो नवम्यां लभ्यत एवेति तत्प्राथम्यं । जयन्तीति सर्व्वतो वल-  
वती सर्व्वमुनिभिस्तत्र भगवज्जन्माभिधानात् सर्व्वतः फलाधिक्य-  
श्रवणाच्च ।

प्रेतयोनिगतानाञ्च प्रेतत्वं नाश्रितञ्च तैः ।

यैः कृता श्रावणे मासि रोहिणीसहिताष्टमी ॥

किं पुनर्बुधवारेण सोमवारे विशेषतः ।

किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥

इति पद्मपुराणवचनं, तस्यायमर्थः । श्रावणे मासौति मुख्य-  
चान्द्रापेक्षया, यैः कृतेति नाथ विधिः । किन्तु ।

समुपोऽथा जनैर्यद्वात् जयन्ती नाम शर्व्वरी ।

इत्यादि क्लृप्तविधेरेव फलकथनं अतो यः—किं पुनरित्यनेन  
फलातिशय उक्तः, स च जयन्तीयोगस्यैव, पृथग्विधिकल्पनागौर-  
वात् अतएव वारयोगे फलातिशयमुक्त्वा पुनरपि किं पुनरित्यनेन

च नवमीयोगेऽपि पृथक् फलातिशय उक्तः । महार्णवेऽपि बुधवार-  
योगो गुणफलमित्युक्तम् ।

अन्ये तु स्कन्दपुराणवचनैकवाक्यतया एतद्वचनमपि नवमीचय-  
विषयं पृथग्विधिकल्पनागौरवादिति वदन्ति ।

उभयदिने नचत्रप्राप्तौ यस्मिन् दिने रात्रियोगस्तदभ्यर्हणीयम् ।

जावालः,—

नक्तादित्रययोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते । इति ।

तथा ब्रह्मवैवर्ते,—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी ।

एताः परयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥

तथा विष्णुरहस्ये,—

अष्टमी शिवरात्रिश्च कार्यं भद्रजयान्विते ।

कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्याच्च पारणम् ॥ इति ।

यदि च नचत्राप्राप्तौ दिनद्वये एव रात्रौ तिथियोगस्तदाऽस्त-  
सम्बन्धेन व्यवस्था ।

तथाच भविष्ये,—

अस्त्राभे रोहिणीभस्य कार्याष्टम्यस्तगामिनी ।

तत्रोपवासः कर्त्तव्यस्तिथ्यन्ते पारणं स्मृतम् ॥ इति ।

एतेन 'जयन्त्यादियोगोऽधिकतम इत्यर्थः । अत्र पारणा तिथि-  
भान्ते कार्या ।

यथा भविष्ये,—

कायेन मनसा वाचा यत्पुण्यं समुपाज्जितम् ।

तिथिस्त्रयोदश हन्ति नचत्रच्च चतुर्दशम् ॥

तस्मात् प्रयत्नतः कार्यं तिथिभान्ते च पारणम् ।

त्रयोदशं त्रयोदशजन्मकृतमित्यर्थः ।

ब्रह्माण्डे,—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां य' कुर्यात् पारणं कश्चित् ।

हन्यात् पुराकृत पुण्यमुपवासार्जितं पुनः ॥

तस्मात् प्रयत्नतः कार्यं तिथिभान्ते च पारणम् ।

रात्रौ न पारणं कुर्यात् ऋते वै रोहिणीव्रतात् ॥

तत्र निश्चयि तत् कुर्याद्विज्जयित्वा महानिग्रामम् ।

कश्चित् कदाचिदित्यर्थः, अत्र अथेत्यनेन पृथक् पृथक् तिथि-  
नचत्रयोर्निन्दार्थवादादुभयान्त एव पारणा न लेकस्थान्ते ।

अथमर्थः, भोजनरूपायाः पारणाया रागप्राप्तत्वान्न तत्र विधिः  
किन्तु निन्दाश्रवणात् जन्माष्टम्यामुपोषितोऽष्टम्या रोहिण्याञ्च पारणं  
न कुर्यादिति निषेधविधिद्वयम् ।

१[न च रोहिणीयुक्ताष्टम्या पारणं न कुर्यादित्येक एव  
विधिः केवलाष्टम्यामुपवासे तस्यां पारणाप्रसङ्गात् ।]

न च रोहिणीयुक्ताष्टम्यां केवलाष्टम्याञ्च न कुर्यादिति  
निषेधद्वयं, नचत्राधिकतिथौ भवदभिमतयाः पारणाया विरोधा-  
पत्तेः, किञ्च पृथगेव द्वयोर्निन्दाश्रवणान्तदनु रूपमेव निषेधद्वय

न्याय्यं न तु विशिष्टयोर्निषेधकल्पना, अश्रुतत्वात् गौरवाच्च ।  
 कुर्यादिति वचनन्तु यथावसरं व्याख्यास्यते ।  
 पारणेति ।

तथा च हेमाद्रिलिखितं वचनम्,—

तिथ्युचयोर्ददा क्केदो नचत्रस्यान्त एव वा ।

अर्द्धरात्रे ततः कुर्यात् पारणं त्वपरेऽहनि ॥

अर्द्धरात्रं महानिशा तत्र भोजननिषेधात् । यदा यन्ति ।  
 अर्द्धरात्रे महानिशायासुभयोस्तिथ्युचयोक्केदोऽन्तः स्यात्,  
 त्युपलक्षणं द्वयोरेकस्यान्तो वा महानिशि स्यात्तत्तत्समादिवसाद-  
 परेऽहनि प्रातस्तृतीयेऽहनि पारणं कुर्यादित्यर्थः, यत्तदोरेकार्थं  
 प्रत्याथकत्वव्युत्पत्तेः । एतेनोपवासदिनादपरेऽहनीति यदाधुनिकेन  
 व्याख्यातं तत्परास्तं अपरपदवैयर्थ्यापत्तेः ।

यत्तु,—

भान्ते कुर्यात्तिथेर्वान्ते शस्तं भारत पारणम् ।

इत्यग्निपुराणं, तन्नचत्रासम्बन्धे तिथ्यन्ते पारणविधायकम् ।

अष्टमी शिवरात्रिश्च कार्यं भद्रजयान्विते ।

व्रतोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्यात्तु पारणम् ॥

इति विष्णुवचनसमानार्थ<sup>१</sup>, अथवा वाग्रब्दस्वार्थं यदा पारणा-  
 दिने द्वयोरन्यतरनिर्गमे कदाचिद्भान्ते कदाचित्तिथ्यन्ते च द्वयो-  
 र्मध्ये यदधिकं तदन्ते पारणेति वचनार्थः ।



यत्तु,—

। रोहिणीसहिता चेयं विदग्धिः समुपोषिता ।

वियोगे पारणं कुर्युर्मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥

सांयोगिके व्रते प्राप्ते यत्रैकोऽपि<sup>१</sup> वियुज्यते ।

तत्रैव पारणं कुर्यादिवं वेदविदो विदुः ॥

इति नामशून्यं वचनं, यदि साकर स्यात्तदायमर्थः,— प्रकृतयो रोहिण्यष्टम्योर्द्वयोरेव वियोगे क्वेदेऽन्त एव पारणमिति ब्रह्मवादिनां मतं वेदवादिनान्तु मिलितयोर्द्वयोरेकस्यान्तेऽपि पारणमिति । एतच्चात्यन्ताशक्तविषयं मन्तव्यं महार्णवोऽप्येवमिति ।

भविष्योत्तरे,—

पार्थ तद्विवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् ।

उपवासस्य नियमं गृह्णीयादिधिपूर्वकम् ॥

ॐ वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।

उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ॥

अथ कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम् ।

अर्चयित्वा उपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि ॥

ततः स्नात्वा तु पूर्वाह्ने नद्यादौ विमले जले ।

देव्याः सुग्रीभनं कुर्याद्विवक्षाः सूतिकागृहम् ॥

पटुमङ्गलमङ्गीतमङ्गुलं कलसान्वितम् ।

[वक्त्रि-वारि-लौहखड्ग-यूप-च्छागसमन्वितम्<sup>२</sup> ॥]

१ क, ग, पुस्तकद्वये, यस्त्रैकोऽपि ।

२ ग पुस्तके, चिह्नितचरणद्वयमास्ति ।

द्वारि विन्यस्तमुषलं रचितं रक्षपालकैः ।  
 तन्मध्ये प्रतिमाः स्थाप्याः काञ्चनादिविनिर्मिताः ॥  
 प्रतप्तकाञ्चनाभासा देवकी च यशस्विनी ।  
 माञ्चापि वालकं सुप्तं प्रसूता स्तनपायिनम् ॥  
 यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ।  
 ताञ्चापि पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ॥  
 कुष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्दाडिमौफलैः ।  
 बीजपूरैः पूगफलैर्लकुचैस्तपुषैस्तथा ॥  
 कालदेशोद्भवैर्हृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ।  
 स्थाण्डिले स्थापयित्वा तु मचन्द्रां रोहिणीं तथा ।  
 देवकीं वसुदेवञ्च यशोदां नन्दमेव च ।  
 चण्डिकां वलदेवञ्च पूज्य पापैः प्रमुच्यते ॥

ब्रह्मपुराणे,—

कृष्णस्तत्र च सम्पूज्यो यशोदा देवकी तथा ।  
 वसुदेवश्च नन्दश्च वलदेवश्च चण्डिका ॥  
 गन्धैः पुष्पैस्तथा पिष्टैर्यवगोधूमसम्भवैः ।  
 सगोरसैर्मक्ष्यभोज्यैः फलैर्वज्रविधैरपि ॥  
 पूजामन्त्रस्तु गरुडपुराणोक्तः प्रयोगे वक्ष्यते ।

भविष्ये,—

अर्द्धरात्रे वसोधारां पातयेद्गुडसर्पिषा ।  
 चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं सारन् ॥  
 शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।

जानुभ्यामवनीङ्गत्वा चन्द्रायार्थं निवेदयेत् ॥  
 क्षीरोदार्णवसम्भूत अग्निनेत्रसमुद्भव ।  
 गृहाणार्थं शशाङ्केन रोहिण्या सहितो मम ॥  
 ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्य ज्योतिषां पतये नमः ।  
 नमस्ते रोहिणीकान्त सुधावास नमोऽस्तु ते ॥  
 एवं कृत्वा तथा रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ।  
 यथा मम तथा कार्य्या भगवत्या महोत्सवः ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।  
 हिरण्य काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च ॥  
 यद्यदिष्टतम लोके कृष्णो मे प्रीयतामिति ।  
 एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् ॥  
 नरो वा यदि वा नारी यथोक्त फलमाप्नुयात् ।  
 पुत्रसन्तानमारोग्य धनधान्यर्द्धिमद्गृहम् ॥  
 पर्जन्यः कामवर्षी स्यादौतीभ्यो न भय भवेत् ।  
 सम्यर्केणापि यः कश्चित् कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ॥  
 विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थ न शशयः ।  
 यथोक्त शतजन्मपापक्षयादि ।

अथ प्रयोगः ।

प्रातर्दन्तधावन कृत्वा वासः परिधाय द्विराचम्य सङ्कल्पं कुर्यात् ।  
 ॐ वासुदेव समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।  
 उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम् ॥  
 अथ कृष्णाष्टमीं देवी नभश्चन्द्रसरोहिणीम् ।

अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि ॥

एवं सङ्कल्प्य यथाविधिकृतस्नानो देवक्याः सूतिकागृहं धात्वा ।  
तत्र काञ्चनादिनिर्मितायां देवकीकृष्णयोर्यशोदाचण्डिकयोश्च प्रति-  
मायां सर्वतोभद्रमण्डले शालग्रामे वा पूजयेत् । तत्र प्रथमं भूताप-  
सारणं कृत्वा आसने उपविश्य कृतभूतशुद्धिः प्राणायाम मातृका-  
न्यास-केशवादिन्यासान् कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

आचक्राय स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा ॥

सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् ।

त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां ऊँ ।

असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां फट् ॥

आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः ।

विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा ॥

सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट् ।

त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय ऊँ ।

असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् ॥

इति तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कुर्यात् ।

अथ वा ॐकारेण कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

ततः पूर्ववत्पौठन्यास कृत्वा देव ध्यायेत् ।

बालमिन्दौवरश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।

स्निग्धकुन्तलमभिन्नमौवर्णमुकुटोज्ज्वलम् ॥

चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।

श्रीवत्सवचस भ्राजत्कौस्तुभ वनमालिनम् ॥  
 काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवामसम् ।  
 हारकेयूरकटकवमनाद्यैरलङ्कृतम् ॥  
 शङ्खचक्रगदापद्मराजहुजचतुष्टयम् ।  
 ब्रह्मादिभिः सुरगणैः स्तूयमानपदाम्बुजम् ॥  
 देवक्या वसुदेवेन सम्भ्रमानस्रमूर्तिना ।  
 विस्मयोत्फुल्लनेत्राभ्यां वीक्ष्यमाणमुत्ताम्बुजम् ।  
 स्मरेत् स्मेरमुख देवं गोविन्दमजमव्ययम् ॥

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिरभ्यर्च्य आत्माभेदेन सच्चिन्ध  
 पूर्ववदर्थं सस्याप्य पाद्यमाचमनीयञ्च स्थापयेत् । ततः प्रतिमायां  
 मण्डले वा शालग्रामे वा पूर्ववत् पीठपूजां विधाय पुनर्देवं  
 ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिना वहन्नासापुटेन तेजोरूप भगवन्तं प्रतिमादि-  
 ध्वारोप्य “ॐ तद्विष्णोः परमं पदमिति मन्त्र पठन्” भगवन् श्रीकृष्ण  
 द्वाहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितो भव सन्निरुद्धो भव प्रसन्नो  
 भवेति यथाक्रममावाहनस्थापनसन्निधापनसन्निरोधनसम्मुखीकरण-  
 मुद्राः प्रदर्श्य देवताङ्गे षडङ्गन्यास कृत्वा श्रवणुण्डनामृतीकरणपर-  
 मीकरणमुद्राः प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा ।

ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय  
 नमो नमः । इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलि दद्यात् अनेनैव मन्त्रेणासनं  
 दत्वा “स्वागतं ते” इति षट्पा तेनैव मन्त्रेण पाद्याचमनीयार्घ्यमधुपर्कं  
 पुनराचमनीयानि दत्वा । “ॐ योगाय योगेश्वराय योगपतये  
 योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः” इति स्नानीयं दत्वा यज्ञाये-

त्यादि पूर्वाक्तमन्त्रेण वस्त्रालङ्कारगन्धपुष्पधूपदीपफलमूलदधिदुग्धा-  
न्नव्यञ्जनपरमान्नपिष्टकमोदकादीनि नैवेद्यादीनि दत्त्वाचमनीयं  
ताम्बूलं चन्दनञ्च दत्त्वा शङ्खघण्टादिक वादयित्वा आवरणानि  
पूजयेत् ।

अग्न्यादिकोणकेशरेषु ।

आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः ।

विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरसे नमः ।

सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट् शिखायै नमः ।

त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय ऊ कवचाय नमः ।

चतुर्दिक्षु,—

असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्राय नमः ।

ततः पूर्वाद्यष्टपत्रेषु,—

रोहिणीं चन्द्रं देवकीं वसुदेवं यमोदां नन्दं चण्डिकां वस-

देवञ्च गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः पूजयेत् ।

ततः खखदिक्षु,—

इन्द्राय अग्नये यमाय नैर्ऋताय वरुणाय वायवे सोमाय

ईशानाय अनन्ताय ब्रह्मणे नमः ।

तदाह्ने,—

वज्राय शक्राय दण्डाय खड्गाय पाशाय गदायै शूलाय चक्राय  
पद्माय नमः ।

ततोऽष्टादशाक्षरं दशाक्षरं वा गोपालमन्त्रं जपित्वा जपं समर्थं  
ग्रहण्य स्वयात् ।

तरुङ्गे,—

अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।  
 वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥  
 वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ।  
 दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥  
 गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।  
 अधोक्षजं जगद्धीजं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ॥  
 अनादिनिधनं देवं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ।  
 नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥  
 पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषणम् ।  
 श्रीवत्साङ्गं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥  
 प्रपद्येऽहं सदा देवं सर्वकामप्रसिद्धये ।  
 यं देवं देवकौ देवी वसुदेवादजीजनत् ॥  
 भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।  
 नामान्येतानि सङ्कीर्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्ततः ॥  
 चाहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात् ।  
 चाहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवाद्धरे ॥  
 दैवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् ।  
 दुर्गतांस्त्रायसे<sup>१</sup> विष्णो ये स्मरन्ति सकृन्नराः ॥  
 सोऽहं देवातिदुर्दत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ।

पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे ॥

चाहि मां देव देवेश त्वामृतोऽन्यो न रक्षिता ।

इति स्तुता,—

ॐ विश्वाय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः,  
इति मन्त्रेण देवं स्थापयित्वा ।

ॐ धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय  
नमो नमः इति मन्त्रेण यथाशक्ति होमं कृत्वा ॐ वसोः  
पवित्रमसीति मन्त्रेण दृतशुद्धाभ्यां वसोर्धारां दत्वा चन्द्रोदये  
सति—

शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् ।

जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥

ॐ चौरोदार्णवसम्भूत अचिनेचसमुद्भव ।

गृहाणार्घ्यं शशाङ्केमं रोहिण्या सहितो मम ॥

ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।

नमस्ते रोहिणीकान्त सुधावास नमोऽस्तु ते ॥

ततः प्रातरुत्थाय नवम्यां स्नात्वा भगवन्तं यथाविधि सम्पूज्य  
विशेषतश्चण्डिकां वस्त्रोपकरणैः पूजयित्वा “शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु”  
इति सर्वान् देवान् विसृज्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणां दत्वा  
कृष्णो मे प्रीयतामिति काञ्चनवस्त्रादिकं तेभ्यो दत्वा ब्राह्मणैः सह  
“ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो  
नमः” इति मन्त्रेण पारणां कुर्यात् ।

इति जन्माष्टमीविधिः ।



गारुडे,—

भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां युगादौ आद्धकचरः ।

गङ्गायां पिण्डदानेन समं फलमवाप्नुयात् ॥

भविष्ये,—

भाद्रे मास्यक्षिते पक्षे अघोराख्या चतुर्दशी ।

तामुपोष्य नरो याति शिवलोकमयत्नतः ॥

तस्यामनाद्युते देशे जागरित्वा शिवार्चनम् ।

ये कुर्वन्ति हरस्तेषां प्रीतये भुक्तिमुक्तिदः ॥

अत्र संवत्सरप्रदीपः,—

अथ च सौरा भाद्रः ।

आवणे मासि या कृष्णा तिथिः स्यात्तु चतुर्दशी ।

दयिता सान्नाघोरस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥

इति श्रैवागमात् । यतो मुख्यचान्द्रआवणस्य कृष्णचतुर्दशी

सिंहार्क एव लभ्यत इति ।

तद्युक्तं यदा भाद्रो मलमासस्तदा कर्कटार्क कृष्णचतुर्दशी-

सम्भवात् । वस्तुतस्तु श्रैवागमे आवणपदोपादानात् गौणभाद्र एव ।

मुख्यआवणकृष्णपक्षस्य गौणभाद्रीयत्वात् तेन कदाचित् कर्कटार्क-  
ऽप्यघोरचतुर्दशीति ।

यत्तु,— सिंहराशिगते सूर्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

अघोरेति समाख्याता सर्वपापप्रणाशनी ॥

इति भविष्योत्तरवचनं तत् प्रायिकसिंहार्कसम्बन्धादिति । अत्र

तिथिद्वये व्यवस्था प्रागेवोक्ता ।

मरीचिः,—

मासे नभस्यमावस्था तस्यां दर्भचयो मतः ।

अथातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ॥

अथातयामा अजीर्णाः सर्वदा कर्मक्षमा इत्यर्थः । अत्र नभ-  
सीति मुख्यचान्द्रव्यवस्थया, मरीचिवचनस्य गौणश्रावणपरत्वे प्रमाणा-  
भावात् स च कृष्णपक्षो गौणभाद्रपद इव । अतएव महार्णवे  
भाद्रपदस्य रोहिण्यष्टम्यनन्तरं लिखितमिदं वचनम् । आधुनिकेन  
तु ग्रथनानन्तरकृष्णपक्षे लिखितमशुद्धमेव । अवैवालोकाभावात्सा-  
व्रतमाचरन्ति पठन्ति च ।

भाद्रे मासि समारभ्य यावद्वर्षचतुष्टयम् ।

अमावस्यामभिव्याप्य दीपं दत्वा तु भक्तिः ॥

प्रतिमासं सलक्ष्मीकं वासुदेवं समर्चयेत् ।

नरकं सोऽन्वतामिसं त्यक्त्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥

भविष्ये,—

गुडपूपास्तु दातव्या मासि भाद्रपदे सिते ।

तृतीयायां पायसञ्च वासुदेवस्य तुष्टये ॥

भविष्ये,—

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु सिंहे चन्द्रस्य दर्शनम् ।

मिथ्याभिग्रसनं कुर्यात्तस्मात् पश्येन्न तं तदा ॥

अत्र सिंह इत्युपादानात् सौरभाद्रपदमिदम् ।

तथा सिंहार्काधिकारे ब्रह्मपुराणे,—

वासुदेवोऽभिग्रस्तस्तु सुधाकरमरीचिषु ।

स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनुष्यानापतेत सः ॥

चतुर्थ्यामुदितं चन्द्रं प्रमादादौक्ष्य मानवः ।

पठेद्भात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वायुदङ्मुखः ॥

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्भवता हतः ।

सुकुमारक मारोदीप्तव ह्येष म्यमन्तकः ॥

अद्यापि स प्रवादः मनुष्यान्नापतेत मनुष्यके प्रवर्तते इत्यर्थः ।

अत्र चन्द्रकरस्पर्शेऽपि दोष उक्तः । भात्रेयिकावाक्यमाह सिंह इति । अनेन मन्त्रितं जज्ञमपि पेयमित्याचारः ।

तथा संवत्सरप्रदीपे,—

पञ्चाननगते भानौ पक्षयोर्भयोरपि ।

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेचितव्यः कदाचन ॥

पञ्चाननः सिंहः । महार्णवेऽपि गौरकृत्यमिदमित्युक्तं । पूर्वोक्त ब्रह्मपुराणे चास्मिन् वचने च उदितपदाच्चतुर्थ्यामप्येव उदयाचलं प्राप्तश्चन्द्रः पञ्चम्यामपि नेचितव्यः तृतीयोदितस्तु चतुर्थ्यामपि द्रष्टव्य इत्यर्थः । अन्यथा वैयर्थ्यात् । न च चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रश्चतुर्थ्यां नेचितव्य इत्यावृत्तिश्च कल्पनीया अन्वितस्य पुनराकाङ्क्षा-विरहात् ।

तथा च श्रिष्टाः,—

हरिणा दीयते ताली भाद्रे मासि सितासिते ।

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेचितव्यः कदाचन ॥

अत्र च वचनद्वये पक्षद्वयोक्तेर्भविष्यपुराणे शुक्लपक्ष इति निन्दातिशयपरम् ।

तथाच राजमार्त्तण्डे,—

भाद्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थीं स्वातियोगतः ।

करोति किलिबषं घोरं दृष्टश्चन्द्रो न संशयः ॥

करचिन्नानिलर्क्षेषु हरौ सूर्य्यं चतुर्थिका ।

हरिताली समाख्याता रुद्राणीप्रीतिदा तिथिः ॥

अत्र घोरमित्यनेन शुक्ले निन्दातिशय उक्तः, अत्रापि भाद्र-  
मासीति सौरपरं हरौ सूर्य्यं इत्युपसंहारे संज्ञाभिधानात् । करो  
हस्ता, अनिलः स्वातो रुद्राणीप्रीतिदेत्यनेनात्र पार्वती पूजये-  
दित्यर्थः । भाद्रशुक्लचतुर्थीं तु शिवाख्या प्रागुक्ता ।

शुक्लपक्षमुपक्रम्य भविष्योत्तरे,—

तथा भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां अद्रघान्वितः ।

यस्त्रालिख्य नरो नागान् कृष्णवर्णादिवर्णकैः ॥

पूजयेद्गन्धमाल्यैश्च सर्पिर्गुगुलुपायसैः ।

तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तचकादयः ।

आसप्तमात् कुलान्तस्य न भयं नागतो भवेत् ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नागान् संपूजयेन्नरः ॥

तचकादयः प्रागुक्तनागाः । उभयदिनलाभे पञ्चमीयं षष्ठी-  
युक्तैव कार्या ।

पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद ।

इति ब्रह्मवैवर्त्तवचनं नागपञ्चमीविषयमिति प्रागुक्तम् ।

तथा,— येयं भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी भारतसत्तम ।

स्नानदानादिकं सर्वमस्यामचयमुच्यते ॥

भविष्ये,—

भाद्रे मामि सिते पचे सप्तम्यां नियमेन या ।  
स्नात्वा शिवं लेखयित्वा मण्डले तु महात्मिकम् ॥  
पूजयेत्तु तदा तस्या दुष्प्रापं नैव विद्यते ।  
इदमेव कुक्कुटीमर्कटौव्रतमिति ख्यातम् ।

भविष्ये रुद्र उवाच,—

मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां शुक्रपचे नराधिप ।  
स्नापयित्वा तु मा भक्त्या पयसा च हतेन च ॥  
अपामार्गे तु कृत्वा तु पूजां मम विधानतः ।  
हंसयानसमाखुडो मम लोकं व्रजेदिति ॥

इयमेव दूर्वाष्टमी ।

गारुडे,—ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः ।  
दूर्वां गौरीं गणेशञ्च फलाकारं शिवं यजेत् ॥  
फलव्रीह्यादिभिः सर्वैः शम्भुं नमः शिवाय च ।  
अनग्निपक्वमश्रीयान्मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥  
अनग्निपक्वेन पारणमित्यर्थः ।

भविष्ये,—

दूर्वाष्टमीव्रतं पुण्यं यः करोतीह मानवः ।  
न तस्य क्षयमायाति सन्तानं साप्तपौर्णम्यम् ॥  
नन्दते वर्द्धते नित्यं यथा दूर्वा तथा कुलम् ।

तस्यामष्टम्यामारभ्य कृष्णाष्टमीपर्यन्तं लक्ष्मीव्रतमाचरन्तीत्या-  
चारः, मूलं न दृष्टमित्युपेक्षितम् ।

मासि भाद्रपदे या स्यान्नवमी बज्जलेतरा ।  
 तस्यां सम्पूज्य वै दुर्गामश्वमेधफलं लभेत् ॥  
 द्वयमेव तालनवमीति ख्याता ।

तथा,—

प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादशां सितेतरा ।  
 पार्श्वदानं भवेद्विष्णोर्महापूजा प्रवर्त्तते ॥  
 द्वयमेकादशी दशमीविद्धापि अवणायुक्ता चेदुपोष्या ।  
 यथाग्निपुराणे,—

दशम्यैकादशी विद्धा नोपोष्या सा भवेत् कश्चित् ।  
 अवणेन तु संयुक्ता सा शुभा सर्वकामदा ॥  
 राजमार्त्तण्डे भविष्यपुराणवचनम्,—

अवणेन समायुक्ता मासि भाद्रपदे सिता ।  
 द्वादशी तु महापुण्या नाम्ना तु विजया स्मृता ॥  
 बुधवारेण संयुक्ता कीर्त्तिता सा महाफला ।  
 मध्यन्दिनगते भानौ सुहर्त्तःभिजिति प्रभुः ।  
 यस्यां जातो दितेर्गर्भाद्विष्णुः कपटवामनः ॥  
 तस्यां स्नात्वा विधानेन सर्व्वतीर्थफलं लभेत् ।  
 अर्चयित्वाच्युतं भक्त्या लभेत् पुण्यं दशाब्दिकम् ॥  
 एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् ।  
 न चात्र व्रतलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः ॥

मध्यन्दिनगत इति यत्र दिने मध्याह्ने अवणायुक्तद्वादशीला-  
 भस्तत्रैवोपवासः उभयदिने मध्याह्ने तस्मात्ते युग्मादरात् पूर्व्वदिन

एवेति । पूजापि मध्याह्न एव, बुधवारस्तु शुणफलं । दशाब्दिकमिति दशाब्दकृताच्युतार्चनफलं लभेत्, द्वादशीपारणलहने दोषमाशङ्क्याह न चेति ।

गारुडे,—

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी अवणान्विता ।

महती द्वादशी जेया उपवासे महाफला ॥

कुम्भे सरत्ने सजले यजेत् सौवर्णवामनम् ।

मितवत्तद्युगच्छन्नं कृत्रोपानतृभमन्वितम् ॥

तत्राय विधिः,—

नद्यास्तीरे गृहे वा गोमयोपलिप्ते सर्वतोभद्रमण्डले जलपूर्ण-  
कुम्भं रत्नगर्भे निधाय तदुपरि सुवर्णनिर्मितं वामनं शालग्रामं वा  
संस्थाप्य नद्यादौ स्नात्वा आसने उपविश्य सङ्कल्पयेत् ।

अथेत्यादि-दशाब्दकृताच्युतार्चनफलसमफलप्राप्तिकामः सर्व-  
कामावाप्तिकामो वा अवणद्वादशीव्रतमहं करिष्ये ।

ततो 'भूतशुद्धिप्राणायाम-मातृकान्यास-वेगवादि-न्यामान् कृत्वा  
पूर्वाक्तविधिना द्वादशाचरवासुदेवमन्त्रस्य कराङ्गन्यासौ कृत्वा  
पीठन्यासञ्च विधाय देवं ध्यायेत् ।

पञ्चश्यामः शुभ्रयज्ञोपवीती ।

सत्कौपीनः पीतकृष्णाजिनश्रीः ॥

कृत्री दण्डी पुण्डरीकायताचः ।

पायान्मायावामनत्रयचारी ॥

इति ध्यात्वा मानसैरुपचारैरभ्यर्च्य अर्घ्यस्थापनं कृत्वा कुम्भे पीठ-

पूजां विधाय पुनर्धात्वा आवाह्य पाद्यादिभिर्नैवेद्यान्नैरुपचारैरर्चयेत् । तत्र सद्यतपायसं सुवासितजलपूर्णान् त्रीन् कुम्भांश्च दद्यात् । ततः पुष्पैः प्रत्यङ्गं पूजयेत् ।

यथा गारुडे,—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः ।

श्रीधराय मुखं तद्वत् कण्ठं कृष्णाय वै नमः ॥

नमः श्रीपतये वचो भुजौ वर्मास्त्रधारिणे ।

व्यापकाय नमः कर्चौ केशवायोदरं बुधः ॥

त्रैलोक्यपतये सेट्रं जह्ने सर्वपतये नमः ।

सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्यं द्युतपायसम् ॥

कुम्भांश्च सोदकान् दद्याज्जागरं कारयेन्निशि ।

एवमभ्यर्च्य देवेशं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं वदेत् ॥

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंश्रक ।

अघोरासंचयं(?) कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

प्रीयतां विष्णुरित्युक्त्वा विप्रेभ्यः कलमान् ददेत् ।

एवं संपूज्य गोविन्दं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

ततोऽष्टाङ्गं प्रणम्य स्तुत्वा विमर्जयेत् । तस्यामेव द्वादश्यां शक्रध्वजोत्थानम् ।

भविष्ये,—

द्वादशान्तु सिते पद्मे मासि भाद्रपदे तथा ।

शक्रमुत्थापयेद्भ्राजा विश्वश्रवणवासवैः ॥

ॐ-इन्द्रः सुरपतिः शक्रो वज्रहस्तो महाबलः ।



शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै शक्राय वै नमः ॥  
 वज्रहस्त सुरारिघ्न वज्रनेत्र पुरन्दर ।  
 क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥  
 श्रवणाङ्गरणीं यावत् पूजां कृत्वा समाहितः ।  
 रात्रौ विमर्षयेच्छक्रं मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥  
 सार्द्धं सुरासुरगणैः पुरन्दर शतक्रतो ।  
 उपहार गृहीत्वैवं महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥  
 इन्द्रध्वजसमुत्थानं प्रमादान्न कृतं यदि ।  
 ततो द्वादशमे वर्षे कर्त्तव्यं नान्तरा पुनः ।  
 विश्वमुत्तराषाढा, वासवो धनिष्ठा ॥

राजमार्त्तण्डे,—

नवमे दिवसे दृष्टो राज्ञां शक्रो भयप्रदः ।  
 ततोऽनादृत्य भरणीमष्टम्यां निशि पातयेत् ॥

अथानन्तव्रतम् ।

आयेये,—

आराधिते महेन्द्रे च ध्वजाकारासु यष्टिषु ।  
 ततः शुक्लचतुर्दशमनन्तं पूजयेद्भरिम् ॥  
 कृत्वा दर्भमयं देवं वारिधानीसमन्वितम् ।  
 गन्धपुष्पादिभिर्देवमनन्तं काममाप्नुयात् ॥  
 वारुणेन समायुक्ता स्थादनन्तचतुर्दशी ।  
 तदाचयफलं प्रोक्तमनन्तार्चनसम्भवम् ॥

वारुणं शतभिषा । अचयं कल्पान्तस्थायीति पाश्चात्याः । इदञ्च

गुणफलं, अतो दिनद्वये पूर्वाह्ने व्रतयोग्यकाले यत्र नचत्रलाभ-  
स्तत्रैव दिने व्रतं उभयदिने पूर्वाह्ने नचत्रलाभेऽलाभे वा युग्मा-  
दरेण व्यवस्था ।

भविष्योत्तरे,—

अनन्तव्रतमस्त्यन्यत् सर्वपापहरं शुभम् ।

सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः ॥

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे शुभे ।

तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अत्र प्राचामनुसारतो भविष्यपुराणोक्तानन्तव्रतविधिः ।

नदीतीरे गोमयेनोपलिप्ते पूर्णघटोपरि दर्भमयं देवं स्थापयित्वा  
शालग्रामशिलायां वा सर्वतोभद्रमण्डले वा अनन्तं पूजयेत् ।

तत्र कृतनित्यक्रियः प्रचालितपाणिपाद आचान्तः प्राङ्मुख  
उदङ्मुखो वा उपविश्य खस्ति वाच्य सङ्कल्पं कुर्यात् ।

ॐ अद्येत्याद्यमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्माहं सर्वपापप्रमोचन-  
दारिद्र्यनाशनसर्वकामोपभोगतदुत्तरविष्णुलोकावाप्तिकामश्चतुर्दश-  
वर्षसमाप्यं श्रीमदनन्तव्रतं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य भूतशुद्धिप्राणायाम  
माहकान्यासान् कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय गणेशं पूजयेत् ।

यथा अस्त्राय फडिति ताम्रपात्रं प्रचाल्य नमः इति पूजयित्वा  
गन्धपुष्पाक्षतानि प्रणवेन दत्त्वा गमिति मन्त्रमष्टधा जपेत् ।

ततो गणेशं ध्यायेत् ।

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं

प्रसन्नदन्तदगन्धलुब्धमधुपय्यालोलगण्डस्थलम् ।

दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं  
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु ॥

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिरभ्यर्च्य गणनान्तेति मन्त्रेण  
घटे गणेशमावाहयेत् ।

भगवन् गणेश इहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ<sup>१</sup> सन्निहितो भव  
सन्निरुद्धो भव प्रसन्नो भवेत्यावाह्य पाद्यादिभिः सम्यूज्य मृत्वा  
प्रणमेत् ।

एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम् ।

विघ्ननाशकर देवं हेरम्ब प्रणमाम्यहम् ॥

ततो ध्वजमारोप्य तत्रेन्द्रमावाह्य विशेषतः पाद्यादिभिरभ्यर्चयेत् ।

ॐ चतुर्दन्तगजारूढो वज्रहस्तो पुरन्दरः ।

शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः ॥

इत्यादिपुराणीयं ध्यात्वा,

ॐ इन्द्रस्तु महिमा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान् ।

वज्रहस्तो महावाजस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

एतत्पाद्यं ॐ इन्द्राय नम एवमर्घ्यादिना पूजयेत् ।

ॐ विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ।

पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥

इत्यनेन पुष्पाञ्जलित्रय दत्वा प्रणमेत् ।

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात् । आ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ई तर्जनीभ्यां

खाहा । ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । ऐं अनामिकाभ्यां ऊं । औं कनि-  
ष्ठाभ्यां वौषट् । अः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । आं हृदयाय नमः । ईं  
शिरसे खाहा । ऊं शिखायै वषट् । ऐं कवचाय ऊं । औं नेत्राभ्यां  
वौषट् । अः अस्त्राय फट् इति तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा  
अनन्तं ध्यायेत् ।

फणासप्तान्वितं देवं चतुर्वाङ्गं किरौटिनम् ।

नवाक्षपल्लवाकारं पिङ्गलशश्रुलोचनम् ॥

पौताम्बरधरं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

कराग्रे दक्षिणे यज्ञं शङ्खं तस्याप्यधः करे ॥

चक्रमूर्ध्वं करे वामे गदां तस्याप्यधः करे ।

दधानं सर्वलोकेशं सर्वाभरणभूषितम् ॥

क्षीराब्धिमध्ये श्रीमन्तमनन्तं चिन्तयेत्ततः ।

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिः समूज्य षोडशमिति विभा-  
व्यात्मशिरसि पुष्पं दत्वा अर्घ्यस्थापनं कुर्यात् । अस्त्राय फडिति  
भूमिं प्रोक्ष्य तत्र त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्राधारं विन्यस्य दशकला-  
व्याप्तवक्त्रिमण्डलाय नम इति समूज्य तत्र शङ्खं निधाय तत्र द्वाद-  
शकलाव्याप्तसूर्यमण्डलाय नम इति समूज्य प्रणवेन शुद्धजलेना-  
पूर्य गन्धपुष्पाचतादीनि प्रणवेन विन्यस्य षोडशकलाव्याप्तचन्द्रम-  
ण्डलाय नम इति समूज्य ऊमित्यवगुण्ठ्य अस्त्राय फडिति ताल-  
त्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा धेनुमुद्रया अमृतौकृत्य प्रणवमष्टधा जपेत् ।  
ततः पाद्याचमनीयप्रोक्षणीपात्राणि सामान्यार्घ्यविधिना संस्थाप्य

अर्घ्यजलं किञ्चित्तेषु दत्वा प्रोक्षणीजलेनात्मानं पूजोपकरणञ्च  
त्रिरभ्यक्ष्य कुम्भे मण्डले वा पीठपूजां कुर्यात् ।

ॐ आधारशक्तये नमः ।

१[एवं प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र पूजयेत् ।]

एवं कृष्णाय अनन्ताय पृथिव्यै क्षीरसागराय श्वेतक्षीपाय  
रत्नक्षीपाय कल्पवृक्षाय ।

अग्न्यादिकोणचतुष्टये,—

धर्माय ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय ।

चतुर्दिक्षु,—

अधर्माय अज्ञानाय अवैराग्याय अनैश्वर्याय ।

मध्ये,—

शेषाय पद्माय अं सूर्यमण्डलाय उं सोममण्डलाय मं वह्नि-  
मण्डलाय सं सत्वाय र रजसे तं तमसे आं आत्मने अ अन्तरात्मने  
पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

पूर्वादिदेशरेषु,—

विमलायै उत्कर्षिण्यै ज्ञानायै क्रियायै योगायै प्रज्ञायै सत्यायै  
ईशानायै । मध्ये अनुग्रहायै । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने  
वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः । इति  
पुष्पाञ्जलिना आसनं दत्वा तत्र दर्भमयमनन्त गालयामं वा  
निधाय पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा पूर्ववदननं ध्यात्वा वहन्नासापुटेन

तेजोरूपं स्थापयित्वा प्रणवेन मूर्तिं सङ्कल्प्य भगवन् श्रीमदनन्त  
द्वहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितो भव सन्निरुद्धो भव प्रसन्नो  
भवेत्यावाहन्यादि मुद्राः प्रदर्श्य ।

ॐ आगच्छानन्त देवेश तेजोराशे जगत्पते ।

क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम ॥

इत्यावाह्य,

तस्यागतो दृढं सूचं कुङ्कुमाक्तं सुडोरकम् ।

चतुर्दशग्रन्थियुक्तमुपकल्प्य प्रपूजयेत् ॥

ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।

अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा ॐ नमोऽनन्ताय नम इति  
मन्त्रेण षोडशोपचारैरर्चयेत् ।

अनन्ताय नमस्तुभ्यं सहस्रशिरसे नमः ।

नमोऽस्तु पद्मनाभाय नागाधिपतये नमः ॥ इत्यासनम् ।

पाद्यं गृहाण देवेश शङ्खचक्रगदाधर ।

सृष्टिस्थित्यन्तभूताय अनन्ताय नमोऽस्तुते ॥ इति पाद्यम् ।

सर्वात्मन् सर्वदेवेश सर्वव्यापिन् सनातन ।

अर्घ्यं गृहाण भगवन् कालरूपिन् नमोऽस्तुते ॥ इत्यर्घ्यम् ।

दामोदराय सर्वेषामाराध्याय तनूभृताम् ।

वाञ्छितार्थप्रदायेद् गृहाणाचमनं नमः ॥ इत्याचमनीयं ।

सहस्रबाह्वे चैव सहस्रचरणाय च ।

सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय ते नमः ॥ स्नानीयम् ।

नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारण ।  
 त्रैलोक्यव्यापकानन्त त्राहि मां मधुसूदन ॥ इति वस्त्रम् ।  
 दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवमागरात् ।  
 ब्रह्मसूत्रं सहोत्तर्य गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इति यज्ञोपवीतम् ।  
 पूर्ववदाचमनीयम् । ॐ अनन्तसंसारेत्यलङ्करणम् ।  
 श्रीगन्ध कुङ्कुम दिव्य चन्दनादिमनोहरम् ।  
 विलेपन सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति गन्धम् ।  
 मल्लिकाम्भोजकङ्कारकुन्दपुत्रागपाटलैः ।  
 केतकीयूथिकापुष्पैः स्तुलभीदलमिश्रितैः ॥  
 करवीरैर्जातिपुष्पैश्चम्पकैर्वकुलैः शुभैः ।  
 शतपत्रैश्च देवेश प्रीतो भव जनार्दन ॥ इति पुष्प मान्यञ्च ।  
 वनस्पतिरसैर्दिव्यैर्गन्धाद्यैर्गन्धवत्तमः ।  
 आग्नेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति धूपम् ।  
 आन्यवर्त्तिसमायुक्तं वङ्गिना योजितं शुभम् ।  
 गृहाण दीपकं विष्णो त्रैलोक्यध्वान्तनाशक ॥ इति दीपम् ।  
 अन्नं चतुर्विधं खादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।  
 मया निवेदितं तुभ्यमनन्ताय नमो नमः ॥  
 पायसं कृशरं कौल्यं सुज्ञाञ्च च तथैव च ।  
 अपूपानि निवेद्यानि भक्तानि विविधानि च ॥  
 मया कृतानि सर्वाणि भगवन् प्रतिगृह्यताम् ।  
 इति नैवेद्यम् ।

ततश्चतुर्दशफलानि अनन्तसंसारेति मन्त्रेणोत्सृज्य दद्यात् ।

पूर्ववत् पुनराचमनीयम्,—

पूगफलं नागपत्रं भक्त्या विरचितं विभो ।

कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति ताम्बूलम् ।

ततो दूर्वाक्षतं दत्वा ।

अनन्त कामदेवेश सर्वकामफलप्रद ।

अनन्तडोररूपेण पुत्रपौत्रान् विवर्द्धय ॥

इति गन्धादिना डोरं पूजयेत् ।

अनन्तगुणरत्नाय विश्वरूपधराय च ।

सूत्रयन्त्रिसंख्याय कामरूप नमोऽस्तुते ॥

इति डोराभिर्मर्षणं कृत्वा ।

ॐ अनन्तसंसारमहासमुद्रे

मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।

अनन्तरूपे विनियोजयस्व

अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

मन्त्रेणानेन वै कुर्यात् सुडोरं दक्षिणे करे ।

पुमान् नारी तु बध्नीयात् डोरं वामकरे तथा ।

दारिद्र्यनाशनार्थाय पुत्रपौत्रविद्वद्भ्ये ॥

अनन्ताय इति तुभ्यं धारयाम्यहमच्युत ।

इति डोरधारणम् ।

नमोऽस्तु देवदेवाय विश्वरूपधराय च ।

सृष्टिस्थित्यन्तहैलाय विश्वरूप नमोऽस्तुते ॥

पूर्वडोरविमोचनम् ।



मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।  
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥  
इति पूजां समर्थं अनन्तमसारेति मन्त्रेण नमस्कृत्यात् ।

अथ कथा ।

अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा दुःखकर्षिताः ।  
कृष्णं दृष्ट्वा यथान्यायं प्रतिपूज्येदमब्रुवन् ॥

पाण्डवा उचुः,—

वर्यं दुःखाय सञ्जाताः पृथिव्यां पुरुषोत्तम ।  
कथं मुक्तिर्वदास्माकमनन्तदुःखसागरात् ॥

श्रीकृष्ण उवाच,—

अनन्तव्रतमस्यन्यत् सर्वपापहरं शुभम् ।  
सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणाञ्चैव युधिष्ठिर ॥  
शुक्लपत्रे चतुर्दशं मासि भाद्रपदे तथा ।  
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

युधिष्ठिर उवाच,—

कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो योऽनन्त इति विश्रुतः ।  
किं श्रेष्ठो नागराजो वा अनन्तस्तत्त्वकोऽपि वा ॥  
वासुकिर्वाथ पद्मश्च महापद्मश्च विश्रुतः ।  
परमात्मायवाऽनन्त सदाहो ब्रह्म उच्यते ॥  
क एषोऽनन्तमज्ञो वै तथ मे ब्रुहि केशव ।

श्रीभगवानुवाच,—

अनन्त इत्यहं पार्थ मम ह्यं निबोध वै ।

आदित्यादिप्रचारेण यः काल उपपद्यते ॥  
 कलाकाष्टासुहृत्तादि-दिनरात्रि-शरीररवान् ।  
 पचमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ॥  
 योऽयं कालो मयाख्यातः सोऽनन्त इति विश्रुतः ।  
 सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽस्मि भुवो भारावतारणात् ॥  
 दानवानां विनाशाय वसुदेवकुलोद्भवम् ।  
 अनन्तं विद्धि मां पार्थ कृष्णं विष्णुं शिवं परम् ॥  
 ब्रह्माणं भास्करं शेषं सर्व्वव्यापिनमीश्वरम् ।  
 विश्वरूपं महात्मानं सृष्टिसंहारकारणम् ॥  
 विष्णुरूपो ह्यनन्तोऽस्मि यस्मिन्निन्द्राश्चर्द्दश ।  
 वसवोऽष्टौ द्वादशादित्या रुद्रा एकादश स्रुताः ॥  
 सप्तर्षयः समुद्राश्च पर्व्वताः सरितो द्रुमाः ।  
 नचचाणि दिशो भूमिः पातालं भूर्भुवादिकम् ॥  
 मा कुरुष्वान्न सन्देहं सोऽहं पार्थ न सशयः ।

युधिष्ठिर उवाच,—

अनन्तव्रतमाहात्म्यं वद वेदविदाम्बर ।  
 किं पुण्यं किं फलं तस्य किं दान किञ्च पूजनम् ॥  
 केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।  
 एतत् समस्तं विस्तार्य्य ब्रुह्मनन्तव्रत हरे ॥

श्रीभगवानुवाच,—

आसीत् पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै दिजः ।  
 वग्निष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुरूपाञ्च मृगोः सुताम् ॥

दीक्षा नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना ततः ।  
 तस्याः कालेन संजाता दुहितानन्तलक्षणा ॥  
 ग्रीला नाम सुग्रीला सा वर्द्धते पितृवेष्यानि ।  
 माता च तस्याः कालेन ज्वरदाहेन पीडिता ॥  
 प्रविश्य तु नदीतोये मृता स्वर्गपुर ययौ ।  
 छत्वौर्द्धदेहिक तस्या धर्मोपास्यनकारणात् ॥  
 सुमन्तुश्च ततोऽन्यां वै धर्मपुंमं सुतां पुनः ।  
 उपयेमे च दुर्दशा कर्कशां नामत सुधीः ॥  
 कर्कशा सा च दुःग्रीला नित्यं कलहकारिणी ।  
 अत्यन्तमभवच्छण्डौ मदा परुषभाषिणी ॥  
 मापि ग्रीला पितुर्गृहे गृहार्चनरता वभौ ।  
 कुक्षस्तम्भ-गृहद्वार-देहली-तोरणादिषु ॥  
 चतुर्विधैस्ततो वर्णैर्नीलपीतमितासितैः ।  
 स्वस्तिकैः शङ्खपद्मैश्च सार्चयन्ती मुहुर्मुहुः ॥  
 दृष्ट्वा सुमन्तुना ग्रीला कदाचित् प्राप्तयौवना ।  
 तां दृष्ट्वा चिन्तयामास वरान् विगणयन् भुवि ॥  
 ऋषिषट्त्रैः परितृतः सुमन्तुः प्रत्यभाषत ।  
 कन्यार्थमागतः श्रीमान् कौण्डिल्यमुनिमत्तमः ।  
 ग्रीला ददौ सुमन्तुश्च कौण्डिल्याय शुभे दिने ॥  
 गृह्योक्तवेदविधिना विवाहमकरोच्च सः ।  
 निर्वर्त्योद्वाहिकं कर्म प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥  
 किञ्चिद्गद्रे धनं देयं जामातुः पारितोषिकम् ।

तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोत्थात्य गृहमण्डनम्<sup>१</sup> ॥  
 कवाटं सुस्थिरं कृत्वा पारुष्यमवदद्भृशम् ।  
 होमावशिष्टचूर्णेन पाथेयमकरोद्विजः ॥  
 कौण्डिल्योऽपि विवाह्येनामगमत् प्रातरेव तु ।  
 शीलां सुशीलामादाय गोयानेन स्वमन्दिरम् ॥  
 ततो मध्याह्नसमये संप्राप्तः सरितस्तटम् ।  
 अवतीर्थ दिजस्तत्र स्नानं चक्रे नृपोत्तम ॥  
 तस्यास्तु सरितस्तीरे गोमयेनोपलेपिते ।  
 ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥  
 चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्यानन्तं पृथक् पृथक् ।  
 उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ॥  
 नार्यः किमेतन्मे ब्रुहि कस्यैतद् व्रतमीदृशम् ।  
 ता ऊचुर्घोषितः सर्वा अनन्त इति विश्रुतः ॥  
 तस्यैव देवदेवस्य सर्वकामप्रदं व्रतम् ।  
 साब्रवीद्दहमप्येतं करिष्ये व्रतमुत्तमम् ॥  
 विधानं कीदृशं चास्य किन्दानं किञ्च पूजनम् ॥

नार्य ऊचुः,—

शुक्लपत्रे चतुर्दशां मासि भाद्रपदे व्रतम् ।  
 कर्त्तव्यं सरितस्तीरे तडागे वा सुशोभने ॥  
 स्नात्वानन्त नमस्कृत्य नववस्त्रधरः शुचिः ।  
 शुचौ देशे समाश्लिष्य गोमयेन विचक्षणः ॥

मण्डलं कारयेत्तत्र सर्वतोभद्रमञ्जकम् ।  
 कृत्वा दर्भमयं देव वारिधानीसमन्वितम् ॥  
 पुष्पधूपादिभिर्देवमनन्तं पूजयेद्भूरिम् ।  
 ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणम् ॥

अनन्तससारमहामुद्रे  
 मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।  
 अनन्तरूपे विनियोजयस्व  
 अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

मन्त्रेणानेनार्चयित्वा फलानि च चतुर्दश ।  
 पूषप्रस्यदयस्त्रैव दत्तपक्कं निवेदयेत् ॥  
 अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि योजयेत् ।  
 चतुर्दशग्रन्थियुक्तं पूजयित्वा सुडोरकम् ॥  
 अनन्तससारमन्त्रेण नारी वामकरे पुनः ।  
 दक्षिणे च पुमान् कुर्यात् ध्यात्वानन्तं सनातनम् ॥  
 दक्षिणां विधिवद्वा विप्रान् सन्तोषयेद्भृशम् ।  
 घोऽनन्तस्य व्रतं कुर्याद्वर्षाणि नवपञ्च च ॥  
 सर्वान् कामानवाप्नान्ते विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 सापि तासां कथां श्रुत्वा शीला वज्रा सुडोरकम् ॥  
 व्रतञ्चक्रे तथा ताभिर्दत्तैर्गन्धादिभिस्ततः ।  
 पाथेयश्रेष्ठं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च ॥  
 आजगामाथ संहृष्टा गोदानेन स्वमाश्रमम् ।  
 तेनानन्तप्रभावेन वज्रगोधनसङ्कुलम् ॥

गृहं तस्याः श्रिया युक्तं धनधान्यसमाकुलम् ।  
 मित्रवर्गैः परिवृतं सर्वत्रातिथिसङ्कुलम् ॥  
 शीला माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारैर्विभूषिता ।  
 दिव्यवस्त्रसमाच्छन्ना सावित्रीप्रतिमाऽभवत् ॥  
 कदाचिदुपविष्टसु कौण्डिल्यो वक्त्रिसन्निधौ ।  
 शीलाया वामहस्ते तु दृष्ट्वा बद्धं सुडोरकम् ॥  
 किमिदं डोरकं हस्ते मम वक्ष्याय कल्पितम् ।  
 तामपृच्छत्ततः सा तु भर्तारं पुनरब्रवीत् ॥  
 जगत्पतेरनन्तस्य व्रताङ्गं सूत्रडोरकम् ।  
 यस्य प्रसादाद्धर्म्मज्ञ धनधान्यं गृहे तव ॥  
 इति शीलावचः श्रुत्वा मुनिः क्रोधपरायणः ।  
 कोऽनन्त इति जप्येत द्रुपदा तेन मे धनम् ॥  
 इत्युक्त्वा चित्रवान् वक्त्रौ डोरं हाहेति धावती ।  
 शीला गृहीत्वा तच्छीघ्रं चौरमध्ये समाक्षिपत् ॥  
 तेन कर्म्मविपाकेन तस्य सा श्रीः क्षयङ्गता ।  
 गोधनं तस्करैर्नीतं गृहञ्चाग्निप्रदीपितम् ॥  
 यत्र ये वै गता गेहात्ते तत्रैव च संस्थिताः ।  
 खजनैः कलहो नित्यं वर्जनं तर्जनं तथा ॥  
 अनन्ताचेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ।  
 ततः सञ्चिन्त्य मनसा कौण्डिल्यो मुनिसत्तमः ॥  
 अनन्ताचेपदोषेण मम दुर्गतिरीदृशी ।  
 व्रतं नियमनञ्चैव ब्रह्मचर्यं चरन् द्विजः ॥

विक्कलः प्रययौ पार्थ सोऽरुणं जनवर्जितम् ।  
 तत्रापश्यन् महाचूतं फलितं पुष्पितं तथा ॥  
 वर्जितं पक्षिष्वेन कीटकैश्च विशेषतः ।  
 तमपृच्छद्विजोऽनन्तः कच्चिदृष्टस्त्वया द्रुम ॥  
 चूतद्रुमोऽप्युवाचैनं नानन्तो वीक्षितो मया ।  
 एव निराकृतस्तेन गां ददर्शं सवत्सिकाम् ॥  
 त्वणमध्ये प्रधावन्तौमितस्येतश्च पाण्डव ।  
 सोऽब्रवीद्वेनु मे ब्रुहि किमनन्तस्त्वयेक्षितः ॥  
 गौरप्युवाच कौण्डिल्यं नानन्तो वीक्षितो मया ।  
 ततो ब्रजन् ददर्शाग्रे गोवृषं शादले स्थितम् ॥  
 दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन् किमनन्तस्त्वयेक्षितः ।  
 गोवृषस्तमुवाचैनं नानन्तो वीक्षितो मया ॥  
 ततो ब्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् ।  
 क्वचन कुमुदकङ्कारैः कमलोत्पलमण्डितम् ॥  
 एकन्तु भ्रमरैर्हसैश्चक्रवाकैश्च सेवितम् ।  
 अन्यं पक्षिगणैर्हीनं पद्मसौगन्धिवर्जितम् ॥  
 पुष्करिण्यौ च पप्रच्छ किमनन्तः समीक्षितः ।  
 आवाभ्यां वीक्षितो विप्र नानन्तस्तौ समूचतुः ॥  
 ततो ब्रजन् ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ।  
 खरश्च कुञ्जरः पृष्टः किमनन्तस्त्वयेक्षितः ॥  
 तमूचतुस्तावावाभ्यां नानन्तो वीक्षितः क्वचित् ।  
 तस्मिन् क्षीणेऽथ निर्विन्ने कौण्डिल्ये मुनिमत्तमे ॥

ह्यपयानन्तदेवोऽपि प्रत्यक्षं समुपेत्य तम् ।  
 वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच ह ॥  
 प्रवेशयित्वा स्त्रपुरं गृहीत्वा दक्षिणे करे ।  
 स्वरूपं दर्शयामास दिव्यनारीगणैर्वृतम् ॥  
 सिंहासने सुखासीनं शङ्खचक्राब्जशोभितम् ।  
 गदया गरुडेनापि सेवितं विश्वरूपिणम् ॥  
 १[तं दृष्ट्वा स द्विजो भूमौ दण्डवन्निपपात ह ।  
 पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ॥  
 चाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ।  
 अथ मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ॥  
 यत्तवाङ्घ्रियुगाब्जाग्रे मन्मूर्द्धा भ्रमरायते ।  
 तच्छ्रुत्वानन्तदेवोऽपि ददौ तस्मै वरत्रयम् ॥  
 दारिद्र्यनाशनं धर्मं विष्णुलोकमयाचयम् ।  
 प्रतिगृह्य द्विजोऽप्याह भगवन् किं मयेक्षितम् ॥  
 स चूतवृक्षो धेनुश्च वृषः पुष्करिणीद्वयम् ।  
 कः खरः कुञ्जरो वापि तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥

श्रीभगवानुवाच,—

स चूतवृक्षो विप्रोऽसौ विद्वान् वे वेदगर्वितः ।  
 शिष्येभ्यो नाददद्विद्यां तेनासौ तरुताङ्गतः ॥  
 सा गौ र्वसुन्धरा या तु निष्कला प्रतिपादिता ।



स दक्षस्तत्र विप्रेन्द्र गोवृषो यस्त्वयेचितः ॥  
 धर्माधर्मव्यवस्थेय यच्च पुष्करिणीदयम् ।  
 खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुञ्जरो धर्मविक्रयी ॥  
 ब्राह्मणोऽहमनन्तोऽस्मि वनं संसारसागरः ।  
 इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः सोऽपि गत्वा स्वमाश्रमम् ॥  
 शीलया सह धर्मात्मा भुक्त्वा भोगान् यथेष्टितान् ।  
 अन्ते जगाम च मुनिर्विष्णुलोकमथाक्षयम् ॥  
 एव मया ते कथितं व्रतानां व्रतमुत्तमम् ।  
 चरानन्तव्रतं तत्र वर्षाणि नव पञ्च च ॥  
 सर्वदुःखानि निस्तूर्य्य मामन्ते भववाप्यसि ।

ततो दक्षिणां दत्वा देवं विष्टज्य ब्राह्मणाय पूर्णं फलानि च  
 दत्वा स्वयमपि पूर्णं भक्षयेत् ।

इति भविष्यपुराणोक्तानन्तव्रतं समाप्तम् ।

दुर्गापूजामधिकृत्य देवौपुराणे,—

प्रौष्ठपद्याञ्च कर्त्तव्या पूजा जागरणं निशि ।  
 महोत्सवविधानेन सौत्रामणिकलं लभेत् ॥

सौत्रामणिर्यागभेदः ।

भविष्ये,—

पौर्णमास्यां नभस्यस्थ लोकपालान् समर्चयेत् ।  
 पृथिव्या रक्षणार्थाय सर्वकामप्रसिद्धये ॥

## अथागस्त्यार्घ्यः ।

एतच्च सौरभाद्रकृत्यम् ।

भविष्योत्तरे,—

अप्राप्ते तु रवौ कन्यां सचिभागैस्त्रिभिर्दिनैः ।

अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय ये वसन्ति महोदये ॥

अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः ।

अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः ॥

कन्यायामगते सूर्ये शेषसप्तदिनेषु च ।

अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय यावत्कन्यां रविर्भजेत् ॥

दिनस्य त्रिभागो विंशतिदण्डास्तत्सहितेन दिनत्रयेण इत्यर्थः ।

आधुनिकैस्तु दिनत्रयस्य त्रिभागो दिनमेकं तेन चतुर्भिर्दिनैरित्युक्तं तन्मन्दं विशेष्यस्य दिनस्यैव त्रिभागप्रतीतिः न तु विशेषणान्तर-विशिष्टस्य गौरवात् सार्द्धप्रहरत्रयादिवत् ।

अतएव सर्वत्रैव तथा प्रयोगः ।

यथा— स चाधिमासकः प्रोक्तः सार्द्धसंवत्सरद्वये ।

तथा— मृगनेत्रा भवेच्छेषैः पादोनैः सप्तभिर्दिनैः ॥

महोदये उज्जयिन्यां सचिभागदिनत्रयमध्ये, गौड़े तु शेषदिनत्रयमध्ये, एतदन्येषु देशेषु शेषसप्तदिनमध्येऽर्घ्यदानमित्यर्थः ।

तथाच मत्स्यपुराणम्,—

आसप्तरात्रादुदयेऽर्घ्यमस्य

दातव्यमेतत् सफल नरेण ।

अर्घ्यदानविधिमाह राजमार्त्तण्डे,—

अप्राप्ते भास्क्रे कन्यां सत्रिभागै स्त्रिभिर्दिनैः ।  
 अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय यावत् कन्यां रविर्त्रजेत् ॥  
 काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा तु प्रतिमां मुनेः ।  
 प्रदोषे विन्यसेत्तान्तु पूर्णकुम्भे सुमच्छते ॥  
 कुम्भस्यां पूजयेत्तान्तु पुष्पधूपविलेपनैः ।  
 दध्यक्षनं वलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात् प्रजागरम् ॥  
 प्रभाते ता समादाय स्नायात् पुण्यजलागये ।  
 निशावसाने तां न्यस्य जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥  
 अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय अर्घ्यं दद्युर्दिजातयः ।  
 अगस्त्यः खनमानेति पठेद्यु मन्त्रमुत्तमम् ॥  
 यथालाभ कृतार्घ्याश्च सर्व्वे वर्णाश्च भक्तितः ।  
 अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय शूद्रे मन्त्रविधिस्त्वयम् ॥  
 काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।  
 मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तुते ॥  
 पुष्पाञ्जलिमुपादाय देवर्षिं प्रणमेत्ततः ।  
 वातापिर्भक्षितो येन शोषितो येन सागरः ।  
 लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽमौ तस्मै नमोऽस्तुते ॥  
 येनोदितेन पापानि प्रशमं यान्ति चाधयः ।  
 तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय विन्ध्यदर्पापहारिणे ॥  
 अर्घ्ये दत्त्वा विधानेन नरः कुम्भोद्भवाय च ।  
 त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य फलमेकं मनोहरम् ॥

वीजपूर नारिकेलं रम्भां जातौफलं तथा ।  
 खर्जूरं दाड्डीमं विल्वं फलानीमानि वर्जयेत् ॥  
 ततोऽन्नं भोजयेदिप्रान्<sup>१</sup> दृतपायसमोदकैः ।  
 गां सुवर्णञ्च वासांसि तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥  
 सप्तवर्षाणि दत्तार्थं विधानेन द्विजातयः ।  
 वेदान्महीं पशून् पुत्रान् धर्मारोग्यमवाप्नुयुः ॥  
 विप्रो यथालाभमुपाकृतार्थः  
 प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान् ।  
 क्षत्रो महीं भूमिधनञ्च<sup>१</sup> वैश्यः  
 शूद्रः सुखं धर्मफलञ्च सर्व्वं ॥

मात्स्ये,—

अनेन विधिना यस्तु अगस्त्यार्थं प्रदीयते ।  
 इन्द्रलोकमवाप्नोति रूपारोग्यममन्वितः ॥  
 यावदायुश्च यः कुर्यात् स परं ब्रह्म गच्छति ।  
 जलान्ते जलमध्ये ता काशपुष्पमयीं प्रतिमां निशावमाने  
 उपसि न्यस्य प्रक्षिप्य इत्यर्थः । द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः ।  
 ॐ अगस्त्यः स्वनमानेति मन्त्रेणार्थं दद्युः स्त्रीशूद्रौ तु काशपुष्प-  
 प्रतीकाशेत्यादि मन्त्रेणेति ।

मन्त्रो यथा,—

ॐ अगस्त्यः स्वनमानः सनिची  
 प्रजा मपत्यं वलमीहमानः ।

उभौ वर्णाट्टपिरुतेजाः

पुपोष देवेष्वाग्निषो जगाम ॥

वौजपूरादिसप्तफलत्यागस्तु यथाक्रममेकैकं सप्तसु वर्षेऽस्त्वित्यर्थः ।

अथाश्विनकृत्यम् ।

देवीपुराणे,—

एकाहमपि यो भक्त्या कन्यामस्ये दिवाकरे ।

पूजयित्वा शिवाचक्रं दीपानुदीपयन्ति च ॥

ते लभन्ते शशभान् भोगानायुरारोग्यसम्पदः ।

शिवाचक्रं दुर्गासमूहं नवदुर्गा इत्यर्थः ।

तथा,—

वृताभिषेक यः कुर्यादहोरात्र नराधिप ।

स्रष्टुणधारेण भाण्डेन भगवत्या विचक्षणः ॥

मासि चाश्वयुजे वीर सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

विष्णुधर्म,—

आश्विने वृतदानेन रूपवानभिजायते ।

स्कन्दपुराणे,—

योऽपि चाश्वयुजं मासमेकभक्तेन तिष्ठति ।

वाणिज्यन्तु भवेत्तस्य कृषिः पशुगणास्तथा ।

भविष्यपुराणे,—

कन्यां गते सवितरि कृष्णपक्षेऽष्टमी च या ।

तस्यां हरं समभ्यर्च्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

सर्वमिदं शौरकृत्यम् । तथा,—

आश्विने कृष्णपक्षस्य चतुर्थ्यां रात्रियोगतः ।

मृगाय संस्थितः पूज्यो राजा दशरथः स्त्रिया ॥

तत्र दुर्गा च संपूज्या सर्वसौभाग्यद्वय्ये ।

अत्र मासः पौर्णमास्यन्त एव तिथिज्ञत्यत्वात् ।

अथाश्वयुक् कृष्णपक्षः ।

ब्रह्मपुराणे,—

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु आर्द्रं कुर्याद्दिने दिने ।

त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागन्वर्द्धमेव वा ॥

न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः ।

आर्द्रं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिवन्ति ते ॥

यावच्च कन्यातुल्योः क्रमादास्ते दिवाकरः ।

तावत् आर्द्रस्य कालः स्याच्छून्यं प्रेतपुरं तदा ॥

अथाश्वयुक् शब्दः पौर्णमास्यन्तमासपरः न तु मुख्यचान्द्रपरः, ब्रह्म-  
पुराणे पौर्णमास्यन्तमासेन समस्ततिथिकत्याभिधानात् । निर्णीतञ्च

आश्वयुज्याञ्च कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च ।

इति ब्रह्मपुराणे एवाश्वयुक् पौर्णमास्यन्तपरत्वम् । दर्शान्ता-  
श्विने मघायोगासम्भवात् पौष्टपदूर्द्धं कृष्णत्रयोदशीत्यादिवचनाच्च ।

तथा विष्णुधर्मोत्तरे,—

उत्तरादयनाच्छाद्धं श्रेष्ठं स्यादक्षिणायने ।

चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम् ॥

प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः ।

पञ्चम्यूर्द्धञ्च तत्रापि दशम्यूर्द्धं ततोऽप्यति ॥

इत्यत्र प्रौष्ठपद्याः परः पक्ष इत्यनेन पौर्णमास्यन्ताश्विनमासीय-  
क्षणापक्षत्वं व्यक्तमुक्तं एतेन सौरवादिनोऽपि निरस्ताः ।

तथाच कार्णाजिनिः,—

शक्रध्वजनिपाताङ्को यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः ।

आषाढ्याः सोऽपरः पक्षस्तत्र आर्द्धं विधीयते ॥

पुत्रमायुर्धनं धान्यमारोग्यं भूतिमेव च ।

प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा आर्द्धं कामांस्तथापरान् ॥

एतानेव हि हिमन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत् ।

तस्माच्चातिक्रमेद्विद्वान् पञ्चमे पैतृकं विधिम् ॥

भाद्रशुक्लदादृश्यां शक्रध्वजोत्थानं तदनन्तरक्षणाचतुर्थ्यां शक्र-  
ध्वजनिपात इति प्रागुक्तम् । एतानेव ह्येत्यनेन नित्यत्वं दर्शितं  
हिमन्ति पितर इति शेषः ।

जावालः,—

अगतेऽपि रवौ कन्यां आर्द्धं कुर्वीत यत्नतः ।

आषाढ्याः पञ्चमः पक्षः प्रशस्तः पितृकर्षसु ॥

जातृकर्णः,—

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः ।

आर्द्धं तत्र प्रकुर्वीत कन्यां गच्छतु वा नवा ॥

अत्र मध्येऽधिमासपातेऽपि तस्याधिकत्वाच्छ्राद्धानर्हत्वाच्च तं  
मासं विहाय पञ्चमः पक्षो मन्तव्यः । कन्यां न वा गच्छन्निति  
१. यदुक्तं पक्षस्य कन्यासम्बन्धेऽपि आर्द्धयोग्यकालस्य कन्यायामलाभे  
सत्येव मन्तव्यम् । अन्यथा सिद्धे सकलपक्षसंप्राप्तौ तस्य मलमासा-

न्तःपातादश्वयुक् कृष्णपक्षत्वाभावः स्यात् । तेन कन्यां गच्छतु वा  
नवेत्यनेन कन्यागतरविसम्बन्धेन पञ्चमपक्षस्य प्राशस्त्यं धनितम् ।  
यथा भविष्यपुराणवचनम्,—

कन्यां गते सवितरि पितरानानुशासनात् ।

तावत् प्रेतपुरीं शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥

ततो वृश्चिकमायाते निराशाः पितरो नृप ।

पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम् ॥

हंसे वर्षासु कन्यास्ये शाकेनापि गृहे वसन् ।

पञ्चम्या उत्तरे दद्यादुभयो वर्षयो च्छणम् ॥

हंसे सूर्ये वर्षास्त्रिति तृतुमतेन च्छणमिव च्छणम् पितृमातृ-  
कुलस्यावश्यं परिशोधमित्यर्थः ।

अथञ्च आद्धान्तरकल्पने विधिगौरवमिषा अश्वयुक्कृष्ण-  
पक्षेतित्यादिना ब्रह्मपुराणोक्तपक्षश्राद्धे कन्यासम्बन्धेन गुणफल-  
विधिः ।

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाद्रुमे दिवा ।

नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिस्त्रनैः ॥

इति देवीपुराणवचनाद्देवीबोधने कन्यासम्बन्धवदिति । नचात्र  
वैपरीत्याशङ्का भविष्यपुराणे कन्याविधौ पक्षश्राद्धादिकल्पानामनु-  
भेदात् कन्यां गच्छतु वा नवेत्यादिवचनाच्च । न च पृथक् प्रत्यवा-  
योक्तेः पृथग्विधिरिति वाच्यं, पुराणभेदेन प्रत्यवायस्य पृथगुक्तेरौचि-  
त्यात् न तु वास्तव्यं पृथक्त्वं ।

दिने दिने इति दिनपदमत्र तिथिपरं नल्लक्षोरात्रपरं



चान्द्रमासावयवस्य कृष्णपक्षस्य पञ्चदशतिथ्यात्मकत्वेन तत्सम्बन्धितयो-  
पन्यस्तस्य दिनपदस्य तिथिपरत्वनियमात् ।

यथा विष्णुधर्मै,—

तिथिनैकेन दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्तितः ।

तथान्यमुनीनां परिभाषाविधानमनर्थकं स्यात् ॥

अतएव,—

सौरसंवत्सरस्यान्ते मानेन<sup>१</sup> शशितेन तु ।

एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि मृगुनन्दन ॥

इत्यादयः प्रयोगाः ।

षष्ठ्येकादशीत्रयोदशीभिः पक्षस्य विभजनेन तिथिपर्यवसानाच्च ।

अतएव “पञ्चम्यूहं च तत्रापि दशम्यूहं ततोऽप्यति” इति विष्णुधर्मै  
तिथिमादाय कल्पे व्यवस्योक्ता अन्यथा अम्बुघटश्राद्धवदहरहः  
क्रियमाणतया नित्यत्वादध्यावाहनादिवर्जनप्रसङ्गः स्यात् ।

एतेन तिथिह्रासादेकस्मिन् पक्षे चतुर्दशत्वादङ्गां चतुर्दशश्रा-  
द्धानि तिथिद्वयावहर्द्वौ षोडश स्युः, तत्र कदाचित् एकस्यान्तिथौ  
श्राद्धद्वयं कदाचिच्च श्राद्धाभावः इति श्रौतत्तादीनां मतमपास्तं ।  
ततश्च वीष्णायाः पञ्चदशतिथिष्वेव पञ्चदशश्राद्धानि ।

अत्र चैकस्मिन् दिने तिथिद्वयलाभे श्राद्धद्वयं कदाचिद्दिनद्वये  
ऽप्येकतिथिलाभे एकदिने श्राद्धाभाव इति । अतएव वीष्णावत्ताच्च-  
तुर्दशीश्राद्धमप्यत्र कार्यम् ।

अत्र केचित्,—

सामान्यकृष्णपक्षप्राप्त आद्धं अनूद्य ब्रह्मपुराणे तदेव आद्धमश्व-  
युकृष्णपक्षगोचरतया दिने दिने विधीयते न तु विशिष्टविध्य-  
न्तरं मुख्यविध्यन्तरकल्पनागौरवात् । ततश्च,— “कृष्णपक्षे दशम्यादौ  
वर्ज्ययित्वा चतुर्दशी” इति मनुवचनाच्चतुर्दशीवर्जनमप्यत्र सिद्धं  
तदनुवादकत्वादश्वयुक्विधेरित्याहुः ।

तन्नन्दम् । प्रकरणभेदेन विधिभेदादनुवादाविषयत्वात् ।

किञ्च,—

अथ आद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वा  
कृष्णपक्षस्य यदहः सन्यद्यते तदहः पूर्व्वद्युर्ब्राह्मणानामव्येति गोभिः  
लाद्यनेकमुनिवचनादमावास्यायामेव मुख्यविधिः तत्राशक्तिसम्भाव-  
नायामानुकल्पिकः कृष्णपक्षविधिरिति प्रपञ्चितं आद्धकौमुद्याम् ।

ततश्चानुकल्पस्यानुवादायोग्यत्वात् प्रधानस्याश्वयुग्विधेरनुकल्प-  
प्रसङ्गाच्चाश्वयुकृष्णपक्षे पृथगेव विधिरिति सिद्धं चतुर्दशीआद्धम् ।

यत्तु,—

विषश्चापदशस्त्राहितिर्त्यक्ब्राह्मणघातिनाम् ।

चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषान्तु विगर्हिता ॥

इति मरीचिवचनं तत् सामान्यकृष्णपक्षप्रकरणपाठान्नाश्वयुकृष्ण-  
पक्षआद्धविषयम् । अन्यथा चतुर्दश्यां संक्रान्त्यादिआद्धमपि न स्यात् ।

यच्चात्र आद्धचिन्तामणावुक्तं,—

आश्विनचतुर्दश्यां शस्त्रहतस्यापि आद्धप्राप्तौ ।

आहवेषु विपन्नानां जलाग्निभृशुपातिनाम् ।

चतुर्दशां भवेत् पूजा अमावस्यान्तु कामिकी ॥

इत्याश्विनापरपक्षप्रकरणस्य देवीपुराणवचने यत्तत्र पुनः आह-  
विधानं तदाश्विनचतुर्दशां शस्त्रहतानामेव आहं नास्त्रहताना-  
मिति परिसंख्यार्थं अन्यथा वैयर्थ्यादिति ।

तदप्युक्तं अशक्त्या पक्षादिकल्पानामकरणे आश्विनचतुर्दशां  
शस्त्रहतआह्नमशक्तेनाप्यवश्यं कर्त्तव्यमिति विधिरेव न तु दोषत्रय-  
दुष्टा परिसंख्येति । अथवा अन्यत्र चतुर्दशां शस्त्रहतआह्नस्य  
प्राशस्त्यमुक्तं आश्विने तु नित्यविधिरिति अतएव अमावस्यान्तु  
कामिकीत्युक्तं । आश्विनचतुर्दशामकरणे प्रत्यवायतादवस्थादिति  
सिद्धं पञ्चदशआह्नम् ।

यत्तु,—

दिव्यभौमान्तरौचाणि चराणि स्थावराणि च ।

पिण्डमिच्छन्ति पितरः कन्याराशिगते रवौ ॥

कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ।

ऋतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत् ॥

राजसूयाश्वमेधाभ्यां यदीच्छेत् सदृशं फलम् ।

अथभुमूलशाकाद्यैः पितृन् कन्यागतेऽर्चयेत् ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणवचनं, तत् सूर्यसिद्धान्तवचनैकवाक्यतया  
कन्यायाश्चतुर्दशदिनादूर्ध्वं शेषेषु सौरषोडशदिनेषु शुक्लकृष्णपक्षसाधा-  
रणेषु कारुआह्नान्तरविधायक नित्यत्वे प्रमाणाभावात् फलश्रुतेश्च ।

यथा सूर्यसिद्धान्ते,—

तुलादिषड्ग्रहीत्यङ्गां षड्ग्रहीतिसुखं क्रमात् ।  
 तच्चतुष्टयमेव स्यात् द्विस्त्रिभावेषु राशिषु ।  
 षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेऽनिमिषस्य च ॥  
 मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायाश्च चतुर्दशे ।  
 अत ऊर्ध्वन्तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश ॥  
 क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृभ्यो दत्तमक्षयम् ।  
 एकस्मिन्नब्दे षष्ठ्यधिकशतत्रयमंशका भवन्ति ॥

तत्र तुलासंक्रममारभ्य षड्ग्रहीतिगणनयांश्चतुष्टयमापूर्य कन्या-  
 शेषषोडशांशा अवशिष्यन्ते, द्विस्त्रिभावेषु ज्ञातृकेषु तत्र चतसृणां  
 षड्ग्रहीतीनां पूरणस्थानमाह षड्विंशे इति, अनिमिषो मौनः ।

त्रिभागहीनमिति तृतीयो भागस्त्रिभागः त्रिभागहीनं  
 षष्ठ्यादिकल्पः त्रिभागमेकादशादिः, अत्र कालात्यन्तसंयोगे  
 द्वितीया तेन प्रतितिथौ आह्वयम् ।

अत्र केचित्,—

पञ्चमीप्रभृति वा कृष्णपक्षेति गोतमवचनात् ।  
 कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्ज्ययित्वा चतुर्दशीम् ।

इति मनुवचनाच्च ।

किञ्चिन्मूनाधिके त्रिभागपदात् पञ्चम्यादिदशम्यादिकल्पावाङ् ।  
 तत्र गोतममनुवचनयोः सामान्यकृष्णपक्षोपक्रमान्नाश्वयुक्कृष्णपक्ष-  
 परत्वं ततश्च बीजाभावेन लक्षणभावात् पञ्चम्यादेस्त्रिभागहीनादि-  
 पदार्थत्वानुपपत्तिरिति ।

अतएव विष्णुधर्म,—

प्रौष्ठपद्याः परः पञ्चस्तत्रापि च विशेषतः ।

पञ्चम्यूङ्क्ष्व तत्रापि दशम्यूङ्क्ष्व ततोऽप्यति ॥ इत्युक्त ।

यच्च,—

भौजङ्गीं तिथिमासाद्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमः ।

इति देवीपुराणवचनं तदश्वयुक्कृष्णपक्षे पञ्चम्यादिषु कन्या-  
सम्बन्धेन आङ्गस्य प्राशस्त्यकथनमात्रपर न तु कल्पविधायकं पचा-  
दिकल्पान्तराणामनुकृतात् ।

अर्द्धमेववेति त्रिभागाद्धं त्रयोदश्यादिकल्पः, न तु पचाद्धमष्ट-  
म्यादीति केषाञ्चिद्वाख्यानं युक्तं सन्निधानेन त्रिभागस्य बुद्धिस्यत्वात् ।

न च विभज्यमानतया बुद्धिस्यौक्तस्य पक्षस्य परित्यागे को  
हेतुरिति वाच्यं, उत्तरोत्तरलघुकालोपदेशस्य हेतुत्वात् अतएव  
एवेत्यनेनास्यात्यन्ताशक्तकल्पत्वं सूचितम् ।

अतएव विष्णुधर्म,—

पञ्चम्यूङ्क्ष्व तत्रापि दशम्यूङ्क्ष्व ततोऽप्यति ।

इति मध्येऽष्टम्यादिकल्पो नोक्तः ।

एवञ्च एतेषां कल्पानां दर्शनात् केषाञ्चिदमावास्यामात्रकरण-  
पक्षो निरस्तः किन्तु तत्र प्रतिमासविहितं पार्व्वणं कर्त्तव्यमेव प्रति-  
मासविधेरश्वयुक्विधिभिन्नत्वात् न चोक्तिवाधाशङ्का सम्भूयसमुच्च-  
रणाभावात् ।

न च पदाहवनीयवत् विशेषदर्शनात् सामान्यशास्त्रस्य तदितर-  
परत्वमस्त्विति वाच्यं प्रतिमासविधेरमावस्याविषयकत्वेनाश्वयुग्विधेस्तु

पञ्चविषयकत्वेन भिन्नविषयत्वात् सामान्यविशेषाभावात्, अमावास्या-  
विधिस्तु आङ्गकौमुद्यां निरूपित एव ।

किञ्च प्रकरणभेदेन विधिभेदादुपजीव्योपजीवकभावाभावाद्भि-  
न्नविषयता अन्यथा पौषादिमासत्रयेऽष्टकाविधानात् प्रतिमासविधे-  
स्तदितरत्वप्रसङ्गः ।

एवञ्च पञ्चश्राद्धे कृते प्रतिमासविहितं पार्वणमनुषङ्गेन गतार्थं  
तन्नैवामावास्यायां कर्त्तव्यमिति ध्येयम् । न सन्तीति अकरणे  
प्रत्यवायान्नित्यत्वं दर्शितम् । अत्र सम्भवति लघूपाये गुरुपायस्या-  
ननुष्ठानलक्षणाप्रामाण्यमभिया पञ्चश्राद्धादिकल्पानामिच्छाविकल्पास-  
म्भवात् शक्तितारतम्येन व्यवस्थितो विकल्पः । शक्तस्य समस्तः पञ्चः  
अशक्तस्य त्रिभागहीनः पञ्चः अशक्ततरस्य त्रिभागः अशक्ततमस्य  
त्रिभागार्द्धमिति । एतेन शक्तिभेदात् समस्तपञ्चाकरणेऽपि प्रत्यवा-  
याभावो वचनादिति ध्येयम् ।

शक्तिस्तु शरीरपाटवश्राद्धोचितद्रव्यसम्पदादिः । एवञ्च यो यत्र  
शक्तस्तदकरणे तस्य प्रत्यवाय एव । यथा मनुः,—

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते ।

न साम्पराधिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥

साम्पराधिकं पारलौकिकं । न चात्र फलभूमकल्पनया कल्प-  
व्यवस्था पञ्चविधमुपजीव्यैव त्रिभागहीनादिकल्पविधिप्रवृत्तेः ।

एतानेव हि हिंसन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत् ।

इत्यादिवचनैः पञ्चश्राद्धाकरणे प्रत्यवायश्रवणाच्च । तस्माच्छक्ति-  
तारतम्येन व्यवस्थेति ।

अत्र केचित्,—

आरब्धे पक्षश्राद्धे कुत्रचिद्दिने श्राद्धविघ्ने सति पक्षश्राद्धा-  
निष्पत्त्या अन्तेऽपि कल्पा न कर्त्तव्या विकल्पवशेनैकतरनिश्चया-  
दन्यनैराशयेन पुरुषप्रवृत्तेरित्याहुः ।

तदन्ते न सहन्ते उभयोर्युगपदुपस्थितत्वादिच्छाविकल्प एवान्य-  
नैराशयेनैकतरनिश्चयः प्रवृत्तौ हेतुः, व्यवस्थितविकल्पे तु न तथा  
व्यवस्थावशेनोभयोर्युगपदुपस्थितत्वाभावात् । किन्तु शक्तितार-  
तम्यान्मुख्यकल्पानुक्तत्वाभावेन व्यवस्था तस्याश्च क्रमिकत्वान्मुख्यकल्पा-  
सम्भवे स्वयमेवानुक्तत्पो व्यवतिष्ठते अतो मुख्यकल्पविघ्ने कल्पान्तर  
कर्त्तव्यमेवेति ।

अभियुक्तास्तु,—

दद्यादहरह' श्राद्धमन्त्राद्येनोदकेन वेति मनूक्तमित्यश्राद्धवत्  
दिने दिन इति वीक्षाश्रुत्या प्रतितिथावेव पृथक् पृथक् श्राद्धावग-  
मात् प्रतितिथौ श्राद्धाकरणे “श्राद्ध न कुरुते तत्र” इति वचनेन  
पृथक् प्रत्यवायावगमाच्च अनुज्ञावाहनदक्षिणाविसर्जनादीनां पृथक्  
पृथक्त्वाच्च पञ्चदशश्राद्धानां स्वातन्त्र्ये सिद्धे आरब्धपक्षश्राद्धेन पुंसा  
कदाचिन्नध्वेऽग्रौचक्षतजादिना विघ्ने सत्यधिकाराभावादकरणेऽप्य-  
जातप्रत्यवायेन तदितरदिनेषु कृतेषु श्राद्धेषु यावज्जीव्यमित्यश्राद्ध-  
वत् पक्षश्राद्धमप्यविरुद्धं, न च पृथक् कल्पविधानं तर्हि व्यर्थे इति  
वाच्यं, द्रव्याद्यसम्पत्त्या सकलपक्षश्राद्धाशक्तौ प्रत्यवायपरीहारार्थं

कल्पान्तरविधानमिति । युक्तं चैतत् । अश्वयुक्कृष्णपक्षे एकस्य कल्पस्याप्यशक्तौ किं स्यादित्यत आह यावच्च कन्यातुल्योरिति । अत्र विध्यन्तरकल्पनभिया कन्यादिवाकरस्थित्या तत्सम्बन्धस्यावश्यकत्वेनाश्वयुक्कृष्णपक्षानुक्तकल्पतया तत्प्राप्तकृष्णपक्षविधानौचित्यात्<sup>१</sup> ।

प्रावृट्कालेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः ।

मधुश्रुतेन यः आर्द्धं पायसेन समाचरेत् ॥

इति पूर्ववचने कृष्णपक्षश्रवणाच्च ।

अत्र<sup>२</sup> कन्यातुल्योर्दिवाकरस्थितेः क्रमसिद्धत्वात् क्रमाच्छाद्धस्य काल इत्यन्वयादश्वयुक्कृष्णपक्षे आर्द्धाकरणे कार्त्तिककृष्णपक्षे यस्यां कस्याच्चित्तिथौ आर्द्धं कार्यं, नचात्रापि कल्पव्यवस्था प्रमाणाभावात् । त्रयोदश्यादिकल्पस्याप्यशक्तावत्यन्तापत्कल्पतया कार्त्तिकविधिश्चेति । अत एवामावास्यायामतिप्राशस्त्यमुक्तं भविष्यपुराणे,—

येथं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि ।

तस्यां दद्यान् चेद्दत्तं पितृणाञ्च महालये ॥

पितृणां महस्य उत्सवस्यालयो महालयोऽश्वयुक्कृष्णपक्षः, पञ्चदशी अमावास्या न तु पौर्णमासी, भुवि पृथिव्यां दीपान्वितेति कृत्वा ख्यातिकथनात् ।

तथाचामावस्यामधिकृत्य ब्रह्मपुराणे,—

दीपमालाश्च कर्त्तव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ।

रथ्यापणश्शशानेषु नदीपर्वतसानुषु ।



तथा,—

यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालयम्<sup>१</sup> ।

उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो ब्रजन्तु ते ॥

इति कार्तिकामावास्यायामुक्तादानमन्त्रलिङ्गाच्च । अयञ्च प्रतिमामपार्वणस्य प्राप्तत्वेऽप्ययुक्कृष्णपचाकरणे अग्नस्यावग्यानुष्ठानार्थं पुनः कार्तिकविधिः । अथवा तन्त्रेण आङ्गद्वयविधानार्थं पुनर्विधिः । इति ।

अथ मघात्रयोदशी ।

अथ केचित्,— केवलत्रयोदशां विधिः, मघायोगः फलातिशयार्थः, मनुविष्णुभ्यां केवलत्रयोदशीविधानात् ।

यथा मनु,—

अपि न स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।

पायसं दधिमर्पिर्भा प्राक्च्छाये कुञ्जरस्य च ॥

दद्यात् ददातीत्यर्थः ।

विष्णु,—

अपि जायेत योऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः ।

प्राकट्कालेऽसिते पचे त्रयोदशां समाहितः ॥

मधुश्रुतेन यः आङ्गं पायसेन समाचरेत् ।

तन्न, एतयोर्मनुविष्णुवचनयोः पितृगाथात्वेनानुवादतया स्वतः प्रामाण्याभावात्, अनुवादस्य हि विध्येकवाक्यतया प्रामाण्यमित्युक्तं

मनुवादाधिकरणे तत्र कृत्<sup>१</sup>[विधिःशेषत्वे सम्भवति कल्प]विधि-  
शेषत्वमन्याय्यं अतः कृत्विध्यनुरूपैर्दस्तुभिरनेन क्रियते । विधौ च  
मघायोगः श्रूयते ।

यथा शङ्खः,—

प्रौष्ठपद्यामतौतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ।

प्राप्य आङ्गन्तु कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च ॥

ब्रह्मपुराणे,—

आङ्गं तेनापि कर्त्तव्यं तैस्तैर्द्रव्यैः सुसञ्चितैः ।

त्रयोदक्षां प्रयत्नेन वर्षासु च मघासु च ॥

वर्षामघाशब्दौ नित्यवज्जवचनान्तौ ।

मनुः,—

यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात् त्रयोदशीम् ।

तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥

वर्षासु मघासु च त्रयोदशीकाले यत्किञ्चिदल्पमपि मधुना  
मिश्रं दद्यात्, हेतुमाह तदप्यक्षयमेवेति । अन्यथा मनुवचने त्रयो-  
दशीमात्रश्रवणात् प्रावृट्कालोऽपि फलातिशयार्थः स्यात् तथा  
विष्णुवचने प्रावृट्मात्रश्रुतेः प्रौष्ठपद्यनन्तरत्वमपि फलार्थं स्यात् ।

तथा,—

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥

मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च ।

एष नो दास्यति आद्धं वर्षासु च मघासु च ॥

वशिष्ठवचनादर्षासु मघामात्रेऽपि आद्धं स्यात् ।

न च विष्णुधर्मात्तरे,—

प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशीम् ।

एतांस्तु आद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः ॥

इति नित्यकालविधायकवाक्ये केवलत्रयोदशीविधानमिति वाच्यम् ।

उपदेशविधिमुपजीयैवाङ्गविधिप्रवृत्तेः शङ्खाद्युक्तमघाविशिष्टोप-  
देशविध्यनुरूपमेव कालरूपमङ्गमनूय तस्य नित्यता अनेन वचनेन  
विधीयते इत्यत्रापि मघाविशिष्टत्वमूहनीयम् ।

न च,— त्रयोदशी नभस्ये या कृष्णा तस्यां समर्चयेत् ।

पितृण् पायमदानेन मधुना मर्पिषा तथा ॥

इति सवत्सरप्रदीपलिखितवचने केवलत्रयोदश्यामपि विधिः  
श्रूयते इति वाच्य, एतस्य वचनस्यामूलत्वात् समूलत्वेऽपि त्रयोदश्यां  
आद्धमेको विधिरपरस्य मघायोगे फलातिशयार्थ इति कल्पना-  
गौरवात् वज्रवाक्यादराच्च एकदेशकीर्तनपरमेव वचनं मन्तव्यम् ।  
तस्मान्नानामुनिवचनैकवाक्यतया मघायुक्तायां पौष्ठपद्यनन्तरितकृष्ण-  
त्रयोदश्यां पायमादिद्रव्येण आद्धं कुर्यादित्येक एव शङ्खोक्तविधिः ।  
तथा महाभारतादिवचनेष्वनुवादरूपेष्वपि मघायोगः श्रूयते ।

यथा महाभारते,—

अपि न स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।

मघासु मर्पिषा युक्तं पायसं दक्षिणायने ॥

याज्ञवल्क्यः.— यद्दाति गयास्यस्य सर्वमानन्यमश्रुते ।

तथा मघात्रयोदशां वर्षासु च न संशयः ॥

कुञ्जरच्छायायोगस्तु फलातिशयार्थ एव यथा ब्रह्मपुराणे,—

योगो मघात्रयोदशां कुञ्जरच्छायमंजितः ।

भवेन्मघायां मस्ये च शशिन्यर्के करे स्थिते ॥

आश्वयुज्याञ्च कृष्णायां त्रयोदशां मघासु च ।

प्रावृडृतौ यमः प्रेतान् पितृंश्चाथ यमालयात् ॥

विमर्जयति मानुष्ये कृत्वा शन्यं स्वक पुरम् ।

बुधात्ताः कीर्त्तयन्तश्च दुष्वृतञ्च स्वकं कृतम् ॥

काङ्क्षन्तः पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुमंयुतम् ।

तस्मात्तान् सूत्रविधिना तर्पयेत् पायसेन च ॥

नध्वाज्यतिलमिश्रेण तथा शीतेन चान्नसा ।

ग्राममात्रं परगृहाद्भक्तं यः प्राप्नुयात्तरः ॥

भिक्षामात्रेण यः प्राणान् मन्थारयति चान्नदम् ।

यो वा मर्दुर्द्वेष्टेष्टं प्रत्यष्टं स्वार्थविक्रयात् ॥

आहु तेनापि कर्त्तव्यं तैर्द्वेष्ट्यैः सुमञ्जितैः ।

नाम्नात् परतरः कालः आद्वेष्ट्यन्यत्र विद्यते ॥

यत्र साक्षात् पितरो गृह्णन्त्यमुतमुत्तमम् ।

मघात्रयोदशमित्यत्र मघाग्रहणं ग्यातिसूक्तम् । आश्वयुज्याश्च कृष्णायामित्यनेन वक्ष्यमाणमघात्रयोदशानि ग्याते काले कुञ्जर-  
च्छायमंजितोऽपरो योगः पितृप्रेत्यतिशयमधनोपायः करे रक्षा-  
नक्षत्रे स्थितेऽर्के शशनि मघर्चे स्थिते मति भवेदित्यन्य ।

ततश्च मघात्रयोदशां पृथगेवाद्यं कुञ्जरच्छायास्थो गुणफल-  
विधिर्न तु कुञ्जरच्छायामात्रविधिरित्यायातम् । मघायामित्येक-  
वचनमार्धं पुनर्मघोपादानं रोहिण्यष्टम्यादिवन्मघर्चस्थोपलक्षणलशङ्का-  
निरासार्थम् । कन्याया दशदिवसोपरि विंशतिदण्डाधिकत्रयो-  
विंशतिदिनपर्यन्तं हस्तावस्थानमर्कस्येति ।

मघात्रयोदशीं विवृणोति आश्वयुज्यामिति—आश्वयुजौ आश्विन-  
त्रयोदशौ पौर्णमास्यन्तमासेन प्रौष्ठपद्यामतीतायामिति शङ्खवच-  
नात् । प्राष्टुतुरत्र धृतुः संवत्सर इति मतेन मन्तव्यः । कन्यास्ये  
रवौ मघात्रयोदशीकुञ्जरच्छाययोगयोः<sup>१</sup> प्रतिपादनात् । षट्-  
व्यवस्था तु सौरमानेनैव इति शुद्धिकौमुद्यां प्रागपि प्रपञ्चितमस्ति ।  
प्रेतान् विकरणभागिनः । तानाह मनुः,—

असङ्गतप्रसीतानां त्यागिनां कुलयोपिताम् ।

उच्छिष्ट भागधेय श्वादर्भेषु विकिरस्य यः ॥

यमालयादिति यम्यन्ते नियम्यन्ते पापिनोऽवेति यमालयः  
कारागार कौर्त्तयन्तो मनुष्यलोकमायान्तीति शेषः, तस्मान्मघा-  
त्रयोदशां सूत्रविधिना गृह्योक्तविधिना आहूतेन तर्पयेदित्यर्थः ।  
आहून्तेनापि कर्त्तव्यमिति पुनर्मघात्रयोदशीविधान आहूत्यात्राव-  
श्यकत्वविधानार्थम्<sup>२</sup> । पिण्डदानञ्चात्र ज्येष्ठपुत्रिणा न कार्यम् ।

यथा देवौपुराणे,—

कन्यास्ये च रवाविषे पूजनीया यथाविधि ।

१ ग ०कुञ्जरच्छाययो ।

२ ख, ग पुस्तके, ०प्रदर्शनाय ।

भौजङ्गीं तिथिमासाद्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमम् ॥

तत्रापि महती पूजा कर्त्तव्या पितृदेवते ।

ऋते पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्री विवर्जयेत् ॥

द्वेषे पौर्णमास्यन्ताश्विने तत्रैव मघायुक्तत्रयोदशीसम्भवात् । न तु मुख्याश्विने न वा सौराश्विनपरत्वमिषशब्दस्य वैयर्थ्यात् । ततश्च कन्यास्ये रवाविति कन्यासम्बन्धेनाश्विनकृष्णपक्षस्य प्राशस्त्यकथनं भौजङ्गी पञ्चमी चन्द्रार्कसङ्गमोऽमावस्या पूजनीयाः, पितर इति शेषः । यथाविधि गृह्योक्तविधिनेत्यर्थः । तत्राश्विनमध्ये पितृदेवते मघानक्षत्रे । पृथक् श्रुतिकल्पनाभिचा पूर्वोक्तशङ्खगदिवचनैकावक्य- तथा मघायुक्तत्रयोदश्यामित्यर्थः । महती पूजा मधुपायसादिद्रव्यैः पञ्चश्राद्धात् पृथगेव श्राद्धं कुर्यादित्यर्थः<sup>१</sup> ।

अत्र मैथिलाः,— भौजङ्गीमित्यादेः परेण सहान्वयं कृत्वा पञ्चम्यादिषु महती पूजा तदैव पञ्चश्राद्धे यस्यां कस्याश्चित्तिथौ मघानक्षत्रेऽपि पिण्डदानं ज्येष्ठपुत्री विवर्जयेदित्याहुः ।

अत्राधुनिकाः,— एकवचनोपात्तप्रत्यासत्तेरङ्गत्वात् पूर्वैणैवान्वय इति वदन्ति । वस्तुतस्तु पूजामहत्त्वविधौ श्रुत्यन्तरकल्पनापत्तिर्दोषः ।

अस्मन्मते तु मघात्रयोदशां महती पूजा वचनान्तरेणैव कृतेति किञ्च पिण्डदाननिषेधोऽयं पञ्चश्राद्ध एवावश्यं वाच्यः प्रस्तुतत्वात् अन्यथा सांवत्सरिकेऽपि पिण्डदाननिषेधप्रसङ्गः ।

तदा च पञ्चश्राद्धादधिके मघात्रयोदशीश्राद्धेऽपि पिण्डदान- प्रसङ्गो दुर्निवारः ।

अन्ये तु पृथक्श्रुतिकल्पनाभिया पक्षश्राद्धान्तर्गतत्रयोदशीश्राद्ध-  
मेव मघायोगे प्रशस्तं न तु पृथक् श्राद्धान्तरमित्याहुः, तदपि  
मन्द शङ्खादिनानामुनिवचनानां पक्षश्राद्धमनपेक्ष्य चतुर्थ्यष्टकावत्  
स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तेः पक्षान्तर्गतत्रयोदशीश्राद्धमनूद्य मघानक्षत्र-  
रूपकालपायसादिद्रव्यरूपगुणद्वयविधानेन उपसङ्गिश्चरित्वेतिवत्  
वाक्यभेदापत्तेश्च ।

यत्तु,— उत्तरादयनाच्छ्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्विष्णायनम् ।  
चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम् ॥  
प्रौष्ठपद्याः परः पक्षः तत्रापि च विशेषतः ।  
पञ्चम्यूहञ्च तत्रापि दशम्यूहं ततोऽप्यति ॥  
मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी ।  
सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धमत्र नराधिप ॥  
परान्नभोजौ त्वपचः श्राद्धमत्र तु कारयेत् ॥

इति विष्णुधर्मात्तरवचनं तत् सजातीयविजातीयानां तत्त-  
द्विधिवोधितश्राद्धकालानामेकस्यापेक्षया पितृवृत्तिविशेषजनकत्वेन  
प्राशस्त्यकथनमात्रपरं न तु श्राद्धविधायकम् ।

अतएव,—

उत्तरादयनाच्छ्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्विष्णायनम् ।

इति प्रथमत एवोक्तं ततश्च दशम्यूहान्ततोऽप्यधिकमुक्त्वा तस्मा-  
दपि तत्तद्विधिवोधितस्यापृथक्श्राद्धस्य मघात्रयोदशीकालः प्राशस्त्ये  
इति न कश्चिद्दोषः । अतएव तत्र विध्यपेक्षायां सर्वस्वेनापि कर्त्तव्य-  
मित्यनेन पृथक्विधिरुक्तः अन्यथा पुनर्विधानवैफल्यं स्यादिति ।

ज्येष्ठपुत्रीति मतुपो विद्यमानार्थत्वेन ज्येष्ठपुत्रसम्भव एव पिण्डदान-  
निषेधादन्येषामप्रतिषेधात् पिण्डदानं कर्त्तव्यमेव । अन्यथा ज्येष्ठ-  
पुत्रीति विशेषणं व्यर्थं स्यादव्यावर्त्तकत्वात्, अत्र च पिण्डस्थानकर-  
णादि सर्व्वमेव पिण्डोपकरणं न कार्य्यं शिवा आपः सन्वित्यादि  
तु कार्य्यमेव । अथञ्च निषेधो मघात्रयोदशीविहितश्राद्ध एव  
न तु पचान्तर्गतत्रयोदशीश्राद्धे तद्दिनविहितसांवत्सरिकश्राद्धवदिति  
ध्येयम् ।

यदा तु पूर्व्वदिनेऽपराह्णे तिथिलाभः परदिने च पूर्वाह्णे  
नचत्रयुक्ततिथिलाभस्तदा पूर्व्वदिने पचश्राद्धं विधाय परदिने  
मघात्रयोदशीश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्य्यं रात्र्यादिनिषिद्धेतरस्यैव श्राद्ध-  
कालत्वात् । एवञ्चैकदिने पूर्वाह्णे एव मघात्रयोदशीलाभे ज्येष्ठपुत्रि-  
णाऽपिण्डकं मघाश्राद्धं विधायपरराह्णे त्रयोदशीमात्रे सपिण्डकं  
पचश्राद्धं कर्त्तव्यं यदात्पराह्णे मघात्रयोदशीयोगस्तदा तन्त्रेणैकश्राद्धं  
तच्चापिण्डकमेव मघाश्राद्धे पिण्डनिषेधात् पचश्राद्धे तु “नित्येऽपि  
किञ्चिदङ्गहानिः शक्या न तु काम्येऽपीति न्यायात्” पिण्डाभाव-  
स्याकिञ्चित्करत्वात् दोषगौरवाच्चेति बहवः ।

अन्ये तु,—

समानाङ्गकयोरेव तन्त्रतानियमात् पचश्राद्धमेव सपिण्डकं  
कार्य्यं मघाश्राद्धन्तु प्रसङ्गेन गतार्थमित्याहुः ।

एवञ्च पूर्व्वदिनेऽपराह्णे मघातिथिलाभेऽपि परदिने पूर्वाह्णे  
प्राप्तस्य कुञ्जरच्छायायोगस्य फलातिशयहेतुत्वात्तत्रैव पूर्वाह्णेऽप्य-  
पिण्डकं तच्छ्राद्धमिति ।



संवत्सरप्रदीपे,—

आश्वयुज्याममावास्यां तीर्थप्राप्तौ तथा नृप ।

कृत्वा आहु विधानेन दद्यात् षोडशपिण्डकम् ॥

तथाग्निपुराणनाम्ना वचन पठन्ति ।

पक्षआहु विधायाथ दद्यात् षोडशपिण्डकान् ।

अकृते पिण्डदाने तु तच्छ्राद्धं विफलं भवेत् ॥

गयामधिकृत्य गरुडपुराणे,—

पिण्डान् दद्यादिमैर्मन्त्रैरावाह्य च पितृन् परान् ।

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते ।

तेषामावाहयिष्यामि दर्भशृङ्गे तिलोदकैः ॥

तेषामिति द्वितीयार्थे षष्ठी आवाह्यामीत्यर्थः । निहन्मीति  
मण्डलं रेखाञ्च कृत्वा दक्षिणायान् कुशान् निपात्य तत्र तिलोदकै-  
रावाह्यं वक्ष्यमाणमन्त्रैः पिण्डान् दद्यात् ।

मन्त्राश्चोक्तास्तत्रैव ।

पितृवशे मृता ये च मातृवशे च ये मृताः ।

तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१॥

मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते ।

तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥२॥

बन्धुवर्गाश्च ये केचिन्नामगोत्रविवर्जिताः ।

स्वगोत्रे परगोत्रे वा तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥३॥

अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भप्रणीडिताः ।

तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥४॥

उद्धन्वन्मृता ये च विषग्रस्तहताश्च ये ।  
 आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥५॥  
 अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये ।  
 दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥६॥  
 अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथा परे ।  
 विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥७॥  
 रौरवे चान्वतामिस्त्रे कालसूत्रे च ये गताः ।  
 तेषामुद्धरणार्थाय द्रुमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥८॥  
 अक्षिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये गताः ।  
 तेषामुद्धरणार्थाय द्रुमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥९॥  
 असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमग्रासने ।  
 तेषामुद्धरणार्थाय द्रुमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१०॥  
 पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः ।  
 अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥११॥  
 जात्यन्तरसहस्राणि भ्रमन्ते स्वेन कर्मणा ।  
 मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥१२॥  
 येऽवान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्तानि बान्धवाः ।  
 ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्व्वदा ॥१३॥  
 ये केचित् प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम ।  
 ते सर्व्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डेनानेन सर्व्वदा ॥१४॥  
 गुरुश्चशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ।  
 तेषामुद्धरणार्थाय द्रुमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१५॥

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।  
 क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पद्गवस्तथा ॥  
 विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाता कुले मम ।  
 तेषां पिण्डं मया दत्तमन्नच्यमुपतिष्ठताम् ॥१६॥  
 ततः पिण्डान् सम्यूज्य जले चिपेत् ।

अथ दुर्गात्सवः ।

नत्वा ज्ञानमयीं देवीं दुर्गां दुर्गतिहारिणीम् ।  
 श्रीकालिकापुराणोक्ता श्रीदुर्गां विविच्यते ॥  
 कालिकापुराणे । श्रीभगवानुवाच,—

दुर्गतन्त्रेण मन्त्रेण कुर्यात् दुर्गामहोत्सवम् ।  
 महानवम्या शरदि वलिदानं नृपादयः ॥  
 आश्विनस्य तु या शुक्ला भवेद्वत्साष्टमी तिथिः ।  
 मूर्त्तिभेदे महादेवी पूजां गृह्णाति भूतये ॥  
 कन्यासंख्ये रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दकाम् ।  
 अयाची त्वय नक्ताशी एकाशी त्वयवाऽन्नदः ॥  
 प्रातःस्नायी जितद्वन्द्वस्तिकालं शिवपूजकः ।  
 बोधयेद्विष्वशाखासु षष्ठ्यां देवीं फलेषु च ॥  
 सप्तम्यां विष्वशाखान्तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ।  
 पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ॥  
 जागरञ्च स्वयं कुर्याद्वलिदानं महानिशि ।  
 प्रभूतवलिदानञ्च नवम्यां विधिवच्चरेत् ॥  
 जपहोमसमायुक्तो भोजयेद्देवैः कुमारिकाः ।

ध्यायेद्दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥

विसर्जनं दशम्यान्तु कुर्याद्वै शारदोत्सवैः ।

कृत्वा विसर्जनं तस्यां तथा मङ्गलमाचरेत् ॥

दुर्गातन्त्रसंज्ञकेन प्रणवादिस्वाहान्तेन दशाक्षरजयदुर्गामन्त्रेणेत्यर्थः । दुर्गामहोत्सवं विभवविस्तरेर्दुर्गापूजनमित्यर्थः ।

महानवम्यामिति यदुक्तं देवीपुराणे,—

आश्विने शुक्लपक्षे तु सप्तम्यादितिथिचये ।

महाशब्द' प्रयोक्तव्यो नान्यचेति विनिश्चयः ॥

बलिदानं प्रभूतं कुर्युरिति शेषः, नृपादय इति प्रभूतबलिदानापेक्षया न तु ब्राह्मणगोचरो निषेधः ।

सिंहव्याघ्रनरान् दत्वा ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ।

इहापि स्यात् स हीनायुः सुखसौभाग्यवर्जितः ॥

इति कालिकापुराणे सिंहमात्रपर्युदासात् । आश्विनमेति चान्द्राश्विनपरं सुख्यत्वात् चान्द्रमासं प्रकृत्यैव सर्वत्र तिथिकृत्याभिधानाच्च । कन्यासंस्ते रवावित्यादौ तु कन्यासम्बन्धः प्राशस्त्यपरो मन्तव्यः । वत्सेति भैरवसम्बोधनं, तस्यां वैष्णव्यादिसूक्तिभेदे यथा पूजां गृह्णाति तथा वक्ष्यते इति शेषः । कन्यासंस्ते रवावारब्धां शुक्लां नन्दां प्रतिपदमारभेत्यर्थः कन्यासम्बन्धः प्राशस्त्यपरो वा । अथाचीत्यादि अग्रज्ञावुत्तरोत्तरलघुकल्पः, अन्नदो ब्राह्मणभोजयितेत्यर्थः । एतेन वाय्वदो वायुमन्न इति कस्यचिद्वाख्यानं निरस्तं जितद्वन्द्वः त्यक्तस्त्रीसम्बन्धः । बोधयेदिति फलेषु फलयुक्तासु वित्त-  
शाखास्वित्यर्थः । षष्ठ्यां सन्ध्यासमये बोधनं कार्यम् ।

यथा भविष्ये,—

षष्ठ्या विल्वतरौ बोध सायं सन्ध्यासु कारयेत् ।

एवञ्च यस्मिन् दिने षष्ठीलाभस्तत्रैव बोधनं उभयदिने  
सन्ध्यायां षष्ठीलाभे युग्मादरेण व्यवस्था उभयदिने त्वलाभे  
प्रदोषे षष्ठ्या कार्यम् ।

यथा कालिकापुराणे,—

१[रात्रावेव महादेवौ ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।

अत्र षष्ठ्या ज्येष्ठानक्षत्रयोगे फलातिशयः ॥

देवौपुराणे,—

ज्येष्ठानक्षत्रयुक्ताया षष्ठ्यां दिव्याभिमन्त्रणम् ।

सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥

तथा नन्दिकेश्वरपुराणे,—]

आर्द्राया बोधशेदेवीं मूलेनैव प्रवेशयेत् ।

पूर्वोत्तराभ्यां सम्पूज्यं अवणेन विसर्जयेत् ॥

मूलाभावेऽपि सप्तम्या केवलायां प्रवेशयेत् ।

दशम्या अवणालाभे शुभयोगे विसर्जयेत् ॥

हृण्णनवम्यामार्द्राया बोधनमष्टादशभुजापक्षएवेति वक्ष्यते ।  
मूलेन युक्ताया सप्तम्यामित्यर्थः । एवं पूर्वोत्तराभ्यां युक्तयोरष्टमी-  
नवम्योरित्यर्थः । अत्र मूलाभावेऽपीत्यनेन सर्व्वचार्यादिनक्षत्रयोगस्य  
फलातिशयत्वमुक्त्वा तिथीनामावश्यकत्वमुक्तम् ।

तथा लिङ्गपुराणे,—

मूलाभावेऽपि सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् ।

तथा तिथ्यन्तरेष्वेवमृच्छेषु च फलोच्चयः ॥

एतेन पूर्वार्द्धो वै देवानामपराहः पितृणामिति श्रुतेरावश्यकः  
पूर्वार्द्धादरः, नक्षत्रयोगस्तु गुण एवेत्युक्तम् । एतच्च षष्ठ्यां बोधनं  
दशभुजापञ्च एव ध्यायेद्दशभुजां देवीमिति वक्ष्यमाणोपसंहारात् ।  
अतएव तत्र मूर्त्तिभेदे कालभेद उक्तो यथा ।

यदा तु वैष्णवीं देवीं महामायां जगन्मयीम् ।

पूजयेत्तत्र च तदा विशेषं शृणु भैरव ॥

रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ।

रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ॥

ततः सन्त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ।

जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद्राघवः पुरा ॥

तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ ।

युद्धे नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ॥

यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिसुदैक्षत ।

तावत्तु सप्तरात्राणि सर्वदेवैः सुपूजिता ॥

निहत्य रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः ।

विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ॥

ततः संप्रेषिता देवी दशम्यां शारदोत्सवैः ।

यदा तु षोडशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ॥

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेषं तत्र वै शृणु ।

कन्यायां कृष्णपचे तु एकादश्यामुपोषितः ॥  
 द्वादश्यामेकभक्तञ्च नक्तं कुर्यात् परेऽहनि ।  
 चतुर्दश्यां महामायां बोधयित्वा विधानतः ॥  
 गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनैः ।  
 अयाचितं बुधः कुर्यादुपवास परेऽहनि ॥  
 एवमेव व्रत कुर्याद्यावद्वै नवमी भवेत् ।  
 ज्येष्ठायाञ्च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ॥  
 उत्तरास्वर्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ।  
 यदा त्र्यष्टादशभुजां महामायां प्रपूजयेत् ॥  
 कन्यायां कृष्णपचे तु पूजयित्वाद्र्भे दिवा ।  
 नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः ॥  
 शुक्लपचे चतुर्थ्यान्तु देवीकेशविमोचनम् ।  
 प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्तुपयेत् सुशुभैर्जलैः ॥  
 सप्तम्यां पत्रिकापूजा श्रष्टम्यां चाप्युपोषणम् ।  
 पूजा च जागरा चैव नवम्यां विधिवद्वलिः ॥  
 संप्रेषणं दशम्यान्तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।  
 नीराजनं दशम्यान्तु बलदृष्टिकरं महत् ॥

महामाया चतुर्भुजा रक्तगौराङ्गी रात्रावेव प्रदोष एवेत्यर्थः ।  
 नन्दायां शुक्लप्रतिपदि न तु षष्ठ्यां वक्ष्यमाणसप्तरात्राणीत्युक्तेः अतः  
 शुक्लप्रतिपदि महामायाबोधनम् । कन्यायामिति पौर्णमास्यन्ता-  
 श्विनकृष्णपक्षस्य कन्यासम्बन्धव्यभिचारात् कन्यासम्बन्धप्राप्ते आश्विन-  
 कृष्णपचे इत्यर्थः । मुख्याश्विनशुक्लाष्टम्यां पूजाविधानान्तत् पूर्वत एव  
 बोधनात् कन्यासम्बन्धेन प्राशस्त्यं वा । अन्यथा देवीपुराणे,—

दूषे मास्यसिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ ।

नवम्यां बोधयेद्देवीं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥

इत्यत्र सौरपरले कन्याराशिगत इत्यनेनैव प्राप्तौ दूषे मासीति  
व्यर्थं स्यात् । आर्द्रायोगस्तु फलातिशयार्थः उक्तयुक्तेः । अतएव  
यस्मिन् दिने नवम्यां दिवार्द्रालाभस्तत्रैव बोधनम् । उभयदिने  
नवम्यां दिवार्द्रालाभे युग्मादरेण व्यवस्था । आर्द्राया अलाभे तु  
नवम्यां युग्मादरः ।

अत्र दिवाबोधने विशेषमाह तत्रैव ।

आदिपादो निशाभागे अवणस्य यदा भवेत् ।

तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा ॥

१अन्तपादो निशाभागे अवणस्य यदा भवेत् ।

तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः ॥

नीराजनदशमीदिने निशाभागे यदा अवणादिपादो भवेत्  
तदा नवम्यां बोधनवम्यां समुत्थानं प्रबोधनं कार्यं किन्तु रात्रा-  
वेवेत्यर्थः । यदा तु अवणान्तपादो निशाभागे स्यात् तत्रैव बोध-  
नवम्यां दिवा बोधनमित्यर्थः । ततः शुक्लचतुर्थ्यां पूजापूर्वकं  
केशोद्धर्तनसामयीकङ्कतिकादिदानं प्रातः नवम्यां स्नानीयसुगन्धि-  
जलदानम् । पञ्चीप्रवेशपूर्वदिनेत्वधिवास आचारप्राप्त एव योऽपि  
गन्धपुष्पाद्यैः पञ्चीभूषारूप एव, दर्शपौर्णमासातिदिष्टस्य पूर्व-  
दिनदेवतावाहनरूपस्य यज्ञविशेष एव प्राप्तत्वात् सप्तम्यां प्रवेशा-  
नन्तरं देवतावाहनविधानाच्च ।



यत्तु,—

षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत विज्वृत्तेऽधिवासनम् ।

इति नामशून्यवचनं केनचिल्लिखितं तन्मैथिलादिनिबन्धेऽदर्श-  
नान्निर्मूलमेव । शिष्टाचारोपष्टम्भकसमूलत्वाभिमाने तु अधिवासपदो-  
पादानादयवहितपूर्वदिनकर्त्तव्यतानियमात् प्रवेशपूर्वदिने साय-  
ङ्काले षष्ठ्यलामेऽप्यधिवासः कार्यः षष्ठीलामे तु फलातिशयः, न च  
वैपरीत्याशङ्का यदा तु वर्द्धमाना षष्ठी परदिने दण्डार्द्धं दण्डमेकं  
वा निर्गता तत्परदिने सप्तमी पक्षीप्रवेशार्हा तदा प्रवेशपूर्वदिने  
षष्ठ्याः कर्मायोग्यतया सप्तमीचण एवाधिवासात् षष्ठी शुण एवावश्यं  
वाच्यः, अन्यथा कर्मलोपापत्तेः, सायङ्कालस्य अद्यभिचारात्<sup>१</sup> तस्यैव  
प्राधान्यमिति, प्राचीनाचारोऽपीदृश एव ।

सप्तम्यां विज्वृत्तान्तामिति यच्च देवी बोधिता तां फलयुगल-  
शालिनीं शाखामाहृत्य गृहं प्रविश्य संस्थाप्या<sup>२</sup>वाह्य पूजयेदित्यर्थः ।

तथाच कल्पतरुलिखितदेवीपुराणे,—

मृण्मयीं प्रतिमां कृत्वा विज्वे यस्तु प्रपूजयेत् ।

आत्मवित्तानुसारेण स लभेन्मौलिकं फलम् ॥

विज्वे शाखायां मौलिकं साक्षाद्भगवतीपूजाजन्यम् । विज्व-  
शाखामिति नवपत्रिकोपलक्षकम् ।

यथा कालिकापुराणे,—

सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्याञ्चाप्युपोषणम् ।

पूजा च जागरा चैव नवम्यां विधिवदलिः ॥

तथा तत्रैव,—

लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं पुस्तकस्थां तथैव च ।

मण्डलस्थां महामायां पत्रिकाप्रतिमासुच ॥

चित्रे च त्रिशिखे खड्गे पूर्णे कुम्भे जलेऽपि वा ।

त्रिशिखे त्रिशूले ।

पत्रिकासौक्ता भविष्ये,—

रक्षा कक्षी हरिद्रा च जयन्ती विज्जदाडिमौ ।

अशोको मानकश्चैव धान्यादिनवपत्रिकाः ॥

पुनः पूजा तथाष्टम्यामिति,—

विशेषेणेत्यनेन सवलिनं सविशेष षोडशोपचारपूजामाचरेदित्युक्तं,

पुनः पूजेत्यनेन सप्तम्यामपि पूजा आचिष्यते । प्रागपि

सप्तम्यां विज्जग्राखान्तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् इत्युक्तम् ।

ताञ्च देवीमावाह्य षोडशोपचारैरभ्यर्च्य नवपत्रिकार्चनरूपा  
अष्टम्यामेव सविशेषपूजाभिधानात्<sup>१</sup> तथा सप्तम्यां पत्रिकापूजेति  
प्रागुक्तम् ।

यत्तु पूर्वोत्तराभ्यां संपूजेति वचनं तत् विशेषपूजाभिप्रायम् ।  
स्वयं कुर्यादिति अष्टम्यां महानिशि स्वयं वलिदानं कुर्यात् ।  
तथाच योगिनीतन्त्रे,—

स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्रात्रा वा सुहृदैव वा ।

सपिण्डेनाथ वा च्छेद्यो नामगोचं नियोजयेत् ॥

वलिदानमित्युपलक्षणं पूजापि कार्या ।

यथा तत्रैव,—

कन्यासंस्थे रवौ वत्स या शुक्ला तिथिरष्टमी ।

तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः ॥

देवीपुराणे,—

कन्यासंस्थे रवाविषे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् ।

सोपवासो निशाद्धं तु महाविभवविस्तरैः ॥

पशुघातश्च कर्त्तव्यो गवलाजवधस्तथा ।

गवलो महिषः अजम्बुगः, अनयोः प्राशस्त्यम् । पूजा चाष्टमी-  
विधिनैव । यस्मिन् दिने निशाद्धं अष्टमी तत्रैव पूजा उभयदिने  
निशाद्धंष्टमीलाभे युग्मादरेण व्यवस्था ।

गौडीयास्त,—

अष्टमीनवमीसन्धौ चामुण्डारूपं ध्यात्वा उपचारैरभ्यर्च्य<sup>१</sup> बलि-  
दानं कुर्वन्तीति देशाचारः । प्रभूतबलिदानञ्च नवम्यां विधिवच्चरे-  
दिति नवम्यां प्रभूतबलिदानमित्यनेनाष्टम्यादौ पूजाङ्गकं बलिदान-  
मायाति ।

तथा कालिकापुराणे,—

अष्टम्यां रुधिरैर्मांसैर्महामांसैः सुगन्धिभिः ।

सिन्दूरैः पटवासैश्च मानाविध<sup>२</sup>विलेपनैः ॥

पुष्पैरनेकजातीयैः फलैवज्जविधैरपि ।

यत्तु,— अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद् ध्रुवम् ।

१ ख पुस्तके, चतु'षष्ठियोगिनौश्चाभ्यर्च्य इत्यधिक पाठ ।

२ ख, नानागन्ध० ।

इति नामशून्यं वचनं केनापि लिखितं तटस्थम् । मनुष्येति  
 प्रभृतवलिदाननिषेधकं मन्तव्यम् । प्रभृतवलिदानमिति चकारात्  
 प्रजनमपि तथा ।

पूजयित्वाश्विने मासि विशोको<sup>१</sup> जयति द्विषः ॥

नन्दिकेश्वरपुराणे,—

आर्द्रायां बोधयेद्देवीं भूलेनैव प्रवेशयेत् ।

पूर्वोत्तराभ्यां संपूज्य श्रवणेन विसर्जयेत् ॥

\* एतेन नवम्यां पूजने कार्यं बलिदानमात्रं कर्तव्यमिति यदुक्तं तन्निरस्तम् ।

सप्तम्यां पत्रिकापूजा श्रष्टम्यां चाप्युपोषणम् ।

पूजा च जागरा चैव नवम्यां विधिवद्वलिः ।

सप्रेषणं दशम्यान्तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥

इत्यादिवचनं तत् पूर्ववचनैकवाक्यतया अभूतबलिदानविधायकं न तु पूजानिषेधन तत्र विधिवदित्यनेन बलीनां अभूतत्वेऽपि विधिनैव बलियो देया न कदाचिदपि आलस्यादिवशादविधिनेति मन्तव्यम् । अत्र चैतेषु पूर्वोक्तेषु अनेकवचनेषु प्रवेशनादिविसर्जना-  
न्तमेकं कर्म प्रतीयते एकप्रयोगोपसंहारात् ।

तथाच शारदीयपूजामभिधाय<sup>२</sup> कालिकापुराणे,—

कृत्वैवं परमामाप्नुर्निर्वृतिं त्रिदिवौकसः ।

एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्याः प्रपूजनम् ॥

विभूतिमत्तुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायकम् ।

यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे ।

न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यथ भैरव ॥

१ ग, विशेष ।

२ ग, पत्रिकापूजामभिधाय ।

क्रुद्धा भगवती तस्य सर्वान् कामान् निहन्ति च ।

परत्र च महामायावलिर्भूत्वा स जायते ॥

अत्र फलैक्यात् कर्मणोऽप्येक्यं कर्मभेदे हि सङ्कल्पावाहनं  
विसर्ज्जनदक्षिणा अपि प्रतिकर्म स्युः । निन्दाश्रवणाच्चावश्यकतया  
पुत्रादिद्वारापि कर्त्तव्यताऽस्येति । ततश्च कर्मादौ पञ्चीस्थापनानन्तर-  
मावाहनात् प्रागेव सङ्कल्पः सप्तम्यां कार्यः नलष्टम्यादौ प्रतिपूजासु  
प्रत्येकं सङ्कल्पः, न च सप्तम्यामारभ्य शरत्कालीनपूजामहं करिष्ये  
इत्येवं रूपः शरत्कालीनपूजात्वावाहनादि विसर्जनान्ता ।

अन्ये तु अष्टम्यामेकं सङ्कल्पमाचरन्ति तन्मते सप्तमीपूजायास्त-  
टस्थता स्यादिति ।

भविष्येऽपि फलान्तरमुक्तम्,—

अनेन विधिना देवीं पूजयेद्यो हि मानवः ।

मर्त्ये च श्रेष्ठतां याति धनधान्यसुतान्वितः ॥

नीचो वा निर्गुणो वापि सत्याचारविवर्जितः ।

नरः स्वर्गमवाप्नोति विधिना पूजयेद्यदि ॥

भोजयेद्दे कुमारिका इति ।

तथाच देवीपुराणे,—

न तथा तुष्यति शिवा होमदानजपेन तु ।

कुमारीभोजनेनात्र यथा देवी प्रसीदति ॥

पूजनीयादेवीरूपमाह ध्यायेद्दशभुजामिति । दुर्गातन्त्रं दशा-  
चरजयदुर्गामन्त्रः । विसर्जनं दशम्यामिति रात्र्यादौ विसर्जनं न  
कार्यम् ।

देवीपुराणे,—

पञ्चविसर्जनं रात्रौ प्रवेश वा करोति यः ।

तस्य राष्ट्रविनाशः स्यात् पूजा च विफला भवेत् ॥

रात्राविति सायाह्नादिनिषिद्धकालोपलक्षणं देवकृत्यस्य पूर्वार्हे

प्राशस्त्यात् ।

तथा देवीपुराणे,—

द्विशरीरे चरे चापि लग्ने केन्द्रगते रवौ ।

वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं स्थापनञ्च विसर्जनम् ॥

ज्योतिषे,—

धन धान्यं चरे लग्ने द्विशरीरे च पूजिता ।

राज्ञो विनाशनं कुर्यात् स्थिरलग्ने शिवार्पिता ॥

अत्र अवषायां विसर्जने गुणातिशयः अवषान्तपादे तु फलातिशयः ।

यथा कालिकापुराणे,—

अन्तपादे दिवाभागे अवषा च यदा भवेत् ।

तदा सप्रेषणं देव्या दशम्यां शारदोत्सवैः ॥

अवषान्ते विसर्जयेदिति प्रागप्युक्तम् ।

शारदोत्सवमाह तत्रैव,—

शङ्खतुर्य्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटङ्गैस्तथा ।

धूलिकर्दमविचपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥

भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ।

भगलिङ्गक्रियाशब्दैः क्रीडयेद्युरलं जनाः ॥

परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परं नाक्षिपत्यपि ।

क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात्सुदारुणम् ॥

भगलिङ्गक्रिया मैथुनं तद्वाचकैः शब्दैरित्यर्थः । अत्र दशम्यां वलिदाने दोष उक्तः ।

यथा विश्वरूपनिबन्धे भविष्ये,—

दशम्यां दीयते यत्र वलिदानञ्च मानवैः ।

तद्वाङ्मं नाशमायाति मरकोपद्रवैः स्फुटम् ॥

कृत्वा विमर्जनं तस्यामिति मङ्गलं शान्त्याग्नीःप्रशस्तिवन्दना-  
दिकं, विजयकामस्तु राजा अश्वदीनां नीराजनमाचरेत् ।

कालिकापुराणे,—

नीराजनं दशम्यान्तु वलवृद्धिकरं महत् ।

महानवम्यां त्रिशूले शूलिनीमावाह्य पूजयेत् तच्च काम्यम् ।

भविष्ये,—

मासि चाश्वयुजे देवीं शूक्तपत्रे त्रिशूलिनीम् ।

त्रिशूले च समावाह्य भक्त्या गणसमन्विताम् ॥

नवम्यां पूजयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ।

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥

तत्फलं समवाप्नोति देवीदेवगणैर्वृतः ।

अष्टम्यामुपवासफलमाह भविष्ये,—

देवीभयर्घ्यं यः कुर्यात् शूक्ताष्टम्यामुपोषणम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो न स याति यमालयम् ॥

एकादशीशताद्राजनधिका च सिताष्टमी ।



संवत्सरमुपोष्यैव सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

अत्र पारणा मत्स्यमांसेनैव कार्य्येति केचित् तथा च पठन्ति ।

अष्टमीं समुपोष्यैव नवम्यां पारणेऽहनि ।

मत्स्यमांसोपहारेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥

तेनैव विधिनामन्तु स्वयं भुञ्जीत नान्यथा ॥

तच्च तस्यामूलत्वात्, समूलत्वेऽपि निषिद्धेतरस्थलेऽनिवृत्तमांस-  
विषयं वचनं अन्यथा यावज्जीवप्रतिज्ञायां मत्स्याप्राप्तौ वा व्रत-  
भङ्गापत्तेः । महाष्टम्यान्तु पुत्रिणा नोपवासः कार्य्यं इत्युक्तम् ।  
कालिकापुराणे,—

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान् न समाचरेत् ।

यथा तथा संयतात्मा व्रतौ देवीं प्रपूजयेत् ॥

ननु,—

सोपवासो निगार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः ।

तथा,—

सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् । इति ।

पूजाङ्गोपवासे किं स्यादित्याशङ्क्याह यथा तथेति यथातथा  
हविष्यफलाहारादिना संयतात्मा पूतकायो देवीं पूजयेत् । न  
कदाप्युपवासः कार्य्यः । एतेन पूजाङ्गोपवासस्तु पुत्रिणापि कार्य्यः,  
अन्यथा कर्षवैगुण्यापत्तेरिति केनचिदुक्तं तन्निरस्तम् ।

भविष्ये,—

व्रतौ प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये ।

द्वाभ्यां चतुरहोभिर्वा ब्राह्मणद्विवशान्तिथेः ॥

दिनत्रये सप्तम्यादितिथित्रयविहितं पूजात्रयं प्रायिकं कदाचित्तिथिद्वासवशाद्वाभ्यामहोभ्यां पूजात्रयं कदाचित्तिथिवृद्धिवशाच्चतुर्भिरहोभिः पूजात्रयमित्यर्थः । अत्रेयं व्यवस्था दैवज्ञत्यत्वात् पूर्वाह्णे दिनत्रये तिथित्रयलाभे निर्विवादैव व्यवस्था ।

अतएव विश्वरूपनिबन्धे,—

विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां यः पूजां कुरुते मम ।

तस्य पूजां न गृह्णामि तेनाहमपराजिता ॥

इति वचनात् विष्टावपि पूर्वाह्णानुरोधात् पूजोक्ता एवञ्च नचचादरोऽपि पूर्वाह्णलाभ एवेति ।

यदा तु दिनद्वये पूर्वाह्णे कर्मायोग्या सप्तमी लभ्यते तदा युग्मादरमपि विष्टाय उदयगामिन्यामेव परदिने कर्त्तव्यम् ।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।

रवेरुदयमीचन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥

इति देवीपुराणवचनात् । यदा तु उदयगामिनी सप्तमी कर्मा-  
नर्हा तदा पूर्वदिने उदयगामित्वाभावेऽपि सप्तमीकृत्यं । एवं दिन-  
द्वये पूर्वाह्णे नवमीलाभे कर्मायोग्याष्टमीचणे अष्टमीपूजां विधाय  
तत्परतो नवमीचणे युग्मादरान्नवमीकृत्यम् । तत्परदिने तु उदय-  
गामिन्यां नवम्यां पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुष्पाञ्जलिदानमाचमम् ।

न च तद्दिने पुनरपि सकलं नवमीकृत्यं कथं न क्रियते इति  
वाच्यम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजेत्यादिविधिव्यैः “सकृत्कृते कृतः  
शास्त्रार्थः” इति न्यायसम्बलितैः सप्तम्यादितिथित्रये पूजात्रयमेव  
विधीयते । अतएव दिनद्वये तिथित्रये पूजात्रयं, ततश्च त्रती

प्रपूजयेद्देवीमित्यत्र पूजयेदिति वक्ष्यमाणाभिप्रायं, अन्यथा चतुरहः-  
पूजापक्षे वृद्धिवशात् परदिने निर्गतायाः कर्मायोग्यनवम्याः पर-  
दिने दशमीक्षणे कौटुशी पूजा स्यात् ।

किञ्च दशमीविद्धनवम्या जिन्दापि श्रूयते ।

पद्मपुराणे,—

एकादशी च नवमी दशाविद्धा यदा भवेत् ।

तदा वज्र्यां विशेषेण गङ्गाम्भः सुरया यथा ॥

शिवरहस्ये,—

अष्टम्येकादशी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी ।

कर्त्तव्याः परसंयुक्ता पराः पूर्व्वेण मिश्रिताः ॥

स्कान्दे,—

अष्टम्या नवमी मिश्रा नवम्या चाष्टमी युता ।

अर्द्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः ॥

तथा तत्रैव,—

आवणौ दौर्गनवमी तथा दूर्वाष्टमी तिथिः ।

पूर्व्वविद्धा तु कर्त्तव्या शिवराचिर्वलेर्दिनम् ॥

बलेर्दिनं द्यूतप्रतिपत् तत्र बलिपूजाविधानात् ।

गृह्यपरिशिष्टे षण्मुन्योर्वचुरभ्योरित्याद्यभिधाय,—

एतद्व्यसं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतमित्युक्तम् ।

एतेन दिनद्वये पूजाद्वयप्राप्तौ एकस्मिन् दिने पूजाद्वयमयुक्त-  
मिति विमर्षो निरस्तः ।

न च तद्दिने पञ्चोपचारैः पूजापि न स्यादिति वाच्यं

तद्दिने पूजां विना देवतास्थापनमयुक्तमिति व्यवहारिकी पञ्चोप-  
चारपूजेति ।

यदा तु तिथिवृद्ध्या दिनद्वये सप्तस्युदयगामिनी तत्र परदिने  
कर्मयोग्याऽयोग्या वा सप्तमी, तदा पूर्वदिन एवाखण्डतिथावनु-  
ष्ठानम् ।

त्रिसन्ध्याव्यापिनी या तु सैव पूज्या सदा तिथिः ।

न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवाचरात् ॥

इति पराशरवचनात् ॥ अस्मिन्नेव विषये यदा परदिने कर्म-  
योग्याऽष्टमी, तदा सप्तमीविद्धां विहाय तत्रैव युग्मादरादष्टमी-  
पूजा । यथा स्कान्दे,—

अष्टमी नवमीमिश्रा कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ।

सप्तमीषहिता चेद्यं न कर्त्तव्या शिखिध्वज ॥

सप्तमीविद्धाष्टमीदिने तु पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुष्पाञ्जलिदान-  
मात्रं कार्यं अत्र चतुर्भिरहोभिः पूज्येत । यदा तु परदिने  
कर्मानर्हाष्टमी तदा सप्तमीविद्धायामप्यष्टमीपूजेति ।

यत्तु,—

जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता च महाष्टमी ।

दूद्रेण निहतो जम्भस्तदा दानवपुङ्गवः ॥

इति वचन तदुभयदिने कर्मयोग्याष्टमीलाभे विद्धानिषेधकम् ।  
तथाष्टमीवृद्धौ त्रिसन्ध्याव्यापिनीतिवचनात् पूर्णायामेवाष्टमीपूजा.  
तत्परदिने युग्मादरात्रवमीपूजा, तत्परदिनेतद्वदयगामिन्यां नवम्यां  
पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुष्पाञ्जलिदानमात्रं, तत्परदिने च विसर्जनं,

“शुक्लपक्षे तिथिर्याह्या यस्यामभ्युदितो रविः, इति वचनात् । एवं नवमीवृद्धावपि चतुर्भिरहोभिः पूजेति । यदा त्वदयगामिनी सप्तमी कर्माह्वा, तस्मिन्नेव दिने वा कर्माह्वाष्टमी, ततश्च अष्टमी-चयस्तदा सप्तमीक्षणे सप्तमीकृत्यं विधायाष्टमीक्षणेऽष्टमीपूजेति । अत्र द्वाभ्यामहोभ्यां पूजेति । तथा नवमीक्षये कर्मयोग्याष्टमीक्षणे-ऽष्टमीपूजां विधाय तत्परतो नवमीक्षणे नवमीकृत्यम् । तथा दशमीक्षये कर्मयोग्यनवमीक्षणे नवमीपूजां विधाय तत्परतो दशमीक्षणे विसर्जनमिति ब्रूहः पूजा ।

उदङ्मुखेनैव दुर्गार्चनमाह कालिकापुराणे,—

दिग्भागेषु हि कौमारी दिक् शिवाप्रीतिदायिनी ।

तस्मात्तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा ॥

नीचैरासनमाह्वय सर्वान् देवान् प्रपूजयेत् ।

अत्र सदेत्यनेनोदङ्मुखत्वस्यावश्यकता दर्शिता । एतेन दक्षिण-भिमुखेन देवीस्थापनमायातम् । “अर्वायान्वय सन्मुख” इति भागवते प्रतिमाभिमुख्येन पूजाविधानात् ।

षोडशोपचारानाह कालिकापुराणे,—

आसन पाद्यमर्घ्यञ्च ततो ह्याचमनीयकम्<sup>१</sup> ।

मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं भूषणचन्दनम् ॥

पुष्पं धूपञ्च दौपञ्च नेत्राञ्जनमतःपरम् ।

नैवेद्याचमनीये तु प्रदक्षिणमस्तुतिः ॥

एते षोडश निर्दिष्टा उपचारान्विकार्चने ।

तथा तत्रैव,—

सम्यक् सम्यादिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।  
उपचारांस्तथा सम्यक् पञ्चैतान् वितरेद्यथा ॥  
गन्धं पुष्पञ्च धूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च ।  
अभावे पुष्पतोद्याभ्यां तदभावेन भक्तिः ।

तथा तत्रैव,—

आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ।  
वास्तं वा चार्घ्यं कौश मण्डपस्योत्तरे सृजेत् ॥  
आसनञ्चार्घ्यपाचञ्च भग्नमासादयेत् तु ॥

शारदातिलके,—

पाद्यं श्यामाकदूर्वास्त्रिविष्णुकान्ताभिरीरितम् ।  
विष्णुकान्ता अपराजिता ।

तथा,—

अर्घ्यं दिशेत्ततो मूर्द्ध्नि स्वाहामन्त्रेण देशिकः ।  
गन्धपुष्पास्त यव कुशाय तिल सर्षपैः ।  
सदूर्वाः सर्वदेवानामेतदर्थमुदीरितम् ॥  
स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।  
जातीक्षवङ्गकल्लोलैस्तदुक्तं तन्त्रवेदिभिः ॥  
स्वधापदेन दद्याच्च मधुपर्कं सुखाम्बुजे ।  
आज्यं दधिमधून्मिश्रमेतदुक्तं मनौषिभिः ॥

स्वाहापदेनार्घ्यं, आचमनीयमधुपर्कौ तु स्वधापदेन, सर्वमन्य-

जमः पदेन ।

एषां पात्रप्रमाणमाह भविष्ये,—

वस्त्रङ्गुलविहीनन्तु न पात्रं कारयेत् कश्चित् ।  
सर्वत्र स्वर्णवत्ताम्रमर्ष्यपात्रे ततोऽधिकम् ॥

स्नानजलमाहागस्थे,—

अन्यानिवेदितं तोयं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ।  
हेमादिकलषान्तःस्थं पूजासाधनमिष्यते ॥

निषिद्धवस्त्रमाह कालिकापुराणे,—

निर्दृशं मलिनं जीर्णं तथा गात्रावलम्बितम् ।  
परकीयं ह्यग्निदग्धं सूचीविद्धं तथाऽसितम् ॥  
उपकेशमधौतञ्च स्नेहरक्तादिदूषितम् ।  
नीलीरक्तमारुजगंधं देवे पैत्रे च वर्जयेत् ॥  
भूषणं स्वर्णरौप्यादिनिर्मितमङ्गुरीयादि ।

तत्रैव,—

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥

शारदातिलके,—

गन्धश्चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितः ॥

कालिकापुराणे,—

वकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्डजैः ।  
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्गुरैश्च कोमलैः ॥

इत्यादिना पुष्पाण्यभिधाय “सर्वतो विल्वपत्रन्तु देव्याः प्रोत्ति-  
करं परमित्युक्तं । ब्रह्मवृक्षः पलाशः, लता कोमलशाखा ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

तथा,— यक्षधूपः पञ्चिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।

कृष्णागुरुः सकर्पूरो महामायाप्रिया इमे ॥

यक्षधूपः सर्ज्जरसः, पञ्चिवाहादयो धूपभेदाः ।

भविष्यपुराणे,—

अगुरुं धूपमावेद्य वाजपेयफलं लभेत् ।

सितागुरुं नरो दग्ध्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥

महिषाचं घृताक्तञ्च दग्ध्वा विल्वमथापि वा ।

वाजपेयफलं प्राप्य दुर्गालोके महीयते ॥

महिषाचं गुग्गुलुः ।

तथा,—

घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ।

नेत्राङ्गादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्धितः ॥

सुश्लिखः श्रन्दरहितो निर्धूमो नातिद्विखकः ।

दक्षिणे दीपवृक्षस्यः प्रदीपः श्रीविष्टद्वये ॥

वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।

दीपवृक्षाश्च कर्त्तव्यास्तैजसाद्यैः प्रयत्नतः ॥

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपस्त्रेहान् घृतादिकान् ।

दत्त्वा मिश्रीकृतं स्त्रेहं तामिस्रं नरकं व्रजेत् ॥

प्रथमो मुख्यः ।

दूरतापं विवृणोति तत्रैव,—

लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात् ।

न स दीप इति ख्यातो मोघवह्निरिति स्मृतः ॥



तत्रैव,—

ग्राणं वादरज वास्तं जौर्णं मञ्जिनमेव वा ।

उपयुक्तन्तु नादद्याद् वर्त्तिकार्थं कथञ्चन ॥

ग्राणं ग्रणसूत्रं, वादरजं वस्त्रदशाम् ।

ग्राङ्गः— दशां विवर्ज्येत् प्राज्ञो यद्यप्याहतवस्त्रजाम् ॥

उपयुक्तं पूर्वकृतोपयोगम् ।

तत्रैव,—

तैजसं दारवं क्षौहं मार्त्तिकं नारिकेलजम् ।

तृणराजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ॥

तृणराजोद्भवं तालफलास्थिमयम् ॥

भारते,—

नैव निर्व्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम् ।

दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्व्वापको भवेत् ॥

कालिकापुराणे,—

सौवीरं माघनं तथ्यं मयूरश्रीकरं तथा ।

दग्धिका मेघनीला च अञ्जनानि भवन्ति षट् ॥

षट्वा निपात्य चैतानि शिलायां तैजसेऽपि वा ।

प्रदद्यात् सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्तक ॥

सौवीरादिपञ्चाञ्जनानि प्रस्तररूपाणि षष्टैव देयानि । निपात्य

३ दग्धिकाञ्जनं देयम् ।

तदाह तत्रैव,—

छततैलादियोगेन ताम्रादौ पात्य वक्त्रिणा ।

यदञ्जनं जायते तद्गन्धिका परिकीर्त्तिता ॥

विधवा नाञ्जनं कुर्यान्—महामायार्थमुत्तमम् ।

न मृत्पात्रे योजयेत्तु साधको नेत्ररञ्जनम् ॥

नैवेद्यन्तु फलपायससन्देशादि बहुविधम् ।

तदुक्तं तत्रैव,—

भक्ष्यं भोज्यञ्च लेह्यञ्च चर्व्यं चोष्यञ्च पञ्चमम् ।

भक्ष्यादिपञ्चकैर्देवी दत्तैरेवाश तुष्यति ॥

नादत्ते विधिवत् किञ्चिद् दत्तं भवति न कश्चित् ।

हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्यमुक्तं सगर्भरम् ॥

निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ।

उपस्त्रुतानि मांसानि ग्रस्यानि विविधानि च ॥

पूजासु नाममांसानि योजयेत्तु कदाचन ।

क्षीरादीन्यथ गव्यानि महिष्याणि च सर्वशः ॥

परमान्नं पिष्टकञ्च यावकं कृशरं दधि ।

मोदकं पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ॥

नारिकेलं कपित्थञ्च द्राक्षां क्रमुकमेव च ।

दाडिमं श्रीफलं कोलं कुशाण्डं पनसन्तथा ॥

बकुलञ्च मधूकञ्च रसालाम्नातके डङ्गम् ।

कदलीं क्षीरवृक्षोत्थं करुणं कर्कटीफलम् ॥

जाम्बवं पिण्डखर्जूरं बीजपूरञ्च जम्बलम् ।

हरीतकीमामलकं षड्विधं नागरङ्गकम् ॥

मातुलङ्गञ्च लकुचं लवलीं करमर्दकम् ।

मृङ्गाटकं कशेरुञ्च शालूकञ्च मृणालकम् ॥  
कुमुदानां पद्मजानां फलानि च निवेदयेत् ।  
यानि लोके प्रशस्तानि खादूनि च मृदूनि च ॥

तथा,—

बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलानिभिः ।  
दक्षुदण्डैस्तद्विकारैस्तथा गुडसितादिभिः ॥  
पूजयेज्जगतां धार्त्रीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥

यत्किञ्चिद्विधिवद्भक्त न भवति तद्देवी नादत्त इत्यर्थः । क्रमुकं  
गुवाक, जाम्बव जम्बुफल, जम्बल जम्बौरम्<sup>१</sup> ।

तथा तत्रैव,—

ताम्बूलं पत्रसयुक्तं कर्पूरादिसुवासितम् ।  
सचूर्णं जलजानाञ्च मङ्गलं विनिवेदयेत् ॥  
नमस्कारमाह तत्रैव,—  
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।  
शरण्ये अम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥  
सप्तधावर्त्तनं कृत्वा स्तुतिमेताञ्च साधकः ।  
पञ्चप्रणामान् कुर्वीत ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकैः ॥

तथा,—

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च ।  
यस्य यद्दौयते द्रव्यमलङ्कारादिकाञ्चनम् ॥

वर्षक्रियाकौमुदो ।

तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ।  
उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनान्ना निवेदयेत् ॥  
वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।  
अर्घ्यपात्राहितैस्तोयैर्विना यद्विनिवेदितम् ॥  
दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वै तन्निष्फलं भवेत् ।  
वेगान्मोहात् प्रमादाद्वा अर्घ्यपात्रपरिष्कृतम् ॥  
तोयं स्तुतञ्च तत्पात्रात् पुनः क्षुर्यात् तदामृतम् ।  
अत्यावशेषे तोये तु पात्रे मन्त्रामृतौकृते ॥  
तत्रान्यदुदकं दद्यात् तत्तेनैवामृतं भवेत् ।  
नार्घ्यं प्रदद्यादन्येभ्यो मूलदेवाय कल्पितम् ॥  
परिवारगणांस्तत्र सामान्यार्घ्येण पूजयेत् ॥

• [प्रोक्षणपूजने कृत्वा द्रव्यदेवतामुच्चार्य मूलमन्त्रेणोत्सृज्य द्रव्य-  
नाम गृहीत्वा देवतायै निवेदयेदित्यर्थः ।

मूलमन्त्रस्तु, दुर्गातन्त्रसंज्ञको दशाक्षरदुर्गामन्त्रः ।  
तथोक्तम्,—

ध्यायेद्दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥]

मन्त्र उक्तो यथा तत्रैव,—

तारो दुर्गेद्वयं रेफः प्रान्तो ढान्तः सलोचनः ।

स्वाहान्ता जयदुर्गेयं दुर्गातन्त्रमिति स्मृतम् ॥

यानञ्च जटाजूटसमायुक्तामित्यादि वक्ष्यमाणम् ।

पत्रिकापूजोक्ता भविष्ये,—

ब्रह्माणी कदलीकाण्डे दाडिमे रगदन्तिका ।  
धान्ये लक्ष्मीर्धरिद्रायां दुर्गा मानकपत्रके ॥  
चामुण्डा कालिका कच्छां शिवा विल्ले प्रतिष्ठिता ।  
अशोके शोकरहिता जयन्त्यां कार्तिकी मता ॥

अथावरणपूजा ।

शारदातिलके,—

अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपि ।  
इति सर्वदेवतासाधारणवचनात्, प्रथममङ्गपूजा, पञ्चादिक-  
पालपूजा कर्त्तव्या ।

अङ्गान्युक्तानि शारदातिलके,—

तारादिदुर्गे हृदयं दुर्गे शिरः उदीरितम् ।  
दुर्गायै स्याच्छिखा वर्षं भूतरक्षणि कौर्त्तितम् ॥  
तारादिदुर्गे द्वितयं रक्ष्यश्चि प्रकौर्त्तितम् ।  
तारादिदुर्गे युगलं रक्ष्यस्त्रमुदीरितम् ॥

तथा,—

केशरेखग्निकोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ।  
नेत्रमये दिशास्त्रस्त पूजयेच्चतसृष्वपि ॥  
अथवा कालिकापुराणोक्ताङ्गविधिर्याह्नः ।

यथा,—

मायावीजेन षड्दीर्घभाजा कुर्यात् षडङ्गकम् ॥

तत्रैव नानाद्रव्यैः पूजामभिधाय परिवारपूजामाह ।

कालिकापुराणे,—

उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ।

योगिनीश्च चतुःषष्टिं तथा वै कोटियोगिनीः ॥

नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिते शुभाः ।

जयन्त्यादीर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मूर्त्तयो यतः ॥

देव्याः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ।

अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहेमेव च ॥

महिषासुरमर्दिन्याः पूजयेद्भूतये सदा ॥

तथा,—

मायालक्ष्मीपदाद्येन पूजयेत् सर्वमातरः ॥

इति सामान्यपरिभाषा ।

पत्रमूलेषु उग्रचण्डाद्याः पूजयेत् । यथा,—

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।

चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपा च चण्डिका ॥

पूर्वादिष्वष्टपत्रेषु क्रमादिताः प्रपूजयेत् ॥

अतः पत्रमध्ये अष्टावृत्त्या चतुःषष्टियोगिनीः प्रपूजयेत् । ताश्च ब्रह्माण्णाद्या महागौर्यन्ताः कालिकापुराणोक्ताः प्रयोगेऽभिधायन्ते ।

ततः कोटियोगिनीभ्यो नमः इति पाद्यादिभिरेकैव कोटि-योगिनीः पत्राग्रे पूजयेत् । पुराणान्तरोक्ता उपयोगिन्योऽपि कोटियोगिन्यन्तर्गता एव । एवं देशविशेषदेवता अपि तदन्तर्गता एवेति न पृथक्पूज्याः ।

तथा कालिकापुराणे,—

ततो देव्या. सन्निधाने सम्यग्दुर्गाः शुभप्रदाः ।

ऐशानादिक्रमाद् द्वे द्वे मध्ये च पूजयेन्नरः ॥

ब्रह्माणीं प्रथमश्चैव तथा माहेश्वरीमपि ।

कौमारीं वैष्णवीश्चैव वाराहीञ्च तथैव च ॥

नारसिंहीं तथेन्द्राणी चामुण्डा चण्डिकां तथा ॥

जयन्त्यादिका अपि देवीसन्निधाने पूजयेत् ।

जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ।

दुर्गां शिवा चमा धात्रीं खधा स्वाहाञ्च पूजयेत् ॥

अस्ताणि तत्रैवोक्तानि,—

त्रिशूल दक्षिणे ध्येयं खड्गं चक्रं क्रमादधः ।

तौक्ष्णवाण तथा शक्ति दक्षिणे सन्निवेशयेत् ॥

खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ।

घण्टा वा परशु वापि वामतः सन्निवेशयेत् ॥

ॐ किरीटादिभ्यो देव्यङ्गप्रत्यङ्गभूषणेभ्यो नमः, इत्येकत्र पूजयेत् । तथा देव्यग्रे सिंह महिषासुरमपि पूजयेत् ।

महिषासुरवरदाने देव्युवाच,—

मम प्रवर्तते पूजा यत्र यत्र च तत्र ते ।

पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कान्तोऽयं तव दानव ॥

तथा प्रात्यहिकदुर्गापूजायां तत्रैव,—

देव्यास्तु करगृह्णाणि शस्त्रास्त्रादीनि वाहनम् ।

पञ्चानन काशरञ्च दैत्यमग्रे प्रपूजयेत् ॥

अन्ते च अङ्गपालाः पूज्याः,—

अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपि ।

इति वचनात् ।

इयमेव शारदीपूजोक्ता कालिकापुराणे । कामाख्यापूजाया-  
मुक्तान् वटुकचेत्रपालभैरवान् केचित् पूजयन्ति ।

तथा तत्रैव,—

होमञ्च सतिलैराज्यैर्मांसैर्वाथ समाचरेत् ।

स चाष्टाधिकं सहस्र शतं वा दुर्गतन्त्रमन्त्रेणैव कार्यः । तथा  
पूजितपरिवाराणामपि एकैकाङ्गतिर्दीधा ।

विष्णुधर्मे,—

मन्त्रेणोङ्कारपूर्व्वेण स्वाहान्तेन विचक्षणः ।

स्वाहावसाने जुहुयाद् हृदि ध्यात्वेष्टदेवताम् ॥

अथ वलिदानम् ।

कालिकापुराणे,—

पक्षिणः कच्छपा ग्राह्या मत्स्याः पञ्चविधा मृगाः ।

महिषो गवयो गावश्चागोरभ्रौ च शूकरः ॥

खड्गश्च छण्णसारश्च गोधिका सरभो हरिः ।

शार्दूलश्च नरस्यैव खगाचरुधिरं तथा ॥

चण्डिकाभैरवादीनां बलयः परिकीर्त्तिताः ।

उरभ्रो मेषः, खड्गो गण्डकः, हरिः सिंहः ।

तथा,—

पशूनां पक्षिणां वापि नराणाञ्च विशेषतः ।



स्त्रियं न दद्यात्तु वलिं दत्त्वा नरकमाप्नुयात् ॥  
 न च त्रैमासिकान् न्यूनं पशुं दद्याच्छिवावलिम् ।  
 न च त्रैपक्षिकान् न्यूनं प्रदद्याद्द्वै पतत्रिणम् ॥  
 काण्व्यङ्गादिदुष्टन्तु न पशुं पक्षिण तथा ।  
 क्षिन्नघ्राङ्गसकर्णादिभग्नदन्तं तथैव च ॥  
 भग्नशृङ्गादिकञ्चैव न दद्यात्तु कदाचन ।  
 अनुक्त नापि दद्यात्तु तथाऽज्ञातान् मृगद्विजान् ॥

तथा,—

वलिभिः साध्यते मुक्तिर्वलिभिः साध्यते दिवम् ।  
 वलिदानेन सततं जयेच्छत्रून् नृपान् नृपः ॥  
 मत्स्यानां कच्छपानाञ्च रुधिरैः सततं शिवा ।  
 मासैकं तृप्तिमाप्नोति गार्हर्मासाञ्च त्रीनथ ॥  
 मृगाणां शोणितैर्देवी गवयानां विमोषतः ।  
 अष्टौ मासानवाप्नोति तृप्तिं कल्याणदा शिवा ॥  
 गोगोधिकानां रुधिरैर्वार्षिकी तृप्तिमाप्नुयात् ।  
 कृष्णमारस्य रुधिरैः शूकरस्य च शोणितैः ॥  
 आप्नोति सततं प्रीतिं देवी द्वादशवार्षिकीम् ।  
 अजात्रिकानां रुधिरैः पञ्चविंशतिवार्षिकीम् ॥  
 महिषाणाञ्च खड्गानां रुधिरैः शतवार्षिकीम् ।  
 तृप्तिमाप्नोति परमां शार्दूलरुधिरैस्तथा ॥  
 सिंहस्य सरभस्याथ स्वगात्रस्य च शोणितैः ।  
 देवी तृप्तिमवाप्नोति सहस्रं परिवत्सरान् ॥

मांसैरपि तथा प्रीतिं रुधिरैर्यस्य यावतीम् ।  
 पूजासु नाममांशानि दद्याद्वै साधकः कश्चित् ॥  
 ऋते तु लौहितं शौर्षममृतं तत्तु जायते ।  
 रोहितस्य च मत्स्यस्य मांसैर्वाह्नीनमस्य च ॥  
 तप्तिं प्राप्नोति वर्षाणां शतानि त्रीणि मन्त्रिणा ।  
 नरेण बलिना देवी महस्र परिवत्सरान् ॥  
 विधिदत्तेन चाप्नोति तप्तिं लघं विभिन्नैः ।  
 कुष्माण्डमिच्छुदण्डञ्च मद्यमासवनेन च ॥  
 एते बलिममा पृज्यास्तृष्टौ कांगममाः स्मृताः ।

यत्तु,—

ततो देवी समुद्दिग्य काममुद्दिग्य चात्कनः ।  
 इति वक्ष्यमाणतटोयाचने कामपदं तदुक्तकामपरमेव श्रुत-  
 त्वात्, कामनामात्रपरत्वे कल्पनागौरवात् विशेषविधानानर्ह-  
 क्याच्च ।

तथा,—

त्रिपिवन्त्रिन्द्रियक्षौण श्वेतं वृद्धमजापतिम् ।  
 वाह्नीनमं विजानोयात् हय्यत्रव्येषु मरुतम् ॥  
 नीलघ्नीवो रक्तशिराः कृष्णपादः सितच्छटः ।  
 वाह्नीनमः स पक्षी स्यात् मम विष्णोरपि प्रियः ॥

भविष्ये,—

बलिहोने तु दुर्मिचं गन्धहोने तु रोगिता ।  
 धूपहोने तयोद्देगो बन्धहोने धनक्षयः ॥

वेदीहीने विनागः स्थानगरस्य पुरस्य च ।

दक्षिणारहित मन्वे व्यर्थ स्थानात्र सगयः ॥

रुधिरपात्रमाह कालिकापुराणे,—

सौवर्णं राजतं ताम्रं रौप्यं पत्रपुटञ्च वा ।

माहेयं काष्ठपात्रञ्च यजकाष्ठमयञ्च वा ॥

न लौहे वाक्कले नापि वेत्रे वाङ्गैऽथ शैलके ।

दद्याद्रक्तं वलीनां न भूमौ स्रुचि स्रुवे घटे ॥

तथा,—

हयमेधमृते दद्यान्न कदाचिद्भुजं वलिम् ।

तथा दिक्पालमेधेषु गजं दद्याद्विचक्षणः ॥

न कदाचिन्महादेव्यै प्रदद्याद्भुजहस्तिनौ ।

सिंहव्याघ्रनरान् दत्त्वा ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥

इहापि स्यात् स ह्येनायुः सुखसौभाग्यवर्जितः ।

स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा आत्मवध्यामवाप्नुयात् ॥

मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मणादेव हौयते ।

अवश्यं विहितं यत्र तत्र तत्र द्विजं पुनः ॥

नारिकेलजलं काष्ठे ताम्रे वा विमृजेन्मधु ।

न कृष्णमारं वितरेद्वलितुं क्षत्रियादयः ॥

ददतः कृष्णसारन्तु ब्रह्महत्यामवाप्नुयुः ।

प्रभृतवलिदाने तु द्वे वा चौन् वाग्रतः कृतान् ॥

पूजयेत् प्राप्नुयान् कृत्वा सर्वान् तन्त्रेण साधकः ॥

वितरेद्वितरेयुरित्यर्थः ।

तथा,—नारं सव्ये शिरोरक्तं देव्यै सम्यङ् निवेदयेत् ।  
 छागन्तु वामतो दद्यान्माहिषं वितरेत् पुरः ॥  
 पाक्षिणं वामतो दद्यादगतो देहशोणितम् ।  
 क्रव्यादानां पशूनाञ्च पक्षिणाञ्च शिरोऽसृजाम् ॥  
 वामे निवेदयेत् पार्श्वे जलजानाञ्च सर्वशः ।  
 क्षणसारस्य कूर्मस्य खड्गस्य शशकस्य च ॥  
 ग्राहाणामथ मत्स्यानामथ एव निवेदयेत् ।  
 षष्ठदेशे न दद्यात्तु शिरो वा रुधिरं वलेः ॥  
 नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न तु षष्ठतः ।  
 दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो वा न वामतः ॥  
 वामतस्तु तथा धूपमथ वा न तु दक्षिणे ।  
 निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पञ्च भूषणम् ॥  
 मदिरां षष्ठतो दद्यात् शशत् पानन्तु वामतः ।

तथा तत्रैव,—

चन्द्रहासेन कर्त्र्या वा क्सेदनं मुख्यमुच्यते ।  
 दात्रामिधेनुक्रकचमङ्कुलाभिश्च मध्यमम् ॥  
 चन्द्रहासः खड्गः, श्मिधेनुः स्तन्यखड्गः, मङ्कुला यन्त्रकर्तरी ।  
 चुरचुरप्रभमैश्च अधम परिकीर्तितम् ।  
 एभ्योऽन्यैः शक्तिवाणार्थैर्वन्निष्क्रेद्यः कदापि न ॥  
 नान्ति देवी वलि तन्तु दाता मृत्युमवाप्नुयात् ।  
 हस्तेन च्छेदयेद् यन्तु प्रोक्षित माधकः पशुम् ॥  
 पक्षिणं वा ब्रह्महत्यां स आप्नोति निरुत्सवः ।

## अथ कालिकापुराणोक्तशरत्कालीनदुर्गामहोत्सव- प्रयोगः ।

अष्टादशभुजापूजायां कृष्णनवम्यां विल्ववृक्षे देव्या बोधनम् ।  
षोडशभुजापूजापक्षे तु चतुर्दश्यां बोधनम् । चतुर्भुजापूजापक्षे तु  
शुक्लप्रतिपदि बोधनम् ।

अत्र चतुर्थ्यां देवीं पूजयित्वा कङ्कतिकादिकेशोदत्तनसामग्री-  
दानम् । पञ्चम्यां सुगन्धजलेन स्नापनं कार्यम् । दशभुजापूजापक्षे  
तु शुक्लप्रतिपदमारभ्य एकभक्तं ब्रह्मचर्यञ्च विधाय षष्ठ्यां सायंसमये  
विल्ववृक्षे देवीं बोधयेत् ।

कृतनित्यक्रियो यजमानः स्वस्ति वाच्यं सङ्कल्पं कुर्यात् । अद्येत्यादि  
कर्त्तव्यं शरत्कालीनदुर्गापूजाकर्मणि श्रीविल्ववृक्षे श्रीभगवद्दुर्गाबोधन-  
कर्म करिष्ये । ततो भूतशुद्ध्यादिकं विधाय, भगवतीं विल्ववृक्षे आवा-  
ह्योपचारैः सम्यूज्य, विल्ववृक्षञ्च सम्यूज्य तत्र गीतवाद्यैर्देवीं बोधयेत् ।

ऐं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च ।

अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्या-स्त्वयि कृतः पुरा ॥

अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयामि वै ।

शक्रेणापि च संबोध्य प्राप्तं राज्यं सुरालये ॥

तस्मादहं त्वां प्रतिबोधयामि

विभूतिराज्यप्रतिपत्तिहेतोः ।

यथैव रामेण हतो दशास्य-

स्तथैव शत्रून् विनिपातयामि ॥

प्रवेशपूर्वदिने सायंसमये देवीमधिवासयेत् । अथेत्यादि  
 शरत्कालीनदुर्गापूजाङ्गभूतश्वःकर्त्तव्यनवपत्रिकास्थापनकर्म्मणि श्री-  
 दुर्गादेव्या गन्धमाल्यादिभिरधिवासनकर्म्म करिष्ये, इति सङ्कल्प्य  
 भूतशुद्धिप्राणायामार्घ्यस्थापनानि कृत्वा गणेशग्रहदिक्पालान् सम्पूज्य  
 प्रतिमायां पत्रिकासु च देवीमावाह्य सम्पूज्य च, ॐ कोसि कतमो-  
 ऽसौति मन्त्रेण तैलहरिद्रया, ॐ अशुना ते ॐ गन्धदारेति च द्वाभ्यां  
 गन्धचन्दनेन, ॐ श्रीश्च ते इति पुष्पेण माल्येन चाधिवासयेत् ।

ततो भूतेभ्यो माघभक्तवलि दत्त्वा गौतवाद्यैः प्रणामेन च देवीं  
 सन्तोष्य श्वेतसर्षपेण रक्षां विधाय रक्षार्थमत्तं स्थापयेत् । प्रशस्ति-  
 वन्दापनञ्च कुर्वन्ति ।

अथ सप्तम्यां स्नातः कृतनित्यक्रियो विष्वतरुसन्निधानं गत्वा  
 तमभ्यर्च्य कृताञ्जलिः पठेत् ।

ॐ मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ ।

जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदाप्रियः ॥

श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफल श्रीनिकेतन ।

नेतव्योऽसि मया सम्यक् पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ॥

विष्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रियः ।

गृहीत्वा तव शाखाञ्च देवीपूजां करोम्यहम् ॥

शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो ।

देवैर्गृहीत्वा ते शाखां पूज्या दुर्गेति विश्रुतिः ॥

ॐ ह्रिन्धि ह्रिन्धि फट् फट् स्वाहेति मन्त्रेण फलयुगल-  
शालिनीं शाखां ह्रित्वा,—

पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं<sup>१</sup> नेष्यामि चण्डिकाप्रियाम् ।

विल्वशाखां समाश्रित्य लक्ष्मीराज्यं प्रयच्छ मे ॥

आगच्छ चण्डिके देवि सर्वकल्याणहेतवे ।

पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

इति पठित्वा वाद्यादिभिः पूजागृहाङ्गने विचित्रपीठोपरि  
स्थापयित्वा,—

रक्षा कक्षी हरिद्रा च जयन्ती विल्वदाडिमौ ।

अशोको मानकश्चैव धान्यादि नवपत्रिकाः ॥

एता एकीकृत्य अपराजितालतया सवेष्ट्य,—

अद्येत्यादि आश्विने मासि शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ शरत्का-  
लीनदुर्गापूजाङ्गतया मृण्मयप्रतिमानवपत्रिकास्थापनमहं करिष्ये ।  
इति सङ्कल्प्य पत्रिकासु देवौमावाह्यं सम्पूज्य च श्रीफलपत्राञ्जलि-  
त्रयं दत्त्वा पत्रिकाः स्थापयेत् ।

कालिकापुराणे काम्यस्नान नोक्तमतो देवीपुराणोक्तमभिलिख्यते,—

अथाश्विने मासि शुक्लपक्षे सप्तम्यां सप्तजन्मकृतपापमोचनकामो  
दुर्गामहं स्तुपयिष्ये इति । महाष्टम्यां, अष्टसहस्रवर्षावच्छिन्नदुर्गा-  
लोकाधिकरणकस्थितिकामो दुर्गामहं स्तुपयिष्ये इति । महानवम्यां,  
धनपुत्रविवर्द्धनशतयज्ञफलसमफलप्राप्तिकामो दुर्गामहं स्तुपयिष्ये  
इति सङ्कल्पयेत् ।

शुद्धजलेन,—

कदलीतरुसंस्थाऽसि विष्णोर्वक्षःस्थलाश्रये ।  
 नमस्ते नवपत्रि त्वं नमस्ते चण्डनायिके ॥  
 कच्चि त्वं स्थावरस्थाऽसि सदा सिद्धिप्रदायिनी ।  
 दुर्गारूपेण सर्व्वत्र स्नानेन विजयं कुरु ॥  
 हरिद्रे हररूपाऽसि शङ्करस्य सदा प्रिये ।  
 रुद्ररूपाऽसि देवि त्वं सर्व्वशान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
 जयन्ति जयरूपाऽसि जगतां जयकारिणी ।  
 स्नापयामीह देवि त्वं जयं देहि गृहे मम ॥  
 श्रीफलः श्रीनिकेतोऽसि सदा विजयवर्द्धनः ।  
 देहि मे हितकामांश्च प्रसन्नो भव सर्व्वदा ॥  
 दाडिम्यघप्रणाशाय चुष्णाशाय सदा भुवि ।  
 निर्मिता फलकामाय प्रसीद त्वं हरप्रिये ॥  
 स्थिरा भव सदा दुर्गे अशोके शोकहारिणि ।  
 मया त्वं पूजिता दुर्गे स्थिरा भव भवप्रिये ॥  
 मानो मान्येषु वृत्तेषु माननीयः सुरासुरैः ।  
 स्नापयामि महादेवीं मानं देहि नमोऽस्तु ते ॥  
 लक्ष्मीस्त्वं धान्यरूपाऽसि प्राणिनां प्राणदायिनी ।  
 स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव ॥

नदीजलेन,—

आत्रेयी भारती गङ्गा यमुना च सरस्वती ।  
 सरयूर्गण्डकौ पुष्पा श्वेतगङ्गा च कौशिकी ॥



भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ।  
 सर्वाः सुमनसो भूत्वा मृद्गारैः स्नापयन्तु ताः ॥  
 सुरास्त्रामभिषिञ्चन्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।  
 वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ॥  
 प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।  
 आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै नैर्ऋतस्तथा ॥  
 वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।  
 ब्रह्मणा सहितः श्रेष्ठो<sup>१</sup> दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥  
 कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्महाः पुष्टिः अद्भुता चमा मतिः ।  
 बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥  
 एतास्त्रामभिषिञ्चन्तु धर्मपादाः सुसयताः ।  
 आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजैवसितार्कजाः ॥  
 ग्रहास्त्रामभिषिञ्चन्तु राज्ञः केतुश्च तर्पिताः ।  
 ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥  
 देवपत्न्योऽध्वरा नागा दैत्याश्चाप्सरसाङ्गणाः ।  
 एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥  
 सिन्धुभैरवशोणाद्या ये हृदा भुवि सस्थिताः ।  
 सर्वे सुमनसो भूत्वा मृद्गारैः स्नापयन्तु ते ॥  
 तक्षकाद्याश्च ये नागाः पातालतलवासिनः ।  
 अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥  
 औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।

सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।

सर्वे सुमनसो भूत्वा भृङ्गारैः स्नापयन्तु ते ॥

शङ्खजलेन,—

सर्वेषामधिपो देव ईशानो नाम नामतः ।

शूलपाणिर्महादेवो भृङ्गारैः स्नापयत्विमाम् ॥

गङ्गाजलेन,—

मन्दाकिन्यास्तु यद्दारि सर्वपापहरं शुभम् ।

स्नर्गस्तोतस्तु वैष्णवं स्नानं भवतु तेन ते ॥

उष्णजलेन,—

परमं पवित्रमुष्णञ्च वक्तिज्योतिःसमन्वितम् ।

जीवन सर्वपापघ्नं भृङ्गारैः स्नापयत्विमाम् ॥

गन्धोदकेन,—

गन्धाढ्यं शोभनञ्चैव शीतल सुमनोहरम् ।

सर्वपापहरं वारि भृङ्गारैः स्नापयत्विमाम् ॥

आपोहिष्ठा-शन्नोदेवोभ्यां शुद्धजलेन । तत्तन्मन्त्रैः पञ्चग  
मेकीकृत्य तैरेव मन्त्रैः स्नपयेत् । गायत्र्या गोमूत्रेण । गन्धद्वारे  
गोमयेन । दधिक्राव्ण इति दध्ना<sup>१</sup> । आप्यायस्वेति पयसा । तेजोऽर्च  
यतेन । मधुवातेति मधुना ।

ॐ अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायामि सिञ्चामि, सर-

स्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायासि सिञ्चामि । इन्द्रस्येन्द्रियेण  
वलाय त्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि । इति पुष्पोदकेन ॥

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाङ्मयां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।  
इति कुशोदकेन ॥

ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

निहोता सत्सि वर्हिषि । इति फलोदकेन ।

ॐ नारायण्यै विद्महे भगवत्यै धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोद-  
यात् । इतीक्षुरससागरोदकाभ्याम् ।

ॐ या ओषधीः सोमराज्ञीर्वक्त्रीः शतविचक्षणाः ।

तासामसि त्वमुत्तमार कामाय शब्ददि ॥

इति सर्वौषध्या महौषध्या च ॥

मात्स्ये,—

सहदेवा तथा व्याघ्री वला चातिवला तथा ।

ग्रङ्गपुष्पी वचा सिंही अष्टमी च सुवर्चला ॥

महौषधष्टक प्रोक्तं महास्थाने नियोजयेत् ।

तथा,—

सुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीदयम् ।

शठी चम्पकमुखश्च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥

व्याघ्री कण्टीकारिका, वला बाव्यालकः, अतिवला गोरचः,  
चाडलिया इति ख्याता, सिंही वासकः, सुवर्चला सुलटिया इति  
ख्याता ॥

सहस्रधाराजलेन,—

सागराः सरितः सर्वाः सर्वस्त्रोतो नदास्तथा ।

सर्वौषधिभिः पापघ्नाः सहस्रैः स्नापयन्तु ते ॥

लवणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैस्तथा ।

सहस्रधारया देवीं स्नापयामि महेश्वरीम् ॥

घटचतुष्टयेन,—

ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् ॥

ॐ इषे त्वोर्ज्ज्वा वायवः स्य । देवो वः सविता प्रार्पयतु

अष्टतमाय कर्मणे ॥

ॐ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

निहोता सत्वि वर्हिषि ।

ॐ शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्त्वन्तु नः ॥

ततो गङ्गाजलपूर्णघटेन,—

सुरास्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

व्योमगङ्गाम्पूर्णन आद्येन कलसेन तु ॥

मालवरागो विजयवाद्यम् ।

वृष्टिजलपूरितघटेन,—

मरुतस्वामिषिञ्चन्तु भक्तिमन्तः सुरेश्वरि ।

मेघतोयाम्पूर्णन द्वितीयकलसेन तु ॥

ललितरागो देववाद्यम् ।

सरस्वतीजलपूरितघटेन,—

सारस्वतेन तोयेन सम्पूर्णं सुरोत्तमे ।

विद्याधराश्चाभिषिञ्चन्तु तृतीयकलसेन तु ॥

विभासरागो दुन्दुभिवाद्यम् ।

सागरोदकपूरितघटेन,—

शक्राद्याश्चाभिषिञ्चन्तु लोकपालाः समागताः ।

सागरोदकपूर्णं चतुर्थकलसेन तु ॥

भैरवीरागो भौमवाद्यम् ।

पद्मरजोमिश्रितघटेन,—

वारिणा परिपूर्णं पद्मरेणुसुगन्धिना ।

पद्ममेनाभिषिञ्चन्तु नागाश्च कलसेन तु ॥

कोङ्करीराग इन्द्राभिषेकवाद्यम् ।

निर्झरोदकपूरितघटेन,—

क्षिमवद्धेमकूटाद्या अभिषिञ्चन्तु पर्वताः ।

निर्झरोदकपूर्णं षष्ठेन कलसेन तु ॥

वाराङ्गीरागः शङ्खवाद्यम् ।

सर्वतीर्थाम्बुपूरितघटेन,—

सर्वतीर्थाम्बुपूर्णं कलसेन सुरेश्वरि ।

सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त खेचराः ॥

वसन्तरागः पञ्चशब्दवाद्यम् ।

वसवस्त्राभिषिञ्चन्तु कलसेनाष्टमेन तु ।

अष्टमङ्गलसयुक्ते दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥

धानुषीरागो विजयवाद्यम् ।

वारिणानेन विधिना सप्तम्यां स्तुपयेत्तु यः ।  
 सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 अनेन विधिनाऽष्टम्यां यः स्नापयति चण्डिकाम् ।  
 अष्टौ वर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठेद्यथासुखम् ॥  
 नवम्यां स्नानमात्रेण धनपुत्रविवर्द्धनम् ।  
 शतयज्ञफलञ्चैव लभते नात्र संशयः ॥

“ततो भूतेभ्यो नमः” इति पाद्यादिभिः समूज्य माषभक्तवलिं  
 गृहीत्वा,—

ॐ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ये वसन्त्यत्र भूतले ।  
 ते गृह्णन्तु मया दत्तो बलिरेष प्रसाधितः ॥  
 पूजिता गन्धपुष्पाद्यैर्बलिभिस्तर्पितास्तथा ।  
 देशादस्माद् विनिःसृत्य पूजां पश्यन्तु मत्कृताम् ॥

भूतेभ्य एष माषभक्तवलिर्नम इति दद्यात् ।

विलुप्यन्ति सदा लुब्धा न च गृह्णन्ति देवताः ।  
 तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यं भूतानामपसारणम् ॥

ततो लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मादूर्वाकुशाक्षतान् विकिरान् ॐ फडिति  
 मन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितान् गृहीत्वा,—

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।  
 भूतानामविरोधेन दुर्गापूजां करोम्यहम् ॥  
 वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।  
 अपसर्पन्तु ते सर्वे चण्डिकास्त्रेण ताडिताः ॥

इति मन्त्राभ्यां भूतादीनपसारयेत् ।

ततो द्वारदेशमानीय “ॐ विल्लशाखावासिन्यै दुर्गायै नमः”  
इति पाद्यादिभिः समूज्य तां देवीरूपां ध्यात्वा दूर्वाक्षतं देव्याः  
शिरसि दत्त्वा निर्घण्डयेत् ।

ततो देव्या आसनं धृत्वा,—

चण्डिके चल चल चालय चालय पूजालयं प्रविश प्रविश ।

गम्यतां मदगृहे देवि अष्टाभिः शक्तिभिः सह ।

पूजां गृहाण सुमुखि सर्वकल्याणहेतवे ॥

इति पठित्वा देवीं सञ्चाल्य नृत्यगीतवाद्यादिभिर्देवीं दक्षिणा-  
मुखीं कृत्वा वेदिकोपरि स्थापयेत् । ॐ ऐं ह्रीं स्वां स्यौं त्वमम्बिके  
स्थिरीभवेति स्थिरीकुर्यात् । तथैव नवपत्रिकाः स्थापयेत् । ततः  
सर्वतोभद्रमण्डले घटं स्थापयेत् ।

चित्रघट वह्निर्दध्यक्षतभूषितमन्तःसहेमपञ्चरत्नं वस्त्रयुग्मयौवं  
पुष्पाद्यलङ्कृत चूताश्वत्थपल्लवमुखमुपरिफलाक्षतान्वितशरावं मण्डल-  
मध्ये यवपुञ्जोपरि स्थापयित्वा,—

ॐ आजिप्र कलसं मङ्गात्मा विशन्तिवन्दवः । पुनरुज्जां निवर्त्तस्व  
सा नः सहस्र धुचोरुधारा पयस्तौ पुनर्माविशताद्रयि ।

इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य,—

ॐ वरुणस्योत्तमनमसि वरुणस्य स्कन्धसर्व्वनीस्थः । वरुणस्य  
क्षतसदन्यसि वरुणस्य क्षतसदनमसि वरुणस्य क्षतसदनीमासीद ॥

इति मन्त्रेण जलेनापूर्य्य,—

ॐ स्थिरो भव वीर्य्यवान् आशुर्भव वाह्यर्व्वन् । पृथुर्भव सुदृढ-  
त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ॥

इति मन्त्रेण स्थिरीकृत्य अङ्कुशमुद्रया तीर्थमावाहयेत्,—

ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः सागराश्च सरांसि च ।

सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च नदा इदाः ॥

आद्यान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥

गङ्गे च यमुने चेत्यादि ।

ततः पर्वतगजदन्तवल्लीकनदीसङ्गमदेवदारनृपदार<sup>१</sup>गोकुलेभ्य  
आहताः सप्त मृत्तिकाः सर्वैषधिविल्वादिफलगन्धदूर्वाक्षतान् नम  
इति मन्त्रेण निचिपेत् ।

कालिकापुराणे,—

पुष्पनैवेद्यगन्धादि हौं ह्रीं ह्रूं फट् मन्त्रकैः ।

नाराचमुद्रया दृष्ट्या समया च विलोकयेत् ॥

यदात्मनानवज्ञातं सम्यक्पुष्पादिदूषणम् ।

असृष्टस्यर्जनं वापि यदन्याथोजितञ्च वा ॥

तथा निर्माल्यसंसृष्टं कीटाद्यारोहणञ्च यत् ।

तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ॥

ततः,—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।

ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इति सिद्धार्थाक्षतान् विकीर्य पाष्णिघातत्रयेण भौमान्, ताल-  
त्रयेणान्तरीक्षगान्, दिव्यदृष्ट्यवलोकनेन दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य



आसनं धृत्वा,—

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।

त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इति पठित्वा ॐ आधारशक्तिकमलासनाय नमः, इति सम्पूज्य ॐ अः फडिति मन्त्रेण उदङ्मुखस्तत्रोपविश्य शिरसि—वामे गुरुभ्यो नमः, दक्षिणे गणेशाय नमः, मध्ये श्रीदुर्गायै नमः, नारदश्चर्मस्तके, गायत्रीच्छन्दो मुखे, श्रीदुर्गादेवता हृदि, मम सर्वाभौष्ट-सिद्ध्यर्थं श्रीदुर्गापूजने विनियोगः । ततः स्वस्ति वाच्यं सङ्कल्पं कुर्यात्,—

ॐ अद्याश्विने मासि शुक्लपक्षे त्रिथौ महासप्तम्यामारभ्य अस्मिन् भारतभूदेशे अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा परमनिर्दृतिप्राप्तिपूर्वकातुल-विभूतिचतुर्वर्गावाप्तिकामो यथाशक्ति शरत्कालीनां सपरिवारदुर्गा-पूजामहं करिष्ये ।

इत्येक एव सङ्कल्पो न त्वष्टम्यादिष्वपि पृथक्सङ्कल्पः, एक-प्रयोगोपसंहारात्, फलैक्याच्च । विसर्जनस्य तु पूजाङ्गत्वात् सुतरामेव तत्र नास्ति सङ्कल्पः ।

ततः फडिति मन्त्रेण तालत्रयं दिग्बन्धनं करशोधनञ्च विधाय भूतशुद्धिं कुर्यात् ।

हृत्पद्मादात्मानं दीपशिखाकारं सुषुम्ना वर्त्मना हंस इति मन्त्रेण शिरसि सहस्रदलकमलस्य परमात्मनि संयोज्य पादस्थ-पृथिवीं लिङ्गमूलस्थजले, तज्जल हृदयस्थतेजसि, तत्तेजो मुखस्ये-वायौ, तं वायुं भालस्थाकाशे, तदाकाश सहस्रदलकमलस्य परमा-त्मनि संयोज्य बुद्ध्यहङ्कारादींश्च तत्रैव लीनान् विचिन्त्य वामनासा-

पूरणेन यमिति धूसवर्णं वायुबीजं विचिन्त्य पञ्चाशद्वारं जपन् वायुमुत्तोल्य देहं शुष्कं विभाव्य दक्षिणासया रेचयेत् ।

तेनैव दक्षिणासापुटेन वायुमुत्तोल्य रमिति अग्निबीजमरुण-  
वर्णं पञ्चाशद्वारं जपन् देहं दग्धं विभाव्य वामनासया भस्मरूपेण  
पापेन सह रेचयेत् ।

ततस्तेनैव वामनासापुटेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलकमलस्थं  
परमात्मानं चन्द्ररूपं ध्यात्वा वमिति वरुणबीजं पञ्चाशद्वारं जपन्  
तस्माच्चन्द्रादमृतवृष्ट्या देहमाश्लाव्य लमित्यनेनेन्द्रबीजेन शुद्धं देहं  
जनयित्वा आत्मलीनानि पञ्चभूतानि यथास्थानं स्थापयित्वा  
सोऽहमिति मन्त्रेण परमात्मनः सकाशादहङ्कारादितत्त्वैः सह  
जीवात्मानं हृत्पद्मे स्थापयित्वा देवीरूपमात्मानं विचिन्त्य मातृका-  
न्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासौ षड्दीर्घभाजा मायाबीजेन कुर्यात् ।

अथवा ॐ दुर्गे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा,  
दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्, भूतरक्षणि अनामिकाभ्यां जं, ॐ दुर्गे  
दुर्गे रक्षणि कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि करतल-  
पृष्ठाभ्यां फट् । ॐ दुर्गे हृदयाय नमः, दुर्गे शिरसि स्वाहा,  
दुर्गायै शिखायै वषट्, भूतरक्षणि कवचाय जं, ॐ दुर्गे दुर्गे  
रक्षणि नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि अस्त्राय फडिति  
तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा ह्रीमिति मन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा  
पौठन्यासं कुर्यात् —

हृदये—आधारशक्तये नमः, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै,  
समुद्राय, रत्नदीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृत्राय, रत्नवेदिकायै ।

दक्षिणांशे—धर्माय । वामांशे—ज्ञानाय ।

वामोरुमूले—वैराग्याय । दक्षिणोरुमूले—ऐश्वर्याय ।

मुखे—अधर्माय ।

वामपार्श्वे—अज्ञानाय । नाभौ—अवैराग्याय ।

दक्षिणपार्श्वे—अनैश्वर्याय ।

हृदये,—

शेषाय, पद्माय, अं सूर्य्यमण्डलाय, जं सोममण्डलाय, मं वक्त्रिमण्डलाय, सं सत्ताय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

प्रादक्षिणेन हृदयाष्टदिक्षु मध्ये च,—

आं प्रभायै, ईं मायायै, ऊं जयायै, एं सूक्ष्मायै, ऐं विशुद्धायै, ॐ नन्दित्यै, औं सुप्रभायै, अं विजयायै, अः सर्वसिद्धिप्रदायै नमः ।

पुनर्मध्ये,—

ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय ऊं फट् नमः, इति विन्यस्य ध्यानं कुर्यात् ।

जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुहृतशेखराम् ।

लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।

नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥

सुचारुदृशनां<sup>१</sup> तद्वत्<sup>२</sup> पीनोन्नतपयोधराम् ।

चिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ॥  
 मृणालायतसंस्पर्शदशवाङ्मसमन्विताम् ।  
 त्रिशूलं दक्षिणे ध्येयं खड्गं चक्रं क्रमादधः ॥  
 तीक्ष्णवाणं तथा शक्तिं दक्षिणे सन्निवेशयेत् ।  
 खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ॥  
 घण्टां वा परशुं वापि वामतः सन्निवेशयेत् ।  
 अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥  
 शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।  
 हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्तविभूषितम् ॥  
 रक्तरक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।  
 वेष्टितं नागपाशेन मृकुटीभौषणाननम् ॥  
 सपाशवामहस्तेन धृतकेशञ्च दुर्गथा ।  
 वमद्रुधिरवत्तं तं देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ॥  
 देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् ।  
 किञ्चिद्रूढं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥  
 खल्यमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत् ।  
 उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥  
 चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपा च चण्डिका ।  
 अष्टाभिः शक्तिभिस्ताभिः सततं परिवेष्टिताम् ॥  
 चिन्तयेज्जगतां धार्त्र्यं धर्मकामार्थमोचदाम् ॥  
 एवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनं कुर्यात् ।  
 अस्ताय फडिति मन्त्रेण शङ्खं प्रचाल्य वामभागे त्रिकोणमण्ड

लोपरि साधारं स्थापयित्वा नम इति मन्त्रेण गन्धपुष्पे प्रक्षिप्य  
क्षकाराद्यकारानैर्वर्णैर्मूलमन्त्रत्रिजपेन च पूरयित्वा, मं दशकला-  
व्याप्तवक्त्रिमण्डलाय नम इत्याधारं सम्पूज्य, अं द्वादशकलाव्याप्त-  
सूर्यमण्डलाय नम इति शङ्खं, ऊं षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलाय  
नम इति जलञ्च सम्पूज्य,—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

इत्यादिना तीर्थमावाह्य षडङ्गानि विन्यस्य दुर्गारूपं जलं  
ध्यात्वा कराभ्यामर्घ्यपात्रमाच्छाद्य मूलमन्त्रमष्टधा जप्त्वा तालत्रय-  
दिग्वन्धनाभ्यां संरक्ष्य ऊं इत्यवगुण्ठय धेनुमुद्रया अमृततीक्ष्ण्यात् ।

अर्घ्यस्य दक्षिणे ॐ फडिति प्रोक्षणीपात्रं संप्रोक्ष्य जलेनापूर्य्य  
गन्धपुष्पे दत्त्वा तीर्थमावाह्य अर्घ्यजल किञ्चिदत्त्वा तज्जलेनात्मानं  
पूजोपकरणञ्चाभ्युचयेत् ।

अर्घ्यस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।

ततो देवीरूपमात्मानं विभाव्य गन्धपुष्पैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलि-  
पञ्चकं शिरोहृदयमूलाधारपादसर्वाङ्गेषु निक्षिपेत् ।

तत ऐशान्यां घट<sup>१</sup> स्थापयित्वा तत्र गणपतिं ध्यात्वावाह्य  
पाद्यादिभिः सम्पूज्य,—

ॐ सर्वविघ्नहरो देव एकदन्तो गजाननः ।

देवीगृहेऽर्चितः प्रीत्या सर्वविघ्नं विनाशय ॥

ततस्तत्र ब्रह्माणं यद्वांश्च पूजयेत् ।

मण्डलमध्ये,—

ॐ आधारशक्तये नमः, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, समुद्राय  
रत्नक्षीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, रत्नवेदिकायै ।

अग्न्यादिकोणेषु,—

धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय ।

दिक्षु,—

अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय ।

मध्ये,—

शेषाय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय, जं सोममण्डलाय, मं  
वक्त्रिमण्डलाय, सं सत्ताय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने,  
अं अन्तरात्मने, प परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

केशरेख्यदिक्षु मध्ये च,—

आं प्रभायै, ईं मायायै, जं जयायै, एं सूक्ष्मायै, ऐं विशुद्धायै,  
ॐ नन्दिन्यै, औं सुप्रभायै, अं विजयायै, अः सर्वसिद्धिदायै नमः ।

पुनर्मध्ये,—

ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय ॐ फट् नमः ।

इत्यासनं सम्पूज्य पुनर्भगवतीं पूर्ववत् ध्यात्वा मानसोपचारैः  
सम्पूज्य सुषुम्नावर्त्मना वहन्नासापुटेन तेजो निर्गमय्य पुष्पाञ्जली  
संस्थाप्य प्रतिमायां ब्रह्मरन्ध्रे प्रवेश्य “भगवति दुर्गे स्वकीयगणसहिते  
द्वहागच्छागच्छ” तिष्ठ तिष्ठ “सन्निहिता भव” “सन्निरुद्धा भव  
प्रसन्ना भवेत्यावाहनस्थापनसन्निरोधनसंमुखीकरणामृतीकरणमुद्राः —  
प्रदर्शयेत् ।

ततो मूलमन्त्रेण सावयवीकृत्य षडङ्गानि विन्यस्य प्रतिमायां  
पचिकासु च हस्तं दत्वा पठेत्,—

आगच्छ मद्गृहे देवि अष्टाभिः शक्तिभिः सह ।  
पूजां गृहाण विधिवत् सर्वकल्याणकारिणि ॥  
एहोहि भगवत्यम्ब शुचयजयप्रदे ।  
भक्तितः पूजयामि त्वां नवदुर्गे सुरार्चिते ॥  
दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ।  
यज्ञभाग गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥  
शारदीयामिमां पूजां करोमि कमलेक्षणे ।  
आज्ञापय महादेवि दैत्यदर्पविनाशिनि ॥  
संसारार्णवदुष्पारे सर्वसत्त्वनिहन्तनि ।  
त्रायस्व वरदे देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥  
ये देवा यास्य देव्यस्य चलितायां चलन्ति वै ।  
आवाहयामि तान् सर्वान् चण्डिके परमेश्वरि ॥  
प्राणान् रच यशो रच पुचदारधनं सदा ।  
सर्वरक्षाकरौ यस्मात् त्व हि देवि जगत्प्रिये ॥  
प्रविश्य तिष्ठ यज्ञेऽस्मिन् यावत् पूजां करोम्यहम् ।  
मेनानन्दकरे देवि सर्वसिद्धिञ्च देहि मे ॥  
आगच्छ चण्डिके देवि सर्वकल्याणहेतवे ।  
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥  
आवाहयामि देवि त्वां मृण्मये श्रीफलेऽपि च ।  
कैलासशिखरादेवि विन्ध्याद्रेर्हिमपर्वतात् ॥

आगत्य विल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् ।  
 स्थापिताऽसि मया देवि पूजये त्वां प्रसीद मे ॥  
 देवि चण्डात्मिके चण्डि चण्डविग्रहकारिणि<sup>१</sup> ।  
 विल्वशाखां समाश्रित्य तिष्ठ देवि गणैः सह ॥  
 देवि त्वं जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि ।  
 पञ्चिकासु समस्तासु सान्निध्यमिह कल्पय ॥  
 पल्लवैश्च फलोपेतैः शाखाभिः सुरनायिके ।  
 पल्लवे संस्थिते पूजां गृह्य देवि प्रसीद मे ॥  
 आवाहिताऽसि देवि त्वं मृण्मये श्रीफलेऽपि च ।  
 स्थिराऽत्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव ॥  
 चण्डि त्वं चण्डरूपाऽसि सुरतेजो महाबले ।  
 प्रविश्य तिष्ठ यज्ञेऽस्मिन् यावत् पूजां करोम्यहम् ॥

ततः पञ्चमन्त्रान् जपेत् ।

ॐ हंसः शुचिसदसुरन्तरौचसत्

होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृषदरसदृतसङ्घोमसदजा

गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत् ॥

ॐ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरोगिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिचिपन्ति भुवनानि विश्वाः ॥

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिङ्गत् ॥

१ ख पुस्तके स्थापितासीत्यादि चण्डविग्रहकारिणीत्यन्तोऽशो नास्ति ।

२ ग, चण्डारिग्रहकारिणि ।



आशिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्त्यवितुर्वरेणं भर्गो देवस्य धीमहि

धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥

ॐ अस्वकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।

उर्वारुकमिव बभनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सँ हँ हंसः ।

श्रीदुर्गायाः प्राणा इह प्राणाः ।

आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सँ हँ हंसः ।

श्रीदुर्गाया जीव इह स्थितः ।

आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सँ हँ हंसः ।

श्रीदुर्गायाः सर्वेन्द्रियाणि ।

आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सँ हँ हंसः ।

श्रीदुर्गाया वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं

तिष्ठन्तु स्वाहा । इति हृदये जपित्वा,—

ॐ मनो व्योतिर्जुषतामान्यस्य

हृदस्यतिर्यञ्जमिमं तनोतु ।

अरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु

विश्वे देवा स इह मादयन्तामो प्रतिष्ठः ॥

इति पठित्वा मूलमन्त्रं वारचयं जपित्वा प्राणप्रतिष्ठां समाप्य

देवीशरीरे अङ्गन्यासं मातृकान्यासञ्च विधाय क्रीडकारेण सन्निरोध्य

—मूलमन्त्रेणाञ्जलित्रयं दद्यात् । पञ्चिकाखण्डेवम् । ततो घटे पञ्च-

कायाञ्च देवीं पूजयेत् ।

आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च ततोऽन्वाचमनीयकम् ॥

मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं भूषणचन्दने ।

पुष्पं धूपञ्च दीपञ्च नेत्राञ्जनमतःपरम् ॥

नैवेद्याचमनीये तु प्रदक्षिणनमस्कातिः ।

एते षोडश निर्दिष्टा उपचाराभिकार्चने ॥

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च ।

यस्य यद्दीयते द्रव्यमलङ्कारादि काञ्चनम् ॥

तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ।

उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ॥

वरुणस्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।

वमिति वरुणबीजेन द्रव्यं प्रोक्ष्य अमुकद्रव्याय नम इति  
सम्पूज्य मूलमन्त्रं पठित्वा श्रीदुर्गायै इदममुकदैवतममुकद्रव्यं नम  
इत्युत्सृज्य इदममुकद्रव्यमिति निवेदयेत् ॥

तत्रादौ काष्ठाद्यासनं पुष्पासनं वा मूलमन्त्रेण दद्यात् । ततः  
श्यामाकदूर्वापद्मापराजितासहितं पाद्यं गृहीत्वा,—

पाद्यं गृह्य महादेवि सर्व्वदुःखापहारकम् ।

त्रायस्व वरदे देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

इति पठित्वा प्रणवादिस्वाहान्तेन जयदुर्गामन्त्रेण श्रीदुर्गायै  
इदं पाद्यं नम इति पादयोर्दद्यात् ।

नन्दिकेश्वरपुराणे तु,—

दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै भद्र-  
काल्यै ह्रीं दुर्गायै नमः । इति मन्त्रः ।

एवं सर्वत्रोपचारेषु बोद्धव्यम् ।

तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरे ।

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ॥

स्नाहापदेनार्घ्यं, आचमनीयमधुपर्कौ तु स्वधापदेन, सर्वमन्य-  
न्नमः-पदेन देयम् ।

ततो गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपदूर्वाविल्वपत्रसहितमर्घ्यं  
शङ्खे कृत्वा,—

ॐ दूर्वाक्षतसमायुक्तं विल्वपत्रं तथा परम् ।

शोभनं शङ्ख-पात्रस्थं गृहाणार्घ्यं हरप्रिये ॥

नानातीर्थोद्भवं वारि कुङ्कुमादिसुग्रीतलम् ।

गृहाणार्घ्यमिमं देवि विश्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

इत्यर्घ्यम् ।

जाती-लवङ्ग-कक्कोलसहितमाचमनीयं गृहीत्वा ।

ॐ मन्दाकिन्यास्तु यदारि सर्वपापहरं शुभम् ।

गृहाणाचमनीय त्व मया भक्त्या निवेदितम् ॥

इमा आपो मया भक्त्या तव पाणितलेऽर्पिताः ।

आचामय महादेवि प्रीता शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

इत्याचमनीयम् ।

घृत-दधि-मधूनि कांस्यपात्रे कृत्वा ।

ॐ मधुपर्कं महादेवि ब्रह्माद्यैः परिकल्पितम् ।

मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥

ततः पूर्व्वदाचमनीयम् ।

सर्वमेव मधुपर्कादिकमर्घ्यजलेनैवोत्सृज्य देयम् ।

कुम्भे सुवासितं शीतलजलं कृत्वा,—

ॐ जलञ्च शीतलं स्वच्छं नित्यशुद्धं मनोरमम् ।

स्नानार्थं ते मया भक्त्या कल्पितं प्रतिगृह्यताम् ॥

इदं स्नानजलम् ।

वस्त्रमानीय,—

वज्रतन्तुसमायुक्तं पटसूत्रादिनिर्मितम् ।

वासो देवि सुशुक्लञ्च गृहाण वरवर्णिनि ॥

तन्तुसन्तानसम्बद्धं रञ्जितं रागतन्तुना ।

दुर्गे देवि भज प्रीतिं वामस्ते परिधीयताम् ॥

इति वस्त्रम् । पुनराचमनीयञ्च ।

काञ्चनाद्यलङ्कारमानीय,—

दिव्यरत्नसमायुक्ता वज्रिभानुसमप्रभाः ।

गात्राणि शोभयिष्यन्ति अलङ्काराः सुरेश्वरि ॥

चन्दनागुरुकर्पूरमिश्रं गन्धं गृहीत्वा,—

शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च ।

मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यतां ॥

इति गन्धः ।

पुष्पमानीय,—

पुष्पं मनोहरं दिव्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।

दक्षमद्भुतमाघ्रेयं देवि दत्तं प्रगृह्यताम् ॥

इति पुष्पम् ।

धूपमानीय,—

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धर्वासुरभोजनः ।

मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति धूपः ।

दीपमानीय,—

अग्निज्योतीरविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च ।

ज्योतिषामुत्तमो दुर्गे दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

तु चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च ।

तमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति दीपः ।

ताम्रपात्रे घृतसम्पादितमञ्जनं सौवीराद्यञ्जनं वा गृहीत्वा,—

नमस्ते सर्वदेवेशे नमस्ते शङ्करप्रिये ।

चक्षुषामञ्जनं हृद्यं देवि दत्तं प्रगृह्यताम् ॥

इत्यञ्जनम् ॥

फलमूलान्यादाय,—

फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्यारण्यानि यानि च ।

नानाविधसुगन्धीनि गृह्य देवि ममाचिरम् ॥

इति फलादिरचना ॥

अन्नमानीय अभ्युक्ष्य,—

अन्नं चतुर्विधं देवि रसैः षड्भिः समन्वितम् ।

उत्तमं प्राणदं चैव गृह्याण मम भावतः ॥

परमान्नमानीय,—

गव्यशर्पिःपथोद्युक्तं नानामधुरसंयुतम् ।

मया निवेदितं भक्त्या पायसं प्रतिगृह्यताम् ॥

अमृतै रक्षितं दिव्यं नानारूपविनिर्मितम् ।

पिष्टकं विविधं देवि गृहाण मम भावतः ॥

मोदकादिकमानीय,—

मोदकं खादुसंयुक्तं शर्करादिविभिन्नितम् ।

सुरम्यं मधुरं भोक्ष्यं देवि तत्प्रतिगृह्यताम् ॥

जलमानीय,—

जलञ्च शीतलं स्वच्छं सुगन्धि सुमनोहरम् ।

मया निवेदितं भक्त्या पानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥

पूर्ववदाचमनीयम् ॥

ताम्बूलमानीय,—

फलपत्रकसंयुक्तं कपूरेण सुवासितम् ।

मया निवेदितं भक्त्या ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

दूर्वां गृहीत्वा,—

नमस्ते सर्व्वगे देवि नमस्ते सुखमोचदे ।

दूर्वां गृहाण देवि त्वं मां निस्तारय सर्व्वतः ॥

श्रीफलपत्रमाल्यं गृहीत्वा,—

अमृतोद्भवं श्रीयुक्तं महादेवप्रियं सदा ।

पवित्रं ते प्रयच्छामि श्रीफलीयं सुरेश्वरि ॥

माल्यं गृहीत्वा,—

सूत्रेण ग्रथितं माल्यं नानापुष्पममन्त्रितम् ।

श्रीयुक्तं चम्पमानञ्च गृहाण परमेश्वरि ॥

ततः

ॐ चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि ।

तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥

इत्यञ्जलित्रयं सिन्दूरतिलकञ्च दद्यात् । दर्पणं प्रदर्शयेत् ।

चामरव्यजनवातं घण्टादिनानाविधवाद्यञ्च कुर्यात् ॥

पाद्यादिभिश्च नैवेद्यैः पूजयेद्यो हि चण्डिकाम् ।

शतक्रतुफलं प्राप्य स गच्छेच्चण्डिकालयम् ॥

गुणफलम् ॥

ततो नवपत्रिकापूजा ॥

ॐ रत्नाधिष्ठात्र्यै ब्रह्माण्यै नमः, इति पाद्यादिभिः सम्यूज्य,—

ॐ- दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ।

रत्नारूपेण सर्व्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥

रत्नाधिष्ठात्र्यै ब्रह्माण्यै नमः ।

एवं कक्ष्याधिष्ठात्र्यै कालिकायै नमः, इति पाद्यादिभिः सम्यूज्य  
प्रणमेत्,—

महिषासुरयुद्धेषु कञ्चीभृताऽसि सुव्रते ।

मनुष्यानुग्रहार्थाय आगतासि हरप्रिये ॥

कक्ष्याधिष्ठात्र्यै कालिकायै नमः ॥

हरिद्रे वरदे देवि उमारूपासि सुव्रते ।

मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्य प्रसीद मे ॥

हरिद्राधिष्ठात्र्यै दुर्गायै नमः ॥

निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः सह ।

जयन्ति पूजिताऽसि त्वमस्माकं वरदा भव ॥

जयन्त्यधिष्ठात्र्यै कार्त्तिक्यै नमः ॥

महादेवप्रियकरो वासुदेवप्रियः सदा ।

उमाप्रीतिकरो वृक्षो विल्वरूप नमोऽस्तु ते ॥

विल्वाधिष्ठात्र्यै शिवायै नमः ॥

दाङ्गिमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य सम्मुखे ।

उमाकार्यं कृतं यस्मादस्माकं वरदा भव ॥

दाङ्गिम्यधिष्ठात्र्यै रक्तदन्तिकायै नमः ॥

हरप्रीतिकरो वृक्षो ह्यशोकः शोकनाशनः ।

दुर्गाप्रीतिकरो यस्मान्नामशोक सदा कुरु ॥

अशोकाधिष्ठात्र्यै शोकरक्षितार्थं नमः ॥

यस्य पत्रे वसेद्देवी मानवृक्षः शचीप्रियः ।

मम चानुग्रहार्थाय पूजां गृह्य प्रमीद मे ॥

मानाधिष्ठात्र्यै चामुण्डायै नमः ॥

जगतः प्राणरक्षायै ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।

उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात् त्वं रक्ष सर्वदा ॥

धान्याधिष्ठात्र्यै नमः ॥

पत्रिके नवदुर्गे तं महादेवमनोरमे ।

पूजां समप्ता संगृह्य रक्ष मा त्रिदशेश्वरि ॥

नवपत्रिकावामिर्नै दुर्गायै नमः ॥

अयावरणपूजा ॥

अग्न्यादिकोणवैश्वरेषु,—



ॐ दुर्गे हृदयाय नमः, ॐ दुर्गे शिरसे स्वाहा, दुर्गायै  
शिखायै वषट्, भूतरक्षणि कवचाय ज्ञं, नमः सर्व्वत्र ॥

देवीसम्मुखे,— ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि नेत्रत्रयाय वौषट् नमः ॥

१दिक्षु,— ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि अस्त्राय फट् नमः ।

अष्टदिक्षु,— इन्द्राय सवज्राय सवाहनपरिवाराय नमः ।

अग्नये सशक्तये सवाहनपरिवाराय नमः ।

यमाय सदर्पणाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

नैर्ऋताय सखङ्गाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

वरुणाय सपात्राय सवाहनपरिवाराय नमः ।

वायवे साङ्कुशाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

सोमाय सगदाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

ईशानाय सशूलाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

नैर्ऋतवरुणयोर्मध्ये,—

अनन्ताय सचक्राय सवाहनाय सपरिवाराय नमः ।

इन्द्रेशानयोर्मध्ये,—

ब्रह्मणे सपद्माय सवाहनाय सपरिवाराय<sup>१</sup> नमः ॥

अङ्गादिलोकपालान्तं यजेदावरणान्यपीति वचनात् ॥

ततो वक्ष्यमाणविधिना बलिं दद्यात् । ततः सुत्वा देवीं  
प्रदक्षिणीकृत्य पञ्च प्रणामान् कुर्यात् ।

१ ग पुस्तके, दिक्ष्वित्यादि पङ्क्तिर्नास्ति ।

२ ख, सवाहनपरिवाराय ।

कालिकापुराणे,—

सर्व्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्व्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

सप्तधावर्त्तनं कृत्वा स्तुतिमेतान्तु साधकः ।

पञ्च प्रणामान् कुर्व्वीत ऐं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रकैः ॥

इति सप्तमीपूजा समाप्ता ॥ \* ॥

अथ महाष्टम्यां स्नातः कृतनित्यक्रियः कृतपूजामग्नारो धां ह्रीं  
हं फड़ितिमन्त्रेण पुष्पनैवेद्यगन्धादि विलोक्य पृर्व्ववदामनगुह्य-  
भूतशुद्धि-मातृकान्यासाङ्गन्यास-करन्यास-प्राणायाम-पीठन्यासान्  
विधाय, देवीं ध्यात्वा, दर्पणप्रतिविम्बे पुष्पाञ्जलिं दत्वा, मूलमन्त्रेण  
दन्तकाष्ठं निवेद्य, मङ्गल्य पूर्व्ववत् कान्त्यम्बान मग्न्याय, अर्घ्यादिपात्रं,  
मस्याय, आत्मपूजाञ्च विधाय, घटे गणेश व्रज्झाण ग्रहाश्च मसूज्य,  
पीठदेवताञ्च पूजयित्वा, देवीं ध्यात्वा, मानसैरुपचारैः मसूज्य,  
हृदयस्थं तेजः पुष्पाञ्जलिना मूलमन्त्रेण देव्यां मङ्गल्यम्बय, मग्नगो-  
करणसकलीकरणावगुण्ढनपरमीकरणसुद्राः प्रदर्शयेत् ॥

ततः पूर्व्ववत् षोडशोपचारैः मसूज्य नवपत्रिकाञ्च पूजयित्वा  
आवरणानि पूजयेत् ।

तत्र प्रथममङ्गावरणम् । अग्न्यादिकोणकेऽङ्गरेषु,—

ॐ दुर्गे दद्याय नम, दुर्गे गिरसे स्वाहा, दुर्गायै गिर्यायै  
वषट् नमः. भूतरक्षणि कवचाय ॐ नमः ।

देवीसमूहे,— ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि नेत्रदद्याय वौषट् नमः ।

चतुर्दिक्षु,— ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि अन्ताय फट् नमः ।

ततोऽष्टदलमूले उग्रचण्डाद्याः पूजयेत् ।

मायालक्ष्मीपदाद्येन पूजयेत् सर्वमातरः ॥

पूर्वदलमूले उग्रचण्डामावाह्य ह्रीं श्रीं उग्रचण्डायै नमः  
इत्यादि पाद्यादिभिरभ्यर्च्य नमस्कुर्यात् ।

उग्रचण्डा तु वरदा मध्याह्नार्कसमद्युतिः ।

सा मे सदाऽस्तु वरदा तस्यै नित्यं नमो नमः ॥

एवमाग्नेये प्रचण्डामावाह्य पाद्यादिभिः सम्यूज्य,—

प्रचण्डे पुत्रदे नित्यं प्रचण्डगणसंस्थिते ।

सर्वानन्दकरे देवि तुभ्यं नित्यं नमो नमः ॥

ह्रीं श्रीं प्रचण्डायै नमः ॥

दक्षिणे चण्डोग्रामावाह्य सम्यूज्य च,—

लक्ष्मीस्त्वं सर्वभूतानां सर्वभूताभयप्रदा ।

देवि त्व सर्वकार्येषु वरदा भव शोभने ॥

ह्रीं श्रीं चण्डोग्रायै नमः ।

नैर्ऋते चण्डनायिकामावाह्य सम्यूज्य च,—

या सिद्धिरिति नाम्ना तु देवेशवरदायिनौ ।

कलिकल्मषनाशाय नमामि चण्डनायिकाम् ॥

ह्रीं श्रीं चण्डनायिकायै नमः ॥

पश्चिमे चण्डामावाह्य सम्यूज्य च,—

देवि चण्डात्मिके चण्डि चण्डारिविजयप्रदे ।

धर्मार्थमोचदे दुर्गे नित्यं मे वरदा भव ॥

ह्रीं श्रीं चण्डायै नमः ॥

वायव्ये चण्डवतीमावाह्य सम्पूज्य च,—

या सृष्टि-स्थिति-संहार-गुणत्रयसमन्विता ।

याः पराः शक्तयस्तस्यै चण्डवत्यै नमो नमः ॥

ह्रीं श्रीं चण्डवत्यै नमः ॥

उत्तरे चण्डरूपामावाह्य सम्पूज्य च,—

चण्डरूपात्मिका चण्डा चण्डनायकनायिका ।

सर्वसिद्धिप्रदा देवी तस्यै नित्यं नमो नमः ॥

ह्रीं श्रीं चण्डरूपायै नमः ॥

ईशाने चण्डिकामावाह्य सम्पूज्य च,—

वालाकार्कणनयना सर्वदा भगवत्सना ।

चण्डासुरस्य मथनी वरदाऽस्तुतिचण्डिका ॥

ह्रीं श्रीं चण्डिकायै नमः ॥

ततः पञ्चमधेऽष्टावृत्त्या चतुःषष्टियोगिनीरावाह्य ह्रीं श्रीं इति  
मन्त्रेण पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

कालिकापुराणे,—

ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च ।

कौमारी भैरवी दुर्गा नारसिंही च कालिका ॥

चामुण्डा शिवदूती च वाराही कौशिकी तथा ।

माहेश्वरी शाङ्करौ च जयन्तो सर्वमङ्गला ॥

काली करालिनी मेधा शिवा शाक्तगरी तथा ।

भीमा गान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चण्डिका तथा ॥

चमा धात्री तथा स्वाद्या स्वधाऽरणं मणोदरी ।

घोररूपा महाकाली भद्रकाली कपालिनी ॥  
 चेमङ्करी चोगचण्डा चण्डोगा चण्डनायिका ।  
 चण्डा चण्डवती चण्डी महामोहाप्रियङ्करी ॥  
 वलविकरणी देवी वलप्रमथनी तथा ।  
 मनोन्मथनी देवी सर्वभूतदमन्यपि ॥  
 उमा-तारा-महानिद्रा विजया च जया तथा ।  
 शैलपुत्री चण्डिका च चण्डघण्टा च योगिनी ॥  
 कुष्माण्डी स्कन्दमाता च तथा कात्यायनी परा ॥  
 कालरात्रिर्महागौरी चतुःषष्टि क्रमादिमाः ।  
 पूजयेन्मण्डलस्थान्तः सर्वकामार्थसिद्धये ॥

ततः ह्रीं श्रीं कोटियोगिनीभ्यो नमः ।

इति पाद्यादिभिरेकत्र पत्राग्रेषु कोटियोगिनीः पूजयेत् ।

ततो देवीसन्निधाने सम्यग्दुर्गाः शुभप्रदाः ।

ऐशान्यादिक्रमाद् द्वे द्वे मध्ये च पूजयेन्नव ॥

देवीशाने ब्रह्माणीमावाह्य ह्रीं श्रीं इति पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

चतुर्मुखीं जगद्धात्रीं वृषारूढां वरप्रदाम् ।

सृष्टिरूपां महाभागां ब्रह्माणीं तां नमाम्यहम् ॥

ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्यै नमः ॥

तथा तत्रैव माहेश्वरीमयावाह्य पूजयेत् ।

वृषारूढां शुभां शुभ्रां त्रिनेत्रां वरदां शिवाम् ।

— माहेश्वरीं नमाम्यद्य सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥

ह्रीं श्रीं माहेश्वर्यै नमः ॥

देव्याग्रेयकोणे कौमारीमावाह्य पूजयेत् ।

कौमारीं पीतवसनां मधूरवरवाहनाम् ।

शक्तिहस्तां शिताङ्गीं तां नमामि वरदां भद्रा ॥

ह्रीं श्रीं कौमार्यै नमः ॥

तत्रैव वैष्णवीमावाह्य पूजयेत् ।

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारिणीं कृष्णरूपिणीम् ।

स्थितिरूपां खगेन्द्रस्यां वैष्णवीनां नमाम्यहम् ॥

ह्रीं श्रीं वैष्णव्यै नमः ॥

देवीनैर्कते वाराहीमावाह्य पूजयेत् ।

वराहरूपिणीं देवीं दद्रोदृतवसुन्धराम् ।

शुभदां पीतवसनां वाराहीं तां नमाम्यहम् ।

ह्रीं श्रीं वाराह्यै नमः ॥

तत्रैव नारसिंहीमावाह्य पूजयेत् ।

नृसिंहरूपिणीं देवीं दैत्यदानवदर्पशाम् ।

शुभां शुभप्रदां शुभां नारसिंहीं नमाम्यहम् ॥

ह्रीं श्रीं नारसिंह्यै नमः ॥

ततो वायव्ये इन्द्राणीमावाह्य पूजयेत् ।

इन्द्राणीं गजकुम्भ्यां महम्मनयनोज्ज्वलाम् ।

नमामि वरदां देवीं सर्वदेवनमस्तुताम् ॥

ह्रीं श्रीं इन्द्रायै नमः ॥

तत्रैव सामुद्राणीमावाह्य पूजयेत् ।

सामुद्रां सुप्तमयनीं मुण्डमाणोपगोभिः ॥

अष्टादशसमुदितां नमाम्यात्मविभूतये ॥

ह्रीं श्रीं चासुण्डायै नमः ॥

ततो मध्ये,—ह्रीं श्रीं चण्डिकायै नमः इति मूलदेवीमेव पूजयेत् ।

कात्यायनीं दशभुजां महिषासुरमर्द्दिनीम् ।

प्रसन्नवरदां देवीं वरदां तां नमाम्यहम् ॥

ह्रीं श्रीं चण्डिकायै नमः ॥

चण्डिके नवदुर्गे त्वं महादेवमनोरमे ।

पूजां समस्तां सगृह्य रच मां त्रिदशेश्वरि ॥

ह्रीं श्रीं दुर्गायै नमः ॥ इति मूलदेव्यै पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ततो जयन्त्यादीर्गन्धपुष्पादिभिर्देवीसन्निधाने पूजयेत् ॥

ह्रीं श्रीं जयन्तये नमः, इत्यादिक्रमेण पूजयेत् ॥

जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ।

दुर्गां शिवां चर्मां धार्त्रीं स्वधां स्वाहाञ्च पूजयेत् ॥

॥ ततोऽस्तपूजा ॥

देवीदक्षिणहस्तेषु,— ॐ शूलाय नमः, इति समूज्य,—

सर्वायुधानां प्रथमो निर्मितस्त्वं पिनाकिना ।

शूलं सारं समाहृत्य कृत्वा मुष्टियहं शुभम् ॥

पुष्पं दद्यात् ॥

ॐ खड्गाय नमः, इति समूज्य,—

अग्निर्विशसनः खड्गस्त्रीक्ष्णधारो दुरासदः ।

श्रीगर्भो विजयस्त्रैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ सुदर्शनचक्राय नमः, इति सम्पूज्य,—

चक्र त्वं विष्णुरूपोऽसि विष्णुपाणौ सदा स्थितः ।

देवीहस्तस्थितो नित्यं सुदर्शन नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ तीक्ष्णवाणाय नमः, इति सम्पूज्य,—

सर्वायुधानां श्रेष्ठोऽसि दैत्यसेनानिसूदन ।

भयेभ्यः सर्वतो रक्ष तीक्ष्णवाण नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ शक्तये नमः, इति सम्पूज्य,—

शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां गुह्यं च विशेषतः ।

शक्तिरूपेण सर्वत्र रक्षां कुरु नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पम् ॥

वामहस्तेषु,—

ॐ खेटाय नमः, इति सम्पूज्य,—

यष्टिरूपेण खेट त्वमरिसंहारकारकः ।

देवीहस्तस्थितो नित्यं भगवन् रक्षां कुरु च ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ पूर्णचापाय नमः, इति सम्पूज्य,—

सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन ।

चाप मां सर्वतो रक्ष साकं शायकसत्तमैः ॥

इति पुष्पम् ॥



ॐ पाशाय नमः, इति सम्पूज्य,—

पाश त्वं नागरूपोऽसि विषपूर्णे विषोदरः ।

ग्रन्थं दुःसहो नित्यं नागपाश नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ अङ्कुशाय नमः, इति सम्पूज्य,—

अङ्कुशोऽसि नमस्तुभ्यं गजानां नियमः सदा ।

लोकानां सर्वरक्षार्थं विधृतः पार्वतीकरे ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ घण्टायै नमः, इति सम्पूज्य,—

हिनस्ति दैत्यतेजांसि खनेनापूर्य्य या जगत् ।

सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥

इति पुष्पम् ॥

ॐ परशवे नमः, इति सम्पूज्य,—

परशो त्वं महातीक्ष्णः सर्वदेवारिसूदनः ।

देवीहस्तस्थितो नित्यं ग्रन्थचय नमोऽस्तुते ॥

इति पुष्पम् ॥

सर्वायुधानां श्रेष्ठानि यानि यानि त्रिपिष्टपे ।

तानि तानि दधत्यै ते चण्डिकायै नमोऽम्बिके ॥

ह्रीं श्रीं दुर्गायै सर्वायुधधारिण्यै नमः ।

इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ततः,— ॐ किरीटादिभ्यो देव्यङ्गप्रत्यङ्गभूषणेभ्यो नमः ।

इत्येकत्र पूजयेत् ।

ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय ॐ फट् नमः ।

इति मन्त्रेण सिंहं पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

आसनञ्चासि भूतानां नानालङ्कारभूषितम् ।

मेरुशृङ्गप्रतीकाश्च सिंहासन नमोऽस्तु ते ॥

ॐ महासिंहाय नमः ।

ततो महिषासुराय नमः,— इति महिषं देव्ये पूजयेत् ।

कालिकापुराणे महिषासुरवरदाने,—

मम प्रवर्तते पूजा यत्र यत्र च तत्र ते ।

पूज्यश्चिन्त्यश्च तत्रैव कालोऽयं तव दानव ॥

मत्स्यपुराणे देशदेवतापूजोक्ता, तासु कोटियोगिनीपूजयैव  
पूजिता इति न शृण्वन् पूज्याः ।

कालिकापुराणे कामाख्यापूजाप्रकरणे,—

वटुकचतुष्टयाष्टचेत्रपाल-नवभैरवपूजोक्ता, अतस्तानपि केचित्  
पूजयन्ति ।

श्रीमित्यनेन मन्त्रेण पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् ।

सिद्धपुत्रं दानपुत्रं तथा सहजपुत्रकम् ॥

शेषं समयपुत्रञ्च पूजयेद्वटुकानिमान् ॥

ॐ श्रीं सिद्धपुत्रवटुकाय नमः,— इत्यादि ।

पूजयेत् चेत्रपालांश्च मध्ये किञ्चिद्वक्त्रपत्रयोः ।

हेतुकं त्रिपुरघ्नञ्च अग्निजिह्वं तथैव च ॥

अग्निवेतालसंज्ञञ्च कालञ्चाय करालकम् ।

एकपादं भीमनाथमुत्तरादिक्रमेण तु ॥

ॐ हेतुकाय चेत्रपालाय नमः,— इत्यादि ॥

मण्डलस्य चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ मध्ये च पूजयेत् ।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तौ भयङ्करः ॥

कपाली भीषणश्चैव संहारी नव भैरवाः ॥

असिताङ्गाय भैरवाय नमः,— इत्यादि ॥

॥ अथ लोकपालपूजा ॥

मण्डलवाह्ये चतुर्दिक्षु,—

इन्द्राय सवज्ञाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

अग्नये सशक्तये सवाहनपरिवाराय नमः ।

यमाय सटण्डाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

नैर्ऋताय सखङ्गाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

वरुणाय सपाशाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

वायवे साङ्कुगाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

सोमाय सगदाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

ईशानाय सशूलाय सवाहनपरिवाराय नमः ।

निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये,—

अनन्ताय सचक्राय सवाहनपरिवाराय नमः ।

इन्द्रेशानयोर्मध्ये,—

ब्रह्मणे सपद्माय सवाहनपरिवाराय नमः ॥

॥ ततो बलिदानम् ॥

बलिं स्थापयित्वा लोहितमाल्येन वेष्टयित्वा प्रोचयेत् ।

ॐ अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन्नग्निः

स ते लोको भविष्यति तं जेष्यमि पिवैताम्रपः ।

वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन् वायुः स  
ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिवैता अपः ।

सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्तस्मिन् सूर्यः स  
ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिवैता अपः ।

ॐ वाचन्ते शुन्वामि, प्राणन्ते शुन्वामि, चक्षुस्ते शुन्वामि,  
ओचन्ते शुन्वामि, नाभिन्ते शुन्वामि, सेङ्गन्ते शुन्वामि, पायुन्ते  
शुन्वामि, चरिचन्ते शुन्वामि ।

ॐ मनस्-आप्यायतां, वाक्च आप्यायतां, प्राणस्-आप्यायतां,  
चक्षुस्-आप्यायतां, ओचन्त-आप्यायतां, यत्ते क्रूरं यदा स्थितं तत्त-  
आप्यायतां । तत्ते निष्ठायतां तत्ते शुध्यतु महोभ्यः ॥

इति संप्रोक्ष्य पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पैः पूजयेत् ॥

ततो देवीं मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलित्रयेण पूजयेत् ॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।

निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

क्वाग त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।

प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥

चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्मिनाग्रन ।

वैष्णवीबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयन्भुवा ।

१ ख, चरित्रमित्यादि नास्ति ।

२ ग, सर्वरूपिणम् ।

अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण पुष्पं मूर्द्ध्नि बलेर्न्यसेत् ॥

तुभ्यं नम इति, तेऽस्त्वित्यर्थः । क्वचित् कालिकापुराणे तु बले  
तुभ्य नमो नम-इति पाठः ।

ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ।

अभिषिच्य वलि पश्चात् करवारं प्रपूजयेत् ॥

ततः कुश-तिल-जलान्यादाय, ॐ अद्यामुकगोत्रस्यामुकशर्मणः  
पञ्चविंशतिवर्षावच्छिन्नदुर्गाप्रीतिकामनया जयदुर्गामन्त्रमुच्चार्य ॐ  
ह्रीं दुर्गायै एष ऋगवलिर्नमः । ऋगोऽयं वज्रिदैवत । मेषपक्षे  
तु वरुणदैवत-इति बोद्धव्यम् ।

ततः पशोः कर्णे जपेत् ।

हिलि हिलि वज्ररूपधरायै ह्रीं ह्रीं इमं पशुं प्रदर्शय मुक्तिं  
नियोजय नमः स्वाहा ।

ततः खड्गं ध्यात्वा पूजयेत् ।

ध्यानं यथा,—

कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपिणम् ।

उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाख्यानुलेपनम् ॥

रक्ताम्बरधरश्चैकपाशहस्तं कुटुम्बिनम् ।

पिवमानञ्च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् ॥

इति ध्यात्वा,—

रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः ।

ॐ-ह्रां ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण खड्ग पाद्यादिनार्चयेत् ।

तथा,—

नामन्त्रं खड्गं तु बलिं न दद्यात्तु कदाचन ।

खड्गस्थामन्त्रेण मन्त्रा यावन्तः कथिताः पुरा ॥

तैः सार्द्धमेते मन्त्रास्तु योज्याः खड्गाभिमन्त्रणे ।

१दिः कालीति ततो देवि वज्रेश्वरिपदं तथा ॥

ततोऽनु लौहदण्डायै नमः शेषे तु योजयेत् ।

कालि कालि देवि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः ॥

समूच्यानेन मन्त्रेण खड्गमादाय पाणिना ।

कालरात्र्यास्तु मन्त्रेण तं खड्गमभिमन्त्रयेत् ॥

ह्रीं ह्रीं कालि कालि विकटदंष्ट्रे स्त्रीं स्त्रीं फेत्कारिणि

खादय च्छेदय सर्वदुष्टानि मारय मारय असुकं खड्गेन क्षिन्धि

क्षिन्धि किलि किलि चिकि चिकि पिव पिव रुधिरं स्त्रीं स्त्रीं

किरि किरि कालिकायै नमः ।

ततः पुष्पाञ्जलिना,—

असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।

श्रीगर्भो विजययैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ॥

पूजयित्वा ततः खड्गं आँ ऊँ फड़िति मन्त्रकैः ।

गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेदलिमुत्तमम् ॥

योगिनीतन्त्रे,—

छेदयेद्भूमिसंस्थं तु बलिं पूर्वमुखं तथा ।

उदङ्मुखः स्वयं भूत्वा नेत्रबीजेन साधकः ॥

१ ख, ग, पुस्तकद्वये विरित्यादि योजयेदित्यन्तोऽंशो नास्ति ।

स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्रात्रा वा सुहृदैव वा ।  
सपिण्डेनाथ वा क्खेद्यो नामगोत्रं नियोजयेत् ॥

कालिकापुराणे,—

ततो वल्लीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः ।

मधुभिर्गन्धपुष्पैश्च अधिवास्य विधानतः ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकी रुधिरेणाप्यायतामिति ।

स्थाने नियोजयेद्रक्तं शिरस्य सप्रदीपकम् ।

एव दत्त्वा वलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः ॥

शिरःप्रदीपस्य पात्रं विना सावधानेन दातव्यः ।

यथा योगिनीतन्त्रे,—

श्रीर्षोपरि ज्वलद्दीपं हृतयोगेन साधकः ।

दद्याद्वा तैलयोगेन वर्जयेत् सार्षपादिकम् ॥

हृतेन सार्वभौमः स्यात्तैले भिद्धिं विनिर्द्दिशेत् ।

यावन्ति श्रीर्षलोमानि दीपो दहति भाविनि ॥

तावत् कालं वसेत्सुर्गं तस्मात् पात्रं त्रिवर्जयेत् ।

लोमदाहोद्भवः गन्धं घ्रात्वा देवी प्रसीदति ॥

तस्मात् प्रयत्नतः कुर्यात् श्रीर्षोपरि ज्वलच्छिखाम् ।

निर्वाणे मृत्युमाप्नोति नीयमाने प्रदीपके ॥

तस्मात् प्रयत्नतो नीत्वा ज्वालयेद्दीपकं बुधः ॥

ततः शोणितं चतुर्धा विभज्य,—आग्नेये,—विदारिकायै नमः,

नैऋते,-पापराक्षस्यै नमः, वायव्यां,-पूतनायै नमः, ऐशान्यां,-  
कालिकायै नमः, इति दद्यात् ।

योगिनीतन्त्रे,—

विदारौ-पापराक्षस्यौ पूतना कालिका तथा ।

आग्नेयादिककोणे तु चजेत्तत्र समाहितः ॥ .

ततः सुधात् ।

त्रिनेत्रे विकरालास्ये मुण्डमालाविभूषिते ।

सर्वासुरक्षतान्ते त्वं खड्गखट्वाङ्गधारिणि ॥

महिषमि महामाये दैत्यदर्पनिस्त्रुदनि ।

ह्यागलेन वलिं दक्षि गृहाण हरवल्लभे ॥

द्रुमं ह्यागवलिं देवि गृहीत्वा कालरात्रिके ।

प्रीता भव महाकालि रक्ष मां देवि चण्डिके ॥

इति पुष्पाञ्जलि दत्त्वा धूपं निवेद्य, नानावाद्येन कोलाहलं कुर्यात् ।

स्वगात्रायास्तृप्दाने तु सहस्रवार्षिकी तृप्तिः ।

तत्र मन्त्रः,—

ॐ ह्रीं ह्रीं किलि किलि कालिके स्वगात्ररुधिरं गृह्ण गृह्ण ।

रक्तप्रिये प्रचण्डामिमुण्डमालाविभूषिते ।

स्वगात्रास्तृक्प्रदानेन सर्वशान्तिं कुरुष्व मे ॥

एतच्च ब्राह्मणेतरैर्देयम् ॥

अथ महिषे विशेषस्तुतयम् ॥

कालिकापुराणे,—

सुध्रातं मनुज दीप्त पूर्वोऽङ्घ्रि नियताशनम् ।



मांसमैशुनभोगहीन स्रक्चन्दनोक्षितम् ॥  
 कृत्वोत्तरामुखं तं तु तदङ्गेष्वङ्गदेवताः ।  
 पूजयेत्तं च नाम्ना तु दैवतेन च मानुषम् ॥  
 अन्येषां महिषादीनां वल्लीनामथ पूजनात् ।  
 कायो मेध्यत्वमाप्नोति रक्तं गृह्णाति वै शिवा ॥

महिषादयस्तु,—

महिष-सिंह-सरभ-व्याघ्र-गण्डक-कृष्णसाराः, न तु कागादयः,  
 तानेवोपक्रम्याभिधानात् ॥

तं ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्माणं तन्नासायाञ्च मेदिनीम् ।  
 कर्णयोस्तु तथाकाशं जिह्वायां सर्वतोमुखम् ॥  
 ज्योतींषि नेत्रयोर्विष्णुं वदने परिपूजयेत् ।  
 ललाटे पूजयेच्चन्द्रं शक्रं दक्षिणगण्डतः ॥  
 वामगण्डे तथा वक्त्रिं यौवायां भ्रमवर्त्तिनम् ।  
 केशाग्रे निर्ऋतिं मध्ये भ्रुवोऽपि प्रचेतसम् ॥  
 नासामूले तु श्वसनं स्कन्धे चापि धनेश्वरम् ।  
 हृदये मर्पराजन्तु पूजयित्वा पठेद्विष्णुम् ॥  
 यथा वाहं भवान् द्वेष्टि यथा वहमि चण्डिकाम् ।  
 तथा मम रिपून् हिंस्य शुभं वहं लुलापकम् ॥  
 यमस्य वाहनस्त्वं तु वररूपधराव्यय ।  
 आयुर्वित्तं यशो देहि काशराय नमोऽस्तु ते ॥

— महिषदाने शतवार्षिकी दुर्गाप्रौतिः फलं, महिषो यमदैवतः ।  
 सर्वमन्यत् प्रोक्षणादिकं कागवत् कर्त्तव्यम् ।

कालरात्र्या मन्त्रोद्धारमाह । कालिकापुराणे,—

नेत्रबीजस्य मध्यन्तु द्विरावर्त्य प्रयोजयेत् ।

ततोऽनु कालि कालीति विकटदष्टे ततः पदं ॥

हान्तादि-नवतीयेन स्त्रेणैकादशेन तु ।

योजितौ नादविन्दुभ्यां द्वौ पञ्चाद्विनियोजयेत् ॥

फेत्कारिणिपदं तस्मात् खादय च्छेदयेत्यतः ।

सर्वदुष्टानि च ततो द्विर्मारयामुकं ततः ॥

खड्गेन क्षिन्धि क्षिन्धीति ततश्च किलि किलीति ।

ततश्चिकि चिकीत्येवं ततः पिव पिबेति च ॥

ततोऽनु रुधिर चेति स्फौं स्फौं किरिकिरौति च ।

कालिकायै नम इति कालरात्र्यास्तु मन्त्रकः ॥

इत्यनेन तु मन्त्रेण करवालेऽभिमन्त्रिते ।

कालरात्रिः स्वयं तस्मिन्निषीदत्यरिहानये ॥

नेत्रबीजं ऐं ह्रीं श्रीं इति कालिकापुराणे उक्तं तस्य मध्यं ह्रीमित्यर्थः, ततो जयदुर्गामन्त्रं किञ्चिज्जपित्वा अर्घ्योदकेन जपं समर्पयेत् ।

तथा वलिदानानन्तरं कालिकापुराणे,—

जपं समाप्तेत् पश्चात् पूर्ववद्भानतत्परः ।

हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ॥

ततो जयदुर्गामन्त्रेण तिलैर्होमं कार्यं यथा,—

होमञ्च सतिलैराज्यैर्होमैर्व्याथ समाचरेत् ॥

ततः,— अथ दुर्गामहोत्सवे सर्ववाधाविनिर्मुक्ति-धनधान्यसुता-

न्वितत्वकामः श्रीदुर्गाप्रीतिकामो वा श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतं  
देवीमाहात्म्यं श्रोयामि कीर्त्तयिष्ये वा इति मङ्गल्य देवी-  
माहात्म्यस्य श्रवणं कीर्त्तनं वा कुर्यात् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य पञ्च  
प्रणामान् कुर्यात् ।

कालिकापुराणे,—

सर्व्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्व्वार्थमाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

मन्त्रधावर्त्तनं कृत्वा स्तुतिमेतान्तु साधकः ।

पञ्च प्रणामान् कुर्व्वीत ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकैः ॥

अन्यानपि यथाशक्ति प्रणामान् कुर्यात् ॥

आयुर्देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे ।

पुत्रान् देहि धनं देहि सर्व्वान् कामांश्च देहि मे ॥

प्रचण्डे पुत्रदे नित्यं सुप्रीते सुरनायिके ।

कुलोद्योतकरे चोग्रे जयं देहि नमोऽस्तु ते ॥

रुद्रचण्डे प्रचण्डाऽमि प्रचण्डवल्लभाशिनि ।

रक्ष मां सर्व्वतो देवि विश्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥

दुर्गेतारिणि दुर्गे त्व सर्व्वाशुभनिवारिणि ॥

धर्मार्थमोक्षदे देवि नित्यं मे वरदा भव ॥

दुर्गे दुर्गे महाभागे चाहि मा शरणप्रिये ।

महिषासृङ्गदोन्मत्ते प्रणतोऽस्मि प्रसीद मे ॥

हर पाप हर क्लेश हर शोक हरासुखम् ।

हर रोगं हर चोभ हर वामं हरप्रिये ॥

कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि ।  
 धर्मकामप्रदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥  
 संयासे विजयं देहि धनं देहि मदा गृहे ।  
 धर्मकामार्थसम्पत्तिं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥  
 महिषघ्नि महामाये चामुण्डे सुण्डमानिनि ।  
 आयुरारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥  
 आयुर्ददातु मे काली पुत्रान् देवी मदाग्निवा ।  
 धनं देवी महामाया नारमिणी यशो नमः ॥  
 शिरो मे चण्डिका पातु कण्ठं पातु मरिचरं ।  
 हृदयं पातु चामुण्डा भव्यतः पातु कालिका ॥  
 आन्ध्रं कुष्ठञ्च टारिच्यं रोगं शोकञ्च टारुणम् ।  
 वन्धु-स्वजन-वैराग्यं दुर्गं तं हर दुर्गात्मिनी ॥  
 राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य मदा मिरा  
 प्रभुतां तस्य सामर्थ्यं यस्य तं मन्त्रयोगिनि ॥  
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफल जीविनं नमः ।  
 आगताऽमि यतो दुर्गे माहेरनि मदाश्रयम् ।  
 अथै पुष्पञ्च नैवेद्यं मान्द्रं मलयदाभिनि ।  
 गृहाण वरदे देवि कन्दानां दूरं मे मदा ॥

ततः पञ्चां मनयेद्यत् ॥

मन्त्रहीनं प्रियाहीनं भक्तिहीनं मरिचरिः ।  
 यदर्थितं मया देवि परिपूर्णं मद्रक्तं मे ॥  
 यदीदं शारदीं पुत्रां सर्वसम्पत्सम्पत्तिदाम्

चण्डिके त्वां नमाम्यद्य स्वयमर्थं प्रगृह्यताम् ॥  
 कायेन मनसा वाचा त्वतो नान्या गतिर्मम ।  
 अन्तश्चारेण भूताना द्रष्टुं त्वं परमेश्वरि ॥  
 ततो रात्र्यर्द्धे पूर्ववत् षोडशोपचारैः पूजा कार्या ।

यथा,—

बलिभिर्गन्धपुष्पाद्यैर्महाविभवविस्तरैः ।

रात्र्यर्द्धे पूजयेद्देवीं जगन्मातरमस्विकाम् ॥

गौड्डीयास्तु,— अष्टमौनवमौसन्धिकाले भूतशुद्धादिक कृत्वा,  
 चामुण्डारूप चिन्तयित्वा, षोडशोपचारैः सम्पूज्य, षष्टियोगिनीञ्च  
 पूजयित्वा बलि ददति ॥ ध्यानन्तु,—

काली करालवदना विनिक्रान्तासिपाशिनी ।

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ॥

दौषिचर्म्मपरोधाना शुष्कमांसातिभैरवा ।

अतिविस्तारवदना जिह्वातलनभूषणा ॥

निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ इति ।

एव नवम्यामष्टमीविधिना पूजा कार्या प्रभूतबलिदानञ्च ।

कुमारौ सम्पूज्य भोजयेत् ।

देवीपुराणे,—

न तथा तुष्यति शिवा होम-दान-जपेन तु ।

कुमारौभोजनेनात्र यथा देवी प्रसीदति ॥

ततो दक्षिणां दद्यात् ।

अन्ये तु,— दशम्या विसर्जनं कृत्वा दक्षिणा देयेत्याहुः, तन्मन्दम्

आद्धादौ विसर्जनात् प्राग्दक्षिणाया दृष्टत्वात् अन्यत्रापि तथैव  
न गत्यत्वात् ।

किञ्च कालिकापुराणे पविचारोद्घणे दक्षिणानन्तरं देव्या  
विसर्जनमुक्तम् ॥

यथा,—

पविचारोद्घणे वृत्ते दक्षिणान्तु प्रदापयेत् ।

हिरण्यं गां तिलं धेनुं वस्त्रं वा शाकमेव वा ॥

ततो विसर्जयेद्देवीं पूर्वाभिः प्रतिपत्तिभिः ॥

प्रारदीयदुर्गापूजाफलं तत्रैव,—

कृत्वैव परमामाप्नुर्निर्वृतिं त्रिदिवौकसः ।

एवमन्यैरपि सदा कार्यं देव्याः प्रपूजनम् ॥

विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥ \* ॥

अथ दशम्यां कृतनित्यक्रियो भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पञ्चोपचारै-  
र्देवीमभ्यर्च्य कृताञ्जलिः पठेत् ।

विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।

पूर्णं भवतु तत्सर्वं तत्प्रसादान्महेश्वरि ॥

ततो निर्माल्यवासिन्यै नम इति निर्माल्येन घटोपरि पूजयेत् ।

कालिकापुराणे,—

योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ निर्माल्यं दिशि शूलिनः ।

चण्डेश्वर्यै नम इति निक्षिप्याथ विसर्जयेत् ॥

विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण शृणु भैरव ।

उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥

कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह ।  
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थान परमेश्वरि ॥  
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।  
व्रज त्वं स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ॥

इति मन्त्रेण देवीं चालयित्वा,—

शङ्खतुर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।  
धूलिकर्दमविचेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥  
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ।  
भगलिङ्गक्रियाशब्दैः क्रीडयेद्युरलं जनाः ॥

इति जलसमीपं नयेत् । जलस्थापनमन्त्रस्तु तत्रैवोक्तः,—

निमज्ज्याम्भसि सम्पूज्य पत्रिका वर्जिता जले ।  
पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं स्थापिताऽसि मया जले ॥  
इत्यनेन तु मन्त्रेण देवीं सस्यापयेज्जले ।

मया सम्पूज्याम्भसि निमज्ज्य पत्रिका जले वर्जितास्त्यक्ता  
अतस्त्वमपि पुत्रादिवृद्ध्यर्थं स्थापिताऽसि जले, इति मन्त्रार्थवशात्  
स्वयं जलं प्रविश्यैव स्थापयितव्या । ततो जलक्रीडां कृत्वा  
मृदमागत्य अर्च्छिद्रमवधार्य शान्त्याशीः-प्रशस्तिवन्दनादिक  
मङ्गलमाचरेत् ।

श्रीगोविन्द-पदद्वन्द्व-वन्दना-नन्दितात्मना ।

गोविन्दानन्दकृतिना दुर्गाश्वाकौमुदी कृता ॥

अथ खञ्जनदर्शनम् ।

तत्र दुर्गात्सवानन्तरं खञ्जनं पश्येत् । यथा सवत्सरप्रदीपे,—

कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्धौ यथाबलम् ।

शोभनं खञ्जनं पश्येज्जल-गो-गोष्ठसन्निधौ ॥

यत्तु,—

हस्तगतेऽम्बुजबन्धौ यस्यां दिशि खञ्जनं नृपः पश्येत् ।

तस्यां गतस्य नृपतेः क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥

इति ज्योतिषे हस्तार्के खञ्जनदर्शनमुक्तं तत्समुच्चये फलाति-  
श्रयार्थम् ।

ज्योतिषे,—

मङ्गल्ये खञ्जनं दृष्ट्वा पुण्ये स्थाने मनोरमे ।

शुभं स्यादशुभं ज्ञेयं विपरीते न संग्रहः ॥

तथा,— अजासु गोषु गज-वाजि-महोरगेषु

राज्यप्रदस्य कुशलः शुचिशादलेषु ।

भस्मास्थिकाष्ठतुषलोमलणेषु दृष्टो

रिष्टं ददाति वज्रशः खलु खञ्जरीटः ॥

अशुभं खञ्जनं दृष्ट्वा देवनाङ्गाणपूजनम् ।

शान्तिं कुर्वीत कुर्याच्च स्नानं सर्वौषधिजलैः ॥

अथ खञ्जनदर्शने मन्त्रं पठित्वा प्रणमेत् ।

ॐ अशोकस्य विशोकस्य नन्दीशः पुष्टिवर्द्धनः ।

शङ्ख-चूडो मणिग्रीवः स्वस्तिकण्डोऽपराजितः ॥

खञ्जनाय नमस्तुभ्यं सर्वाभौष्टप्रदाय च ।

नीलकण्ठाय भद्राय भद्ररूपाय ते नमः ॥

भद्रस्त्वं देहि मे भद्रमाशां पूरय पूरकः ।



स्वस्तिकोऽसि कुरु स्वस्ति खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥

नारायणशरीरोत्थ संवत्सरशुभप्रद ।

नीलकण्ठ महादेव खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥

वासुदेवस्वरूपेण सर्वकामफलप्रद ।

पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥

त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्व-

मदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन ।

त्वं दृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां

त्वं खञ्जनाश्चर्यमयो नमस्ते ॥

अथाग्निशुक्लपत्रे निषिद्धेतरदिने व्रीहिपाकनिमित्तकं आहुं  
कार्यम् ।

विष्णुधर्मोत्तरे,—

व्रीहिपाके च कर्त्तव्यं यवपाके तथैव च ।

न तावाद्यौ महाराज विना आहुं कथञ्चन ॥

पौर्णमासी तथा भाषी आवणी च नरोत्तम ।

प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी ॥

एतांस्तु आहुकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः ।

व्रीहिपाके चेत्यनेन नित्यआहुं विधायाकरणे प्रत्यवायो  
दर्शितः । न तावाद्यावित्यनेन तु आहुकरणे अशुद्धस्य द्रव्यस्य  
भक्षणे प्रत्यवायान्तरं १ दर्शितं । तेन महागुरुनिपातेऽधिकाराभावात्

आद्धाकरणे प्रत्यवायो नास्ति ।] किन्त्वशुद्धद्रव्यभक्षणे प्रत्यवायात्  
तदुपयोगो न कार्यः । अत्र आद्धकालानित्युपसंहारात् त्रीहिपाक-  
काले यवपाककाले चेति मन्तव्यं । स च शरदसन्तस्य ।

यथा परिशिष्टप्रकाशधृता श्रुतिः,—

गृहमेधी त्रीहियवाभ्यां शरदसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्वनी  
वर्षासु ॥

यद्यप्यत्र पाकपदेन कालो लक्ष्यते तथापि विशेषणस्य पाकस्यैव  
निमित्तत्वं प्राधान्यात् अन्यथा नानामुनिवचनेषु त्रीहिपाकपदे-  
नाभिधानमसमञ्जसं स्यात् । अतएव,—

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।

इति ब्रह्मपुराणम् ।

एतच्च कार्तिके न कर्त्तव्यम् ।

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनार्दने ।

न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन ॥

इति निषेधात् ।

न चैतद्वचनं मार्गशीर्षविहितनवशालिसमागमनिमित्तकआद्ध-  
मात्रविषयं नवान्नत्वाविशेषात् ।

अतएव कामधेनुकृता,—

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।

गच्छेत् क्षेत्री विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः ॥

इत्यभिधाय,

तेन देवान् पितृंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥

इति ब्रह्मपुराणवचनमाश्विनमासीयतिथिरुक्त्ये लिखितम्  
अतएव शुक्लपक्ष एवैतच्छ्राद्धं ब्रीह्यभावे हैमन्तिकेनापि कार्यमाव-  
श्यकत्वात् ।

अतएव बौधायनः,—

आ ब्रीहिपाकाद्यवपाकं नाद्येति आ यवपाकाद्ब्रीहिपाकमिति ।  
ब्रीहिपाक ब्रीहिपाकनिमित्तकश्राद्धमित्यर्थः ।

तथा परिशिष्टे,—

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयजं प्रचक्षते ।

धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥

यजतुल्यन्यायात् श्राद्धमपि तदा च तन्त्रेणैकम् ।

अथ कोजागरः ।

लिङ्गपुराणे,—

आश्विने पौर्णमास्यान्तु चरेज्जागरण निशि ।

कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकविभूतये ॥

कौमुद्यां पूजयेत्तक्षीमिन्द्रमैरावतस्थितम् ।

सुगन्धैर्निशि सदेशे अक्षैर्जागरणं चरेत् ॥

जागरणमित्यनेनैव प्राप्तौ निशीति कौमुदीसङ्गार्थः । सुगन्धैः  
शोभनगन्धैरिति पूजायां गुणः, निशीति सदेशेनान्वयः, अन्यथा  
जागरणत्वेन निशालाभात् निशीत्यस्य वैयर्थ्यात् । अत्र च यस्मिन्  
दिने रात्रियोगस्तत्रैव लक्ष्मीपूजा दिनद्वये रात्रौ तिथिलाभे  
प्रदोषव्यापिनौ ग्राह्या ।

यथा हेमाद्रिलिखितं वचनम्,—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ।

प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं नाङ्गिकानां चतुर्दशम् ॥

चतुर्दशमष्टावित्यर्थः । दिनद्वये प्रदोषव्यापिले युग्मादरेण व्यवस्था । न चात्र त्रिसन्ध्याव्यापिनीति वचनावकाशः तद्वचनस्य षष्टिदण्डात्मकतिथिविषयतया प्राङ्गिरूपितत्वात् । एवञ्च यस्मिन् दिने लक्ष्मीपूजा तस्मिन् दिने जागरणं कार्यम् ।

लैङ्गे,—

निशीथे वरदा लक्ष्मी को जागर्तीति भाषिणी ।

जगत्प्रक्रमते तत्र लोकचेष्टावलोकिनी ॥

तथा तत्रैव लक्ष्मीवाक्यम्,—

नारिकेलजलं पीत्वा अक्षक्रीडां समाचरन् ।

तस्मै वित्तं प्रयच्छामि को जागर्ति महीतले ॥

अक्षक्रीडामाचरन् को जागर्ति तस्मै वित्तं प्रयच्छामीत्यर्थः ।

तथा,

नारिकेलैश्चिपिटकैः पितृन् देवांश्च तर्पयेत् ।

बन्धून्श्च पूजयेत्तैश्च स्वयं तदग्रतो भवेत् ॥

पित्रर्चनं आर्द्धं काम्यं तच्च यस्मिन् दिने पूर्वाह्ने पूर्णिमा<sup>१</sup> तत्रैव, शुक्लपक्षविहितत्वात् ॥

## अथ कार्तिककृत्यम् ।

नारदीये,—

सुवर्णमेरुतुल्यानि सर्वदानानि चैकतः ।  
 एकतः कार्तिको मासः सर्वथा केशवप्रियः ॥  
 व्रतेन न क्षिपेद्यस्तु मास दामोदरप्रियम् ।  
 तिर्य्यग्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मवद्भिक्षृतः ॥  
 यतिश्च विधवा चैव विशेषेण वनाश्रमी ।  
 कार्तिके नरकं यान्ति श्रद्धत्वा वैष्णवं व्रतम् ॥  
 जन्मप्रभृति यत् पुण्य विधिवत् समुपावर्जितम् ।  
 भस्मीभवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम् ॥  
 कार्तिके नार्चितो यैस्तु भक्तियोगेन केशवः ।  
 नरास्ते नरकं यान्ति यमदूतैः स यन्त्रिताः ॥  
 गवां कोटिप्रदानेन स्वर्णकोटिषु यत्फलम् ।  
 तत्फलं कोटिशुणितमेकाहे केशवार्चनात् ॥

भविष्ये,—

आमिषं मैथुनञ्चैव कार्तिके मासि यस्त्यजेत् ।  
 सर्वकालकृतं पापं दुष्कृतं चापकर्षति ॥  
 तुला-मकर-मेघेषु प्रातः स्नान विशेषतः ।  
 हविष्य ब्रह्मचर्य्यञ्च महापातकनाशनम् ॥

अत्र राशुमेखात् शौरो मासः, दुष्कृतं दुर्निमित्तमित्यर्थः ।

—ब्रह्मचर्य्यं स्त्रीपरित्यागः । त्रयाणां मिलितानामेव महापातकनाशः  
 फलं न तु प्रत्येकम् ।

कार्तिकं सकलं मासं प्रातःस्त्रायौ जितेन्द्रियः ।

जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥\*

इति ब्रह्मापुराणे पापमोचनक्रियाधामधिकारिविशेषणतया  
सर्वेषां समुच्येन साधनत्वावगमात् । अरुणयैकहायन्या गवा सोमं  
क्रीणातीतिवत् ।

ब्रह्माण्डे,—

तुलायां तिलतैलेन सायं सन्ध्यासमागमे ।

आकाशदीपं यो दद्यात् मासमेकं निरन्तरम् ।

सश्रीकाय श्रीपतये स श्रीमानभिजायते ॥

ॐ दामोदराय नमसि तुलायां लोलया सह ।

प्रदीपन्ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ॥

इति मन्त्रेण यो दद्यात् प्रदीपं सर्पिरादिनां ।

आकाशे मण्डपे वापि स चाक्षयफलं लभेत् ॥

विप्रवेशानि यो दद्यात् कार्तिके मासि दीपकम् ।

अग्निष्टोमसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

व्रतोपवासनियमैः कार्तिको यस्य गच्छति ।

देवो वैमानिको भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥

मण्डपे विष्णुगृहे इत्यर्थः । व्रतं प्राजापत्यादि । उपवासोऽपि  
एकान्तरोपवासादिः । नियमः शाकमूलाहारादिः । कार्तिकोऽत्र  
सौरः तुलां प्रकृत्याभिधानात् ।

गारुडे ब्रह्मोवाच,—

व्रतानि कार्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् ।

एकभक्तेन नक्तेन मासं चायाचितेन वा ॥  
दुग्धमूलफलाद्यैर्वा उपवासेन वा नयेत् ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकालो हरिं व्रजेत् ॥

तथा स्कान्दे,—

यो नरः कार्तिकं मासमेकभक्तेन तिष्ठति ।  
अश्वमेधफलं प्राप्य वङ्गलोके महीयते ॥

भविष्ये,—

उच्चैः प्रदीपमाकाशे यो दद्याद्विष्णवे नरः ।  
स सर्वं कुलमुद्धृत्य विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥  
यः कुर्यात् कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ।  
चण्डिकायतने भक्त्या स हि सूर्यापमां व्रजेत् ॥  
नवम्यान्तु विशेषेण भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।  
यावद्यो दीपसंख्यास्तु तैलेनापूर्य्य बोधिताः ।  
तावद्युगसहस्राणि दुर्गालोके महीयते ॥  
ददाति कार्तिके यस्तु सूर्यायतनदीपकम् ।  
अव्याहतेन्द्रियत्वञ्च स प्राप्नोति न शयः ॥

बोधिता ज्वालिता इत्यर्थः ।

स्कान्दे शिववाक्यम्,—

प्रदीपमालां यः कुर्यात् कार्तिके मासि वै मम ।  
अवसाने च दीपानां ब्राह्मणान् भोजयेच्छुचिः ॥  
गणपत्यञ्च लभते दीप्यते च रविर्यथा ।

नन्दिपुराणे,—

यो नरः कार्तिके मासि मांसन्तु परिवर्जयेत् ।  
संवत्सरस्य लभते पुण्यं मांसस्य वर्जनात् ॥

तथा,

तुला-मकर-मेषेषु यो मांसं परिवर्जयेत् ।  
चत्वारि भद्राण्यप्नोति कौर्त्तिमायुर्यशो बलम् ॥

नारदीये,—

यः करोति नरो नित्यं कार्तिके पचभोजनम् ।  
न दुर्गतिमवाप्नोति यावद्दिवाश्चतुर्दश ॥  
भोजनं पद्मपत्रेषु महापातकनाशनम् ।  
कार्तिके मुक्तिदं प्रोक्तं ब्रह्मपत्रेषु भोजनम् ॥

ब्रह्मपत्रं पलाशपत्रम् ।

नारदीये,—

निष्पावान् राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्दने ।  
यो भक्षयति विप्रेन्द्र्यण्डास्तादधिको हि सः ॥  
कार्तिके तु विगेषेण राजमायन्तु भक्षयेत् ।  
निष्पावं वा मुनिश्रेष्ठ यावदाहृतनारकी ॥  
कदम्बानि पटोलानि वात्तांकुमक्षितानि च ।  
न त्यजेत् कार्तिके मासि यावदाहृतनारकी ।  
एतानि भक्षयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ।  
शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः ॥



निष्पावो देवधान्यं, राजमाषो वरवटः । कश्चित् कङ्कमा-  
नीति पठित्वा कलम्बी शाकभेदमिति व्याचष्टे ।

लैङ्गे,—

कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यां दिनोदये ।  
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥  
अपामार्गपल्लवञ्च भ्रामयेच्छिरसोपरि ।  
ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥  
ततः प्रेतचतुर्दश्यां भोजयित्वा तपोधनान् ।  
शैवांश्च वैष्णवान् विप्रान् शिवलोके महीयते ॥

अवश्यमेवेत्यनेन स्नानस्य नित्यत्वमुक्तं अन्यथा वैयर्थ्यात्, अपा-  
मार्गभ्रामणं तु मङ्गलार्थम् ।

नामान्युक्तानि भविष्ये,—

यां काञ्चित् सरित् प्राप्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।  
यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद्यमान् ॥  
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।  
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥  
श्रीकुम्भराय दध्राय नीलाय परमेष्ठिने ।  
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥  
एकैकस्य तिलैर्मिश्रान् दद्यात् त्रीं स्त्रीन् जलाञ्जलीन् ।  
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।

लैङ्गे,—

नक्तं प्रेतचतुर्दश्यां यत् कुर्यात् शिवतुष्टये ।

न तत्कृतशतेनापि प्राप्यते पुण्डरीकम् ॥

नक्तं रात्रौ शिवमुद्दिश्य यत्किञ्चित् पूजादिकम् कर्म करो-  
तीत्यर्थः । अत्र भौमवारे चित्रानचत्रयोगे फलातिशयः ।

यथा भविष्ये,—

कार्तिके भौमवारे तु चित्राक्ष्णचतुर्दशी ।

तस्यामाराधितः स्थाणुर्येच्छिवपुरं भुवम् ॥

राजमार्त्तण्डे,—

रात्रौ चतुर्दशीं कृष्णं चित्राङ्गारतुलान्विताम् ।

उपोय्य स्वर्गमाप्नोति हेतुकेश्वरमन्त्रिधौ ॥

विमुक्ता भौमवारेण चित्रभेण तथैव च ।

तिथिरेव सदा पूज्या नात्र कार्या विचारणा ॥

अतएव रात्रिपूजाविधानान् यस्मिन् दिने रात्रौ चतुर्दशी  
तत्रैव पूजादिकम् । उभयदिनसमये त्रयोदश्या चतुर्दशीति युग्म-  
वचनाद्भवत्या । विगेषस्तु चतुर्दशीनिरूपणे प्रागेव द्रष्टव्य ।

भविष्ये,—

कुजचित्रगता भुता अग्निना या तु कार्तिके ।

वशिष्ठ जाह्नवीस्नानात् मध्ये तरति दम्कृतम् ॥

सैङ्गे,—

दीपनालां तथा कृत्वा चतुर्दशीं शिवाय च ।

चतुष्पथे च नद्याश्च चतरेषु गृहेषु च ॥

एकविंशकुलोपेतो वसेच्छिवपुरे नरः ।

अत्र च शस्त्रहतानामुत्कादानमन्त्रेणान् दर्शयति ।

ग्रस्ताग्रस्तहतानाञ्च भूतानां भूतदर्शयोः ।

इति मन्त्रलिङ्गात् । अत्राचारात् चतुर्द्वांशाकभक्षणं कुर्वन्ति ।

पञ्चप्रेतोपाख्यानञ्च शृण्वन्ति,—

ततः प्रेतचतुर्द्वांशां प्रेतोपाख्यानमुत्तमम् ।

यः शृणोति नरो भक्त्वा न स प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥

इति संवत्सरप्रदीपलिखितेतिहासमुच्चयवचनात् ।

उपाख्यानं यथा तत्रैव,—

अथ प्रेतचतुर्द्वांशीव्रतकथा ।

ग्रतरक्ष्यगत भीष्म वृद्धं कुरुपितामहम् ।

मूर्ध्ना प्रणम्य विश्वात्मा पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः ॥

युधिष्ठिर उवाच,—

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते ।

केन वा मुच्यते तस्मान्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

भीष्म उवाच,—

अहन्ते कथयिष्यामि सर्वमेतदशेषतः ।

यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमुपयास्यसि पुत्रक ॥

येन वै जायते प्रेतो येन चैव प्रमुच्यते ।

प्राप्तोऽथ नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि ॥

सततं <sup>१</sup>कीर्त्तनाद्यस्य पुण्यतीर्थानुकीर्त्तनात् ।

मानवाः सप्रमुच्यन्ते प्रपन्नाः प्रेतयोनिषु ॥

श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः संश्रितव्रतः ।  
 नाम्ना सान्तपनः स्थातस्तपोऽर्थं वनमाश्रितः ॥  
 स्वाध्याययुक्तो होमेन योगयुक्तश्च योगवित् ।  
 तपोजप्यविधानेन युक्तः कालचयेण सः ॥  
 युक्तः श्रमदमाभ्याश्च चान्त्या युक्तश्च धर्मवित् ।  
 ब्रह्मचर्य्यं समायुक्तो युक्तश्च परिमार्द्दवे ॥  
 युक्तः कार्य्येषु मैत्रेषु वेदयुक्तः स्वकर्म्मवित् ।  
 परलोकभये युक्तः सत्यशौचश्च नित्यशः ॥  
 युक्तो मधुरवाक्येषु युक्तश्चातिथिपूजने ।  
 इज्यायोगेन संयुक्तो युक्तो दन्दविवर्ज्जने ॥  
 योगाभ्यासे मदायुक्तो संमारविजिगीषवान् ।  
 परं धर्मं समाश्रित्य गन्तुमिच्छन् परं पदम् ॥  
 एवंवृत्तः सदाचारो मोक्षाकाङ्क्षी जितेन्द्रियः ।  
 बह्वन्यद्भानि विजने वने तस्य गतानि वै ।  
 तस्यैकदा मतिर्जाता तीर्थाभिगमनं प्रति ॥  
 स तीर्थं विधिवत् छात्वा भास्करस्योदयं प्रति ।  
 कृतजप्यनमस्कारः पन्थानं प्रत्यपद्यत ॥  
 स कदाचिदद्यापगच्छत् पशुं प्रेतान् स्वभौषणान् ।  
 घोरकण्टकिते देगे निर्जने वृद्धवर्ज्जिते ॥  
 तान् दृष्ट्वा विहृताकारान् घोरानत्यन्तभौषणान् ।  
 ईपत्सन्त्रस्तद्वदयन्त्यौ जेजे निमीन्य वै ॥  
 श्रवणमव्य ततो धैर्य्यं त्राममुत्सृज्य दूरतः ।

पप्रच्छ द्विगधया वाचा के यूयं विकृता भृगम् ॥  
किञ्चाशुभ कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्य वैकृतम् ।  
कथं वा चैकतः सर्व्वे प्रस्थिताः कुत्र वा पुनः ॥

प्रेता ऊचुः,—

चुत्पिपासार्द्दिता नित्यं परं दुःख समाश्रिताः ।  
हतभाग्या वय सर्व्वे नष्टसजा विचेतसः ॥  
न जानौमो दिशं तात विदिशं वापि दुःखिताः ।  
कुत्र गच्छामहे मूढाः पिशाचाः कर्मजा वयम् ॥  
न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः ।  
गताः स्मः सततं तात दुःखोद्देगसमाकुलाः ॥  
सन्दर्शनेन ते ब्रह्मन् ह्लादितास्तर्पिता वयम् ।  
सुदृत्तं तिष्ठ वक्ष्यामो वृत्तान्तं सर्व्वमादितः ॥  
मम पर्य्युषितो नाम एष सूचिमुखः स्मृतः ।  
ग्रीव्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ॥

ब्राह्मण उवाच,—

प्रेतानां कर्मजातानां नाम्नां वै सम्भवः कथम् ।  
नाम्नां वै कारणं ब्रूहि प्रेतत्वस्य च कारणम् ॥

प्रेता ऊचुः,—

मया खादु सदा भुक्तं दत्तं पर्य्युषितं द्विजे ।  
एतत् कारणमुद्दिश्य नाम पर्य्युषितं मम ॥  
सूचिता वद्वोऽनेन विप्राह्वर्याभिकाङ्क्षिणः ।  
कारणेनामुना ब्रह्मक्षेप सूचिमुखः स्मृतः ॥

ग्रीष्मम् गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वे ।  
 अनेन कारणेनास्य ग्रीष्मगो नाम कीर्त्यते ॥  
 एकाकी मिष्टमश्नाति शालामारुह्य नित्यशः ।  
 ब्राह्मणानां भयेनैष रोहकस्तेन चोच्यते ॥  
 पुराणं मौनमास्थाय याचितो विलिखेन्महीम् ।  
 तेन कर्मविपाकेन लेखको नामतः कृतः ॥  
 मेद्रेण लेखको याति रोहकः पर्वताननः ।  
 ग्रीष्मगः पङ्क्त्यां प्राप्तः सूचकः सूचिवक्रताम् ॥  
 उषितः कम्बलधीवः पश्य रूपविपर्ययम् ।  
 सर्व्वं च विहताकारा लम्बोष्ठाक्षोन्नतोदराः ॥  
 वृष्टदृषणदन्ताश्च चक्राक्षा निन्दिता वयम् ।  
 प्रेतत्वं कर्मणा येन प्राप्त नामानि च द्विज ।  
 एतत्ते सर्व्वमाख्यातं प्रेतत्वनामकारणम् ।  
 यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छ मां यद्यदिच्छसि ॥

ब्राह्मण उवाच,—

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्व्वे चाक्षारमृत्तकाः ।  
 युष्माकमपि चाक्षारं श्रोतुमिच्छामि तत्ततः ॥

प्रेता ऊचुः,—

षट्पणु चाक्षारमस्माकं सर्व्वमलविगर्हितम् ।  
 यच्छ्रुत्वा निन्दसे ब्रह्मन् भूयो भूयश्च कुम्भितम् ।  
 क्षेमन्त्रपरीक्षेण योषितास्तु मन्त्रेण च ।  
 उच्छिष्टेक्षैव वान्तैश्च प्रेतानां भोजनं भवेत् ॥

गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रकीर्णोच्छिष्टकानि च ।  
 मलिनानि सशोकानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 स्त्रीषु जग्धानि गीर्णानि वान्तान्युच्छिष्टकानि च ।  
 मलिनानि सुपूतीनि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 यस्मिन् शौचं गृहे नास्ति न सत्यं न च संयमः ।  
 पतितैर्दस्यभिर्यागः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 वल्गिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च ।  
 स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 न लज्जा न च मर्यादा यत्र स्त्रीविजितो गृही ।  
 गुरवो न च पूज्यन्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 [ 'यत्र भेदारतिक्रोधा निद्रा शोको भयन्दमः ।  
 आलस्यं कलहो हासः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 प्रकीर्णभाण्डञ्चोच्छिष्टं मलिनं धर्मवर्जितम् ।  
 यद्गृहं नास्तिकाक्रान्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥  
 द्विधा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम् ] ।  
 निर्विषः प्रेतभावेन शृच्छामि त्वां दृढव्रत ।  
 यथा न भवति प्रेतस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥

ब्राह्मण उवाच,—

एकरात्रै स्त्रिरात्रैश्च लङ्गैश्चान्द्रायणैरपि ।  
 व्रतैश्च विविधैः पूतो न प्रेतो जायते नरः ॥

मिष्टान्नपानदाता च सततं श्रद्धयान्वितः ।  
 ज्ञातीनां भोजको नित्यं न प्रेतो जायते नरः ॥  
 गोत्राङ्घ्रणसतीर्थानां साधूनाञ्च तपस्विनाम् ।  
 सेवनैर्वन्दनैश्चापि न प्रेतो जायते नरः ॥  
 यो यजेदशमेधेन दानं दद्याच्च शक्तिः ।  
 कृत्वा न कीर्त्तयेद्भूमौ न म प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥  
 सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुपूजापरायणः ।  
 तुल्यप्रियाप्रियो दान्तो न प्रेतो जायते नरः ॥  
 देवतातिथि — गुरुपूजासु यो रतः ।  
 जितेन्द्रियो जितक्रोधो न प्रेतो जायते नरः ॥

प्रेता ऊचुः,—

श्रुता वो विविधा धर्माः प्रेतानं येन जायते ।  
 येः कृतैस्तु भवेत् प्रेतमत्वतो निगदस्व तत् ॥

ब्राह्मण उवाच,—

शूद्राग्नेनोदरस्थेन प्राणांस्त्यजति यो द्विजः ।  
 मृतो वा पतिताग्नेन म प्रेतो जायते नरः ॥  
 कृत्वाऽधर्मेण ममर्कं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।  
 जग्ध्वा मोक्षात् वृथामांमं प्रेतो वै जायते नरः ॥  
 देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं मद्यमृष्य हरेत्तु यः ।  
 कन्यां ददाति शुक्लेन म प्रेतो जायते नरः ॥

१ ग, मृगाशो ।

२ ख, पन्नके कृतैश्चादि द्रव्यवृत्तं शक्तिः ।



मातरं पितरं भार्यां भगिनीं दुहितरं तथा ।

अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेतो जायते नरः ॥

अयाज्ययाजकस्यैव याज्यानाञ्च विवर्जकः ।

रतो वै शूद्रसेवायां स प्रेतो जायते नरः ॥

न्यायापहर्ता मित्रघ्नो परपाकरतः सदा ।

विश्रम्भघाती क्रूरश्च स प्रेतो जायते नरः ॥

ब्रह्महा कृतघ्नो गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।

हर्ता हेमश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः ॥

भीष्म उवाच,—

एवं वदति विप्रेन्द्रे आकाशे दुन्दुभिस्वनः ।

अपतत् पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महीपते ॥

पञ्च दिव्यविमानानि प्रेतानामागतानि वै ।

स्वर्गं गता विमानैस्ते पुण्यं ससेव्यं तं मुनिम् ॥

तस्य विप्रस्य संभाषात् पुण्यसङ्कीर्त्तनेन च ।

तस्मात् सेवा द्विजाय्याणां तीर्थेभ्योऽपि गरीयसी ॥

य इदं कौर्त्तयेत् सम्यक् प्रेतोपाख्यानमुत्तमम् ।

शृणुयाद्वापि यो भक्त्या न स प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥

इतिहाससमुच्चये पञ्चप्रेतोपाख्यानं समाप्तम् ।

अथ सुखरात्रिः ।

भविष्योत्तरे,—

तुष्टाराग्निगते सूर्ये अमावस्यां नराधिप ।

स्वात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च ॥

शला तु पार्वणश्राद्धं दधिचौरगुड़ादिभिः ।

ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः ॥

लक्ष्मीः संपूज्यतां लोका उल्काभिश्चापि वेक्ष्यताम् ।

तुलाराशिगते इति प्रायिकप्रदर्शनमात्रम् । कदाचिद्दिवा-  
समाप्यामावस्यायां दिवाभागे तुलासञ्चारे तत्पूर्वदिने कन्यार्केऽपि  
पार्वणश्राद्धं लक्ष्मीपूजापि कर्त्तव्या पौर्णमास्यन्तगौणकार्तिक एव  
लक्ष्मीसमुत्थानात् । अतएव राजमार्त्तण्डे तत्परशुक्लपक्षे केशवो-  
त्थानमुक्तम् ।

यथा,—

अमावस्यां तुलादित्ये लक्ष्मीर्निद्रां विमुञ्चति ।

तस्मिन् शुक्ले ततो विष्णुस्तुलायामथ वृश्चिके ॥

तथा च ब्रह्मपुराणे,—

कार्तिके अमावस्यायां लक्ष्मीर्निद्रां विमुञ्चति ।

दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते वालातुराज्जनात् ॥

प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाविधि ।

दौपट्यस्तथा कार्याः शक्त्वा देवगृहेषु च ॥

रथ्यापणश्रमशानेषु नदौपर्व्यतसानुषु ।

वृचमूलेषु गोष्ठेषु चतुरेषु गृहेषु च ॥

कूटागारेषु चैत्येषु सभारासेषु चैव हि ।

ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ विभोज्य च बुभुचितान् ॥

अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्तोपशोभिना ।

कूटागारो लाङ्गलादिस्थापनगृहम् ।

भविष्योत्तरे आद्धात्पर लक्ष्मीपूजनमुक्तं सम्पूर्णाभावस्याभि-  
प्रायेणैव । यदा तु आद्धदिने प्रदोषेऽभावस्या न लभ्यते तदा तत्-  
पूर्वदिने प्रदोषेऽभावस्याया लक्ष्मीपूजा ।

अतएव ज्योतिःशास्त्रम्,—

अभावस्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी ।

पूजनौया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका ॥

वालातुरातिरिक्तानां सर्वेषां दिवाभोजननिषेधोऽपि लक्ष्मी-  
पूजादिन एव तदधिकृत्याभिधानात् । उभयदिने प्रदोषेऽभावस्या-  
लाभे युग्मादरात्परदिन एव ।

तथाच ज्योतिषे,—

दण्डैकं रजनौयोगो दर्शस्य स्यात् परेऽहनि ।

तदा विहाय पूर्वद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥

दिनद्वये प्रदोषे दर्शालाभे तु पूर्वदिन एव रात्रिसम्बन्धादिति,  
भविष्ये,—

सुखरात्र्यां प्रदोषे हि कुवेर पूजयन्ति हि ।

तथा,—

एव गते निग्रीथे तु नारीभिः खगटहाङ्गनात् ।

अलक्ष्मीश्च वह्निः कार्य्या समन्तञ्च यथाविधि ॥

निग्रीथे अर्द्धरात्रे गते शेषरात्रावित्यर्थः । मन्त्रस्तु प्रयोगे वक्ष्यते ।

तथा भविष्ये,—

सुखरात्रेरुषःकाले प्रदीपोज्ज्वलितालये ।

बन्धुर्वन्धूनबन्धूंश्च वाचा कुशलयाञ्चयेत् ॥

प्रदीपवन्दनं कार्यं लक्ष्मीमङ्गलहेतवे ।

गोरोचनाचतश्चैव दद्यादङ्गेषु यत्नतः ॥

बन्धून् पुत्रभ्रात्रादीन् अबन्धून् भृत्यादीनित्यर्थः । उल्कादीपनं तु आङ्गानन्तरमेव प्रदोषे प्रतिपद्यपि कार्यं न तु लक्ष्मीपूजासाहित्येन, उल्कादीपनस्य हि मन्त्रलिङ्गात् पितृविसर्जनमेव प्रयोजनं तच्च आङ्गानन्तरमेवोचितं । किञ्च वक्ष्यमाणवचने आङ्गानन्तर्यापादानात् ।

न च लक्ष्मीपूजावदानन्तर्यबाधे वचनान्तरमस्ति न च दर्शविधानान्नान्यचेति वाच्यम्, दर्शस्य प्राशस्त्यात्, अन्यथा दिनद्वये प्रदोषे दर्शलाभे लोप एवोल्कादानस्य स्यात् ।

अतएव ज्योतिषे,—

पिण्डनिर्वपणं कृत्वा पितृणामात्मवाचरः ।

प्रदोषसमये कुर्यादुल्कादीपनमुज्ज्वलम् ॥

भूताहे ये प्रकुर्वन्ति उल्काग्रहमचेतसः ।

निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥

आत्मवान् यत्नवानित्यर्थः, भूताहे भूतोपलक्षितदिने आङ्गमकृत्वा प्रदोषे दर्शलाभात् ये कुर्वन्तीत्यर्थः । अतएव आङ्गात्पूर्वं विसर्जनात् निराशत्वाभिधानं सङ्गच्छते ।

यन्तु,— तुलासंख्ये सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ।

उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम् ॥

इति वचनन्तच्छ्रवणानां चतुर्दश्यामुल्कादानविधायकम् ।  
ग्रस्ताश्रवणानाञ्च भूतानां भूतदर्शयोः, इति मन्त्रलिङ्गात् ।

यच्च आद्धमभिधाय,—

ततोऽपराहसमये घोषयेन्नगरे नृपः ।

लक्ष्मीः समूज्यता लोका उल्काभिश्चापि वेद्यताम् ॥

इति भविष्योत्तरपुराणवचनं तदुल्काप्रायप्रदीपैरुल्काभिर्वा लक्ष्मीवेष्टनाभिप्रायं न तु पितृविसर्ज्जनार्थं तदिति । वेद्यतामिति पाठे उल्काभिः पितृविसर्ज्जनार्थं चेष्टा क्रियतामित्यर्थः तदाप्युल्कादानस्य आद्धानन्तर्यं सिद्धं लक्ष्मीपूजायान्तु आद्धानन्तर्यं प्रायिकं प्रागुक्तवचनविरोधादिति प्रागुक्तम् ।

तदयं सचेपः ।

आद्धदिने आद्धं कृत्वा प्रदोषे उल्काभिः पितृविसर्जनं, लक्ष्मीपूजा तु यस्मिन् दिने प्रदोषेऽभावस्था तत्रैव, दिनद्वये प्रदोषे तस्मात् युग्मादरात् परदिन एव, अलाभे तु पूर्वदिन एव रात्रिसम्बन्धादिति ।

अथोल्काविधिः ।

प्रदोषसमये उल्कात्रयमानीय संप्रोक्ष्य प्रज्वाल्य उल्कां गृही-  
यात् । तत्र मन्त्रः,—

शस्त्राशस्त्रहतानाञ्च भूतानां भूतदर्शयोः ।

उज्ज्वलज्योतिषा देहं निर्दहेद्भ्योमवक्त्रिणा ॥

अथोल्कादानमन्त्रौ ।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।

उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥

यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ।

उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो ब्रजन्तु ते ॥

महालये अश्वयुक्कृष्णपक्षे इत्यर्थः । अमावस्यायां दीपानभितः  
प्रज्वाल्य लक्ष्मीं पूजयेत् ।

प्रथममुदङ्मुख आसने उपविश्य स्वस्ति वाच्यं सङ्कल्पं कुर्यात्  
ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा वज्रधनधान्यसम्पत्तिकामः  
प्रदोषसमये लक्ष्मीमहं पूजयिष्ये । ततो भूतशुद्धिं प्राणायामं  
मातृकान्यासं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय विघ्नवारणाय ॐ गणा-  
नान्वेति मन्त्रेण घटे गणेशमावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

ततो दक्षच्छर्पिर्मस्तके विराट्कन्दो मुखे श्रीर्देवता हृदि विन्यस्य  
कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

ॐ देव्यै नमोऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ पद्मिन्यै नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ॐ विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्यां वषट् ।

ॐ वरदायै नमोऽनामिकाभ्यां जं ।

ॐ कमलरूपायै नमः कनिष्ठाभ्यां फट् ।

ॐ देव्यै नमो हृदयाय नमः ।

ॐ पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा ।

ॐ विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट् ।

ॐ वरदायै नमः कवचाय जं ।

ॐ कमलरूपायै नमोऽस्ताय फट् ।

इति तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा पीठन्यासं विधाय हृत्पद्म-  
मध्ये देवीं ध्यायेत् ।

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्विभ्रती

दानं पद्मयुगाभये च वपुषा मौदामिनीमन्त्रिभा ।

मुक्तादामविराजमानपृथुस्रोतुङ्गस्तनोद्भासिनी

पायान्नः कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ॥

इति ध्यात्वा मनसा सम्पूज्य पूर्वोक्तविधिनार्धं पाद्यमाचमनीयञ्च

सस्याप्य चन्दनाङ्किताष्टदलपद्मे गालगामे घटे वा पूजयेत् ।

अथ पौठपूजा ।

मध्ये,— आधारशक्तये नमः, कूर्मार्थ, अनन्ताय, पृथिव्यै, सुमे-  
रवे, क्षीरसागराय, श्वेतद्वीपाय, कल्पवृक्षाय ।

आग्नेयादिकोणेषु,—

धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय ।

चतुर्दिक्षु,—

अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अशैश्वर्याय ॥

मध्ये,—

शेषाय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय, उ सोममण्डलाय, मं वज्रि-  
मण्डलाय, सं सत्ताय, र रजसे, त तमसे, आं आत्मने, अं अन्त-  
रात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

अष्टदिक्षु,—

विभूत्यै, उन्नत्यै, शान्त्यै,<sup>१</sup> पुष्ट्यै, कीर्त्यै, सन्नत्यै, व्युष्ट्यै, उत्कृष्ट्यै ।

मध्ये,— ऋष्यै नमः ।

ह्रीं पद्मासनाय नमः, इति पुष्पासन दद्यात् । ततः पुनर्ध्यात्वा

१ ख, ग, शान्त्यै इत्यत्र कान्त्यै । तथा ग पुस्तके, पुष्ट्यै, व्युष्ट्यै पदद्वयं  
नास्ति ।





विराट् छन्दो मुखे, श्रीर्देवता हृदि, धनधान्यादिसम्पत्तिमिद्वये  
लक्ष्मीमन्त्रजपे विनियोगः ।]

यथाशक्तिदशाक्षरलक्ष्मीमन्त्रं जपित्वा उज्ज्वलदीपहस्तो लक्ष्मीं  
प्रदक्षिणौकृत्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ॐ नमस्ते सर्वदेवानां वरदाऽमि हरिप्रिये ।

या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां मा मे भूयात्त्वदर्शनात् ॥

ततः कृताञ्जलिं पठेत् ।

ॐ विश्वरूपस्य भार्यामि पद्मे पद्मालये शुभे ।

महानक्षिं नमस्तुभ्य सुखरात्रि कुरुष्व मे ॥

या रात्रिः सर्वभूतानां या च देवैरभिष्टुता ।

सर्वस्वरप्रिया या च मा ममान्तु समङ्गला ॥

ततः प्रणमेत् ।

माता त्वं सर्वभूतानां देवानां सृष्टिममृवा ।

आख्याता भूतले देवि सुखरात्रि नमोऽस्तु ते ॥

ततः कुवेरमावाह्य पाद्यादिभिरुपचारैः सम्यूज्य पुष्पाञ्जलिं  
दद्यात् ।

धनदाय नमस्तुभ्यं निधीनामधिपाय च ।

भवन्तु त्वत्प्रसादेन धनधान्यादिसम्पदः ॥

ततो दक्षिणं दत्त्वाऽच्छिद्रं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा  
सुवेशो बान्धवैः सह भुञ्जीत । ततः प्रत्यूषे सर्वतः प्रदीपान्  
प्रज्वाल्य कृष्णामलक्ष्मीप्रतिष्ठति सम्यूज्य गृहादह्निः कुर्वीत ।

तन्मन्त्रमाह,—

वर्षक्रियाकौमुदी ।

दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः ॥

सर्वा भगिन्यः सम्पूज्यास्तदभावे प्रपन्नकाः ।

यमञ्च यमुनाञ्चैव चित्रगुप्तञ्च पूजयेत् ।

अर्घ्यञ्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः ॥

प्रपन्नका भागिनेयाः सहजद्वयैर्भ्रातृभिर्भगिनीभिश्चेत्यर्थः ।

अत्र विधिः,—

प्रातर्भगिनी भ्रातरं निमन्त्र्य मध्याह्ने सुगन्धितैलोद्वर्तनादिना स्नापयित्वा तेन सह यमं यमुनाञ्च अर्घ्यादिभिः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ॐ धर्मराज नमस्तेऽस्तु नमस्ते यमुनायज ।

पाहि मां किङ्करैः सार्द्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते ॥

ॐ यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते ।

वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते ॥

इति सम्पूज्य भ्रातुरन्नं दद्यात् तत्र मन्त्रः,—

भ्रातस्त्वानुजाताहं भुङ्क्षु भक्तमिदं शुभम् ।

प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥

ज्येष्ठा तु,— भ्रातस्त्वयागजाताहमिति पठेत् ।

ततो भुक्तवन्त भ्रातरं गन्धादिभिरलङ्कृत्य स्वयमपि भुञ्जीत ।

तद्दिने पुनर्भोजनं न कार्यम् ।

अतःपरं शुक्लाष्टमी गोष्ठाष्टमी ।

अविध्यै,—

गोष्ठाष्टम्यां गवां पूजां गोघ्रास गोप्रदक्षिणम् ।

गवानुगमनं कुर्यात् मर्त्यपापैर्विमोचनम् ॥  
तथा कामलपक्षस्य युगाद्या नवमी स्मृता ।  
पूर्वाङ्गममये कार्या पिण्डनिर्वापणादृते ॥

तथा,—

कार्तिकामनपक्षस्य नवम्यां भृतिमिद्वये ।  
प्रबुद्धान्तु जगद्धार्त्री पूजयेद्दोषमालया ॥  
जगद्धार्त्री दुर्गाम् ॥

अथ वक्त्रपञ्चकम् ।

ब्रह्मपुराणे,—

एकादश्यादिषु तथा तासु पञ्चसु रात्रिषु ।  
दिने दिने च स्नातव्यं ग्रीतलासु नदीषु च ॥  
वर्जितव्या तथा हिमा मांसभक्षणमेव च ।

पठन्ति च,—

एकादशीं समारभ्य यावत् पञ्चदशी भवेत् ।  
वकोऽपि तत्र नाग्नीयान्नीन मांसञ्च किं नरः ॥

श्रीहरेस्त्यानम् ।

एकादश्यामुपोष्य द्वादश्यां प्रातःस्नात्वा हरिं पूर्वोक्तविधिना-  
भर्च्य दिवा बोधयेत् । रेवत्यन्तपादयोगे तु फलातिशयः न त्रेका-  
दश्यां रात्रौ रेवत्यन्तपादयोगादिति प्रागेव हरिशयने विवृत-  
मस्ति ।

भविष्यपुराणेऽपि,—

निशि स्नापो दिवोत्थान सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादशमेव कारयेत् ॥  
तथा मन्त्रलिङ्गादपि यथा वाराहे,—

कौमुदस्य तु मासस्य या सिता द्वादशी भवेत् ।  
अर्चयेद्यस्तु मां तत्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
यावत्लोका हि वर्तन्ते यावत्तत्रैव माधवि ।  
मङ्गक्तो जायते तावदन्यभक्तो न जायते ॥  
कृत्वा वै मम कर्माणि द्वादशां मत्परो नरः ।  
ममैव बोधनार्थाय इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिष्टूयमानो

भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।

प्राप्ता तवेय किल कौमुदाख्या

जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥

सेधा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः

शारद्यपुष्पाणि मनोरमाणि ।

अहं ददानौति च धर्महेतो-

जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।

तथा चोत्तिष्ठमानेन चोत्थितं भुवनत्रयम् ॥

एवं कर्माणि कुर्वन्ति द्वादशां ये यशस्विनि ।

मम भक्ता नरश्रेष्ठास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥

योऽर्चयेत् स मङ्गक्त एव स्यादित्यर्थः । माधवीति पृथिवीसम्बो-

धनं मम कर्माणि पूजादीनि कृतेत्यर्थः ।

## अथ कार्तिकी ।

वाराहे,—

न गृहे कार्तिकं कुर्याद्विशेषेण तु कार्तिकीम् ।  
तौर्थे तु कार्तिकीं कुर्यात् सर्वयत्नेन भाविनि ॥

ब्रह्मपुराणे,—

कार्तिके पौर्णमास्यान्तु सोपवासोऽर्चयेद्भरिम् ।  
अग्निष्टोमफलं विन्देत् सूर्यलोकञ्च गच्छति ॥  
पौर्णमास्यान्तु सम्पूज्यो भक्त्या दामोदरः सदा ।  
तस्मिन्नहनि यत्नेन कर्त्तव्यं नक्तभोजनम् ॥  
आग्नेयन्तु यदा ऋचं कार्तिक्यां भवति क्वचित् ।  
महती सा तिथिः प्रोक्ता स्नानदानेषु चोत्तमा ॥  
यदा याम्य हि भवति ऋचं तस्यां तिथौ क्वचित् ।  
तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्त्तिता ॥  
प्राजापत्यं यदा ऋचं तिथौ तस्यां नराधिप ।  
सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥  
आग्नेयं कृत्तिका, याम्यं भरणी, प्राजापत्यं रोहिणी ।  
पुण्या महाकार्तिकी स्याज्जीवेन्द्रोः कृत्तिकास्थयोः ॥

यम',—

कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

मत्स्यपुराणे,—

कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।  
शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं स्मृतम् ॥

वर्धक्रियाकौमुदी

अथ मार्गशीर्षकृत्यम् ।

मार्गशीर्षन्तु यो मासमेकभक्तेन वै चिपेत् ।  
भोजयेत द्विजान् भक्त्या स मुच्येताथ किल्बिषैः ॥

विष्णुधर्मे,—

लवणं मार्गशीर्षं तु दत्त्वा सौभाग्यमाप्नुयात् ।

भविष्ये,—

रोहिणी प्रतिपद्युक्ता मार्गे मासि सितेतरा ।  
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ।

द्वयञ्च कार्त्तिक्यनन्तरिता कृष्णप्रतिपत् तत्रैव रोहिणी-  
सम्भवात् । तत्परद्वितीयायामनध्यायः ।

राजमार्तण्डे,—

या काचित् प्रतिपदिद्धा प्रेतपक्षे च या गते ।  
या च कोजागरे याते चैत्रावल्याः परे च या ॥

चातुर्मास्यसमाप्तौ च द्वितीया या भवेत्तथा ।  
सर्वास्वेतास्वनध्यायः पुराणैः परिकीर्तितः ॥

प्रेतपक्षोऽप्ययुक्कृष्णपक्षः चैत्रावलिः चैत्रशुक्लत्रयोदशी तत्परतो  
या द्वितीयेत्यर्थः । अत्र शुक्लद्वितीयायां रभाद्वितीयाव्रतं संवत्सरमाध्यं  
प्रतिमासं बह्वप्रक्रियमित्युपेक्षितम् ।

भविष्ये,—

येयं मार्गशिरे मासि षष्ठी भरतघत्तम ।

मुण्या पापहरा धन्या शिवा शान्ता शुद्धप्रिया ॥

ज्ञानदानादिकं कर्म तस्यामचयमुच्यते ।

षष्ठीयं शुक्ता प्रकरणात् ॥

तथा तत्रैव,—

अदितेः कश्यपाज्जज्ञे मित्रो नाम दिवाकरः ।

मार्गशीर्षस्य मासस्य शुक्लपक्षे शुभे तिथौ ॥

सप्तम्यां तेन सा ख्याता लोकेऽस्मिन् मित्रसप्तमी ।

तत्रोपवासः कर्त्तव्यो भक्ष्याण्यथ फलानि वा ॥

तथा,—

मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतः शुचिः ।

कृतोपवासो गोविन्दमभ्यर्च्येन्द्रपुरे वसेत् ॥

तथा,—

वृश्चिके शुक्लपक्षस्य या पाषाणचतुर्दशी ।

तस्यामाराधयेद्गौरौ नक्तं पाषाणभोजनैः ॥

पाषाणाकारपिष्टकभोजनैरित्यर्थः ।

तथा,—

वृश्चिकस्ये सहस्रांशौ पिष्टकैर्विविधैर्गृही ।

पौर्णमास्यां प्रदोषे तु शालिचेचं समर्चयेत् ॥

शालिचेचे लक्ष्मीमर्चयेदित्यर्थः ॥

अथ नवान्नश्राद्धम् ।

ज्योतिषे वराहसंहितायाम्,—

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ।

वर्षक्रियाकौमुदी ।

अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् ॥

यत्कृतं धनुषि आर्द्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।

पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः ॥

वृश्चिक इत्यनेन सौरकृत्यमिदं, शस्यत इत्यनेन वृश्चिकस्य मुख्य-  
कालता दर्शिता नवान्नं नवान्नश्राद्धमित्यर्थः, अपरे कृष्णपक्षे ।

अत्र केचित् शुक्लपक्षात्काले कृष्णपक्षमीपर्यन्तमपि कर्त्तव्यं  
पूर्णचन्द्रादित्याहुः ।

मुख्यकालालाभे कालान्तरविधौ धनुषोऽपि प्रसक्तौ निषेध-  
माह यत्कृतमिति । मृगनेत्रास्त्विति मृगो मृगश्रीर्षानक्षत्रं नेता  
नायको यासां रात्रीणां राजादित्वादित्ययः, मृगनक्षत्रं सायंसन्ध्या-  
यासुदयनात् प्रातरस्तगमनाच्च यासां रात्रीणां समापकमित्यर्थः ।  
तासु वृश्चिकस्य सप्तादत्रयोविंशदिनादूर्द्ध्वं भवन्ति ।

यथा ज्योतिषे,—

दिनत्रयाधिके विंशे रात्रेर्मार्गस्य वै गते ।

मृगनेत्रा रात्रयः स्युर्नवान्नं तत्र वर्जयेत् ॥

तथा,— मृगनेत्रा भवेच्छेषैः पादोनैः सप्तभिर्दिनैः ।

अत्र रात्रिपदं रात्र्युपलक्षितदिवापरं रात्रौ आर्द्धनिषेधात् ।  
शरद्युक्तब्रीहिपाकश्राद्धेन तु ब्रीहिपाके नवान्नागमनिमित्तं आर्द्ध-  
महं करिष्ये इति संकल्प्य तन्त्रेणैकमेव आर्द्धं कार्यमिति ।

अत्राधुनिकाः,—

हैमन्तिकधान्यापाके नवान्नागमनिमित्तं पृथक् आर्द्धं नास्ति -  
किन्तु ब्रीहिपाकनिमित्तकस्यैव आर्द्धस्य ब्रीह्यल्लाभादिना स्वकाले-



करणे श्रानुकल्पिको वृश्चिकः कालो धान्यान्तरेणानुष्ठीयमानत्वञ्च विधीयते । अन्यथा मूलभूतश्रुतिद्वयकल्पनागौरवं स्यादित्याहुः ।

तन्मन्दम् । वृश्चिके नवान्नं शस्यते इति विरोधात् श्रानुकल्पितस्य<sup>१</sup> प्रशस्ततासम्भवात् । वराहसंहितायाम्,— ब्रीहिपाकनिमित्तक-  
आहुस्थानुक्तत्वेन तदनुकल्पिककालकल्पनाया अन्याय्यत्वाच्च ब्रीहि-  
आहुमनूद्य कालद्रव्योभयविधौ वाक्यभेदापत्तेश्च ।

किञ्च,—

अष्टकासु च कर्त्तव्यं आहुं हैमन्तिकीषु च ।

अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते ॥

ग्रहणे च व्यतीपाते शालिधान्यसमागमे ।

जन्मर्क्षग्रहपीडायां आहुं पार्वणमुच्यते ॥

इति ब्रह्मपुराणे शालिपदवाच्यस्य हैमन्तिकधान्यस्य समागम-  
निमित्तं स्वातन्त्र्येण आहुं विहितमिति ॥

आहुचिन्तामणावपि,—

अकृताग्रहणञ्चैव धान्यजातं नरेश्वर ।

राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥

इति विष्णुपुराणे अकृताग्रहणं अकृतप्रथमागमआहुं धान्यजातं  
शरत्पक्वहैमन्तिकादिधान्यसमूहं वर्जयेदित्यभिधानात् । अन्यथा  
जातपदवैयर्थ्यात्, हैमन्तिकसंस्कारार्थमपि पृथगेव आहुमावश्यक-  
मित्युक्तम् ।

तथा आद्धविवेकेऽपि,—

गवाक्षागमनिमित्तमपि नित्यमिति वक्ष्यते इत्यनेन पृथक्-  
आद्धमित्युक्तम् ।

तस्मात् सर्वश्रिष्टैरङ्गीकृतं सर्वदेशेषु पारम्पर्यक्रममागतभाचारमुन्मूल-  
यितुमिच्छतामाधुनिकानां वचसि नादरः कार्यः ॥

इदञ्च नन्दादौ न कार्यं तथा ज्योतिषे,—

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनार्द्धने ।

न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन ॥

तथा संवत्सरप्रदीपे,—

कृष्णपक्षे श्वश्रुदिने विशाखास्ये विवस्वति ।

ततो विंशतिशतकाच्चोद्ध्वं नवान्नं परिवर्जयेत् ॥

विशाखस्थश्चादित्यः सपाददिनत्रयं यावत् ।

तथा,—

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।

अत्र आद्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनचयात् ॥

त्रिजन्मनि तिसृषु जन्मतारास्वित्यर्थः ।

शुद्धिदीपिकायाम्,—

भेषूग्राहिशिवान्धेषु विभौमशनिवासरे ।

अन्नप्राशनवत् कुर्यात् नवान्नफलभक्षणम् ॥

पूर्वात्रयं मघा भरणी चोग्रगणः, अक्षिरश्लेषा शिव आर्द्रां

एतदन्येषु नक्षत्रेषु, मङ्गलग्ननिवर्जितेषु वारेऽस्वित्यर्थः ।

तथा,— भरण्यश्लेषकार्द्रासु मघापूर्वात्रयेषु च ।

मृगभौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवौदनम् ।

आद्धचिन्तामणौ तु,—

पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः ।

भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठते ॥

इति नामशून्यवचनाच्चैत्रमासो निषिद्ध इत्युक्तम् ।

एतच्च आद्धमावश्यकम्,—

नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा ।

पितरः स्यूहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥

तस्माद्दद्यात् सदायुक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च ।

इति शातातपवचने सदायुक्त इत्यभिधानात् ।

अत्र,—

नवान्नान्नभने देवौ कालकामौ सदैव हि ।

इति ब्रह्मपुराणादिवचनात् कालकामावत्र विश्वेदेवा इति

आद्धकौमुद्यां विवृतमस्ति ।

नवान्नप्राशनन्तु सदधि कार्यम् ।

यथा ब्रह्मपुराणे,—

प्राञ्जीयाद्दधिसयुक्तं नवं मन्त्राभिमन्त्रितम् ।

क्षताहारस्तु कुर्वीत गीतवाद्यैर्महोत्सवम् ॥

अथ पौषक्षत्यम् ।

पौषे भासि तु यो दद्यात् दत्तं विप्राय पार्थिव ।

समभ्यर्च्याच्युतं सोऽपि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

• तथा,—

पौषे कनकदानेन परां तुष्टिमवाप्नुयात् ।

पुष्पाणां सितपद्मे तु दानं लक्ष्मीकरं स्मृतम् ॥

विष्णुधर्म,—

आग्रहायणामतीतायां कृष्णास्तिस्रोऽष्टकास्तथा ।

आसु आर्द्धं द्विजः कुर्यात् सर्वस्वेनापि नित्यशः ॥

आग्रहायणाः परं कृष्णाष्टमौत्रयं पौषमाघफाल्गुनीत्रयं तत्र  
क्रमेण पूषमांसशाकैः आर्द्धं कुर्यात् ।

यथा कात्यायनः,—

आग्रहायणा ऊर्द्धं तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टकास्तासु क्रमेण पूष-  
मांसशाकैश्चिकीर्षेत् । अष्टका अष्टम्यस्ततः परं तिस्रोऽन्वष्टका नवम्य  
द्वत्यर्थः । अष्टका अनु पश्चाद्या तिथिर्नवमीत्यर्थः तिथिप्रकरणात्  
अतएव तिस्र इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः । अन्यथा परदिनमात्रपरत्वे-  
ऽन्वष्टकमिति स्यात् ।

तथाच विष्णुः,—

अन्वष्टका अष्टकावदा<sup>१</sup> मात्रे पितामह्यै देवपूर्व्वान् ब्राह्मणान्  
भोजयेदिति ।

तथा वायुपुराणे,—

अन्वष्टका पितृणान् नित्यमेव विधीयते ।

यन्तु श्वोऽन्वष्टक्यमिति गोतमवचनम् । तत्र प्रायेण परदिने  
नवमीसम्बन्धात् श्व इति मन्तव्यम् । अतएव गोभिले “श्वोऽन्वष्टक्य-

प्रश्नो वा इत्युक्तं” कदाचिदपराह्णे विहितस्याष्टकाश्राद्धस्य तृतीय-  
दिने पूर्वाह्णे विहितकाले नवमीलाभादिति संक्षेपः । विस्तारस्तु  
श्राद्धकौमुद्यां द्रष्टव्यः ।

राजमार्त्तण्डे,—

पौषादिषु च मासेषु कृष्णे चैवाष्टकात्रयम् ।

एकाश्विने समुद्दिष्टा सप्तम्यादितिचित्रये ॥

नाधीयीताच शास्त्राणि वर्जयेद्भूतवन्धनम् ।

भविष्योत्तरे,—

पौषे मासि यदा देवि शृङ्गाष्टम्यां बुधो भवेत् ।

तदा सा तु महापुण्या महाभावेति कीर्तिता ॥

तस्यां ह्यन जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् ।

मन्त्रीतथे कृतं देवि शतसाहस्रिक भवेत् ॥

बुधो बुधवारः ।

तथा,— पौषे तु पुष्यानक्षत्रे पिष्टकैर्विविधैः पितृन् ।

अर्चयेत्तु तथा देवान् द्विजानात्मानमेव च ॥

तथा तत्रैव,—

गौरसर्षपकल्केन समभ्यर्च्य स्वकां तनुम् ।

कृतस्नानैः ततः कार्यमलक्ष्मीनाशन परम् ॥

ततो नारायणः शक्रश्चन्द्रः शुकृदहस्यती ।

सम्पूज्याः पुष्पधूपार्घ्यैर्नैवेद्यैश्च पृथक् पृथक् ॥

विष्णुः,—

पौषी चेत् पुष्यायुक्ता तस्यां गौरसर्षपकल्केनोत्सादितशरीरो

गव्यघृतादिभिः पूर्णकुम्भेनाभिषिक्तः सर्वौषधिभिः सर्वगन्धैः सर्व-  
बीजैर्भगवन्तं वासुदेवं स्तपयित्वा पुष्यगन्धधूपदीपनैवेद्यादिभिरभ्यर्च्य  
वैष्णवसूक्तैर्वार्हस्पत्यमन्त्रैश्च पावकं ऊला सुवर्णेन ब्राह्मणं स्वस्ति  
वाचयेत् अनेन कर्मणा मुच्यते ॥ उत्साद उदत्तनं । मुच्यते पापेभ्य  
इति शेषः ।

तथा स्कान्दे,—

पौष्ट्यां पुष्यर्चयुक्तायामभिषिच्य जनार्दनम् ।  
अभ्यर्च्य च नरो भक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अथ माघश्राद्धम् ।

अत्रोत्तरायणसंक्रान्तावारभ्य वर्षैकं प्रतिसंक्रान्तौ दक्षिसंक्रान्ति-  
व्रतं कर्त्तव्यम् । तद्विधिश्च प्रानेव संक्रान्तिप्रकरणे लिखितोऽस्ति ।

भविष्ये,—

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विशेषतः ।

हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥

प्रातःस्नानकालस्तु अरुणोदयकालात् प्रभृति सम्यक्सूर्यादय-

कालपर्यन्तम् ।

उषस्युषसि यत्स्नानं मन्ध्यायामुदिते रवौ ।

प्राजापत्येन तुल्यं स्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

विष्णुः,—

प्रातःस्नाय्यरुणकिरणयस्तां प्राचीमवलोक्य स्नायात् ।

भविष्ये,—

माघे मासि रटन्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।

ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कम्पतन्त पुनौमहे ॥

क जलम् ।

पद्मपुराणे,—

मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथामले ।

गोष्पदेऽपि जले स्नानं स्वर्गद पापिनामपि ॥

मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ ।

कथ पापात् प्रमुच्येत कथ स चिदिवं व्रजेत् ॥

एषु वचनेषु राशुस्तेखेन विधानात् सौरकृत्यमिदं न तु चान्द्रकृत्य, वैशाखप्रातःस्नानवत् एकवचनोपात्तत्वात् । अन्यथा पद्म-  
पुराणे माघपदस्य मुख्यत्वानुरोधाच्चान्द्रपरत्वे मकरस्थे रवाविति  
प्रमत्तगौत स्यात् ।

न च मकरसम्बन्धे फलातिशय इति वाच्यं, वाक्यभेदात्  
श्रुत्यन्तरकल्पनाच्च अन्यथोपपत्तेश्च ।

अस्मन्मते तु मकरविशेषणम् माघपदस्य सौरपरत्वपरिचायकं  
माघपदन्तु सङ्कल्पवाक्ये तदुल्लेखार्थम् ।

एवञ्च,—

यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभिताघे

स्नान समाचरति चारुनदीप्रवाहे ।

उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंशान्

स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ॥

इत्यादिवचने यन्माघपदं तदपि सौरकृत्य मन्तव्यं । मन्त्रलिङ्गे-  
नापि सौरमाघ एव स्नानम् ।

यथा पद्मपुराणे,—

माघमाममिमं पुण्यं स्नाम्यहं देव माधव ।  
 तीर्थस्थास्य जले नित्यं प्रसीद भगवन् हरे ॥  
 मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ।  
 स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥  
 द्रुमं मन्त्र समुच्चार्य स्नायान्मौनं समाश्रितः ।  
 वासुदेवं हरिं कृष्णं माधवञ्च स्मरेत्ततः ॥

मन्त्रद्वयं पठित्वा वासुदेवादिनामचतुष्टयं कीर्त्तयेदित्यर्थः ।

ततः सूर्याभिमुखः पठेत्,—

दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।

परिपूर्णं कुरुध्वेदं माघस्नानं महाव्रतम् ॥

यत्तु पौर्णमास्याममावास्यामारभ्य स्नानमाचरेदिति भविष्यवचनं  
 समयप्रकाशे लिखितमित्याधुनिकेन चान्द्रमासे प्रमाणमुपन्यस्तं,  
 तन्नन्द न तु चान्द्रो माघः पौर्णमास्यादिरमावस्यादिर्वा तस्य  
 प्रतिपदादित्वात् । न वा समयप्रकाशे माघस्नानपरतया वचनं लिखितं  
 किञ्च माघस्नानस्य तिथिद्वयादित्वे श्रुतिद्वयकल्पनापत्तिः स्यात् ।  
 वस्तुतस्तु भविष्यपुराणवचनं नारदीयपुराणादिवचनैकवाक्यतया  
 चातुर्मास्यव्रतविषयम् ।

तथा नारदीये,—

एकादश्यां तु गृह्णीयात् संक्रान्तौ कर्कटस्य वा ।

आषाढ्यां वाथ दर्शे वा चातुर्मास्ये व्रतक्रियाम् ॥

तथा मात्स्ये.— आषाढ्यादिचतुर्मासं प्रातः स्नायी भवेन्नरः ।



महार्णवेऽपि चातुर्मास्यव्रतप्रकरणे,—

पौर्णमास्यामभावस्यामारभ्य व्रतमाचरेत् ।

चतुरो वार्षिकान् मासानथवा श्रयनं हरेः ॥

इति शेषाङ्गं लिखितं । ततः सौरमाघ एव प्रातःस्नानं सर्व-  
दिग्वाचारोऽप्ययमेव ।

गारुडे,—

तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः ।

षड्भद्रफलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे ॥

पाद्मे,—

मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ।

गोष्पदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि ॥

वचनमिदं पुष्करिण्यादिमामान्यजलविषयम् । तथा माघ  
मासि रटन्त्याप इति प्रागुक्तम् ।

तथा स्कान्दे,—

ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ।

माघस्नायी विपायी स्नात् तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥

यो माघमास्युषसीति प्रागुक्तवचनं नदीविषयम् ।

गङ्गाया माघस्नानफलमाह गारुडे,—

गङ्गाया येऽत्रावगाहन्ति माघे मासि नराधिप ।

चतुर्युगसहस्रान्ते न पतन्ति सुराक्षयात् ॥

दिने दिने सहस्रन्तु सुवर्णानां विश्राम्यते ।

तेन दत्तं हि गङ्गाया यो माघे स्नाति मानवः ॥

अनङ्गाहसहस्राणि कपिलायुतमेव च ।

तेन दत्तं हि गङ्गायां यो माघे स्वाति मानवः ॥

माघे प्रयागस्नानफलमाह मात्स्ये,—

षड्भिर्भस्तीर्थसहस्राणि षड्भिर्योगतानि च ।

माघे मामि समाशान्ति गङ्गाद्यमुनमङ्गमे ॥

गवां शतसहस्रस्य मस्यक् दत्तस्य यत्फलम् ।

प्रयागे माघमासस्य अहस्नानेन तत्फलम् ॥

संवत्सरशतं सायं निराहारस्य यत्फलम् ।

प्रयागे माघमासस्य अहस्नानेन तत्फलम् ॥

ममस्तमाघस्नाने मोक्षफलमाह पाद्मे,—

दुर्वारा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्तया ।

प्रयागे दह्यते सा तु माघे मामि च मज्जनात् ॥

तेजोमयेषु लोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकशः ।

पश्चाच्चक्रिणि लीयन्ते प्रयागे माघमज्जनात् ॥

चक्रिणि नारायणे ।

प्रत्यहस्नानफलमाह तत्रैव,—

स्वर्णभारमहस्नेन कुरुक्षेत्रे रविपते ।

यत्फलं लभते तत्तु वेष्ठा माघे दिने दिने ॥

वेष्ठी प्रयागः ॥

माघाधिकारे गारुडे,—

मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं रुक्म ।

यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत म ॥

यत्र माघस्नाने यत्फलं विहितं तस्य द्वादशांशफलमित्यर्थः ।

मास्ये,—

अनावृतशरीरस्तु यः कल्प्य स्नानमाचरेत् ।

पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥

तैलमामलकञ्चैव तीर्थे देयञ्च नित्यशः ।

कल्प्यमुषः । माघस्नानमिदं काम्यं तत्र प्रसङ्गाच्चित्यमपि गतार्थम् । न च नित्यस्नाने माघो गुण इति वाच्यं, प्रकरणभेदात् स्नातव्येण श्रवणाच्च ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ।

इति जावालवचने स्नानस्य त्रिविधत्वानुपपत्तेश्च ।

शुक्रास्तादिषु गङ्गायां माघे प्रातःस्नानं न कार्यं सर्वकाम्य-  
कर्माणां निषेधादिति केचित् । तन्मन्दम् ।

अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे ।

मल्लिङ्गुचेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेत् ॥

इति राजमार्त्तण्डे आवृत्तस्य तीर्थस्नानस्य प्रतिप्रसवात् नन्दादि-  
स्नानवत् अन्यथा गङ्गास्नानमपि निषिध्येत काम्यत्वात् । माघस्नान-  
सङ्कल्पस्तु माघप्रथमाह्ने कार्यः ।

विष्णुः,—

य इच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।

प्रातःस्नाथी भवेन्नित्यं द्वौ मासौ माघफाल्गुनौ ॥

चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् चन्द्रसूर्यग्रहस्नानफलसमानित्यर्थः । अथ च  
माघस्नानात् कर्मान्तरविधिः फलभेदात् कालभेदाच्च ॥

यमः,—

प्रातःस्नायी च सततं द्वौ मासौ माघफाल्गुनौ ।

देवान् पितॄंश्च सन्तर्प्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

भविष्ये,—

श्रीतकालेन्धनं दद्याजराणां श्रीतनाशनम् ।

भानोरुदयकाले च सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

नारसिंहे,—

श्रीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति यो नरः ।

सर्वलोकहितार्थाय स्वर्गं सोऽप्सरसां लभेत् ॥

मात्स्ये,—

माघे मास्युषसि स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ।

भोजयित्वा यथाशक्त्या मात्स्यैर्वस्त्रविभूषणैः ॥

सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ।

महाभारते,—

माघे मासि तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।

सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥

माघे कृष्णाष्टमी मांसाष्टका नवमी चान्वष्टका इति प्रागुक्तम् ।

यमः,—

माघान्धकारद्वादश्या तिलैर्जला ज्ञताशनम् ।

प्रदद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च तिलानेव समाहितः ॥

जन्मप्रमृति यत्पापं सर्वं तरति तद्विजः ।

अत्र त्रैवर्णिकोऽधिकारी द्विजपदात् होमाधिकाराच्च ।

यमः,—

माघे मास्यसिते पचे रटन्त्याख्या चतुर्दशी ।

तस्यामुदयवेलायां स्नाता नावेचते यमम् ॥

स्नाता स्नानकर्त्ता ।

तथा,—

अनर्काभ्युदिते काले कृष्णपचे चतुर्दशीम् ।

स्नातः सन्नर्णं तु यमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

वचनमिदं सकलकृष्णचतुर्दशीविषयम् ।

विष्णुः,—

माघे मास्यसिते पचे स्नाता राम चतुर्दशी ।

कामविद्धापि कर्त्तव्या शिवरात्रिविधानतः ॥

स्मृतिसमुच्चये,—

मकरावस्थिते भानौ या तु कृष्णा चतुर्दशी ।

तत्रादौ कालिका पूज्या सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

तत्रादौ जागर कृत्वा पूजयित्वा हरिप्रियाम् ।

ईप्सितान् लभते कामान् पुत्रपौत्रधनानि च ॥

हरिप्रिया लक्ष्मीः । तत्परामावास्था युगाद्येति प्रागुक्तम् ।

भविष्ये,—

माघे मासि तृतीयायां शुद्धस्य सवणस्य च ।

दानं श्रेयस्करं राजन् स्त्रीणाञ्च पुरुषस्य च ॥

तथा,— माघे शुक्लतृतीयायां कन्या सम्यग्वरार्थिनी ।

प्रातःस्नात्वाच्येद्देवीं पुष्पनैवेद्यचन्दनैः ॥

वर्षक्रियाकौमुदी ।

तथा,—

माघे मासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते ।

स्नानदानादिकं कर्म सर्वमस्यां कृतं विभो ।

भवेत् सदस्रगुणितं नात्र कार्या विचारणा ॥

इयमेव शान्तास्या चतुर्थी प्रागुक्ता ।

तथा,—

माघे शुक्लचतुर्थ्यान्तु वरमाराध्य च श्रियाः ।

पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजा कार्या समृद्धये ॥

वरो विनायकः । इदं कर्मदयं लोके वरचतुर्थी श्रीपञ्चमीति  
प्रसिद्धेः निरपेक्षश्रुतेश्च ।

यथा ब्रह्मपुराणे,—

चतुर्थी वरदा शुक्ला तस्यां गौरी संपूजिता ।

सौभाग्यमतुलं कुर्यात् पञ्चम्यां श्रीरपि श्रियम् ॥

सरस्वतीपूजा अनध्यायश्चात्र गौड़ाचारः । अत्र तिथिद्वये  
द्युग्मादरात् व्यवस्था ।

तथा स्कान्दे,—

कर्त्तव्या पञ्चमीयुक्ता चतुर्थी कामदायिनी ।

पञ्चमी च तथा कार्या चतुर्थीसहिता विभो ॥

यत्तु,— पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्यायुक्ता तु नारद ।

इति ब्रह्मवैवर्त्तवचनं तद्विज्ञश्रुतिकल्पनाभियाऽकारप्रक्षेपेण  
व्याख्येयं मदनपारिजाते तु तन्नागपञ्चमीविषयमिति तिथिविचारे  
प्रागेवोक्तम् ।

अत्र श्रीपञ्चम्यामारभ्य प्रतिमासं षड्बदसमायं श्रीपञ्चमीव्रतं  
कुर्वन्ति । पठन्ति च,—

श्रीपञ्चम्यां समारभ्य प्रतिमासं षड्बदकम् ।

पूजयेत् सितसप्तम्यां सत्त्वीं सौभाग्यसम्पदे ॥

अब्दद्वयमलवणैः हविष्येण द्वयं तथा ।

फलेनैकेन कर्त्तव्यमुपवासे प्रतिष्ठयेत् ॥

एतस्य मूलं न दृष्टमित्युपेक्षितम् ।

अथ माघसप्तमी ।

भविष्ये,—

सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी ।

अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥

अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी ।

गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहणतैः समा ॥

माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा ।

दद्यात् स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः ॥

प्रथमवचनं गङ्गेतरविषयं उत्तरवचने 'यदिकारात्, अतएव  
फलभेदः । गङ्गेतरस्थले सूर्यग्रहणस्नानजन्यफलं गङ्गायां तु शतै-  
रिति वज्रवचनाद्गङ्गतसूर्यग्रहणस्नानजन्यफलं ततश्च परवचने  
कोटिभास्करोति कोटिशब्दोऽसङ्ख्यपरः असङ्ख्यभास्करग्रहणतुल्येत्यर्थः ।  
यद्वा कोटौ अग्रे भास्करोदयो यस्यां अरुणोदयकालीना सप्तमी-  
त्यर्थः । अत्र सर्वत्र माघपदश्रवणाच्चान्द्रमासेनैव व्यवस्था पौर्णमास्य-  
न्तमासेनैव ब्रह्मपुराणादौ तिथिकृत्यस्य निर्णीतत्वात् भविष्ये एत-

दनन्तरं भीष्माष्टम्यभिधानाच्च । यत्तु माकरी हन्तु सप्तमीति मन्त्रे,  
माकरीपदं मकरारब्धचान्द्रमाससम्बन्धादिति ध्येयम् ॥

अतएव पाश्चात्यसङ्ग्रहे मत्स्यपुराणवचनम्,—

यस्मान्मन्वन्तरादौ च रथमापुर्दिवाकराः ।

माघमासस्य सप्तम्यां सा तस्माद्रथसप्तमी ॥

अरुणोदयवेलायां तस्यां ज्ञानं महाफलम् ।

मन्वन्तरादयस्तु पौर्णमास्यन्तचान्द्रेणैवेति सर्वसम्मतमिति ततश्च  
कदाचित् फाल्गुनेऽपि भवति ।

अन्ये तु,— मन्वलिङ्गाच्चान्द्रमाघे मकरस्तरवौ या सप्तमी  
स्यात् सैवारुणोदयसप्तमी न तु कुम्भार्के न वा मकरार्के चान्द्रपौष-  
सप्तमीत्याहुः ।

अत्र तिथिचयदिने अरुणोदयकाले सप्तम्यलाभे लोप एव षष्टि-  
दण्डात्मिकायान्तु दिनद्वयेऽरुणोदयप्राप्तौ पूर्वदिन एव कपालाधि-  
करणन्यायादेव न तु युग्मादरादिति तिथिविचारे प्रागेवोक्तम् ।

इदं माघस्नाने गुणफलमिति केचित् “तच्च” प्रकरणभेदाच्चिर-  
पेक्षश्रुतेश्च अन्यथा कुम्भार्केऽरुणोदयसप्तमी न स्यात् समापितमाघ-  
स्नानत्वात् अतएवानारब्धमाघस्नानेनापीदं क्रियते इति सदाचारः ।

अत्र कृतमाघमासस्नानसङ्कल्पेन तन्त्रेणैकं स्नानं कर्त्तव्यमिति  
बहवः ।

वस्तुतस्तु फलभेदान्मन्त्रभेदाच्च स्नानद्वयं पृथगेव कर्त्तव्यमिति  
प्रतीमः । अत्र स्नानसङ्कल्पानन्तरम्,—

• ॐ यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ।



तन्मे रोगञ्च शोकञ्च माकरौ हन्तु सप्तमी ॥

इति पठित्वा स्नायात् । सप्तसु जन्मसु जन्मावधि कृतं यद्यत्  
पापमित्यर्थः ।

अर्थमन्त्रस्तु,—

जननी सर्वभूताना सप्तमी सप्तसप्तिके ।

सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते रविमण्डले ॥

अर्कपञ्चसमायुक्तं वदरौफलसयुतम् ।

अरुणोदयवेलायां ददान्मर्थं प्रसीद मे ॥

अत्राचारात् सप्तभिरर्कपत्रैः सप्तवदरौफलैश्चार्घ्यदानम् । ततः  
सूर्यं प्रणमेत्,—

ॐ सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।

सप्तम्याञ्च नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे ॥

अत्रानध्यायः । नरमिहपुराणे,—

अथाक्षयतृतीयायां शिष्यं नाध्यापयेद्भुवम् ।

माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यायाञ्च विवर्जयेत् ॥

भविष्ये । आदित्य उवाच ।

माघमासे तु सप्तम्यां शुक्लायां समुपोषितः ।

यः पूजयति मां भक्त्या तस्याहं पुत्रतां व्रजे ॥

एवञ्चोभयसप्तम्यां मासि मासि सुरोत्तम ।

यस्तु मां पूजयेद्भक्त्या स्वमेकमेकमादरात् ॥

प्रयच्छामि सुतं तस्य वित्तमायुर्धनः श्रियम् ।

सप्तम्यामुपवासः पूजा चेत्यर्थः । एव सप्तम्यामुपोष्येत्यर्थः । स्वमेकः

संवत्सरः । एकं व्रतं माघसप्तमीमात्रे पुत्रमात्रफलम् । द्वितीयन्तु  
माघशुक्लसप्तम्यामारभ्य पक्षद्वयसप्तम्यां संवत्सरमेकं पुत्रवित्तादिफलम् ।

भविष्ये,—

अथापरं महाराज व्रतमारोग्यसंज्ञकम् ।  
कथयामि परं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥  
शुक्लायां माघमासस्य सप्तम्यां समुपोषितः ।  
पूजयेद्भास्करं देवं विष्णुरूपं सनातनम् ॥  
आदित्य भास्कर रवे भानो सूर्य दिवाकर ।  
प्रभाकरेति सम्पूज्यो देवः सर्वेश्वरो रविः ॥  
षष्ठ्याञ्च संयताहारः सप्तम्यामुपवासकृत् ।  
अष्टम्याञ्चैव भुञ्जीत एष एव विधिक्रमः ॥  
अनेन विधिना सर्वं वत्सरं योऽर्चयेद्भविष्यति ।  
तस्यारोग्यं धनं धान्यमिह जन्मनि जायते ॥  
परत्र च शिवं स्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तते ।  
दशाक्षरजयदुर्गामन्त्रमुद्धृत्य कालिकापुराणे,—  
रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितसप्तमी ।  
तस्याभनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम् ॥  
शुक्लाष्टम्यां पुनर्देवीं पूजयित्वा यथाविधि ।  
नवम्यां बलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ॥  
एवं कृते तु कल्याणि मुक्तो नित्यं प्रमोदते ।  
न तस्य जायते शोको न च मारी प्रजायते ।  
पुत्रपौत्रसमृद्धिः स्यात् धनधान्यसमृद्धिभिः ॥

## अथ भीष्माष्टमौ ।

भविष्योत्तरे,—

शुक्लाष्टम्यान्तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।

सवत्सरकृतं पाप तत्क्षणदेव मुञ्चति ॥

माघे मासि सिताष्टम्यां सलिलं भीष्मवर्ष्मणे ।

आद्धञ्च ये तदा कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ।

आद्धमिदं काम्यं एतच्च त्रैवर्णिकैः कर्त्तव्यम् ।

यथा,—

माघे मासि सिते पक्षे अष्टम्यां सुषमाहितः ।

भीष्माय च जलं दद्युस्तयो वर्णा द्विजातयः ॥

अतएव,—

सवर्णैर्भ्यो जलं देय नासवर्णैः कदाचन ।

इति 'योगियाज्ञवल्क्यनिषेधो भीष्मतर्पणेतरविषयः । अत्र

त्रयो वर्णा इत्यभिधानात् शूद्रस्य नाधिकारः ।

अन्ये तु,— सर्वे वर्णा द्विजातय इति पठित्वा वर्णपदवैयर्थ्य-  
भियां शूद्रेणापीदं कर्त्तव्यमिति वदन्ति । तन्न द्विजातय इत्यस्य  
वैयर्थ्यात् वर्णा इति तु असवर्णनिषेधपर्युदाससूचनार्थम् ।

मन्त्रस्तु,—

भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

आभिरङ्गिरवाप्तोऽतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥

वैयाघ्रपद्यगोत्राय साङ्गृतिप्रवराय च ।

अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्ष्मणे ॥

भविष्ये,—

माघे मासि तु या शुक्ला नवमी लोकपूजिता ।  
महानन्देति सा प्रोक्ता महानन्दकरौ नृणाम् ॥  
स्नानं दानं जपो होमो देवार्चनमुपोषणम् ।  
सर्व्वं तदक्षयं प्रोक्तं यदस्यां क्रियते नरैः ॥

अथ भैमी ।

गरुडपुराणे,—

माघमासे शुक्लपक्षे मृगर्क्षेण युता पुरा ।  
एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥  
मृगर्क्षे मृगशिरानक्षत्रम् ।

अत्रोपवासं कृत्वा तु पिष्टणामनृणो भवेत् ।  
भीमद्वादशीति ख्याता प्राणिनां पुण्यवर्द्धनी ॥  
विनिहन्ति तथा पापं कुनृपो विषयं यथा ।  
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः ॥  
युगपदुपजातानि न निहन्ति त्रिपुष्करम् ।  
यथेयं पापनाशाय प्रोक्ता चैकादशी शुभा ॥  
कालिन्दी यमुना गङ्गा नदी रेवा सरस्वती ।  
न चैव सर्व्वतीर्थानि एकादशाः समानि च ॥  
न दानं न तपो होमो न चान्यत् सुकृतं क्वचित् ।  
एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः ।  
ततोऽप्येका महापुण्या द्वयमेकादशी वरा ॥

तथा,— अस्यां वराहवपुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम् ।  
घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वा ताम्रभाजने ॥  
सर्वबीजभृते विप्राः सितवस्त्रावगुण्ठिते ।  
विधिवत् पुष्पदीपाद्यैः कृत्वा पूजां प्रयत्नतः ॥  
वराहाय नमः पादौ क्रोडाकृतये नमः कटिम् ।  
नाभिं गम्भीरघोषाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥  
वाङ्गं सहस्रशिरसे ग्रीवां सर्वेश्वराय च ।  
मुखं सर्वात्मने पूज्य ललाटं सुप्रभाय च ॥  
केशाः शतमधूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः ।  
विधिना पूजयेद्देवं कृत्वा जागरणं निशि ॥  
प्रातः स्नात्वा च समूज्य ब्राह्मणाय शुभाय तम् ।  
प्रदद्यात् कनकक्रोडं सनिवेद्यपरिच्छदम् ॥  
पश्चात्तु पारणं कुर्यान्नातिद्वयः सुहृत्तः ।  
एव कृत्वा नरो विप्रा न भूयः स्ननपो भवेत् ॥  
उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणचयात् ।  
विप्रा इति सम्बोधनं कनकक्रोडं सुवर्णनिर्मितवराहमित्यर्थः ।  
विष्णुधर्मे,—

मृगवृक्षे शशधरे माघे मासि प्रजापते ।  
एकादश्यां सिते पत्रे सोपवासो जितेन्द्रियः ॥  
द्वादश्यां षट्तिलाचारं कृत्वा पापात् प्रमुच्यते ।  
तिलोदत्तीं तिलस्त्रायी तिलहोमी तिलोदकी ॥  
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिक्षी च न सीदति ।

ब्रह्मपुराणे,—

माघ्यां कृत्वा तिलैः स्नानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

श्राद्धं पिबेभ्यः कर्त्तव्यं तिलैर्नित्यं प्रयत्नतः ॥

तथा,—

पौर्णमास्यां मघायोगे वायसाः पञ्च जज्ञिरे ।

इन्द्राच्च वरुणाद्वार्योर्यमादप्यथ निर्वृतेः ॥

ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋताश्च ये ।

वायसाः पुण्ययज्ञसस्ते मे गृह्णन्तु भोजनम् ॥

दद्यादनेन मन्त्रेण तेभ्यो भक्तं मधुसूतम् ।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सुञ्जीरन् बन्धुभिः सह ॥

अथ फाल्गुनकृत्यम् ।

प्रियङ्गुं फाल्गुने दत्त्वा प्रियो भवति भूतले ।

अत्र छण्णाष्टमी श्राकाष्टका तत्परनवमी अन्वष्टकेति प्रागुक्तम् ।

ब्रह्मपुराणे,—

छण्णायां फाल्गुने मासि द्वादश्यां श्रवणे सति ।

सोपवासो हरिं भक्त्या तत्र संपूजयेत्तिलैः ॥

तिलतैलेन दीपांश्च दद्याद्विष्णुगृहेष्वपि ।

अथ शिवरात्रिर्नतम् ।

इदञ्च तिथिकृत्यत्वात् पौर्णमास्यन्तचान्द्रेण ।

तथा च शैवागमे,—

फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां शिवरात्रिर्नतं शुभम् ।

अतीतायां तथा माघ्यां या च कृष्णा चतुर्दशी ॥

शिवञ्च पूजयेन्तत्र रात्रौ कुर्याच्च जागरम् ।

तथा तत्रैव,—

कुम्भसंस्थे सहस्रांशौ या तु कृष्णा चतुर्दशी ।

तत्रोपवासः कर्त्तव्यो माघे वापि तिथिक्रमात् ॥

माघे सौरे इत्यर्थः ।

लिङ्गपुराणे,—

माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

शिवरात्रिस्तु सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥

माघमासस्य कृष्णायां चतुर्दश्यां सुरेश्वरि ।

अहं यास्यामि भृष्टे रात्रौ मातङ्गगामिनि ॥

लिङ्गेषु च समस्तेषु स्थावरेषु चरेषु च ।

सकृन्मिथ्याम्यसन्दिग्ध सर्वपापविशुद्धये ॥

माघमासोऽत्र दर्शान्तचान्द्रमासाभिप्रायेण । तिथिद्वये व्यवस्था  
तु प्रागेव चतुर्दशीतिथिविचारे विवृताऽस्ति ।

शैवागमे,—

कुम्भसंस्थे सहस्रांशौ कृष्णा शिवचतुर्दशी ।

रात्रिद्योगे तु कर्त्तव्या जागरादिसमन्विता ॥

प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजाञ्चैव विशेषतः ।

शिवलिङ्गस्य कुर्वीत अर्घ्यदानञ्च भक्तितः ॥

एकेनैवोपवासेन कृतेनात्र तिथौ शिवः ।

प्रीयते भगवान् देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥

शिवलिङ्गस्य प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजामर्घदानञ्च कुर्वीतित्यर्थः  
गरुडपुराणे,—

चयोदशां शिवं पूज्य प्रकुर्यान्नियमं व्रती ।  
श्वस्ते शिवचतुर्दशां जागरिष्याम्यहं निशि ॥  
पूजां स्नानं ततो होमं करिष्याम्यथ शक्तिः ।  
चतुर्दशां निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि ॥  
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर ।  
पञ्चगव्यामृतैः स्नाय्य अस्तकाले चतुर्दशी ॥  
ॐ नमः शिवायेति च गन्धार्घैः पूजयेद्भूरम् ।  
वित्तपत्रयुतं दद्यादर्थं देवाय भक्तिः ॥  
तिलतण्डुलव्रीहींश्च जुहुयादथ शक्तिः ।  
ऊत्वा पूर्णाङ्गतिं दद्यात् शृणुयात् अद्भुता कथाम् ॥  
अर्द्धरात्रे तृतीये चतुर्थे 'यामे पुनर्यजेत् ।  
मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा प्रभाते च चमापयेत् ।  
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादात् समर्पितम् ॥  
क्षमस्व जगतां नाथ चैल्लोक्याधिपते हर ।  
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्गुद्रस्य निवेदितम् ॥  
तत्प्रसीद महादेव व्रतमद्य समर्पितम् ।  
इति चमाय्य स्नुत्वा च नत्वा च वज्रशः शिवम् ॥  
विसर्जयेत् परेद्युश्च शिवभक्तानथ दिजान् ।  
भोजयित्वा प्रयत्नेन पारणं स्वयमाचरेत् ॥



एवमेतद्भूतं पुण्यं कृत्वा द्वादशवार्षिकम् ।

कौर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य १शिवपुरं व्रजेत् ॥

पञ्चगव्यैः पञ्चामृतैश्च स्नाप्येत्यर्थः ।

पञ्चामृतमुक्तं यथा,—

दुग्धं सगर्करश्चैव घृतं दधि तथा मधु ।

पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वकर्मसु ॥

मूलमन्त्रस्तु ॐ नमः शिवायेति प्रागुक्त एव ।

तत्रायं प्रयोगः ।

त्रयोदश्यां शिवमभ्यर्च्य तदग्रतो नियमं गृह्णीयात् ।

श्वस्ते शिवचतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि ।

पूजां स्नानं ततो होमं करिष्याम्यथ शक्तितः ॥

चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि ।

भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर ॥

इति नियमं गृहीत्वा एकभक्तं विधाय परेद्युः प्रातः स्नात्वा  
कृतनित्यकृत्यः सन्ध्यासमये शिवमभ्यर्चयेत् । तत्र उदङ्मुख उपविश्य  
ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा शिवप्रीतिपूर्वककौर्त्ति-  
श्रीपुत्रादिप्राप्ति— तदुत्तरशिवपुरप्राप्तिकामः शिवरात्रिन्नतकर्माहं  
करिष्ये । इति संकल्प्य भूतशुद्धिप्राणायाम— मातृकान्यासान् कृत्वा  
वामदेवच्छविर्मस्तके पङ्क्तिच्छन्दो मुखे श्रीमहेश्वरो देवता इति  
इति षष्ठ्यादिन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासं कुर्यात् ।

ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, न तर्जनीभ्यां स्वाहा, मः मध्यमाभ्यां

वषट्, शि अनामिकाभ्यां ह्रस्व, वा कनिष्ठाभ्यां वौषट्, य कर-  
तलपृष्ठाभ्यां फट् ।

ॐ हृदयाय नमः, न शिरसे स्वाहा, मः शिखायै वषट्, शि  
कवचाय ह्रं, वा नेत्रत्रयाय वौषट्, य अस्त्राय फट् । इति  
तालत्रयं दिग्बन्धनञ्च कृत्वा,—

नमोऽस्तु स्थानुभूताय ज्योतिर्लिङ्गामृतात्मने ।

चतुर्भूर्त्तिवपुःस्थाय भस्मिताङ्गाय शम्भवे ॥

इति मन्त्रं सकलशरीरे विन्यस्य पीठन्यासं कृत्वा देवं चिन्तयेत् ।

ध्यायेन्नित्यं मद्देशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभौतिहस्तं प्रसन्नम् ।

पद्माक्षीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं

विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैरभ्यर्च्य अर्घ्यस्थापनं कृत्वा पाद्याच-  
मनीयञ्च स्थापयेत् ।

ततो मार्त्तिकलिङ्गे पाषाणादिलिङ्गे वाङ्गनाङ्किताष्टदन्तपद्मे  
वा पूजयेत् । ततो वामे गणेशं पूजयित्वा पीठपूजां कुर्यात् ।

ॐ आधारशक्तये नमः कूर्माय अनन्ताय पृथिव्यै सुमेरवे  
चीरसागराय श्वेतद्वीपाय रत्नमण्डपाय कल्पवृक्षाय ।

आग्नेयादिकोणेषु,—

धर्माय ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय ।

पूर्वादिदिक्षु,—

अधर्माय अज्ञानाय अवैराग्याय अनैश्वर्याय ।

मध्ये,— शेषाय पद्माय अं सूर्यमण्डलाय ऊं सोममण्डलाय मं  
वक्त्रिमण्डलाय सं सत्वाय रं रजसे तं तमसे आं आत्मने अं  
अन्तरात्मने पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

पूर्वाद्यष्टदिक्षु,—

वामायै ज्येष्ठायै रौद्रायै कान्त्यै वलविकरिण्यै बलप्रमथिन्यै  
सर्वभूतदमन्यै । सर्वत्र नमः पदम् ।

ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योग-  
पीठात्मने नमः । इति पुष्पासनं दद्यात् । ततः पूर्ववत् ध्यात्वा  
पुष्पाञ्जलिनावाह्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा भगवन् महेश्वर इहागच्छा-  
गच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितो भव सन्निरुद्धो भवेत्यावाह्य  
आवाहन्यादिमुद्राः प्रदर्शय ॐ नमः शिवायेति षडक्षरमन्त्रेण  
विल्वपत्राञ्जलिं दत्वा तेनैव मन्त्रेण पाद्याचमनीयार्घ्यमधुपर्कपुन-  
राचमनीयपञ्चगव्यपद्यामृतस्नानवस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः समूच्य,—

ॐ शम्भो त्रिनेत्र भूतेश चन्द्रचूड महेश्वर ।

शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं गृहाण पार्वतीप्रिय ॥

इति विल्वपत्रसहितमर्घ्यं दत्वा आवरणादि पूजयेत् । मध्ये  
ईशानाय नमः ।

चतुर्दिक्षु,—तत्पुरुषाय अघोराय सद्योजाताय वामदेवाय नमः ।

आग्नेयादिकोणेषु,—

निवृत्त्यै प्रतिष्ठायै विद्यायै शान्त्यै नमः ।

अग्न्यादिकोणकेशरेषु,—

ॐ हृदयाय नमः न शिरसे स्वाहा मः शिखायै वषट् । शि

कवचाय हं । सधुखे वा नेत्रत्रयाय वौषट् दिक्षु य अस्त्राय फट् ।  
अष्टपत्रेषु,—अनन्ताय सूक्ष्माय शिवोत्तमाय एकनेत्राय त्रिमूर्तये

श्रीकण्ठाय शिखण्डिने नमः ।

ततः पत्राग्रेषु उत्तरादिक्रमेण,—

पार्वत्यै चण्डेश्वराय नन्दिने महाकालाय गणेशाय वृषभाय

भृङ्गरीटये स्कन्दाय नमः ।

तद्वहिः,—

इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, वज्राद्यायुधेभ्यो नमः । इति संपूज्य  
षडक्षरमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा तिलत्रौहिभिर्यथाशक्ति होमं कृत्वा

पूर्णां दत्वा कथां शृणुयात् ।

यथा गरुडपुराणे ब्रह्मोवाच,—

शिवराचित्रतं वक्ष्ये कथामेनाञ्च पुण्यदाम् ।

यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स परं व्रतम् ॥

पुरा कैलासशिखरे सर्वरत्नविभूषिते ।

मुखोषिता शैलसुता देवी पप्रच्छ शङ्करम् ॥

कर्माणां केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यसि ॥

ईश्वर उवाच,—

माघफाल्गुनयोर्मध्ये या च कृष्णा चतुर्दशी ।

तस्यां जागरणाद्भुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ॥

निषादस्यार्धदे देशे पापी मन्दवासनकः ।

स कुकुरैकसंयुक्तो मृगान् हन्तुं वनङ्गतः ॥

शरांश्चापं स विभ्राणो वनं वभ्राम सर्व्वतः ।  
 मृगादिकमसंप्राप्य चुत्पिपासाद्दितो गिरौ ॥  
 रात्रौ तडागतौरे स निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ।  
 तत्रास्ति लिङ्गं विल्वस्य मूले तच्चाचिपत्तस्म ॥  
 पचाणि चापतन्मूर्द्धि तस्य लिङ्गस्य दैवतः ।  
 तडागात्तोयमानीय तस्य विल्वस्य मूलतः ॥  
 तेन धूलिनिरोधाय चित्रं लिङ्गेऽपतत्तदा ।  
 शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपक्षवात् ॥  
 जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् ।  
 एवं स्नानं पूजनञ्च स्पर्शनं जाग्रो भवेत् ॥  
 प्रातर्गृहागतो भार्यादत्तान्न भुक्तवांस्य सः ।  
 काले मृतो यमभटैः पाशैर्वद्धा तु नीयते ॥  
 ततो मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तोद्धतः स तु ।  
 कुक्कुरेण सहैवाभूद्गणो मत्पार्श्वगो मतः ॥  
 एवमज्ञानतः पुण्यं ज्ञानात् पुण्यमयाचयम् ।  
 एतमेतद्भूतं देवि मम प्रीतिकरं परम् ॥  
 यज्ञदानतपांस्यस्य कक्षां नार्हन्ति षोडशीम् ।  
 एतद्भूतप्रभावेण गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥

इति कथा श्रुत्वा स्तुत्वा प्रणमेत् ।

एवं द्वितीय-तृतीय-चतुर्थप्रहरेष्वपि पूजार्घ्यदानजपकथा-  
 श्रवणानि कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य प्रभातेऽर्घ्यादकेन समापयेत् ।  
 अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादात् समर्पितम् ।

क्षमस्व जगतां नाथ वैलोक्षाधिपते हर ॥

यन्मयाद्य दत्तं पुण्यं तद्रुद्रस्य निवेदितम् ।

तत्रासीद् महादेव व्रतमद्य समर्पितम् ॥

ततः स्नुवा नत्वा च क्षमस्वेति विस्मय्य दक्षिणां दत्वा प्रातः-

द्वतस्नानः द्धतनित्यक्रियो ब्राह्मणान् भोजयित्वा पारणं कुर्यात् ।

इति शिवराचिव्रतं समाप्तम् ।

विष्णुपुराणे,—

वासवाजैकपादर्चे पिष्टृणां तृप्तिमिच्छता ।

वारुणेनाप्यमावस्या देवानामपि दुर्लभा ॥

वासवं धनिष्ठा अजपादं पूर्वभाद्रपदं वारुणं शतभिषा

अमावास्या कार्य्येति शेषः । इत्यन्तु गौणफाल्गुन एव भवति

तत्रैव नक्षत्रसम्भवात् ।

ब्रह्मपुराणे,—

फाल्गुनामलपक्षस्य नवमी या महौपते ।

अनन्ता सा महापुण्या सर्वपापहरा मता ॥

कूर्मपुराणे,—

फाल्गुनामलपक्षस्य पुष्यर्चे द्वादशी यदि ।

गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशनी ॥

अत्र स्नात्वा तु गङ्गायां ज्ञानाज्ञानछतानि वै ।

विधूय ब्रह्महत्यादि पापान्वाप्नोति शाश्वतम् ॥

गङ्गास्नानमन्त्रश्लोकास्तत्रैव,—

महापातकसंज्ञानि यानि मे सन्ति जाह्नवि ।

गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि ॥

भविष्ये,—

द्वादश्यान्तु सिते पक्षे पुण्यं यच्च सत्तम ।  
गोविन्दद्वादशी प्रोक्ता विष्णुना पापनाशिनी ॥  
तस्यामाराध्य गोविन्दं जगतामीश्वरं परम् ।  
सप्तजन्मकृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥  
दानं यद्दीयते किञ्चित् समुद्दिश्य जनार्दनम् ।  
होमो वा क्रियते तस्यामचयं कथितं फलम् ॥

विष्णुधर्म,—

एकादश्यां सिते पक्षे पुण्यं यदि सत्तम ।  
द्वादश्यां वा तदाशेषपापचयकरं दयम् ॥

एतच्च फाल्गुनमास्येव सम्भवति ।

वाराहे,—

एकादश्यां सिते पक्षे यदक्षं वै पुनर्वसुः ।  
नाम्ना सा विजया ख्याता तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥  
तस्यां जगत्पतिर्देवः सर्वदेवेश्वरो हरिः ।  
प्रत्यक्षतां प्रयात्याशु तचानन्तफलं स्मृतम् ॥  
यस्योपवास कुर्वीत तिथौ तस्यां द्विजोत्तम ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥

तथा ब्रह्माण्डे,—

पुनर्वसौ देवशूरौ निशाकरे  
निशेश्वारे गुरुवासरेऽथवा ।

स्यात् फाल्गुने मत्स्यगते वृहस्पता-  
 वेकादशी चेत् सकलाघनाग्निनी ॥  
 जपश्च दानञ्च तथा ऊतञ्च  
 यत्किञ्चिदस्यां किल कर्म सञ्चितम् ।  
 अनन्तपुण्यानि भवन्ति तस्य  
 सूर्य्यग्रहात् कोटिगुणाधिकं फलम् ॥  
 चारोदधौ चाप्यवगाह्य द्यौ नरः  
 सम्यजयेद्विष्णुमुपोषितस्तु ताम् ।  
 यद्यच्च पापं दशजन्मभिः कृतं  
 विनाशयेत्तस्य समयमाशु सा ॥

निशाकरे पुनर्वसुनक्षत्रे देवगुरौ पुष्यानक्षत्रे वा गते गुरु-  
 दैवतत्वात् पुष्यायास्तद्वपदेशः निशेश्वारे सोमवारे गुरुवारे वा  
 मत्स्यो मीनः वृहस्पतौ मीनराशिं गते फाल्गुनशुक्लैकादशी  
 यदा तदा सा सकलाघनाग्निनीत्युच्यते । चारोदधौ लवणसमुद्रे  
 तामेकादशीमुपोषित इत्यर्थः ।

मात्स्ये,— चिरात्रोपोषितो दद्यात् फाल्गुन्यां भवन् शुभम् ।

आदित्यलोकमाप्नोति याम्यं व्रतमिदं स्मृतम् ॥

भविष्ये,—

फाल्गुनी फल्गुनीयुक्ता तिथौ तस्यां द्विजाय तु  
 शय्यां दत्वाभुयाङ्गार्यां नारी भर्तारमुत्तमम् ॥

ज्योतिषे,—

वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदशां



प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च ।

पीत्वा तु चूतकुसुमं सह चन्दनेन

वर्षं सुखी सखि भवेत् पुरुषस्तु सर्व्वम् ॥

पानमन्त्रो यथा,—

चूतमथ्य वसन्तस्य माकन्दकुसुमं तव ।

सचन्दन पिवाम्यद्य सर्व्वकामार्थसिद्धये ॥

आदिब्राह्मे= पुरुषोत्तमचैत्रमधिकृत्य,—

नरो दोलागत दृष्ट्वा गोविन्दं त्रिदशोत्तमम् ।

फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥

फाल्गुनी पौर्णमासी ।

तथा स्कान्दे,—

फाल्गुन्यां फाल्गुनीचै गोविन्दं सुरसत्तमम् ।

दोलागतमभिप्रेक्ष्य विष्णोः पदमवाप्नुयात् ॥

फाल्गुनीनचत्रमत्र गुणफलं सर्व्वतियेः प्राधान्यात् ।

अथ चैत्रद्वयम् ।

स्कन्दपुराणे,—

यः क्षिपेदेकभक्तेन चैत्रमासं नरोत्तमः ।

धनधान्यसमृद्धे तु कुले महति जायते ॥

वामनपुराणे,—

चैत्रे विचित्रवस्त्राणि शयनान्यासनानि च ।

विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेभ्यः ॥

मत्स्यपुराणे,—वर्ज्येचैत्रमासन्तु यस्तु गन्धानुलेपनम् ।

शुक्तिं गन्धमृतां दद्यात् विप्राय सितवाससी ॥

वारुणं पदमाप्नोति काम्यं व्रतमिदं स्मृतम् ।

गन्धपूर्णा शुक्तिर्व्रतान्ते देया ।

तथा,—

चैत्रादि चतुरो मासान् तोयं दद्यादयाचितम् ।

व्रतान्ते मानकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् ॥

तिलपात्रं हिरण्यञ्च ब्रह्मलोके महीयते ।

कल्पान्ते भूपतिर्नूनमाकल्पव्रतमुत्तमम् ॥

मानकं पूर्णकुम्भम् ।

स्कन्दपुराणे,—

वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशौ ।

गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यगृहशतैः समा ॥

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।

गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्य्यगृहैः समा ॥

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।

महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥

मधुसूत्रः वारुणं शतभिषा । अत्र त्रिविधा वारुण्युक्ता वारुणी  
महावारुणी महामहावारुणीति क्रमेणैषां फलानि चोक्तानि ।  
ततश्च नक्षत्रयोगं विना केवलत्रयोदशां शनिवारादियोगेऽपि न  
किञ्चित्फलं वचनाभावात् । अत्र सर्वत्र गङ्गायामित्यभिधानात्  
गङ्गास्नानादेव फलम् ।

तथा ज्योतिषे,—

चैत्राशिते वारुणच्छत्रयुक्ता  
त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे ।  
योगे शुभे सा महती महत्या  
गङ्गाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या ॥

अत्र रात्र्यादिपर्युदासो नास्ति गङ्गायां प्रतिप्रसवात् ।

यथा ब्रह्माण्डे,—

रात्रौ दिवा च सन्ध्यायां गङ्गायाञ्च प्रसङ्गतः ।  
स्वात्मान्ममेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्धृततज्जलैः ॥

प्रसङ्गतो हेतुयापीत्यर्थः ।

भवित्ये,—

न मन्त्रो न विधिश्चैव न ऋदो न च गोमयम् ।

न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्धराम् ॥

तथा आदिपूर्वणि । जलप्रवेशनिषेधं कुर्वन्तं गन्धर्वं प्रति गङ्गां

प्रविशतोऽर्जुनस्योक्तिः,—

समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्याञ्च दुर्मते ।

रात्रावहनि सन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥

असम्बाधा देवनदी खर्गसम्पादनी शुभा ।

कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥

अनिवार्यमसम्बाधं तव वाचा कथं वचम् ।

न विशेषं यथाकामं पुण्यं भागीरथीजलम् ॥

दुर्मते शास्त्रानभिज्ञ, परिग्रहः स्त्रीकारः कस्य गुप्तो नियम

इत्यर्थः । तस्माद्रात्र्यादिनिषिद्धकालेऽपि गङ्गायामस्निन् योगे  
स्नातव्यम् ।

अत्र केचित्,—

स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषाङ्गते ।

सप्तजन्म भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥

तथा,— त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्याञ्च विशेषतः ।

शूद्रविट्चक्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथञ्चन ॥

इति वचनद्वयात् स्त्रीशूद्राभ्यामत्र न स्नातव्यमिति वदन्ति ।  
तन्मन्दम् । भोगार्थस्नानमादाय निषेधस्य चरितार्थत्वात् । वैध-  
स्नानस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् अन्यथासिद्धस्य वैधवाधाक्षमत्वात् ।  
अतएव न हिंस्यात् सर्वाभूतानीति रागप्राप्तहिंसैव निषिध्यते  
न तु पशुयागाङ्गहिंसेति ।

तथा च राजमार्त्तण्डे,—

प्रतिपद्यनपत्यः स्यात् तृतीयायामपन्निकः ।

दशमी वित्तनाशाय सर्वं हन्ति त्रयोदशी ॥

भोगार्थं क्रियते यन्तु स्नानं यादृच्छिकं नरैः ।

तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिकादहिः ॥

भविष्ये,—

चैत्रे क्षणचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ ।

गङ्गायान्तु विशेषेण न स प्रेतोऽभिजायते ॥

स्कान्दे,—

वसन्तारम्भमासाद्य तृतीया या जनप्रिया

शुक्लपत्रस्य पूर्वार्द्धे जलैः स्नानं समाचरेत् ॥

पूज्या च पार्वती देवी सर्वकामसमृद्धये ।

सौभाग्यवतीयेति स्थापयेत् ।

ब्रह्मपुराणे,—

शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना ।

श्रीर्नक्षत्रलोकान्मानुष्यं संप्राप्ता केशवाज्ञया ॥

तस्मात्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ।

एषा श्रीपञ्चमी कार्या विष्णुलोके गतिप्रदा ॥

अत्र तिथिद्वये युग्मादरेण व्यवस्था ।

ब्रह्मपुराणे,—

अमावस्यां समुत्पन्नः स्कन्दः पूर्वं ऊताशनात् ।

ततः षष्ठ्यान्तु शुक्लायां मासे तु चैत्रनामनि ॥

सैन्यापत्येऽभिषिक्तस्तु देवानां ब्रह्मणा स्वयम् ।

तस्मात् स तत्र विधिना स्कन्दो मास्यैः सुगन्धिभिः ॥

दीपालङ्कारवस्त्राञ्जकुसुमैः पूज्य एव च ।

अजैः क्रीडनकै रम्यैर्घण्टाचामरदर्पणैः ॥

आरोग्यकामैर्बालानां पुत्रवद्भिर्विशेषतः ।

सर्वासु शुक्लषष्ठीषु पूज्यो वा अद्वया नरैः ॥

तत्र चैत्रषष्ठ्यामित्यर्थः । अत्र तिथिद्वये पञ्चमीयुक्तैव कार्या ।

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी ।

एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनात् ।

स्कान्दे,—भास्करस्य तु सप्तम्यां पूजां दमनकादिभिः ।

कृत्वाप्नोति नरो भोगान् विगताधिर्महायशाः ॥

लिङ्गपुराणे,—

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ।

स्रोतःसु यदि लभ्येत वाजपेयफलं लभेत् ॥

कालिकापुराणे,—

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो विजितेन्द्रियः ।

स्नाति लौहित्यगाङ्गेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥

सर्वा नदीः समास्नात्य सर्व्वतीर्थानि सर्व्वतः ।

लौहित्यो ब्रह्मणः पुत्रो याति दक्षिणसागरम् ॥

भविष्ये,—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरादयः ।

सर्व्वे लौहित्यमायान्ति चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ॥

तत्र स्नानमन्त्रः ।

ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनोः कुलनन्दन ।

अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥

लिङ्गपुराणे,—

अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिवन्ति पुनर्वसू ।

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥

अशोककलिकापानमशोकतरूपूजनम् ।

कृत्वा निर्वृतिमाप्नोति चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ॥

अशोकैरर्चयेद्दुर्गामशोककलिकाः पिवेत् ।

न शोक प्राप्नुयात् किञ्चित् सप्तजन्मसु मानवः ॥

पुनर्वसू इति कालकर्म द्वितारकत्वाद्विवचनम् । अत्र पिव-  
न्तीति श्रवणात् दन्तच्छेदं विना जलेन सह पातव्यमित्यर्थः ।

तत्र पानमन्त्रः,—

त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।

पिवामि शोकसन्तप्तो मामशोक सदा कुरु ॥

तथा दशाक्षरजयदुर्गामन्त्रं प्रकृत्य कालिकापुराणे,—

सिताष्टम्यान्तु चैत्रस्य पुष्यैस्तत्कालसम्भवेः ।

अशोकेरपि यो दुर्गां मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥

न तस्य जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गतिः ।

देवीपुराणे,—

नवम्यां पूजयेद्देवीं महिषासुरमर्दिनीम् ।

कुङ्कुमागुरुकर्पूरधूपदीपान्नमोदकैः ॥

दमनेर्मरुपत्रैश्च विजयाख्य पदं लभेत् ।

अथ श्रीरामनवमी ।

अगस्त्यसंहितायाम,—

चैत्रे मासि नवम्यान्तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः ।

प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्मण परं ब्रह्मैव केवलम् ॥

तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यमुपवासव्रतं सदा ।

तत्र जागरणं कुर्यात् रघुनाथप्रपूजनम् ॥

प्रातर्दशम्यां विधिवत् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।

गोभृतिलहिरण्याद्यै र्वक्षालङ्कारणैस्तथा ॥

रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत्परया मुदा ।

एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम् ॥

अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बह्वन्यपि ।

भस्मीकृत्य व्रजत्येव तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते मोहादिभूदधौः ।

कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥

यस्तु रामस्य नवमीमनादृत्य नराधमः ।

प्राप्नोत्यान्तरकं गच्छेद्यावदाचन्द्रतारकम् ॥

अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ।

व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग् भवेत् ॥

रहस्यकृतपापानि प्रख्यातानि बह्वन्यपि ।

महान्ति च प्रनश्यन्ति श्रीरामनवमीव्रतात् ॥

एकामपि नरो भक्त्या श्रीरामनवमीं सुने ।

उपीष्य कृतकृत्यः स्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

द्वयञ्च निन्द्राश्रवणान्नित्या । पुनर्वसुयोगे तु फलातिशयो वक्ष्यते

तत्र दिनद्वये नवमीलाभे यद्दिने पुनर्वसुयोगः तत्रैव उपवासः ।

यथा तत्रैव अगस्त्य उवाच,—

चैत्रशुक्लनवम्यान्तु जातो रामः स्वयं हरिः ।

पुनर्वसृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥

पुनर्वसृक्षसंयोगः स्वर्गोऽपि यदि दृश्यते<sup>१</sup> ।



चैत्रशुक्लनवम्यान्तु सा तिथिः सर्व्वकामदा ॥

यदा तु पूर्व्वदिने रात्रौ तिथिनक्षत्रयोगः परदिने वा विथि-  
मात्रं तदा युग्मादरान्नक्षत्रानुरोधाच्च पूर्व्वदिने उपवासः परदिने  
पूर्व्वह्नि रामपूजनं नात्र युग्मादरः संशयाभावात् इति प्रागेव  
तिथिविचारे विवृतमस्ति । दिनद्वये पुनर्व्वसुलाभे यत्र मध्याह्ने  
पुनर्व्वसुयोगस्तत्रैवोपवासादिकमाह तत्र,—

श्रीरामतोषणी<sup>१</sup> प्रोक्ता कोटिसूर्य्यग्रहाधिका ।

चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्व्वसुयुता यदि ॥

सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा स्यता ।

मेष पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥

कौशल्यायामाविरासीत् कलया स परः पुमान् ।

मध्याह्नप्राशस्त्यहेतुमाह । मेष पूषणीति । पूषणि सूर्य्ये मेषं  
प्राप्ते सौरवैशाख इत्यर्थः । मध्याह्ने अभिजिन्मुहूर्त्ते कर्कटलग्नम् ।  
यदा दिनद्वये मध्याह्ने नवमीपुनर्व्वसुयोगः यदा वा पूर्व्वदिने  
रात्रौ तिथिनक्षत्रयोगः परदिने तु पूर्व्वह्नि तिथिनक्षत्रयोगः  
यदा वा दिनद्वये नवम्यां पुनर्व्वसुभावः तदा व्यवस्थामाह तत्रैव ।

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।

उपोषण नवम्यान्तु दशम्यामेव पारणम् ॥

नवम्यामुदयगामिन्यां दशम्यामेवेत्येवकार उक्तदाह्यार्थ इति  
केचित् । यदा नक्षत्रानुरोधात् पूर्व्वदिने उपवासस्तदापि नवमी-  
मुत्तीर्थ्यैव च पारणा इति नियमार्थ इत्यपरे ।

तथा तत्रैव,—

तस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तिः ।  
 यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवत्यकारकम् ॥  
 उपोषणं जागरणं पिबेनुद्दिश्य तर्पणम् ।  
 तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्म प्राप्तिमभीप्सुभिः ॥  
 यस्तु रामनवम्यान्तु नियतस्तर्पयेत् पिबेन् ।  
 ते सर्वे तत्क्षणादेव यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥  
 यस्तु रामनवम्यान्तु दद्यादित्तानुसारतः ।  
 यत्किञ्चिदपि तत्सर्वं महादानसमं भवेत् ॥  
 सूर्यग्रहे कुरुचेने महादानैः कृतैर्मुक्तः ।  
 यत्फलं तदवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रतात् ॥  
 कुर्याद्रामनवम्यां च उपोषणमतन्द्रितः ।  
 मातुर्गर्भं न चाप्नोति राम एव भवेत् स्वयम् ॥

तथा,— तस्मिन् दिने महापुण्ये प्रातरारभ्य भक्तिः ।  
 जपेदेकान्त आसीनो यावत्स्याद्दशमीदिनम् ॥  
 तेनैव स्यात् पुरश्चर्या दशम्यां भोजयेद्विजान् ।  
 भक्ष्यभोज्यैर्वर्जविधैर्दद्याद्भक्त्या च दक्षिणाम् ॥  
 कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति ।

अथ प्रयोगः ।

पूर्वदिने एकभक्तं विधाय नियमस्थः प्रातः स्नात्वा पिबेन्  
 सन्तर्प्य शुचिवस्त्रद्वयधरो द्विराचम्य प्रातः सङ्कल्पं कुर्यात् ।  
 ॐ अद्य रामं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये ।

उपवास करिष्येऽहं नवन्याञ्च मधौ सिते ॥

श्रीरामनवमी देवीं चैत्रे रामप्रतोषिणीम् ।

अर्चयित्वा उपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि ॥

ततः कृतपूजासम्भारः शालग्रामे प्रतिमायां सर्वतोभद्रमण्डले  
वा पूजयेत् ।

यथागस्त्यसंहितायाम् ।

शालग्रामशिलायाञ्च तुलसीदलकल्पिता ।

पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका ॥

तत्र प्रथमं भूतापसारणं कृत्वा आसने उपविश्य कृतभूतशुद्धिः  
प्राणायाम-मातृकान्यास-केशवादिन्यासान् कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।  
रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः रौ तर्जनीभ्यां स्वाहा रुं मध्यमाभ्यां वषट्  
रौ अनामिकाभ्यां ऊं रौ कनिष्ठाभ्यां वौषट् रः करतलपृष्ठाभ्यां  
फट् । रां हृदयाय नमः रौ शिरसे स्वाहा रुं शिखायै वषट्  
रौ कवचाय ऊं रौ नेत्राभ्यां वौषट् रः अस्त्राय फट् । इति  
तालव्रयं दिग्बन्धश्च कुर्यात् । ततः षड्भुजराममन्त्रस्य षड्वर्णान्  
ब्रह्मरन्ध्र-भूमध्य-हृदय-नाभि-लिङ्ग-पादेषु क्रमेण न्यासेत् ।

ततः पूर्वोक्तविधिना पौठन्यासं कृत्वा देवं ध्यायेत् ।

धानमुक्तमगस्त्यसंहितायाम्—

नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम् ।

द्विभुजं कञ्जनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम् ॥

वशिष्ठाद्यैश्च परितो वृतं रत्नकिरीटिनम् ।

सीतासंलापचतुर दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

करद्वये चापवाणौ सेवितं लक्षणेन च ॥

शत्रुघ्नभरताभ्याञ्च पार्श्वयोरथ सेवितम् ।

ध्यायेद्दनन्यद्ददयो रामं स्मेरमुखाम्बुजम् ॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैरभ्यर्च्य आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य पूर्वोक्त-  
विधिना अर्थं संस्थाप्य पाद्यमाचमनीयञ्च स्थापयेत् । ततः पूर्वोक्त-  
विधिना पीठपूजां विधाय पुनर्देवं ध्यात्वा मानसोपचारैरभ्यर्च्य  
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य पुष्पाञ्जलिना वहन्नासापुटेन तेजोरूप  
भगवन्तं प्रतिमादिस्वारोप्य ॐ तद्विष्णोः परम पदमिति मन्त्रं पठन्  
भगवन् श्रीराम इहागच्छागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ सन्निहितो भव  
सन्निरुद्धो भव प्रसन्नो भवेति यथाक्रममावाहन्यादिमुद्राः प्रदर्श्य  
देवताङ्गे षडङ्गन्यास कृत्वा अवगुण्ठनामृतीकरणपरमीकरणमुद्राश्च  
प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा षडक्षरमन्त्रेण पुष्पं दत्वा आसनं निवेद्य  
भनवन् स्वागतं ते इति पृष्ट्वा तेनैव मन्त्रेण पाद्याचमनीयार्थमधु-  
पर्कपुनराचमनीय स्नानजलवस्त्रालङ्कार गन्धपुष्पधूपदीपनानाविध-  
नैवेद्याचमनीयताम्बूलचन्दनानि दत्वा शङ्खघण्टादिवाद्यैः सन्तोष्या-  
वरणानि पूजयेत् । श्रीं सीतायै स्वाहा इति मन्त्रेण सीतां पार्श्व-  
गतां पूजयेत् ।

ततः पार्श्वद्वये शङ्खचापाय नमः श्रेष्ठो नमः ।

अग्न्यादिकोणकेशरेषु—

रां हृदयाय नमः रीं शिरसे स्वाहा रुं शिखायै वषट् रै  
कवचाय ङं समुखे रौ नेत्राभ्यां वौषट् चतुर्दिक्षु रः अस्ताय फट्  
पूजयेत् ।

पूर्वाद्यष्टपत्रेषु,—

हनुमते नमः सुग्रीवाय भरताय विभौषणाय लक्ष्मणाय अङ्ग-  
दराय शत्रुघ्नाय जाम्बवते नमः ।

दलायेषु,—

सृष्टये जयन्ताय विजयाय सुराद्राय राष्ट्रवर्द्धनाय अक्रोपाय  
धर्मपालाय सुमन्ताय नमः ।

तद्वद्भिः स्व स्व दिव्य,—

इन्द्राय अग्नये यमाय नैर्ऋताय वरुणाय वायवे सोमाय (?)  
ईशानाय अनन्ताय ब्रह्मणे नमः ।

— तदाहो —

वज्राय शक्रये दण्डाय खड्गाय पाशाय अङ्कुशाय गदायै  
शूलाय चक्राय पद्माय नमः ।

ततो राममन्त्रं जप्त्वा जपं समर्थं स्तुत्वा प्रणमेत् ।

मनोवाक्कायजनितं कर्म यन्मे शुभाशुभम् ।

तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥

एवं सम्पूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा दशम्यां प्रातःस्नात्वा पुन-  
र्भक्त्या राममभ्यर्च्य दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा विशेषतो  
रामभक्तान् वस्त्रालङ्कारादिभिः सन्तोष्य पारणं कुर्यात् ।

अथ चैत्रावली ।

भविष्ये,—

चैत्रे शुक्लत्रयोदश्यां मदनं चन्दनाङ्गकम् ।

कृत्वा सम्पूज्य विधिवद्बीजयेद्भुजनेन तु ॥

तत्र सन्धुचितः कामः पुत्रपौत्रविवर्द्धनः ।

कामदेवस्तयोदक्षां पूजनीयो यथाविधि ॥

रतिप्रीतिसमायुक्तो अशोकमाल्यभूषितः ।

सिन्दूररजनीरङ्गै रतिप्रीतिसमन्वितम् ॥

कामदेवं वसन्तञ्च विलिख्य सधनुःशरम् ।

अशोकतरुमूले च चित्रे वापि प्रपूजयेत् ॥

प्रीतिश्च दक्षिणे तत्र रतिर्वामे च सुन्दरौ ॥

मध्याह्ने पूजयेद्भक्त्या भक्त्यैर्गन्धैश्च स्रग्वरैः ।

सन्धुचितः प्रीणितः, रजनी हरिद्रा ।

राजमार्तण्डे,—

रात्रौ त्रयोदशीं प्राप्य उद्याने ह्यत्रिमे शुभे ।

सरति मन्मथं स्थाप्य पूजयेदपरेऽहनि ॥

मधौ मासि सिते पक्षे कामक्रीडा तिथित्रये ।

तस्मात् त्रयोदशीविद्धा भवेत् पूज्या चतुर्दशी ।

तिथित्रय इति द्वादशीदिने रात्रौ मन्मथस्थापनं परेऽहनि

चतुर्दशीयुक्तायां त्रयोदक्षां कामपूजनमहोत्सवः तत्परेऽहनि चतुर्दक्षां प्रातः कर्द्दमादिभिर्जुगुप्सितोक्तिभिश्च क्रीडेति । तत्र त्रयोदक्षां मध्याह्ने स्नात्वा सिन्दूरहरिद्रारङ्गैरशोकतरुमूले चित्रपटे वा सधनुःशरं दक्षिणे प्रीतियुक्तं वामे रतिसहितं कामदेवं वसन्तञ्च विलिख्य गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यादिभिर्भक्ष्योपहारैः पूजयेत् । एवं संपूज्य पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा प्रणमेत् ।

तत्र मन्त्रः,—

पुष्पधन्वन्नमस्तेऽस्तु नमस्ते मीनकेतन ।  
 सुनीनां लोकपालानां धैर्य्यच्युतिहते नमः ॥  
 माधवात्मज कन्दर्प शम्बरारे रतिप्रिय ।  
 नमस्तुभ्य जिताशेषभुवनाय मनोभुवे ॥  
 आधयो मम नश्यन्तु व्याधयश्च शरीरजाः ।  
 सम्पद्यतामभीष्टं मे सम्पदः सन्तु मे स्थिराः ॥  
 नमो माराय कामाय देवदेवस्य मूर्त्तये ।  
 ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रानां मनःचोभकराय ते ॥  
 एवं यः कुरुते पूजामनङ्गस्य महात्मनः ।  
 भवन्ति नापदस्तस्य तस्मिन्नब्दे कदाचन ॥  
 सिध्यन्ति तत्र मन्त्राश्च नारीणां वल्लभो भवेत् ।  
 सर्व्वसम्पत्पुतः सुखो देववन्मोदते भुवि ॥

श्रीवागमे,—

मधुमासे तु सप्राप्ते शक्तापचे चतुर्दशी ।  
 प्रोक्ता मदनभञ्जीति सिद्धासुरमहोत्सवा ॥  
 पूजयिष्यन्ति ये मर्त्यास्तदङ्गतत्पक्षवैः ।  
 ते थास्यन्ति परं स्थानं मदनस्य प्रभावतः ॥

पूजयिष्यन्ति काममिति शेषः । तदङ्गतत्पक्षवैः तस्य मदन-  
 कस्य अङ्गेः शाखाभिस्तरुभिर्गुच्छैः पक्षवैश्वेत्यर्थः ।

तथा,—

चैत्रे सितचतुर्दश्यां मदनस्य महोत्सवः ।  
 जुगुप्सितोक्तिभिस्तत्र गीतवाद्यादिभिर्नृणाम् ॥

प्रातः प्रहरमाचन्तु कर्द्दमैः क्रीडनं भवेत् ।

भगवांस्तुष्यते कामः पुत्रपौत्रसमृद्धिदः ॥

ततः स्नात्वा च मध्याह्ने विसृज्य च मनोभुवम् ।

आत्मानं भूषयेदस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥

न पालयन्ति ये पर्व मादनं मानवाधमाः ।

तेषां पुण्यफलं दत्तं मया ते चैत्रमासिकम् ॥

हे कामदेव तेषां चैत्रमासजं पुण्यं मया तुभ्यं दत्तं इति  
शङ्करोक्तिरतो नित्यमिदम् ।

तथा,—

चैत्रावस्थां तदा देवं पूजयित्वा सदाशिवम् ।

सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥

कुङ्कुमेन तथा लिप्त्वा देवदेवं महेश्वरम् ।

यत् प्राप्यते फलं सम्यक् न तत्कतुशतैरपि ॥

देवीपुराणे,—

पौर्णमास्यां तथा कार्या सर्वकामसमृद्धये ।

इन्द्राय सह श्रद्धा तु पूजा सर्वफलप्रदा ॥

मन्दे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रकी ।

तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानस्य लभते नरः ॥

मन्दे शनिवारे इत्यर्थः ॥

इति संवत्सरकृत्यं समाप्तम् ॥



## अथ प्रकीर्णकम् ।

तत्र गङ्गामाहात्यम् ।

स्नानं दानं तपो जप्यं आर्द्धं देवप्रपूजनम् ।

गङ्गायान्तु कृतं सर्व्वं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ।

तत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ॥

अत्र दत्तं कृतं जप्तं कोटिकोटिगुणं भवेत् ।

दानधर्मे,—

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम् ।

तावद्गर्भं विजानीयात्तदूर्द्ध्वं तीरमुच्यते ॥

ब्रह्माण्डे,—

सार्द्धद्वस्तशतं यावद्गर्भतस्तीरमुच्यते ।

अत्र न प्रतिगृह्णीयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

न मन्त्रो न विधिः कालो न मृदो न च गोमयम् ।

गङ्गागर्भं कृतं किञ्चिदनन्तगुणितं भवेत् ॥

स्कान्दे,—

तीराद्गव्यतिमात्रन्तु परितः चेत्तमुच्यते ।

अत्र दानं जपो होमो गङ्गायां नात्र श्रयः ॥

यत्किञ्चित् कुरुते कर्म तदक्षयमुदाहृतम् ।

परितः कुलद्वये इत्यर्थः ।

ब्रह्माण्डे,—

मनसा सस्मरेद्यस्तु गङ्गां दूरस्थितो नरः ।

चान्द्रायणसहस्रन्तु लभते नात्र संशयः ॥

भविष्ये—

भवनानि विचित्राणि विचित्राभरणाः स्त्रियः ।

आरोग्यं वित्तसम्पत्तिर्गङ्गास्मरणजं फलम् ॥

महाभारते,—

दर्शनात् स्पर्शनास्त्रापान्तथा गङ्गेति कीर्त्तनात् ;

स्मरणादेव गङ्गायाः सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥

सहस्रयोजनस्थोऽपि त्रिसन्ध्यं सुसमाहितः ।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूते स याति परमां गतिम् ॥

भविष्ये,—

वर्त्तमानमतीतञ्च ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।

कृतं यदशुभं कर्म गङ्गां दृष्ट्वा प्रेणयति ॥

दानधर्मै,—

सप्तावरान् सप्तपरान् पिबंस्तेभ्यश्च ये परे ।

इमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥

पाप्मे,— मुहुर्मुहुर्जर्यदा पश्येत् स्पृष्ट्वापि मुहुर्मुहुः ।

भक्त्या तदाप्नोति नरः शाश्वतं चामृतं पदम् ॥

भविष्ये,—

प्रणमेत् प्रातस्तथाय गङ्गां पुण्ड्रजलां शुभाम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनं स्यान्न संशयः ॥

ब्रह्माण्डे,—

अभक्त्यापि महापापी गङ्गां स्पृष्ट्वा शुचिर्भवेत् ।

वाराहे,—

ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्पृष्टो वा सर्वपातकैः ।  
गङ्गातोयेन संस्पृष्टः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

वनपर्वणि,—

अप्यकार्यशतं कृत्वा कुर्याद्गङ्गावगाहनम् ।  
सर्वं दहति गङ्गाभस्त्रलराशिभिवानलः ॥

भविष्ये,—

भक्त्या गङ्गावगाहस्य फलं वक्तुं न शक्यते ।  
स्वर्गमोक्षौ फल तस्येत्येवमाहुर्मनीषिणः ॥  
कपिलाकोटिदानाद्धि गङ्गास्नानं विशिष्यते ।  
सहस्रगङ्गावगाहेन कुलकोटीः समुद्धरेत् ॥

तथा,—

अप्सु नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेत् सदा ।  
साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिण्यां गङ्गायाञ्च विशेषतः ॥  
गङ्गायां मौषल स्नानं महापातकनाशनम् ।

तथा,—

ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा गोघ्नो वा पञ्चपातकी ।  
सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गङ्गास्नानान्न संशयः ॥

ब्रह्माण्डे,—

— स्पृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नोति पीत्वा ज्ञानमवाप्नुयात् ।  
गङ्गास्नानेन भक्त्या तु परमाप्नोति पूरुषम् ॥

तथा,—

अनेकजन्मसम्भूतं पापं पुंसां प्रणश्यति ।

स्नानमात्रेण गङ्गायां सद्यः स्नात् पुण्यभाजनम् ॥

भविष्ये,—

अमावस्यां शतगुणं सहस्रन्तु दिनचये ।

सोमसूर्यग्रहे लचं व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥

तथा,—

जन्मर्चे च कृतं स्नानं गङ्गायां भक्तिभावतः ।

जन्मप्रमृति यत्पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ॥

नैरन्तर्येण यो मासं गङ्गायां स्नाति मानवः ।

स शक्रलोके सुचिरं स्थित्वा च सह पूर्वजैः ॥

ततो ब्रह्म प्रतिष्ठेत कल्पकोटिशतायुतम् ।

ब्रह्म ब्रह्मलोकम् ।

तथा,—

सक्रान्तिषु च सर्वासु चातुर्मास्यफलं लभेत् ।

एतदेव भवेत् पुण्यं माघकार्तिकमासयोः ॥

संवत्सरफलं प्रोक्तं नवम्यां कार्तिके तथा ।

मन्वादौ च युगादौ च मासत्रयफलं भवेत् ॥

स्नान्दे,—

गङ्गास्नानं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत् ।

अशक्तस्य स्वयं गन्तुं सामग्री यस्य नास्ति च ॥

स तथा अद्धया युक्तो विमुक्तः सर्वपातकैः ।

स्कान्दे,—गङ्गायाम्मरणान्मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा ।

परब्रह्मस्वरूपिण्यामित्याह जगतां प्रभुः ॥

गङ्गायां त्यजतः प्राणान् कथयामि वरानने ।

कर्णे तत् परमं ब्रह्म ददामि मामकं पदम् ॥

ब्रह्माण्डे,—

गङ्गायां ज्ञानतो मृत्वा मोक्षमाप्नोति मानवः ।

अज्ञानाद् ब्रह्मणो लोकं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

गङ्गेयमत्र तनुं त्यजामीति ज्ञानपरं नत्वज्ञानपरं तथा सति  
यत्र कुत्रापि मोक्षसत्त्वात् गङ्गाया अकिञ्चित्करत्वं स्यात् । ब्रह्मशाप-  
—महापातकादिभिरुदकानर्हस्यापि गङ्गामरणात् पापक्षयादुदकादि-  
दानार्हतामाह रामायणे आदिकाण्डे,—

अथ गङ्गां नृणां तत्र स्नाविताः सगरात्मजाः ।

दिव्यमूर्तिधरा भूत्वा ययुः स्वर्गं मुदान्विताः ॥

भगौरथमुवाचेद् ब्रह्मा सुरगणैः सह ।

तारिता नरशार्दूल त्वया पूर्वपितामहाः ॥

षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्य महात्मनः ।

इत्युपक्रम्य,—

पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप ।

कुरुष्व सलिलं राजन् प्रतिज्ञा परिपालिता ॥

अथ तुलसीमाहात्म्यम् ।

—अगस्त्यसंहितायाम्,—

तुलसीपत्रमात्रेण योऽर्चयेद्विष्णुमन्त्रहम् ।

स याति श्राश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥  
 विष्णोः शिरसि विन्यस्तमेकं श्रीतुलसीदलम् ।  
 अनन्तफलदं विद्वन्मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥  
 पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्मितं तुलसीदलैः ।  
 माल्यं मलयजालिप्तं दद्याच्छ्रीराममूर्द्धनि ॥  
 किन्तस्य बद्धभिर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः ।  
 किं तीर्थसेवया दानैरुपेण तपसापि वा ॥  
 पत्रं पुष्पं दलं चैव श्रीतुलसीयाः समर्पितम् ।  
 रामाय मुक्तिमार्गस्य द्योतकं नात्र संशयः ॥  
 संपूज्य विधिवद्भामं भक्त्या श्रीतुलसीदलैः ।  
 भवार्णवसहस्रेषु दुःखघाहादिमुच्यते ॥  
 पूजायोग्यैर्दलैः पुष्पैः पत्रैर्वा योऽर्चयेद्भूरिम् ।  
 यदि न्यूनातिरिक्तानि तस्य पूर्णानि तान्यहो ॥  
 दलैः कोमलपल्लवैरित्यर्थः ।

तथा,—

न तस्य नरकक्लेशो योऽर्चयेत्तुलसीदलैः ।  
 निर्मास्यतुलसीमालायुक्तो योऽभ्यर्चयेद्भूरिम् ॥  
 यद्यत् करोति तत् सर्वमनन्तगुणितं भवेत् ।  
 यदि न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम् ॥  
 तुलसीपत्रमात्रेण साङ्गं तत्परिपूर्यते ।  
 संष्ट्य तुलसीकाष्ठं यो दद्याद्राममूर्द्धनि ।  
 कर्पूरागुरुकस्तूरीचन्दनञ्च न तत्समम् ॥

आरूपयन्ति ये भक्त्या तुलसीः स्वयमेव हि ।  
 मोक्षाय च तदेवालं नान्यदभ्यर्हितं ततः ॥  
 शालग्रामशिलातोयं तुलसीदलवासितम् ।  
 ये पिवन्ति पुनस्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते ॥  
 तुलसीविपिनस्यापि समन्तात् पावनं स्थलम् ।  
 क्रोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयस्येव पाथसः ॥  
 तुलस्थारोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा च पावयेत् ।  
 प्रदक्षिणं भ्रमिता ये नमस्कुर्वन्ति नित्यशः ।  
 न तेषां दुष्कृतं किञ्चित् प्रचीण भवति ॥  
 अनन्यदर्शनाः प्रात र्यं पश्यन्ति तपोधन ।  
 अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणाद्वाश्रयन्ति ते ॥  
 शालग्रामशिलायाश्च गङ्गायाश्च तपोधन ।  
 तुलस्थायैव माहात्म्यं नेष्टे वक्तुं हि विश्वसृक् ॥  
 तुलसीसन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति सुनीश्वरं ।  
 न तेषां नरकलोभस्ते यान्ति परम पदम् ॥  
 शालग्रामशिलायाश्च तुलस्थायैव सन्निधौ ।  
 येषां पुण्यवतां मृत्युस्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥

संवत्सरप्रदीपे,—

तुलसीदलगा च्छाया यत्र देशे भवेद्विज ।  
 तत्र आर्द्धं प्रदातव्यं गयाआर्द्धफलाधिकम् ॥  
 न ददाति गया गत्वा पिण्डं यो वै महामुने ।  
 तुलसीकानने आर्द्धं कृत्वा स तारयेत् पितॄन् ॥

द्वादश्यां न च कुर्वीत तुलसीचयनं कश्चित् ।  
चयनमन्त्रमाह तत्रैव ।

तुलस्यमृतनामाऽभि सदा त्वं केशवप्रिया ।  
केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने ॥  
त्वदङ्गसम्भवैर्देव पूजयामि यथा हरिम् ।  
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि ॥  
मन्त्रेनानेन यः कुर्यात्तुलसीचयनं हरेः ।  
दशवर्षसहस्राणि पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥

अथ शालग्राममाहात्म्यम् ।

पद्मपुराणे,—

चक्राङ्कितास्तु पाषाणा दृश्यन्ते ये तु शोभनाः ।  
तेषां सन्दर्शनादेव नरः पापादिसुच्यते ॥  
चक्राङ्कितन्तु पाषाणं पूजयेत् प्रयतो गृही ।  
यतिर्वापि महीपाल भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।  
न पूजयति यो देवं शालग्रामसमुद्भवम् ॥  
प्राप्ते कलियुगे घोरे तस्य स्वर्गगतिः कुतः ।  
न तपोभिर्न जपेन न दानेन न चेच्छया ॥  
सा गतिः प्राप्यते या स्यात् शालग्रामशिलार्चनात् ।  
न व्याधिर्न भयं तत्र न पीडा दुर्ग्रहोऽपि वा ॥  
शालग्रामशिला यत्र पूज्यते भक्तिभावतः ।  
शालग्रामशिलायान्तु नित्यं सन्निहितो हरिः ॥  
यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्याः समं फलम् ।



न तेषामपराधोऽस्ति नापराधे च पातकम् ॥  
 नागम्यागमने पापं न च विश्वासघातने ।  
 शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥  
 तत्र देवासुरा यत्रा भुवनानि चतुर्दश ।  
 शालग्रामशिलायान्तु यः आद्ध कुरुते नरः ।  
 सुप्रीताः पितरस्तस्य गतास्ते ब्रह्मणोऽनिकम् ॥  
 ये पिवन्ति नरा नित्यं शालग्रामशिलोदकम् ।  
 प्रचालयन्त्यसन्दिग्धं ब्रह्महत्यादिपातकम् ॥

लिङ्गपुराणे,—

कामासक्तोऽपि वै नित्यं भक्तिभावविवर्जितः ।  
 शालग्रामशिलां पुत्र योऽर्चयेत् सोऽच्युतो भवेत् ॥

तथा,—

शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं परमं स्मृतम् ।  
 तत्र दानञ्च यागश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥  
 शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रे व्यवस्थितः ।  
 कीकटेऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवन नरः ॥

अथ वारव्रतम् ।

भविष्ये,—

यस्त्वादित्यदिने भक्त्या भानुं संपूज्य अद्भुता ।

नक्तं करोति पुरुषः स यात्यमरलोकताम् ॥

भक्तिरूपासत्वेन ज्ञान, वेदोक्तमिदमिति धीः अद्भुता ।

सुद्धर्त्तोनं दिनं ज्ञेयं सौरनक्षत्रते विधिः ।

इति सप्तमीकृत्ये सौरनक्षत्रं प्रागुक्तं । व्रतमिदमेकाहसमाप्यम् ।  
भविष्ये । आदित्य उवाच,—

योऽब्दमेकं प्रकुर्वीत नक्षत्रं मम दिने नरः ।

ब्रह्मचारी जितक्रोधो ममार्चनपरायणः ॥

वत्सरान्ते ततो ब्रूयात् प्रीयतां मे दिवाकरः ।

एवं भक्तिसमायुक्तो मम लोकं स गच्छति ॥

न च मानुष्यकं लोकमध्रुवं प्राप्नुयान्नरः ।

ब्रह्मचारी परित्यक्तमैथुन इत्यर्थः ।

तथा,—

उपवासञ्च कुर्वन्ति ये त्वादित्यदिने तथा ।

जपन्ति च महाश्वेतां ते जभन्ते यथेष्टितम् ॥

महाश्वेतामन्त्रः प्रोक्त आगमे,—

१ ह्यामित्युक्ता ततो ह्रीन्नु-सकारश्च विसर्गवान् ।

महाश्वेताख्यमन्त्रोऽयं भानोऽख्यश्चर ईरितः ॥

नरसिंहपुराणे,—

हस्तायुक्ते सौरदिने सौरं नक्षत्रं विधीयते ।

स्नात्वा सूर्यं समभ्यर्च्य विष्णुं वा नीरुजो भवेत् ॥

भविष्ये,—

ये त्वादित्यदिने प्राप्ते नक्षत्रं कुर्वन्ति मानवाः ।

भानुं समूज्य वै भक्त्या ते भवन्ति त्वरोगिणः ॥

मत्स्यपुराणे,—

यत्तद्विश्वात्मनो धाम सूर्यरूपेण संस्थितम् ।

तस्मादादित्यवारे तु सदा नक्ताशनो भवेत् ॥

सुहृत्तोऽनं दिनं सौरनक्तमिति प्रागुक्तम् । सदेति नित्यत्वं  
प्रतिपादितम् ।

तथा भविष्ये,—

आमिषं रक्तशाकञ्च यो भुङ्क्ते च रवेर्दिने ।

सप्तजन्म भवेत् कुष्ठौ दारिद्र्यमुपजायते ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन एकभक्तं रवेर्दिने ।

कुर्यान्नक्तं हविष्यं वा रोगयुक्तोऽन्यथा भवेत् ॥

रक्तशाकमिति यावदामिषत्वातिदिष्टोपलक्षणम् ।

भविष्ये,—

लवणाज्यगुडोपेतमूपं सूर्यवासरे ।

सहिरण्यं नरो दत्त्वा न रोगैरभिभूयते ॥

काष्ठदानात् भौमदिने शत्रुनाशमवाप्नुयात् ।

जीवेऽङ्गि वस्त्रदानेन परां पुष्टिमवाप्नुते ॥

शनैश्चरदिने दत्त्वा तैलं विप्राय शक्तिः ।

नित्यमेव महाभाग रोगनाशमवाप्नुयात् ॥

स्कान्दे,—

भौमवारे वर्षसेकं भक्त्या सम्पूज्य मङ्गलम् ।

हविष्यभुक् मिताहारः पुत्र दीर्घायुष लभेत् ॥

धन धान्यं तथारोग्य लभते सम्पदस्तथा ।

## अथ सूतिकाषष्ठीपूजा ।

ब्रह्मपुराणे,— देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते दिजन्मनाम् ।

आयान्ति तदहस्तस्मात् पुण्यं षष्ठञ्च सर्वदा ॥

अत्र सर्वदेत्यनेन जननाशौचान्तरपातेऽपि शुद्धिरित्युक्तम् ।

तथा च विष्णुधर्मो,—

सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः ।

तासां यागनिमित्तार्थं शुद्धिर्जन्मनि कीर्त्तिता ॥

षष्ठेऽङ्गि रात्रियागन्तु जन्मदानान्तु कारयेत् ।

रक्षणीयं तथा षष्ठीं निशां तत्र विशेषतः ॥

तत्र जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ।

अत्र प्रकृते पुत्रजन्माशौचे शुद्धिप्रतिप्रसवप्राप्तौ जन्मनीत्युपादानं जननाशौचान्तरपातेऽपि शुद्धिविधानार्थं न तु मरणाशौचपात इति । तासां यागनिमित्तार्थमित्यनेन तद्दिनविहितषष्ठ्यादिदेवता-पूजास्वेव शुद्धिर्नान्येषु सन्ध्यादिकर्मस्वित्युक्तम् । षष्ठीं निशां प्राप्य विशेषतो रक्षणीयं बालस्य रक्षा कार्येत्यर्थः ।

मार्कण्डेयपुराणे,—

अग्न्यम्बुशून्ये च तथा निर्यूपे सूतिकागृहे ।

अदीपशस्त्रसुषले भूतिसर्षपराजिते ॥

अनुप्रविश्य या जानमपहृत्य ततोऽपरम् ।

क्षणप्रसविनीबालं तत्रैवोत्सृजते दिज ॥

सा जातहारिणौ नाम सुघोरा पिशिताशना ।

तस्मात् संरक्षणं कार्यं यत्नतः सूतिकागृहे ॥

क्वागवन्धनार्थं यूपस्तम्भः भूतिर्यज्ञभस्म । तत्र षष्ठेऽङ्गि सायंसमये  
स्नातः शुचिराचान्तः खस्ति वाच्यं सङ्कल्पं कुर्यात् ।

ॐ अद्येत्यादि अभिनवजातकुमारस्य जन्मवाचरात् षष्ठेऽङ्गि  
अभिनवजातकुमारस्यास्य सर्वारिष्टप्रशमनपूर्वकदीर्घायुद्वकामो  
वह्निर्बलिदानानन्तरं गणेशषष्ठ्यादिदेवतानां पूजाकर्म्म करिष्ये ।  
इति सङ्कल्प्य सप्तमण्डलिकाः कृत्वा तत्र कुशानास्तौर्ध्वं सम्पूज्य च  
माषभक्तेन बलिं दद्यात् ।

ॐ चेन्नपाला नमो वोऽस्तु सर्वशान्तिफलप्रदाः ।

बालस्य विघ्ननाशाय प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

चेन्नपालेभ्य एष माषभक्तबलिर्नमः ।

पूर्वादिदिग्विभागेषु सुस्थले प्रतिवासिनः ।

रक्षां कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

पूर्वादिदिक्स्थेभ्यो नमः ।

भूतदैत्यपिशाचाश्च गन्धर्वा रक्षसां गणाः ।

शुभं कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

भूतदैत्यपिशाचादिभ्य एष माषभक्तबलिर्नमः ।

नानारूपधराः सर्वा मातरो देवयोनयः ।

स्वयं रचन्तु मे पुत्र तुष्टा गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

माद्वभ्य एषः ।

आदित्यादि यद्वा ये च स्वस्थानप्रतिवासिनः ।

रक्षां कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

आदित्यादिग्रहेभ्य एषः ।

योगिनी डाकिनी चैव मातरो निवसन्ति याः ।

शान्तिं कुर्वन्तु ताः सर्वा मम गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

योगिन्यादिभ्य एषः ।

दिक्पाला ये तथेन्द्राद्याः स्वस्थानप्रतिवासिनः ।

शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे मम गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

इन्द्रादिलोकपालेभ्य एषः ।

ततो द्वारदेशं गत्वा द्वारपालकाभ्यां नम इति मन्त्रेण द्वार-  
पालौ पाद्यादिभिः सम्यज्य प्रणमेत् ।

द्वारपाल नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिफलप्रद ।

त्वत्प्रसादादविघ्नेन चिरं जीवतु बालकः ॥

खड्गपाणे नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नविनाशन ।

त्वत्प्रसादादविघ्नेन चिरं जीवतु बालकः ॥

ततो गृहं प्रविश्य प्राङ्मुख उपविश्य कराङ्गन्यासौ कृत्वा सामा-  
न्यार्घ्यं विधाय गणेशं ध्यात्वा ॐ गणानान्वेत्यावाह्य पाद्यादिभिः  
सम्यज्य पुष्पाञ्जलिना प्रणमेत् ।

सर्वविघ्नहरोऽसि त्वमेकदन्तो गजाननः ।

षष्ठीगेहेऽर्चितः प्रीत्या शिशु दीर्घायुषं कुरु ॥

लम्बोदर महाभाग सर्वोपद्रवनाशन ।

त्वत्प्रसादादविघ्नेन चिरं जीवतु बालकः ॥

ततः षष्ठीं पूजयेत् ।

षां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । षीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । धूं मध्यमाभ्यां  
वषट् । धैं अनामिकाभ्यां ऊ । षौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । षः कर-

तल्लष्टाभ्यां फट् । षां हृदयाय नमः, षीं शिरसे स्वाहा, षूं  
शिखायै वषट्, षैं कवचाय जूं, षौ नेत्रत्रयाय वौषट्, षः करतल-  
पृष्ठाभ्यां फट् ।

इति कराङ्गन्यासौ कृत्वा देवीं ध्यायेत् ।

द्विश्रुजां हेमगौराङ्गीं रत्नालङ्कारभूषिताम् ।

वरदाभयहस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥

पीतवस्त्रपरीधानां पीनोन्नतपयोधराम् ।

अङ्कार्पितसुतां षष्ठीमम्बुजस्थां विचिन्तयेत् ॥

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिः सम्पूज्य अर्घ्यपात्रं प्रोक्षणी-  
पात्रञ्च स्थापयित्वा प्रोक्षणीजलेन पूजापकरणान्यभ्युक्ष्य घटं स्थाप-  
यित्वा तत्र पीठपूजां कुर्यात् ।

जयायै, विजयायै, अजितायै, अपराजितायै, काल्यै, भद्रकाल्यै,  
सङ्गमायै, सिद्धायै।

मध्ये,—

लोहितायै, पद्मासनाय नमः ।

ततः पूर्ववद्घ्यात्वा देवीमावाहयेत् ।

आयाहि वरदे देवि षष्ठि षष्ठीति विश्रुते ।

धात्रीरूपेण मे पुत्रं रक्ष जागरवासरे ॥

षष्ठि देवि इहागच्छागच्छ तिष्ठ तिष्ठ सन्निहिता भव सन्नि-  
हता भव प्रसन्ना भवेत्यावाह्य ॐ षां षष्ठ्यै नम इति पाद्यादिभिस्-  
पचारैः पूजयित्वा पुष्पाञ्जलिना प्रणमेत् ।

जगन्मातर्जगद्धात्रि जगदानन्दकारिणि ।

प्रसीद मम देवेशि षष्ठि देवि नमोऽस्तु ते ॥  
 शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां लोकानां हितकारिणी ।  
 त्वमिमं रक्ष मे बालं महाषष्ठि नमोऽस्तु ते ॥  
 भूतदैत्यपिशाचेषु डाकिनीयोगिनीषु च ।  
 मातेव रक्ष मे पुत्रं श्यापदे पन्नगेषु च ॥  
 षष्ठि देवि महाभागे भक्तानामभयप्रदे ।  
 वरदे तत्प्रसादेन चिरं जीवतु बालकः ॥  
 अस्मिंश्च सूतिकागारे देवीभिः परिवारिते ।  
 रक्षां कुरु महाभागे सर्वोपद्रवनाशिनि ॥  
 ततस्त्रिश्ररणाद्याः पृथक् गन्धादिभिः पूजयेत् ।  
 त्रिश्ररणा वृद्धमाता च गौरौ च कटपूतना ।  
 पूजितव्याः प्रयत्नेन जन्मदा जातहारिणी ॥  
 ततो जयन्तै मङ्गलायै काल्यै कपालिन्यै दुर्गायै शिवायै चमार्दे  
 धात्र्यै स्वाहायै स्वधायै नम इति पुष्पाञ्जलिना पूजयेत् ।  
 गौर्यादिमातृकाभ्यो नमः । जन्मदाभ्यो नमः<sup>१</sup> । चैत्रपालेभ्यो  
 नमः । भैरवेभ्यो नमः । आदित्यादिनवग्रहेभ्यो नमः । दिक्पा-  
 लेभ्यो नमः ।  
 ततो मार्कण्डेयं पाद्यादिभिः पूजयित्वा पुष्पाञ्जलिना प्रणमेत् ।  
 मार्कण्डेय महाबाहो प्रार्थये त्वां कृताञ्जलिः ।  
 चिरजीवी यथा त्वं भोक्तृया भवतु मे सुतः ॥

१ ख पुस्तके, जन्मदाभ्यो नम इति वाक्य नास्ति ।



अश्वत्याग्रे वलये व्यासाय हनुमते विभीषणाय कृपाय परशुरा-  
माय नमः । नारदादि ऋषिभ्यो नमः । गङ्गायै दुर्गायै महालक्ष्म्यै  
सरस्वत्यै । अश्विन्यादिनक्षत्रेभ्यः, विष्णुस्मादियोगेभ्यः, ववादिकर-  
णेभ्यः, प्रतिपदादितिथिभ्यः, मेषादिद्वादशराशिभ्यः, सूर्यादिदिवारेभ्यः ।

ततः स्कन्दमावाह्य गन्धादिभिः पूजयेत् ।

कार्तिकेय महाबाहो गौरीहृदयनन्दन ।

बालं मे रक्ष भौतिभ्यः षडानन नमोऽस्तु ते ॥

१[मन्थानदण्डाय नमः, इति मन्थानदण्डं पूजयेत् ।

मन्थान त्वं हि गोलोके देवदेवविनिर्मितः१ ।

पूजितश्च विधानेन पुत्र मे परिपालय ॥

ततः खड्ग पाद्यादिभिः संपूज्य अग्निर्विशसन इत्यादिना प्रणमेत् ।

ततो वासुदेवं गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेत् ।]

वासुदेव नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर ।

कुमारं रक्ष भौतिभ्यः शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥

त्रैलोक्यपूजितः श्रीमान् दैत्यचक्रविमर्दनः ।

शान्तिं कुरु गदापाणे नारायण नमोऽस्तु ते ॥

ब्रह्मा करोतु कल्याणं जगत्सृष्टिकरोऽव्ययः ।

सुतस्य मे देवदेवस्तथा नारायणः प्रभुः ।

ततो माषभक्तेन बलिं दद्यात् ।

ॐ बलिं गृह्णन्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ।

१ ग पुस्तके [ ] चिह्निताशो नास्ति ।

२ ख पुस्तके, देवदेवेन निर्मितः ।

मारुतश्चाश्विनौ देवाः सुपर्णाः यन्नगा यहाः ॥  
 असुरा यातुधानाश्च रथस्था देवताश्च याः ।  
 दिविष्ठा लोकपालाश्च ये च विघ्नविनाशकाः ॥  
 जगतः स्वस्ति कुर्वन्तो दिव्या महर्षयस्तथा ।  
 सर्वे कुर्वन्तु मे रक्षां शान्तिं पुष्टिं धृतिं तथा ॥  
 सर्वेभ्यो बलिरेषः ।

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।  
 सौम्याश्चैव तु ये केचित् सौम्यस्थाननिवासिनः ॥  
 मातरो रौद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ।  
 विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ॥  
 सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्विभं बलिम् ।  
 सिद्धिं दिशन्तु मे पुत्रं भयेभ्यः पान्तु मां सदा ॥  
 भूतेभ्य एष बलिः ।

ततो बालं व्यजने समारोप्य षष्ठ्यै समर्पयेत् ।  
 देवतानामृषीणाञ्च भक्तानां भक्तवत्सले ।  
 मातेव रक्ष मे पुत्रं महाषष्टि नमोऽस्तु ते ॥  
 जननी सर्वभूतानां बालानाञ्च विशेषतः ।  
 नारायणीस्वरूपेण सुतं मे रक्ष सर्वतः ॥  
 जगदाद्ये जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।  
 समर्पितो मया देवि पादयोस्तव मे सुतः ॥  
 निजपुत्रवदेनं त्वं कुरु दीर्घायुषं सदा ।  
 अयं मम कुलोत्पन्नो रक्षार्थं पादयोस्तव ॥

नीतो मया महाभागे चिरं जीवतु बालकः ।  
 इति बाल समर्थं पुष्पाञ्जलिना प्रणमेत् ।  
 माहेश्वरि शिवे नित्यं शिवदे शिवनायिके ।  
 सुतं मे रच पद्माक्षि शिवदा भव सर्वदा ॥  
 ततः कुशेन बालमार्जनम् ।

विष्णुपुराणे,—

माथुरं मङ्गलं यच्च विष्णोरमिततेजसः ।  
 हरस्य मङ्गलं यच्च सर्वं भवतु मे सुते ॥  
 शान्तिरस्तु शिवश्चास्तु प्रणश्यत्वशुभञ्च यत् ।  
 यत एवागत पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु ॥  
 रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः ।  
 यस्य नाभिसमुद्भूतपद्मजादभवज्जगत् ॥  
 येन दद्याद्यविष्टता धारयत्यवनी जगत् ।  
 वराहरूपधृक् देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥  
 नखाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवचस्थूलो विभुः ।  
 नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ॥  
 वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् ।  
 त्रिविक्रमः क्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः ॥  
 शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठ रक्षतु केशवः ।  
 गुह्यं स जठरं विष्णुर्जङ्घापाद जनार्दनः ॥  
 मुखं बाह्वं प्रवाह्य च मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।  
 रक्षत्व्याहृतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥

शार्ङ्गचक्रगदाखड्गशङ्खनादहताः क्षयम् ।

गच्छन्तु प्रेतकुशाण्डा राक्षसा ये तवाहिताः ॥

त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः ।

दृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महौधरः ।

तथा कालिकापुराणे,—

उमा देवी शिरः पातु ललाटं शूलधारिणी ।

जिह्वां च चण्डिका देवी ग्रीवाञ्च तत्र कालिका ॥

अशोकवासिनी चेतो द्वौ वाह्यं शूलधारिणी ।

हृदयं ललिता देवी उदरं सिंहवाहिनी ॥

कण्ठं भगवती पातु उरु च विन्ध्यवासिनी ।

महाबला च जङ्घे द्वे पादौ पातालवासिनी ॥

सर्वतः पातु सततं दुर्गा देवी शुभावहा ।

ततः श्वेतसर्षपेन वेतालाश्चेति रक्षां कृत्वा दक्षिणां दत्त्वा  
अच्छिद्रं कुर्यात् । तां रात्रिं खड्गपाणिर्जागृयात् । धनुःकाण्डञ्च  
गृहे स्थापयेत् । आचाराद्वकुलपत्राणि द्वारदेशे दहेत् गोमुण्डञ्च  
स्थापयेत् ।

इति सूतिकाषष्ठीपूजा ।

अथ मङ्गलचण्डिकापूजा ।

कालिकापुराणे,—

यैषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका ।

वरदाभयहस्ता च द्विभुजा गौरदेहिका ॥

रक्तपद्मासनस्था तु मुकुटत्रयमण्डिता ।

रक्तकौषेयवसना स्मितवक्त्रा शुभानना ॥  
 नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा ।  
 उमया भाषितं तन्त्रं यत् पूर्वं लेकमचरम् ॥  
 मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेय तेन देवीं प्रपूजयेत् ।  
 नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै तु धीमहि ॥  
 तन्नो ललितकान्तेति ततः पश्चात् प्रचोदयात् ।  
 एषा ललितगायत्री देव्या दृष्टे प्रकीर्तिता ॥  
 लोहिताङ्गस्य दिवसः प्रियोऽस्याः परिकीर्तितः ।  
 कालो वमन्तकालश्च स्वरश्चापि तु पञ्चमः ॥  
 अष्टम्याञ्च नवम्याञ्च पूजा कार्या विभूतये ।  
 दूर्वाङ्कुरैः समायुक्तमक्षत प्रीतिद परम् ॥  
 निर्माल्यधारिणी चास्या देवी ललितचण्डिका ।  
 अयमस्या विशेषस्तु पूजायां परिकीर्तितः ॥  
 वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य तन्त्र ग्राह्यन्तु पूजने ।  
 उपचारो वलिश्चास्या विहितोऽयं क्रमः पुरा ॥  
 महामाया महादेव्यास्तद्ग्राह्य परिपूजने ।  
 पटेषु प्रतिमाया वा घटे मङ्गलचण्डिकाम् ॥  
 यः पूजयेद्भौमदिने शुभैर्दूर्वाङ्कुरैः परम् ।  
 सततं साधकः सोऽपि कामानिष्टानवाप्नुयात् ॥

मुकुटत्रयेति एकपट्टिकोपरि त्रिशृङ्गाकारमुकुटमण्डितेत्यर्थः ।

उमामन्त्रः प्रागुक्तो यथा ।

यादिः समाप्तिसहित उमामन्त्र इति श्रुतः ।

यादिर्मकारः समाप्तिर्विसर्ग इत्यर्थः ।

नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै धीमहि ।

तन्नो ललितकान्ता प्रचोदयात् । इति ललितगायत्री ।

आदौ मूलमन्त्रमुच्चार्य अनया गायत्र्या देवीं पूजयेदित्यर्थः ।

लोहिताङ्गस्य दिवसो मङ्गलवारः प्रियः, वसन्तकालः प्रियः पूजा-  
कालः, पञ्चमस्वरः पञ्चमरागोऽस्याः प्रिय इत्यर्थः । अष्टम्यां  
नवम्याञ्च फलातिशय इत्यर्थः । अष्टदूर्वाङ्कुरसहितैरष्टाक्षततण्डु-  
लैरिति लोकप्रसिद्धिः । पूजान्ते निर्माल्येन ललितचण्डिकां  
पूजयेदित्यर्थः । वैष्णवीतन्त्रमन्त्रस्य महामायामन्त्रस्य यः पूजा-  
विधिरुक्तः सोऽत्र ग्राह्य इत्यर्थः । स च प्रयोगलिखनेन व्यक्तीभवि-  
ष्यति । पूजाफलन्तु यद्यस्याभिमतं तस्य तत्प्राप्तिरित्यर्थः ।

अथ मङ्गलचण्डिकापूजाप्रयोगः ।

कृतनित्यक्रियो यजमान उदङ्मुख आसने उपविश्य खस्ति वाच्य  
सङ्कल्पं कुर्यात् ।

अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा अमुककामः श्रीमङ्गलचण्डिका-  
पूजाकर्म करिष्ये इति सङ्कल्प्य अः फट् इति मन्त्रेण श्वेतसर्षपान्  
अक्षतान् वा दिक्षु विकीर्य भूतापसारणं कृत्वा नारदच्छविर्मस्तकेऽनु-  
ष्टुप्च्छन्दो मुखे श्रीमङ्गलचण्डिका देवता इति विन्यस्य कृताञ्जलिः  
सर्वकामार्थसाधने श्रीमङ्गलचण्डिकापूजायां विनियोगः । ॐ ह्रीं  
स इति स्थानमभ्युक्ष्य ह्रीं सः इति मन्त्रेण करस्थं पुष्पं दक्षिण-  
हस्तेन संमृज्य प्रात्वा वामहस्तेन पूर्वमन्त्रेण ऐशान्यान्दिशि चिपेत् ।  
भूतशुद्धिं प्राणायामं मातृकान्यासं च कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् ।

मां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः मौं तर्जनीभ्यां स्वाहा मू मध्यमाभ्यां  
वषट् मै अनामिकाभ्यां ह्र मौ कनिष्ठाभ्यां वौषट् मः करतल-  
पृष्ठाभ्यां फट् । मां हृदयाय नमः मौं शिरसे स्वाहा मूं शिखायै  
वषट् मै कवचाय ह्रं मौं नेत्राभ्यां वौषट् मः अस्त्राय फट् ।

तालत्रय दिग्बन्धनञ्च कृत्वा पीठन्यासं कुर्यात् ।

अंसद्वये—धर्माय, ज्ञानाय ।

वामाधिरुद्वये—वैराग्याय, ऐश्वर्याय । मुखे—अधर्माय । वामपार्श्वे  
अज्ञानाय । नाभौ—अवैराग्याय । दक्षिणपार्श्वे—अनैश्वर्याय ।  
हृन्मध्ये—शेषाय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय, उ मोममण्डलाय, मं  
वक्त्रिमण्डलाय, स सत्ताय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने,  
अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने, ह्रीं योगपद्मपीठा-  
त्मने नमः ।

ततो देवीं ध्यायेत्,—

यैषा ललितकान्ताख्या देवी मङ्गलचण्डिका ।

वरदाभयहस्ता सा द्विभुजा गौरदेहिका ॥

रक्तपद्मासनस्था तु मुकुटत्रयमण्डिता ।

रक्तकौषेयवसना स्मितवक्त्रा शुभानना ।

नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा ॥

इति ध्यात्वा मनसा पाद्यादिभिः सम्यूज्य साहमित्यात्मानं  
विभाव्य गन्धपुष्पाभ्यां देवीरूपमात्मानं सम्यूज्य शिरोहृदयगुह्य-  
पादसर्वाङ्गेषु पुष्पपञ्चकं चिपेत् ।

ततो वामभागे त्रिकोणमण्डलोपरि अर्घ्याधारं स्थापयित्वा

तत्र अस्त्राय फडिति प्रोक्षितं शङ्खः स्थापयित्वा नम इति मन्त्रेण  
गन्धपुष्पे दत्वा मूलमन्त्रेण जलेन पूरयित्वा म दशकलाव्याप्तवक्त्रि-  
मण्डलाय नम इत्याधार सम्पूज्य अ द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलाय  
नम इति शङ्खं, ऊं षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलाय नम इति जलं  
सम्पूज्य तत्र षडङ्गानि पूजयित्वा देवीरूपं जलं ध्यात्वा कराभ्या-  
मर्घ्यपात्रमाच्छाद्य मूलमष्टधा जप्त्वा तालत्रयदिग्बन्धनाभ्यां संरक्ष्य  
ऊमित्यवगुण्ठय धेनुमुद्रयाऽमृतीकुर्यात् ।

अर्घ्यस्य दक्षिणे ॐ फडिति प्रोक्षणीपात्रं सप्रोक्ष्य जलेनापूर्य  
गन्धपुष्पे दत्वा तीर्थमावाह्य अर्घ्यजलं किञ्चिदत्वा तेनोदकेनात्मानं  
पूजोपकरणञ्चाभ्युक्षेत् ।

अर्घ्यस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।

दक्षिणे गणेशं ध्यात्वा आवाह्य गन्धादिभिरभ्यर्च्य पीठं पूजयेत्  
अग्न्यादिकोणेषु—अधर्मादिचतुष्टयम् ।

पूर्वादिदिक्षु—अधर्मादिचतुष्टयम् पूजयित्वा ।

मध्ये—शेषाय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय ऊ सोममण्डलाय,  
मं वक्त्रिमण्डलाय, स सत्त्वाय, र रजसे त तमसे, आं आत्मने,  
अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः । ह्रीं योग-  
पद्मपीठासनाय नमः इत्यासनार्थं पुष्पाञ्जलिं दत्वा पूर्ववद्देवीं  
ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिना नासाद्वारा तेजोरूपां भगवतीं निःसार्य  
ह्रीं इति मन्त्रेण मण्डलमध्ये स्थापयेत् ।

मध्ये—नारायण्यै विद्महे त्वां चण्डिकायै धीमहि । तन्नो  
ललितकान्ता प्रचोदयात् ।



इति मूलमन्त्रपूर्व्या गायत्र्या श्रीभगवति मङ्गलचण्डिके  
इहागच्छागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ सन्निहिता भव सन्निरुद्धा भव प्रसन्ना  
भवेत्यावाह्य आवाहन-स्थापन-सन्निधापन-सन्निरोधन-परमौकर-  
णामृतीकरणमुद्राः प्रदर्श्य स्वागतमिति स्वागत पृष्ट्वा मूलमन्त्रपूर्व्या  
ललितगायत्र्या पाद्यार्घ्याचमनीयमधुपर्काचमनस्नानजलवस्त्रालङ्कार-  
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यतामूलानि दद्यात् । अशक्तौ गन्धपुष्पधूपदीप-  
नैवेद्यैः पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

ततो मूलमन्त्रपूर्विकां ललितगायत्रीं पठित्वा मङ्गलचण्डिकायै  
नम इत्यष्टदूर्वासयुक्ताष्टाक्षततण्डुलान् दद्यात् ।

मण्डलमध्ये,—

जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ।

दुर्गां शिवां चमा धात्रीं स्वधा स्वाहा प्रपूजयेत् ॥

ततोऽङ्गपूजा ।

मां हृदयाय नमः । मी शिरसे स्वाहा नमः । मूं शिखायै वषट्  
नमः । मै कवचाय ह्र नमः । मौ नेत्राभ्यां वौषट् नमः । मः  
अस्त्राय फट् नमः । इति सम्यज्याष्टपत्रेषु अष्टौ यौगिनीः पूजयेत् ।  
पूर्वादिचतुर्दिक्षु,—

शैलपुत्र्यै, चण्डमुण्डायै, स्कन्दमात्र्यै, कालरात्र्यै नमः ।

अग्न्यादिकोणेषु,—

चण्डिकायै, कुष्माण्ड्यै, कात्यायन्यै, महागौर्यै नमः ।

इति पूजयित्वा मः मङ्गलचण्डिकायै नमः इत्यष्टधा पुष्पैः पूज-  
येत् । ततो दुर्गापूजोक्तविधिना बलि दद्यात् ।

वशिदानानन्तरं कालिकापुराणे,—

जपं समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्भानतत्परः ।

हस्तेन स्रजमादाय मनसा चिन्तयन् शिवाम् ॥

यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्थ,—

सर्वमङ्गलमङ्गले शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये अम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।

सप्तधा वर्त्तनं कृत्वा स्तुतिमेतान्तु साधकः ।

पञ्च प्रणामान् कुर्वीत ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रकैः ॥

ततः काममिष्टं निवेद्य योनिमुद्रां दर्शयित्वा चमस्वेति विस-  
र्जयेत् । तत ऐशान्यां त्रिकोणमण्डले ललितचण्डिकां गन्धादि-  
भिरभ्यर्च्य ललितचण्डिकायै नम इति निर्माल्यं तत्र विन्यसेत् ।

उदके तरुमूले च निर्माल्यं तु समुत्सृजेत् ।

अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।

ततो दक्षिणां दत्त्वाऽच्छिद्रं कुर्यात् ।

इति श्रीमङ्गलचण्डिकापूजाविधिः ।

अथ जन्मदिनपूजा ।

जन्मतिथौ जन्मनक्षत्रयोगे शुभमुक्तं ज्योतिषे,—

जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे

यस्य भुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।

भवन्ति संवत्सरमेव याव-

नैरुच्यसम्मानसुखानि तस्य ॥

शनिमङ्गलवारे दोषमाह तत्रैव ।

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् ।

अनुचयोगसम्प्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥

कृतान्तः शनिः । शनिमङ्गलवारो यदि जन्मवारः स्यात्तदा न दोष इति प्राञ्च । अत्र जन्मनक्षत्रयोगे तु न दोष इत्यर्थः ।

प्रतीकारमाह तत्रैव,—

तस्य सर्व्वौषधिस्वानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।

सर्व्वौषधिमाह मत्स्यपुराणे,—

सुरा मांसी वचा कुष्ठ शैलेयं रजनीद्वयम् ।

शठी चम्पकमुस्तञ्च सर्व्वौषधिगणः स्मृतः ॥

रजनीद्वयं हरिद्रा दारुहरिद्रा चेत्यर्थः ।

जन्मतिथिव्यवस्था तु चान्द्रेणैव न तु सौरेण । सौरे मासि कदाचित्तिथ्यप्राप्तौ लोपप्रसङ्गात् । रोहिण्यष्टमीराम-नवम्यादीनां भगवज्जन्मतिथीनां ब्रह्मपुराणादौ चान्द्रेण व्यवस्था-दर्शनाच्च ।

तथा च गृह्यपरिशिष्टम्,—

उपाकर्म्मणि चोत्सर्गः प्रसवाहोऽष्टकादयः ।

मासवृद्धौ पराः कार्य्या वर्ज्जयित्वातिपैतृकम् ॥

अस्यार्थः । प्रसवाहो जन्मतिथिः । मासवृद्धौ मलमासपाते मासवृद्ध्या तिथिद्वयप्राप्तौ पर एव प्रकृते मासि कार्य्यम् । न तु पूर्व्वस्मिन् मलमासे, अतिपैतृकं सपिण्डीकरण वर्ज्जयित्वा तत्तु मल-मासेऽपि कार्य्यमिति विवेचितं शङ्किकौमुद्याम् ।

अत्र दिनद्वये तिथिप्राप्तौ उदयगामितिथेरेव ग्रहणं “युगाद्य  
वर्षवृद्धिश्चेति पूर्वोक्तवचनात् ।

ब्रह्मपुराणे,—

सर्व्वैस्तु जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः ।

गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

स्ननञ्चत्रच्च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः ।

प्रतिसंवत्सरं यत्नात् कर्त्तव्यस्तु महोत्सवः ॥

प्रतिसंवत्सरं यत्नादित्यभिधानान्नित्याधिकारः । पितरौ जगतां  
पितरौ लक्ष्मीवासुदेवावित्यर्थः प्रजापतिसमभिव्याहारात् पृथक्  
गुरुपूजाभिधानाच्च । स्नानञ्च तिलोदत्तनं कृत्वा मत्तिलजलेन  
कार्य्यम् ।

तथा,—

तिलोदत्तीं तिलस्त्रायी तिलपायी तिलप्रदः ।

तिलहोता तिलभोक्ता षट्तिक्षी नावसीदति ॥

तथा,—

द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम् ।

मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत् प्रयतस्तथा ॥

दीर्घायुषं ततो व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम् ।

प्रह्लादञ्च हनूमन्तं विभीषणमथार्चयेत् ॥

रामोऽत्र नामदग्न्यः, द्रौणिरश्वत्थामा । अत्राचारात् षष्ठीमपि

पूजयन्ति ।

स्कान्दे,—

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च ।

आमिष कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥

ज्योतिषे,—

स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन् प्राप्तोत्यभीष्टां श्रियं

मत्स्यान् मोचयतो द्विजाय ददतोऽप्यायुश्चिरं वर्द्धते ।

शत्रून् खादति यस्तु तस्य रिपवो नाशं प्रयान्ति ध्रुवं

भुङ्क्ते यस्य निरामिषं स हि भवेज्जन्मान्तरे पण्डितः ॥

अथ प्रयोगः ।

प्रातस्त्रिलोदत्तनं विधाय तिलमिश्रोदकेन स्नात्वा पूर्णकुम्भेषु  
गङ्गामृत्तिकाफलदूर्वापञ्चरत्नानि निःक्षिप्य तैरभिषेचयेत् ।

पद्मपुराणे पुष्कर उवाच,—

शृणुष्ववहितो ब्रह्मन् सर्वकिल्बिषनाशनम् ।

येनाभिषिक्तो नृपतिश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥

सुरास्त्रामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धास्तपोधनाः ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥

आदित्या वसवो रुद्रा आश्विनेद्यौ भिषग्वरौ ।

अदिति देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥

कीर्त्तिर्लक्ष्मी धृतिः श्रीश्च सीनीवाली कुञ्जस्तथा ।

दितिश्च सुरमा चैव विनता कद्रुरेव च ॥

देवपत्न्यश्च याः प्रोक्ता देवमातर एव च ।

सर्वास्त्रामभिषिञ्चन्तु शुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥

नक्षत्राणि सुहर्ताश्च पञ्चाहोरात्रसन्धयः ।

संवत्सरा निमेषाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥  
 सर्व्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्थावयवाः शुभाः ।  
 वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥  
 सरितश्च महाभागा नागाः किम्बुरुषास्तथा ।  
 वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसास्तथा ॥  
 सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि चानि च ।  
 मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥  
 भृगुः सनत्कुमारश्च जैगीषथो बृहद्वत्तः ।  
 एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकश्चपौ ॥  
 दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।  
 मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः ॥  
 श्रीर्व्वः सम्बर्त्तकश्चैव च्यवनश्च पराशरः ।  
 द्वैपायनो जरत्कारु र्देवराजः महात्मजः ॥  
 पर्व्वता गुरवो वन्द्याः पुण्यान्यायतनानि च ।  
 प्रजापतिश्च भगवान् गावो विश्वस्य मातरः ॥  
 वाहनानि च दिव्यानि सर्व्वे लोकाश्चराचराः ।  
 अग्नयः पर्व्वताश्चैव जीमूताः खं दिशो जलम् ॥  
 एते चान्ये च बृहवो वेदव्रतपरायणाः ।  
 सश्रित्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः ॥  
 सेन्द्रा देवगणाश्चैव पुण्यश्रवणकीर्त्तनाः ।  
 तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वोत्पातनिवर्हणैः ॥  
 इति स्नान समाप्य नूतनवस्त्रयुगमलङ्कारश्च परिधाय सन्ध्या-

दिकं कृत्वा इष्टदेवता सम्पूज्य स्वस्ति वाच्य मङ्गल्यं कुर्यात् । ॐ  
अथत्यादि ग्रहवर्षष्टौ सकलमङ्गलमम्बलित दौर्घाद्युद्दामो मार्क-  
ण्डेयादिपूजाकर्मा करिये ॥

ततो घट मस्याप्य तत्र गणेश पाद्यादिभिरभ्यर्च्य नवग्रहान्  
दिक्पालानांश्च सम्पूज्य सामान्यार्घ्यं विधाय मां हृदयाय नमः,  
इत्यादिना अङ्गन्यास कृत्वा,—

द्विभुज जटिल मौम्य सुवृद्ध चिरजीविनम् ।

दण्डावसूत्रहस्तश्च मार्कण्डेय विचिन्तयेत् ॥

इति ध्यात्वा घटे आवाह्य ॐ मा मार्कण्डेयाय नमः, इति  
पाद्यादिभिरुपचारैरभ्यर्च्य—

ॐ आयुःप्रद महाभाग मोमवशममुद्भव ।

महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते ॥

इति पुष्पाञ्जलिना प्रणम्य कृताञ्जलि. प्रार्थयेत् ।

मार्कण्डेय महाभाग मत्प्रकल्पान्तर्जीवन ।

चिरजीवी यथा त्वम्भो भविष्यामि तथा मुने ॥

ततो व्याम परशुराम अथत्यामान रूप वलिं प्रह्लाद हनूमन्तं  
विभोषणञ्चार्चयेत् । ततो जन्मनक्षत्राय नमः, जन्मतिथये, जन्म-  
वाराय, जन्मराशये, जन्मलग्नाय, नम इति सम्पूज्य वासुदेव लक्ष्मीं  
प्रजापतिञ्च विशेषतः पूजयेत् ।

ततः षष्ठीमावाह्य ॐ षा षष्ठ्यै नम इति पाद्यादिभिरभ्यर्च्य  
प्रणमेत् ।

मातृभूताऽसि भूतानां ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।

तस्मान्मां पुत्रवत् कृत्वा पालय त्वं नमोऽस्तु ते ॥

ततस्त्रिशरणाद्याः पूजयित्वा प्रणमेत् ।

ॐ त्रिशरणा वृद्धमाता च गौरौ च कटपूतना ।

आयुर्दात्र्यो भवन्त्येता अद्य जन्मतिथौ मम ॥

ततः कार्तिकेयं समूच्य कुलदेवतामर्चयेत् । ततो दक्षिणां  
दत्वा दौर्घायुद्वकामनया तिलान् धान्यानि चोत्सृज्य ब्राह्मणाय दद्यात् ।  
पक्षिणो मत्स्यांश्च घातकहस्तान्मोचयेत् विप्रांश्च तोषयेत् । गोरो-  
चनादिमङ्गलद्रव्याणि चालभेत् ।

तत आचारादष्टोत्तरशतदूर्वाक्षितमिद्धार्थनिम्नपल्लवैर्यन्त्रिबन्धन  
कुर्वन्ति । सतिलं सशर्करञ्च दुग्धं पिवन्ति ।

तत्र मन्त्रः,—

सतिलं गुडसमिश्रमञ्जल्यर्द्धमित पथः ।

मार्कण्डेयवरं लब्ध्वा पिवाभ्यायुष्यहेतवे ॥

ततो बन्धुभिः सह निरामिषं सङ्गृह्णीत ।

अथ प्रकीर्णवचनानि ।

दर्शस्नानं गयाआर्द्रं तिलैस्तर्पणमेव च ।

न जीवत्पितृकः कुर्यात् कुर्वन्श्च पितृहा भवेत् ।

तथा,—

भुक्त्वाह्नं श्रीफलं नाद्यात्तथा रात्रौ नृपोत्तम ।

बुद्धिचयकरा एता माषकोद्वमृत्तिकाः ॥

मनुः,—

यत्किञ्चित्तिलसंमिश्र नाद्यादस्तमिते रवौ ।



जावाल ,—

नाधीयित नरो नित्यमाटावन्ते च पचयोः ।

आदौ तु हीयते बुद्धिरन्ते ब्रह्मैव हीयते ॥

त्रयोदश्यास्तुर्व्यास मप्तमौनवमीतिथे ।

प्रदोषेऽध्ययन श्रीमान् द्वादश्यास्तु विवर्जयेत् ।

टच.,—

प्रदोषपक्षिमौ यामौ वेदाभासेन तौ नयेत् ।

यामद्वय गयानस्तु ब्रह्मभूषाय कल्पते ॥

इति ट्चेण प्रदोषाख्यो रात्रे' प्रथमो यामः शेषयामस्तु अध्यय-  
नकाल उक्तस्तत्रोक्तजावालवचनेन त्रयोदश्यादिषु प्रदोषाख्ये प्रथम  
यामे निषिध्यते शेषयामेतदध्ययनमविरुद्धमेव ।

अनध्याय प्रकृत्य याज्ञवल्क्य',—

पञ्चदश्या चतुर्दश्यामष्टम्या राहुसूतके ।

अतुमन्धिषु भुक्त्वा च आद्विक प्रतिगृह्य च ॥

पञ्चदश्यादिषु यावत्तिथिविषय राहुसूतके दिनत्रयमनध्य-  
यनम् ।

अथ न कौर्त्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राशेस्तु सूतके ।

इति मनुवचनात् । अतुमन्धिवसे भुक्त्वा भोजनाव्यवहित-  
कालेन भुक्तमात्रेण जीर्ण इति मनुवचनात् (?) ।

गारदातिलके,—

चतुर्दश्यामौषधप्रतिपद्यह्णेषु च ।

संक्रमेषु च सर्वेषु विद्यां नैव पठेन्नरः ॥

निशासु दीपभ्रंशे च सद्यः पाठं परित्यजेत् ।

विद्युत्स्तनितवर्षेऽपि प्रकृत्य मनुः,—

एतांस्त्वभ्युदितान् विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ।

तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितसम्भवे ।

सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥

सायंप्रातर्होमार्थं प्रादुष्कृतेष्वग्निषु सत्सु सन्ध्याद्वये इत्यर्थः । एतां स्त्रीन् प्रागुक्तान् विद्युत्स्तनितवर्षानभ्युदितान् सन्भूतान् यदा जानीयात् तदा काले वर्षाकालेऽपि प्राकरणिकमहोरात्रमनध्याय विद्यात् । तथाऽनृतौ वर्षातिरिक्तकाले सन्ध्यासमये अपो विभर्त्ती-त्यभ्रमिति व्युत्पत्त्या सजलमेघदर्शनमात्रेऽप्यहोरात्रं नतु वर्षा-स्त्वित्यर्थः । चकारात् केवलविद्युत्स्तनितेऽप्यनृतावहोरात्रम् ।

वर्षाकाले सन्ध्यागर्जनमात्रे विशेषमाह प्रादुष्कृतेष्विति सन्ध्या-काले विद्युत्स्तनितमात्रे सति सज्योतिरनध्यायः । प्रातःसन्ध्या-गर्ज्जे दिवामात्रं साय गर्ज्जे रात्रिमात्रमित्यर्थः शेषे विद्युत्स्तनित वर्षाणां शेषे वर्षे च सति यथा दिवानध्यायस्तथा रात्रावपि अहो-रात्रं इत्यर्थः ।

वर्षास्तुरत्र ऋतु संवत्सरमते मासचतुष्टयं प्रायशोऽत्र दृष्टि-वाङ्मत्यात् ।

याज्ञवल्क्येन तु,—

सन्ध्यागर्ज्जितनिर्घातभूकम्पोक्त्वा निपातने ।

समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥

इति यत् सन्ध्यागर्जं द्युनिशमुक्तं तन्मनुवचनेकवाक्यतया  
ऽनृतावेव मन्तव्यम् ।

तदयं संचेपः ।

वर्षाकाले सन्ध्यायां विद्युत्स्तनितवर्षेषु त्रिषु मत्सु अहोरात्रं  
विद्युत्स्तनितमात्रे सज्योतिः न तु वृष्टिमात्रेऽनध्यायः । अनृतौ तु  
विद्युदादीनां त्रयाणां प्रत्येकसमुदायाभ्यां सम्भवेऽहोरात्रमनध्यायः ।  
काशीखण्डे,—

जातमात्रः शिशुस्तावत् यावदष्टौ समा वयः ।

भक्ष्याभक्ष्ये न दूष्येच्च यावदै नोपनीयते ॥

उपनयने सत्यष्टवर्षाभ्यन्तरेऽपि न दोष इत्यर्थः ।

तथा,—

शूद्रान् शूद्रसम्पर्कं शूद्रेणैव सहामनम् ।

शूद्राज् ज्ञानागमः कश्चित् ज्वलन्तमपि पातयेत् ।

गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकुशीलवान् ॥

प्रेथ्यान् वार्ष्णेयिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ।

वृहन्नारदीये,—

यः शूद्रेण समाहृतो भोजनं कुरुते द्विजः ।

सुरापीतिः स विज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥

यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः

तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥

नमेयुः शूद्रसंसृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा ।

स सर्वयातनाभोगी यावदाहृतसंप्रवम् ॥

योषिङ्गिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः ।  
 सुचिर नरके घोरे रौरवे स विपच्यते ॥  
 शूद्रो वा ऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ।  
 केशवं वा शिवं वापि सृष्ट्वा नरकमाप्नुयात् ॥

अथ शूद्रधर्मः ।

मनुः,—

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥

द्विजसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।

यदतोऽन्यद्वि कुरुते तद्भवेदति निष्फलम् ॥

प्रभुर्ब्रह्मा एतेषां ब्राह्मणादिवर्णत्रयाणां, अनसूयया अकौटि-

ल्येन अत इदमनादृत्य इति न्यवलोपे पञ्चमी ।

भविष्ये शिववाक्यम्,—

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां शुचिः शूद्रः करोति यः ।

स्वधर्मस्य इति ज्ञात्वा तस्य गृह्णाम्यहं बलिम् ॥

विष्णुपुराणे,—

द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान् ।

तत्र विप्रशुश्रूषायां फलाधिक्यमाह मनुः,—

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।

शुश्रूषैव हि शूद्रस्य धर्मो वै श्रेयसः परः ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मुदुवागनलङ्घितः ।

ब्राह्मणानाश्रयेन्नित्यमुत्कर्षं जातितो व्रजेत् ॥

आपस्तम्बः,—

शुश्रूषा शुश्रूषेतरेषां वर्णानां पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन् निःश्रेयसं  
भूयः ।

निःश्रेयसं धर्मः, भूयः प्रचुरतरम् ।

बृहस्पतिः,—

शौचं ब्राह्मणशुश्रूषा सत्यमक्रोध एव च ।

शुश्रूकर्म तथा मन्त्रो नमस्कारोऽस्य देशितः ॥

याज्ञवल्क्यः,—

भार्यारतिं शुचिर्भृत्यभर्ता आद्वक्रियापरः ।

नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्नं हापयेत् ॥

गोतमः,—

अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः ।

भविष्ये,—

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदाः प्रतिष्ठिताः ।

मन्वादीनि च शास्त्राणि तथाङ्गानि समन्ततः ॥

तथा पुराणमधिकृत्य तत्रैव ।

अध्येतव्यं नचान्येन ब्राह्मणं चतुर्विधं विना ।

श्रोतव्यमिह शुश्रूषेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥

श्रौतं स्मार्त्तं हि वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम ।

तस्मात् शुश्रूषैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन ॥ इति ।

इदं विप्रं विना विप्रद्वारैव श्रोतव्यं न तु चतुर्विधद्वारेत्यर्थः ।

नरसिंहपुराणे,—

अथाचितप्रदाता स्यात् कृषिं वृत्त्यर्थमाश्रयेत् ।

पुराणं शृणुयादिप्राञ्जरसिंहञ्च पूजयेत् ॥

आगमोक्तमन्त्रजपस्तु कर्त्तव्य एव तत्र विशेषविधानात् ।

द्विजशुश्रूषया कुटुम्बभरणाशक्तावाहं मनुः—

अशक्तुवंशं शुश्रूषां शूद्रः कर्त्तुं द्विजन्मनाम् ।

पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेच्च कारुकर्मभिः ॥

यैः कर्मभिः स्वचरितैः शुश्रूषन्ते द्विजातयः ।

तानि कारुककर्माणि शिन्धानि विविधानि च ॥

आचरेदिति शेषः ।

बृहस्पतिः,—

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिन्धानि चाप्यथ ।

विक्रयः सर्वपण्यानां शूद्रधर्मा उदाहृतः ॥

धर्मार्थमुभयार्थं वा ब्राह्मणानेव धारयेत् ।

जातब्राह्मणशब्दस्य साह्यस्य कृतकृत्यता ॥

उभयार्थं धर्मार्थं जीवनार्थञ्चेत्यर्थः । ब्राह्मणशुश्रूषुरयमिति

जातब्राह्मणशब्दस्येत्यर्थः सा जातब्राह्मणशब्दता ।

कालिकापुराणे,—

विक्रयं सर्वपण्यानां कुर्वन् शूद्रो न दोषभाक् ।

मधु चर्मा सुरां लाक्षां त्यक्त्वा मांसञ्च पञ्चमम् ॥

देवलः,—

लाक्षामञ्जिष्ठमांसानि मधुलौहविषाणि च ।

आजीवन् वृषलोऽप्यार्थं कर्मणा तेन वर्जितः

धनसञ्चयस्तु शूद्रेण न कार्यः ।

मनुः,—

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसञ्चयः ।

शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥

ब्राह्मणाद्यर्थे धनसञ्चये तु न दोषः ।

यथा त्रैवर्णिकं प्रकृत्य गौतमः,—

तदर्थोऽस्य सञ्चय इति ।

मनुः,—

न शूद्राय मतिं दद्यात् नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।

न चास्योपदिशेद्भुक्तं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

मतिरात्मज्ञानं उच्छिष्टं भुक्तावशिष्टं पात्रे यन्मुक्तम् ।

तथा हारौतः,—

स्नात्वा भुक्त्वा य उच्छिष्टं दृषत्पात्रं प्रयच्छति ।

स गच्छन्नरकं घोरं तिर्यग्गोनौ च जायते ॥

स्नातावशिष्टं उदत्तनद्रव्यं भुक्तावशिष्टं पात्रस्थमन्नादि चेत्यर्थः ।

निषेधोऽयं शूद्रापापरेतरशूद्रविषयः । शूद्रापापराणान्तु पात्रस्थो-

च्छिष्टं दातव्यमित्याह मनुः,—

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।

पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छेदाः ॥

पुलाकास्तुच्छधान्यानि परिच्छेदाश्चवासनादयः । अत्रोपभुक्त-

जीर्णवस्त्रादिदानसाहचर्यात् पात्रे भुक्तावशिष्टान्नं स्वभृत्यशूद्रायैव दातव्यमिति प्रतीयते ।

प्रागुक्तमनुहारीतवचनयोरेकवाक्यतया पात्रत्यक्तान्नदाननिषेधे  
प्राप्ते स्वभृत्यशूद्रगोचरतया उच्छिष्टमन्नं दातव्यमित्यनेन मनुना  
प्रतिप्रसवाच्च ।

एतेन—नोच्छिष्टं न हविष्कृतमिति स्थालीस्थावशिष्टनिषेधोऽस-  
च्छूद्रविषयः, उच्छिष्टमन्नं दातव्यमिति विधिस्तु सच्छूद्रविषयः, स  
च स्थालीस्थावशिष्टान्नस्यैव, न तु पात्रे त्यक्तस्य । सच्छूद्रस्य पञ्च-  
यज्ञविधानात् । पात्रत्यक्तस्य च पञ्चयज्ञायोग्यत्वात् । ततश्च सिद्धा-  
न्नेनैव सच्छूद्राणां पञ्चयज्ञानुष्ठानमित्याधुनिकैरुक्तं तन्निरस्तं ।

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ।

भोजयेत् सह भृत्यैस्तावानृशंसं प्रयोजयन् ॥

इति मनुवचने सामान्यतः शूद्रमात्रस्यैव भृत्येन सह स्थाली-  
स्थान्नदानविधानाच्च । कुटुम्बे गृहे इत्यर्थः ।

किञ्च,—

आमश्नाद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ।

इति प्रचेतोवचनात् ।

आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते ।

इति देवलवचनाच्च ।

पक्वान्नेन कर्मनिषेधात्तेन पञ्चयज्ञानुष्ठानमुभयलोकविरुद्धमेव ।

नचान्यथानुपपत्त्या सिद्धार्थे विधिरिति वाच्यम् । पञ्चयज्ञश्रा-  
द्धार्थं स्वामिसकाशात् पृथगामान्नग्रहणसम्भवात् “पुलाकास्यैव  
धान्यानामिति मनुवचने धान्यदानविधानादन्यथोपपत्तेश्च अन्यथा  
अमावस्याश्राद्धादिकमपि विध्यर्थेन प्रमन्येत ।



एवञ्च सामान्यतः पात्रत्यक्तोच्छिष्टदाननिषेधे स इत्यविषयः  
प्रतिप्रसवः । न तु सर्वदैव तस्योच्छिष्टदानमिति नियमः । हवि-  
स्तुतमिति यज्ञसम्भृत हविरित्यर्थः । धर्मो वर्णाश्रमाचारः, व्रतं  
चान्द्रायणादिकम् । व्रतञ्च साचान्नोपदिशेत् परम्परयात्पदेशः  
कार्यं एव यथा ।

तस्माच्छूद्रैर्विना विप्र न श्रोतव्यं कटाचन ।

इति प्रागुक्तभविष्यवचनम् ।

तथाचाङ्गिराः,—

न्यायतो मार्गमाणस्य चत्रियादेः प्रमाद्यतः ।

अन्तरा ब्राह्मण कृत्वा व्रतमेषां समादिशेत् ॥

मनुः,—

शूद्राणां मासिक कार्यं वपनं न्यायवर्त्तिनाम् ।

वैश्ववच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टञ्च भोजनम् ॥

मासिक वपन प्रतिमाम मुण्डन, केशरक्षा न कार्य्येति तात्प-  
र्य्यम् । अथवा वपन पिण्डनिर्वापोऽमावस्याश्राद्धमिति यावत् ।

व्यासः—

सत्य दमस्तथादानमहिंसेन्द्रियनिग्रहः ।

दृश्यते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

शूद्रे चैवं भवेद्दृष्टं ब्राह्मणे न च विद्यते ।

शूद्रोऽपि विप्रो मन्तव्यः शूद्रो विप्रोऽपि निष्क्रियः ॥

उपनयनवर्जं निषेकाद्याः सर्वा एव क्रियाः शूद्राणाममन्त्रकं  
ार्याः ।

यथा याज्ञवल्क्यः,—

विप्रचत्रियविट्शूद्रा वर्णाश्चाद्यास्तयो द्विजाः ।

निषेकाद्याः श्रग्नानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥

तेषां द्विजानां अत्र तेषां मन्त्रत इत्यभिधानाच्छूद्रस्यामन्त्रिकाः  
क्रियाः कार्य्या एव अन्यथा वैद्यर्थात् ।

तथा मनुः,—

निषेकादिः श्रग्नानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।

तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥

अत्रापि मन्त्रैरित्यनेन शूद्रस्यामन्त्रको विधिरस्तीत्यायातम् ।

तथा भविष्ये,—

शूद्रोऽप्येवंविधः कार्य्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः ।

उपनयनन्तु सावित्रीग्रहणरूप वेदपाठनिषेधात् स्वत एव  
व्यावृत्तम् ।

तत्र विवाहश्चासुरो मुख्यः ।

आसुरं वैश्यशूद्रयोरिति मनुवचनात् । गान्धर्वोऽनुकल्पः ।

यथा नारदः,—

साधारणः स्याद्गान्धर्वः ।

आसुरगान्धर्वावक्तौ याज्ञवल्क्ये,—

आसुरो द्रविणादानात् गान्धर्वः समयान्मिथः ।

यद्यपि,—

शुक्लेन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां सोभमोदिताः ।

आत्मविक्रयिणः पापा महाकिल्बिषकारिणः ॥

पतन्ति नरके घोरे भ्रन्ति चासप्तमं कुक्षम् ।

इति कश्यपवचनात् सामान्यतः सर्व्ववर्णगोचरो निषेधः तथापि शूद्रस्यासुरविधानादासुरत्वसम्पादनाय किञ्चिदनियतधनग्रहणं कार्य्यं न तु प्रतिनियतशुक्लं वृत्त्यर्थमादद्यात् विक्रयस्यात्यन्तनिषिद्धत्वात् अतएव लोभमोहिता इत्युक्तम् ।

केचित्तु— वैश्यशूद्रविषय आसुरविवाहो निन्दाविधानबलादित्याहुः । तन्न, उक्तप्रकारेणासुरविधेरन्यथोपपत्तौ सामान्यतो विक्रयनिषेधस्य सङ्कोचे प्रमाणाभावात् ।

अतएवादित्यपुराणे—आसुरगान्धर्व्वयोरपि विवाहयोः फलमुक्तं यथा,—

गान्धर्व्वेण विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।

गन्धर्व्वलोकं व्रजति गन्धर्व्वैः पूज्यते च स ॥

शुल्केन दद्याद्यः कन्यां वराय सदृशाय च ।

किन्नरैः सह गौयेत गान्धर्व्वं लोकमेति च ॥

अत्र दद्यादित्यनेन किञ्चिदनियतधनग्रहणं प्रतिपादितं प्रतिनियतधनग्रहणस्य विक्रयत्वात् दद्यादित्यनुपपत्तेः, वराय सदृशाय सजातीयायेत्यर्थः । अतएव वचनात् शूद्रस्य प्रतिग्रहनिषेधेऽपि कन्याप्रतिग्रहविधिरप्यायातः ।

शूद्रेण तु यजुर्वेदविधिना सर्व्वं कार्य्यम् ।

आर्षक्रमेण सर्व्वं तु शूद्रा वाजसनेयिनः ।

तस्माच्छूद्रः स्वकं कर्म यजुर्वेदेन कारयेत् ॥

इति कृष्णपुराणवचनात् ।

## अथ विधवाधर्मः ।

स्कन्दपुराणे काशीखण्डे,—

विधवाकवरीबन्धो भर्तुर्वन्धाय जायते ।  
 शिरसो वपनं तस्मात् कार्यं विधवया सदा ॥  
 एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कटाचन ।  
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा पञ्चव्रतमथापि वा ॥  
 यवान्नैर्वा फलाहारैः शाकाहारैः पयोव्रतैः ॥  
 प्राणयात्रां प्रकुर्वीति यावत् प्राण स्वयं व्रजेत् ।  
 पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् ॥  
 तस्मात् भूशयनं कार्यं पतिसौख्यनमीहया ।  
 नैवाङ्गोद्धर्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥  
 गन्धद्रव्यस्य मन्मोगो न च कार्यमनया पुनः ।  
 तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥  
 तत्पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोचादिपूर्वकम् ।  
 विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिदुष्टा नशान्नया ॥  
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्च पत्युः प्रियं भवेत् ।  
 तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया ।  
 वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमश्चरेत् ।  
 स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णोर्नामघ्नं पुनः ।

मनुः,—

कामन्तु चपयेद्देहं पुष्यमूलफलैः शुभैः ।  
 न तु नामापि गृह्णीयात् पत्यौ प्रेते परम्य च ॥

आसीतामरणात् चान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।  
मृते भर्तृरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥  
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ।

### अथ पतिव्रताधर्मः ।

मनुः,—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।  
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥  
सदा प्रदृष्टया भाव्य गृहकार्यं च दक्षया ।  
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥

उपस्कारो गृहोपकरणम् ।

मन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।  
यस्मिन्नेतत् कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥  
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।  
पूज्या भूषयितव्याश्च वज्रकल्याणमौषुभिः ॥

श्रीखण्डे,—

पाणिपीडिताः ।

तामानुष्ठा तु कल्याणमकल्याणमतोऽन्यथा ॥  
वज्रदारः पुमान् यस्तु रागादेका भजेत् स्त्रियम् ।  
न पापभाक् स्त्रीजितश्च तस्यागौच सदातनम् ॥

सेवेत भर्तुस्तच्छिष्टं मिष्टमन्नफलादिकम् ।

महाप्रसादं दत्तुक्ता पतिदत्तं प्रतीच्छति ॥

स्त्रीधर्म्णिणी चिराचन्तु स्समुखं नैव दर्शयेत् ।  
 अवाच्यं श्रावयेन्नापि यावत् स्नाता न वै भवेत् ॥  
 सुस्नाता भर्तृवदनमीचेतान्यस्य न क्वचित् ।

दौक्ष्येऽपि च पतिव्रता ॥

पतिं नास्तीति न ब्रूयादायाद्यर्थे न योजयेत् ।  
 आयाद्यर्थे नेति, धृतादिकं दृढं न तु नास्तीति ब्रूयात् इत्यर्थः ।

तथा,—

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।  
 शङ्करादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रिया ॥  
 व्रतोपवासनियमान् पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् ।  
 आयुः सा हरते पत्युर्मृता निरयमृच्छति ॥

पतिमुल्लङ्घ्य व्रताद्याचरणे दोष इत्यर्थः ।

तथा,—

उक्ता प्रत्युत्तरं दद्यात् या नारी क्रोधतत्परा ।  
 मरमा जायते ग्रामे शृगाली वा महावने ॥

मरमा कुक्षुरी ।

तथा,—

धन्या सा जननी लोके धन्योऽथ जनकः पुनः  
 धन्यः स च पतिः त्रैमान् यम्य गेहे पतिव्रता ।  
 पितृवंशा मातृवंशा पतिवश्याम्वयः स्त्रियाः ।  
 पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गमौल्यादिशान्तिः ।

याज्ञवल्क्यः.—

स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्य्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः ।

मनुः,—

यस्मै दद्यात् पिता वैनां भ्राता वानुमतः पितुः ।  
 त शूश्रूषेत जीवन्तं सस्थितञ्च न लङ्घयेत् ॥  
 व्यभिचारान्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।  
 शृङ्गालयोनिमाप्नोति पापरोगेऽप्यपीड्यते ॥  
 पतिं या नाभिचरति मनोवाक्कायकर्म्मभिः ।<sup>१</sup>  
 सा भर्तृलोकानाप्नोति सङ्गिः साध्वीति वर्ण्यते ॥  
 विशीलः कामवृत्तोवा गुणैर्वा परिवर्जितः ।  
 उपचर्य्यः स्त्रिया साध्वया सततं देववत्पतिः ॥  
 नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।  
 पति शूश्रूषते येन तेन स्वर्गं महीयते ॥  
 गोविन्दानन्दकृतिना कृतेयं वर्षकौमुदी ।  
 इमां भजन्तु कृत्यकृत्यताम् ॥  
 सर्वान्तर्यामिने तस्मै गोविन्दाय नमो नमः ।  
 यत्कृपा विदुषामस्थामनुरागप्रवर्त्तिनी ॥

इति श्रीगोविन्दानन्दाचार्य्यकृता

वर्षकौमुदी समाप्ता ॥